शिव पुराण

(द्वितीय खण्ड)

(सरल हिन्दी भाष्य सहित जनोपयोगी संस्करण)

●

सम्पादक :

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद्, षट् दर्शन, २० स्मृतियों, १८ पुराणों, के भाष्यकार, गायत्री महाविद्या के विशेषज्ञ और बहुसंख्यक हिन्दी ग्रन्थों के रचयिता

●

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान

ख्वाजाकुतुब, वेदनगर, बरेली-२४३००१ (उ० प्र०)





श्री शिव पुराण

[द्वितीय खण्ड]

(सरल भाषानुवाद सहित-जनोपयोगी संस्करण)

सम्पादक :

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद, षट-दर्शन, योग वासिष्ठ,
२० स्मृतियाँ और १८ पुराणों के
प्रसिद्ध भाष्यकार

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब, (वेदनगर), बरेली-२४३००१ (उ० प्र०)

प्रकाशक :

डा० चमन लाल गौतम

संस्कृति संस्थान,

ख्वाजा कुतुब, (वेदनगर)

बरेली-२४३००१ (उ०प्र०)

●

सम्पादक :

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

●

●

संशोधित द्वितीय जनोपयोगी संस्करण

सन् १९७६

1976

●

मुद्रक :

शैलेन्द्र वी. माहेश्वरी

नव ज्योति, प्रेस

भीकचन्द मार्ग, मथुरा

●

मूल्य :

दस रुपये पचास पैसे

श्री शिव पुराण के दूसरे खण्ड की

विषय-सूची

३—शत रुद्र संहिता

४—कोटि रुद्र संहिता

५—उमा संहिता

६—कैलाश संहिता

४—वायु संहिता (पूर्व भाग)

वायु संहिता (उत्तर भाग)

॥ समाप्त ॥

काल काल महात्रास विध्वंसकरमुत्तभम् ।
शैवं पुराणं परमं शिवेनोक्त पुरामुने ।।
जन्मोन्तेर भवेत्पुण्यं महद्यस्य सुधीमतः ।
तस्य प्रीतिर्भवेत्तत्र महाभाग्यवतो मुने ।।
पठनाच्छ्रणादस्य भक्तिमान् नर सत्तमः ।
यद्यः शिवपद प्राप्ति लभते सर्वसाधनात् ।।

यह भगवान शिव के द्वारा कहा गया परमोत्तम शिवपुराण भयंकर समय रूपी महापाप का नाश करने वाला है। जिसने जन्म-जन्मान्तर में में अनेक प्रकार के श्रेष्ठ पुण्य किये हों उसी महाभाग्यशाली व्यक्ति की रुचि इस महापुराण के श्रवण करने को होती है। इसके पढ़ने और सुनने से मनुष्य ऐसा भक्ति-भाव सम्पन्न हो जाता है जिससे उसे शिव-साधन रूप परमपद की शीघ्र ही प्राप्ति होती है।

श्री शिव पुराण

[द्वितीय खण्ड]

।। शिव का अश्वत्थामा के रूप में अवतार ।।

सनत्कुमार सर्वज्ञ शिवस्य परमात्मनः ।
अवतारं श्रृणु विभोरश्वत्थामाह्वयं परम् ।।१
बृहस्पतेर्महाबुद्धेर्देवर्षेरशतो मुने ।
भरद्वाजात्समुत्पन्ने द्रोणोऽयोनिज आत्मवान् ।।२
धनुर्भृतां वरः शूरो विप्रर्षिः सर्वशास्त्रवित् ।
बृहत्कीर्तिर्महातेजा यः सर्वास्त्रविदुत्तमः ।।३
धनुर्वेदे च वेदे च निष्णातं यं विदुर्बुधाः ।
वरिष्ठं चित्रकर्माणं द्रोणं स्वकुलवर्धनम् ।।४
कौरवाणां स आचार्य्य आसीत्स्वबलतो द्विज ।
महारथिषु विख्यातः षटषु कौरवमध्यतः ।।५
साहाय्यार्थं कोवारणां स तेपे विपुलं तपः ।
विमुद्दिश्य पुत्रार्थ द्रोणाचार्यो द्विजोत्तम ।।६
ततः प्रसन्नो भगवांच्छंकरो भक्तवत्सलः ।
आविर्बभूव पुरतो द्रोणस्य मुनिसत्तम ।।७

नदीश्वर ने कहा—हे सर्वज्ञ ! हे सनत्कुमार ! अब आप सबमें व्याप्त रहने वाला परमेश प्रभु शिव का 'अश्वत्थामा'—इस नाम से होने वाले उत्तम अवतार की कथा श्रवण करो ।१। हे मुने ! महा मनीषा से सम्पन्न देवगुरु वृहस्पति के अंश में भरद्वाज ऋषि के द्वारा द्रोण इस नाम वाला एक अयोनिज पुत्र उत्पन्न हुआ ।२। यह द्रोण संसार के समस्त धनुष धारियों में परम श्रेष्ठ अद्भुत् वीर, विप्रर्षि, समस्त शास्त्रों का ज्ञाता, कीर्ति सम्पन्न, महान् तेजस्वी और सभी शस्त्रास्त्रों के चलाने की विधि का जानने वाला हुआ था ।३। बुद्धिशाली द्रोण वाण विद्या का पारङ्गत पण्डित-वेदार्थ ज्ञान का धुरन्दर विद्वान एक-से-एक अद्भुत कर्मों के करने वाला अपने कुल का वर्द्धक वरिष्ट परम प्रसिद्ध था ।४। हे द्विजवर्य ! यह महा बलवान् द्रोण कौरव कुल का आचार्य और छै महारथियों में अत्यन्त प्रसिद्ध थे ।५। ब्राह्मणों व अत्युत्तम द्रोणाचार्य ने कौरव कुल की सहायता करने के लिये एक महावीर पुत्र के उद्देश्य को लेकर शिव के प्रीत्यर्थ उग्र तपस्या की ।६। द्रोण के तप से मुनि सत्तम ! भक्तों पर कृपा रखने वाले भगवान् शङ्कर प्रसन्न होकर द्रोणाचार्य के समक्ष में प्रकट हो गये ।।७।।

तं दृष्ट्वा स द्विजो द्रोणास्तुष्टावाशु प्रणम्य तम ।
महाप्रसन्नहृदयो नतकः सुकृताञ्जलिः ।।८
तस्य स्तुत्या च तपसा सन्तुष्टः शङ्करः प्रभु ।
वरं ब्रूहीति चोवाच द्रोणं तं भक्तवत्सलः ।।९
तच्छ्रुत्वा शम्भुवचन द्रोणः प्राहाथ सन्नतः ।
स्वांशजं तनयं देहि सर्वाजेयं महाबलम् ।।१०
तच्छ्रुत्वा द्रोणवचन शम्भुः प्रोचे तथास्त्विति ।
अभूदन्तर्हिस्तात कौतुकी सखकृन्मुने ।।११
द्रोणाऽपगच्छत्स्वं धाम महाहृष्टी गतभ्रमः ।
स्वपत्न्यै कथयामास तद्वृत्त सकल मुदा ।।१२

अथावसरमासाद्य रुद्रः सर्वान्तक प्रभः ।
स्वांशने तनयो जज्ञे द्रोणस्य स महाबलः ।।१३

अश्वष्थामेति विख्यातः स बभूव क्षितो मुने ।
प्रवीरः कन्जपत्राक्षः शत्रुपक्षक्षयङ्कर ।।१४

भगवान् शिव का दर्शन कर ब्राह्मणोत्तम द्रोणाचार्य ने हृदयमें अत्यन्त प्रसन्न होकर हाथ जोड़ते हुए नम्र भावना से शिव को प्रणाम किया ।८। द्रोण की स्तुति से तथा घोर तपश्चर्या से भक्तवत्सल शिव ने प्रसन्नता-पूर्वक द्रोण से कहा—'जो चाहो वरदान माँगो ।६। शिव के ऐसे आनन्द-प्रद वचनों को सुनकर द्रौणाचार्य ने नम्रता से प्रार्थना की कि सभी के द्वारा अजेय और अतुल बलशाली अपने ही अंश से उत्पन्न होने वाले पुत्र का वर दीजिए ।१०। हे तात ! हे मुनिवर, द्रोणाचार्य की इस प्रार्थना को सुनकर शिव ने कहा–ऐसा होगा ।' बस इतना कहने के उपरान्त कौतुक करने वाले सुखदायी शिव अन्तर्ध्यान हो गये ।१५। तब तो आचार्य द्रोण का संशय मिट गया, अत्यन्त प्रसन्नता के साथ अपने निवास स्थान पर पहुँचकर शिव से प्राप्त इस वरदान का समस्त वृत्तान्त अपनी पत्नी को कह सुनाया ।१२। इसके अन्तर समय आने पर जगत् के संहारक प्रभु शिव अपने अंश से आचार्य द्रोण के यहाँ महाबलशाली पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए ।१३। हे मुनिराज ! वह कमलदल के तुल्य सुन्दर नेत्र वाले और शत्रुओं के बल के नाश करने वाले महाबली शङ्कर संसार में अश्वत्थामा—इस नाम से विख्यात हुए ।।१४।।

यो भारते रणे ख्यातः पितुराज्ञामवाप्य च ।
सहायकृद्भभुवाथ कौरवाणां महाबलः ।।१५

यमाश्रित्य महावीरं कौनवाः सुमहाबला ।
भीष्म दयो बभूवुस्तेऽजेया अपि दिवोकसाम् ।।१६

यद्भयात्पाण्डवाः सर्वे कौरवाञ्जेतुमक्षमाः ।
आसन्नष्टा महावीराऽपि सर्वे च कोविदाः ।।१७

कृष्णोपदेशतः शम्भोस्तपः कृत्वातिदारुणम् ।
प्राप्य चास्त्रं शम्भुराज्जिग्ये तानर्जुनस्ततः ॥१८
अश्वत्थामा सहावीरो महादेवांशजी मुने ।
तथापि तद्भक्तिवशः स्वप्रतापमदर्शयत् ॥१९
विनाश्य पाण्डवसुताञ्शिक्षितानपि यत्नतः ।
कृष्णादिभिर्महावीरैरनिवार्य्यबलः परैः ॥२०
पुत्रशोकेन विकलमापतन्तं तमर्जुनम् ।
रथेनाच्युतनतं हि दृष्ट्वा स च पराद्रवत् ॥२१

इस महान् बलशाली अश्वत्थामा ने महाभारत के युद्ध में अपने पिता की आज्ञा से बड़ी ख्याति के साथ कौरव कुल के पक्ष की सहायता की थी ॥१५॥ इसी महावीर अश्वत्थामा का आश्रय पाकर पराक्रम कौरव और पितामह भीष्म आदि सभी वेदों के द्वारा भी अजेय हो गये थे ।१६। जिसके भय होने के कारण बड़े भारी शूरवीर तथा परम विद्वान् पाण्डव कौरवों के जीत लेने में एकदम असमर्थ हो गये और प्रायः नष्ट भ्रष्ट हो गये थे ॥१७॥ तब भगवान् श्रीकृष्ण के उपदेश को प्राप्त कर अर्जुन ने भगवान् शिव की अत्यन्त उग्र तपस्या की और उनकी कृपा से अनेक अमोघ अस्त्र प्राप्त कर कौरवों पर विजय प्राप्त की ॥१८॥ हे मुनीन्द्र ! अश्वत्थामा ने साक्षात् भगवान् शङ्कर के अंश से उत्पन्न होकर कौरवों की भक्ति के वश में आकर संग्राम में अपने प्रताप का वैभव दिखलाया था ॥१९॥ महान् बलशाली कृष्ण आदि शत्रुओं के द्वारा भी बड़े यत्न के साथ शिक्षा लिए हुए पाण्डवों के पुत्रों को अश्वत्थामा से मार गिराने पर भी उसकी बल-शक्ति को हटाया न जा सका था ॥२०॥ अपने मृत पुत्रों के शोक से अत्यन्त व्याकुल अर्जुन को श्रीकृष्ण के साथ रथ पर सवार होकर, दौड़कर आते हुए देखकर अश्वत्थामा भाग गया ॥२१॥

अस्त्रं ब्रह्मशिरो नाम तदुपर्य्यसृजत्स हि ।
ततः प्रादुरभूत्तेजः प्रचण्ड सर्वतो दिशम् ॥२२

प्राणापदमभिप्रेक्ष्य सोऽर्जुनः क्लेशसंयुतः।
उवाच कृष्ण विक्लान्तो नष्टतेजा महाभयः ॥२३
किमिद स्वित्कुतो वेति कृष्ण कृष्ण न वेदम्यहम्।
सर्वतोमुखमायाति तजश्चद सुदःसहम् ॥२४
श्रुत्वार्जुनदश्चेद स कृष्ण शैवसत्तमः।
दध्यो शिवं सदारं च प्रत्याहार्जुनमादरान् ॥२५
वेत्थेदं द्रोण पुत्रस्य ब्राह्मस्त्र महोल्बणम्।
न ह्यस्यान्यतम किञ्चिदस्त्रं प्रत्यवकर्शनम् ॥२६
शिव स्मर द्रुतं शम्भुं स्वप्रभुं भक्तरक्षकम्।
येन दत्त हिन्ते स्वास्त्रं सर्वकार्यकर परम् ॥२७
जह्मास्त्रतेज उन्नद्धत्व तच्चैवास्त्रतेजसा।
इत्युक्त्वा च स्वय कृष्णः शिवं दध्यौ तदर्थकः ॥२८

उस समय भागकर जाते हुए भी अश्वत्थामा ने ब्रह्मशिर नाम वाला अस्त्र अर्जुन पर छोड़ दिया था कि जिसके परम प्रचण्ड तेज का प्रकाश समस्त दिशाओं में प्रकट हो गया।२२। उस वक्त प्राणों पर आई हुई उस विपत्ति को देखकर अर्जुन भय से व्याकुल हो उठा और उसके तेज से दुःखित होकर उसने श्रीकृष्ण से कहा।२३। अर्जुन ने कहा—हे कृष्ण! हे कृष्ण! यह कहाँ से जिसका अति दुस्सह तेज सब ओर से चला आ रहा है और क्या है? मैं इसको अभी तक नहीं समझ पा रहा हूँ।२४। नन्दीश्वर ने कहा—उस समय कातर अर्जुन ने इन खेद भरे वचनों को सुनकर पार्वती के सहित शङ्कर का ध्यान करते हुए भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा।२५। हे अर्जुन! तुम जानते हो, यह आचार्यवर द्रोण के आत्मज अश्वत्थामा के द्वारा छोड़ा हुआ अत्यन्त तीव्रतम ब्रह्मास्त्र है। संसार में इसके समान अन्य कोई भी अस्त्र इतना महान घातक नहीं है।२६। अब तुम्हारा इतना कर्तव्य है कि बहुत शीघ्र अपने प्रभु और भक्त-वत्सल शिवजी का आदर सहित ध्यान स्मरण करो। उन्होंने तुम्हें भी समस्त कार्य पूर्ण करने वाला महान् अस्त्र प्रदान किया है।२७। अब तुम अपने उसी शैव अस्त्र से इस ब्रह्मास्त्र के तेज का निवारण कर सकते हो।

यह कहते हुए श्रीकृष्ण भी स्वय इसकी रक्षा के लिए श्री शिव का मन में ध्यान करने लगे ॥२८॥

तच्छ्रुत्वा कृष्णवचनं पार्थः स्मृत्वा शिवं हृदि ।
स्पृष्ट्वापस्तं प्रणम्याशु चिक्षेपास्त्रं ततो मुने ॥२९
यद्यप्यस्त्रं ब्रह्मशिरस्त्वमोघञ्चाप्रतिक्रियम् ।
शैवास्त्रतेजसा सद्यः समशाम्यन्महामुने ॥३०
मंस्था मा ह्येतदाश्चर्यं सर्वचित्रमय शिवे ।
यः स्वशक्तयाऽखिलं विश्वं सृजत्यवति हन्त्यज ।
अश्वत्थामा ततो ज्ञात्वा वृत्तमेतच्छिवांशिजः ॥३१
शैवं न विव्यथे किञ्चिच्छिवेच्छातुष्टधीर्मुने ॥३२
अथ द्रौणिरिदं विश्वं कृत्स्नं कर्तुमपाण्डवम् ।
उत्तरागर्भगं बाल नाशितुं मन आदधे ॥३३
ब्रह्मास्त्रमनिवार्य्यं तदन्यैरस्त्रैर्महाप्रभम् ।
उत्तरागर्भमुद्दिश्य चिक्षेप स महाप्रभुः ॥३४

हे मुने ! इस प्रकार अर्जुन ने श्रीकृष्ण की आज्ञा पाते ही शिव के चरणों का स्मरण अपने मन में किया और उनको प्रणाम करते हुए जल का स्पर्श करके शिव के द्वारा प्रदत्त शैवास्त्र को छोड़ दिया ।२९। हे महा-मुने ! ब्रह्मशिर अस्त्र का तेज यद्यपि कभी भी निष्फल होने वाला नहीं था तो भी उस शैवास्त्र के तेज के द्वारा वह उसी समय शान्त हो गया था ।३०। इस प्रकार की अत्यन्त विचित्र लीलाओं के दिखाने वाले श्रीशिव के विषय में कभी भी आश्चर्य नहीं समझना चाहिए । वेपरम अजेय हैं और अपनी अजित एवं अपरिमित शक्ति के द्वारा इस समस्त संसार की उत्पत्ति तथा नाश किया करते हैं ।३१। हे मुनीश्वर ! उस वक्त शिव की अंश शक्ति से समुत्पन्न अश्वत्थामा ने शिव की इच्छा को जानकर सन्तुष्ट होते हुए उस शैवास्त्र का छेदन नहीं किया ।३ । इसके अनन्तर आचार्य द्रोण के आत्मज अश्वत्थामा ने समस्त संसार को पाण्डव हीन कर देने की इच्छा से उत्तरा के गर्भ में रहने वाले बालक के संहार करने का विचार

मन में स्थिर किया।३३। इसके अनन्तर अश्वत्थामा ने परम कान्ति से युक्त तथा अन्य किसी भी अस्त्र से न हटाये जाने की शक्ति रखने वाले उस ब्रह्मास्त्र का उत्तरा के गर्भ पर प्रहार कर दिया ॥३४॥

ततश्च सोत्तरा जिष्णुवधूर्विकलमानता ।
कृष्ण तुष्टाव: लक्ष्मीश दह्यमाना तदस्तत्र ॥३५
ततः कृष्णः शिव ध्यात्वा हृदा स्तुत्वा प्रणम्य च ।
अपाण्डवमिदं कर्तुं द्रौणरस्त्रमबुध्यत ॥३६
स्वरक्षार्थेन्द्रदत्तेन तदस्त्रण सुवर्चसा ।
सुदर्शनेन तस्याश्च व्यधाद्रक्षां शिवाज्ञया ॥३७
स्वरूपं शंकरादेशात्कृतं शिववरेणा ह ।
कृष्नेन चरित ज्ञात्वा विमनस्कः शनैरभूतः ॥३८
ततः स कृष्णः प्रेतात्मा पाण्डवान्सकलानपि ।
अपातयत्तदध्रयोस्तु तुष्टये तस्य शैवराट् । ३९
अथ द्रौणिः प्रसन्नात्मा पाण्डवान्कृष्णमेव च ।
नानावरान्ददौ प्रीत्या सोऽश्वत्थामाऽनुगृह्य च ॥४०
इत्थ महेश्वर स्तात चक्रे लीलां परां प्रभुः ।
अवतीर्य्य क्षितो द्रौणिरूपेण मुनिसत्तम ॥४१
शिवावतारोऽश्वत्थामा महाबलपराक्रमः ।
त्रैलोक्यसुखदोऽद्यापि वर्तते जाह्नवीतटे ॥४२
अश्वत्थामावतारस्ते वर्णितः शङ्करप्रभोः ।
सर्वसिद्धिकरश्चापि भक्ताभीष्टफलप्रदः ॥४३
य इदं शृणुयाद् भक्त्या कीर्येद्वा समाहित ।
स सिद्धिं प्राप्नुयादिष्टमन्ते शिवपुरं व्रजेत् ॥४४

इस ब्रह्मास्त्र के तेज से अत्यन्त व्याकुल मन वाली अर्जुन के पुत्र की भार्या उत्तरा जलकर भस्मीभूत होती हुई लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगी।३५। उत्तरा की स्तुतिसे सावधान होकर श्रीकृष्ण ने मन में शिवका प्रणामपूर्वक ध्यान व स्तवन करते हुए यह समझ लिया कि यह

पाण्डव कुल के पूर्ण विनाश करने के लिए अश्वत्थामा के द्वारा छोड़े हुये ब्रह्मास्त्र का प्रभाव है ।३६। उस समय श्रीशिव की ही आज्ञा से श्रीकृष्ण से इन्द्र द्वारा अपनी सुरक्षा के लिए प्राप्त सुदर्शन चक्र से उत्तरा के गर्भ की रक्षा की, जिस सुदर्शन चक्र का भी अति दुस्सह तेज था ।३७। यह समस्त चरित्र समझकर शिव के परम भक्त श्रीकृष्ण ने उत्तरा के गर्भ को शिवाज्ञा से अपना ही रूप बना दिया तो वह ब्रह्मास्त्र शनैः शनैः शान्त हो गया ।३८। इसके पश्चात् शिव के परम भक्त श्रीकृष्ण ने प्रसन्न होकर सब पाण्डवों को अश्वत्थामा की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए उसके चरणों में प्रणिपात के लिए गिरने की प्रेरणा दी ।३९। इससे आचार्य द्रोण के पुत्र शिव के अशावतारी अश्वत्थामा बहुत प्रसन्न हुए और प्रेमपूर्वक पाण्डवों तथा श्रीकृष्ण पर कृपा करके उन्हें अनेक उत्तम वरदान भी दिए ।४०। हे तात ! हे मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकार से जगत् के प्रभु शिव ने अश्वत्थामा के रूप में अवतीर्ण होकर पृथ्वीतल में अनेकानेक अति अद्भुत लीलायें दिखलाई थीं ।४१। महान बल तथा प्रबल पराक्रम वाले अश्वत्थामा का अवतार ग्रहण करनेवाले शिव त्रिभुवन को परम सुखदायी अब तक भी गङ्गा के तट पर विराजमान हैं ।४२। मैंने यह शिव के अश्वत्थामा नाम वाले अवतार का चरित्र आपको सुना दिया, यह समस्त सिद्धियों का दाता और भक्तों के मनोरथ पूर्ण करने वाला है ।४३। जो भी कोई मनुष्य इस पावन चरित्र को, चित्त को सावधान करके सुनता है तथा भक्ति को भावना से इसका कीर्तन करता है । वह अपने सम्पूर्ण मनोरथों की सिद्धि प्राप्त कर अन्तिम काल में भगवान् शङ्कर के लोक चला जाता है ।।४४।।

।। द्वादश ज्योति लिंगावतार का वर्णन ।।

अवताराञ्छृणु विभोर्द्वादशप्रमितान्पराम् ।
ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपान्वै परमोत्तमकान्मुने ।।१
केदारो हिमवत्पृष्ठे डाकिन्यां भीमशङ्करः ।
वाराणस्यां च विश्वेशस्त्र्यम्बको गौतमीतटे ।।२
सौराष्ट्रे सोमनाथश्च श्रीशैले मल्लिकार्जुन ।

उज्जयिन्यां महाकाल ओंकारे चामरेश्वरः ॥३
वैद्यनाथश्चिताभूमो नागेशो दारुकावने ।
सेतुबन्धे च रामेशो घुश्मेशाश्च शिवालये ॥४
अवतारद्वादशकमेतच्छम्भो परात्मनः ।
सर्वानन्दकर पुंसा शर्शनात्स्पर्शनान्मुने ॥५
तत्राद्यः सोमनाथो हि चन्द्रदुःखक्षयङ्करः ।
क्षयकुष्टादिरोगाणां नाशकः पूजनान्मुने ॥६
शिवावतारः सोमेशो लिङ्गरूपेणा संस्थित ।
सौराष्ट्रे शुभदेशे च शशिना पूजितः पुरा ॥७

नन्दीश्वर ने कहा—हे मुने ! अब आप मुझसे सबमें व्यापक रहने वाले ज्योतिर्लिङ्ग स्वरूप वाले बारह उत्तम अवतारों की कथा सुनिए ।१। इन अवतारों के पीठ स्थान इस प्रकार से हैं—हिमालय पर केदारनाथ, डाकिनी में श्री भीमशङ्कर, काशीपुरी में विश्वनाथ, गोमती नदी के तट पर त्र्यम्बकर, सौराष्ट्र देश में सोमनाथ स्वामी हैं । श्री शैल में मल्लिकार्जुन का स्वरूप हैं, उज्जयिनी में महाकालेश्वर, ओंकार में अमरनाथ, चिताभूमि में वैद्यनाथ भगवान, दारुक वन में नागेश्वर, सेतुबन्ध में श्रीरामेश्वर तथा शिवालय में घुश्मेश्वर अवतार है ॥२-३-४॥ हे मुने ! परमेश भगवान शिव के ये युक्त द्वावश अवतार हुए हैं। जिनके दर्शन एवं स्पर्श करने से मनुष्योंको परम आनन्द तथा सुख सौभाग्य का लाभ होता है ।५। हे मुनिश्वर ! इन सब में प्रथम श्रीसोमनाथ चन्द्रदेव के दुःख का नाश करने वाले हैं। इनके अर्चन करने से कुष्ठ और क्षय रोग का सर्वथा नाश हो जाता है ।६। श्रीसोमनाथ इस पावन नाम से होने वाला अवतार सौराष्ट्र देश में हुआ था जो कि वहाँ लिङ्ग के स्वरूप में विराजमान हैं। इनका सर्वप्रथम पूजन चन्द्रदेव ने ही किया था ॥७॥

चन्द्रकुण्डं च तत्रैव सर्वपापविनाशम् ।
तत्र स्नात्वा नरो धीमान्सर्वरोगैः प्रमुच्यते ॥८
सोमेश्वरं महालिङ्गं शिवस्य परमात्मकम् ।
दृष्ट्वा प्रमुच्यते पापाद्भक्तिं मुक्तिं च विन्दति ॥९

मल्लिकार्जुनसंज्ञश्चावतार शङ्करस्य वै ।
द्वितीय श्रीगिरौ ताम भक्ताभीष्टफलप्रदः ॥१०

संस्तुतो लिङ्गरूपेण सुतदर्शनहेतुतः ।
गतस्तत्र महाप्रीत्या स शिवः स्वगिरेर्मुने ॥११

ज्योतिर्लिङ्गं द्वितीय तद्दर्शनात्पूजनान्मुने ।
महासुखकर चान्ते मुक्तिदं नात्र संशयः ॥१२

महाकालाभिधस्तातावतारः शङ्करस्य वै ।
उच्जयिन्यां नगर्यां च बभूव स्वजनावनः ॥१३

वह चन्द्र कुण्ड के नाम से एक जलाशय है । चतुर लोग वहाँ उस कुण्ड में स्नान करके समस्त रोगों से मुक्ति पा जाया करते है ।८। श्री सोमनाथ का लिङ्ग स्वरूप साक्षात् श्रीशिव के आत्मज स्वरूप हैं । इस महाङ्गि के दर्शन से पापों से छुटकारा पाकर मनुष्य भोग और मोक्ष दोनों को प्राप्ति कर लेते हैं ।९। हे तात ! भगवान शङ्कर का द्वितीय अवतार मल्लिकार्जुन नाम वाला है और वह श्रीगिरि पर्वत पर विराजमान हैं तथा अपन भक्तजनों के मनचाहे फल प्रदान किया करते हैं ।१०। हे मुनिश्वर ! पुत्र के मुख को देखने के लिए यहाँ लिंग के स्वरूप में ही स्तुति की गई थी । वहाँ से फिर शिव प्रसन्नता के साथ कैलाश पर्वत के अपने निवास स्थान को चले गये हैं।११। हे मुने! यह ही द्वादश अवतारों में द्वितीय ज्योतिर्लिङ्ग है । इसके दर्शन से महान सुख और जीवन के अन्तिम काल से निःसन्देह मोक्ष प्राप्त होता है ।१२। हे मुनिराज ! हे तात ! अपने परिवार की रक्षा करने के लिये उज्जयिनी में महाकालेश्वर नाम वाला शिव का अवतार हुआ है ॥१३॥

दूषणाख्यासुरं यस्तु वेदधर्मप्रमर्दकम् ।
उज्जियिन्यां गत विप्रद्वेषिणा सर्वनाशनम् ॥१४

वेदविप्रसुतध्यातो हुङ्कारेणैव स द्रुतम् ।
भस्मसाकृतवांस्तं च रत्नमालनिवासिनम् ॥१५

तं हत्वा स महाकालो ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपतः ।
देवैः स प्रार्थितोऽतिष्ठत्स्वभक्तपरिपालकः ॥१६

महामालाह्वयं लिङ्गं दृष्ट्वाऽभ्यर्च्य प्रयत्नतः ।
सर्वान्कामानवाप्नोति लभते परतो गतिम् ॥१७

ओंकारः परमेशानो धृतः शम्भो परात्मनः ।
अवतारश्चतुर्थो हि भक्ताभीष्टफलप्रदः ॥१८
विधिना स्थापितो भक्त्या स्वलिङ्गोत्पार्थिवान्मुने ।
प्रादुर्भूतो महादेवो विन्ध्यकामप्रपूरकः ॥१९
देवैः सम्प्रार्थितस्तत्र द्विधारूपेण संस्थितः ।
भुक्तिमुक्तिप्रदो यिङ्गरूपो वै भक्तवत्सलः ॥२०
प्रणवे चैव ओंकारनामासील्लिंगमुत्तमम् ।
परमेश्वरनामाऽऽसीत्पार्थिवश्च मुनिश्वरः ॥२१

महाकालेश्वर शिव ने उज्जयिनी में वेद एवं बिप्रों से द्वेष करनेवाले आये हुए दुरात्मा दूषण नाम वाले दैत्यको एक हुंकार से ही नष्ट कर दिया था। वहाँ वह वेद बिप्रके पुत्र का बध करने के लिए आया था जोकि रत्न माल देश में भगवान शङ्कर के ध्यानमें सर्वदा निरत रहा करता था ।१४-१५। उसी समय में दैत्य का संहार कर भक्तवत्सल शिवदेवगण से प्रार्थित होनेपर महाकालेश्वर नाम से ज्योतिर्लिङ्ग के स्वरूपमें उज्जयिनी नगरीमें विराजमान हुए हैं।१६। उज्जयिनीमें स्थित महाकालेश्वरके दर्शनका महान फल होता है। जो इस ज्योतिर्लिङ्गके दर्शन तथा सयत्न समर्चन करता है, वह अपने सम्पूर्ण मनोरथ पाकर अन्तमें निश्चय ही परगतिको प्राप्त किया करता है।१७। शंकर का चतुर्थ अवतार ओंकारनाथ नामवाला है। यह भी भक्तों के समस्त अभीष्ट फलों के प्रदान करने वाले हैं और अन्तमें सद्गति दिया करते हैं ।१८। हे मुनिश्वर ! ओंकारनाथ पार्थिव लिंग के अनुसार सविधि भक्तिपूर्वक संस्थापित महादेव ने प्रकट होकर विन्ध्यके मनोरथोंको पूर्ण किया ।१९। देवताओं से प्रार्थना किए जानेपर वहाँ शिव ने अपने दो

स्वरूप धारण किये थे। भक्तों पर प्रेम करने वाले लिङ्ग रूप में विराज-मान शिव भुक्ति-मुक्ति के देने वाले हैं।२०। हे मुने! ओंकार नाम प्रणव में सर्वोत्तम लिङ्ग हैं और वहाँ परमेश्वर नाम वाले पार्थिव रूप में प्रकट हुए हैं ।।२१।।

भक्ताभीष्टप्रदो ज्ञेया योऽपि ष्टोर्हचितो मुने।
ज्योतिर्लिगे महादिव्ये वर्णिते ते महामुने ।।२२
केदारेशोऽवतारस्तु पञ्चमः परमः शिवः।
ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपेण केदारे सस्थितः स च ।।२३
नरनारायणा रव्यौ यावक्तारौ हरेर्मुने।
तत्प्रार्थितः शिवस्तत्स्थैः केदारे हिमभूधरे ।।२४
ताभ्यां च पूजितो नित्यं केदारेश्वरसंज्ञकः।
भक्ताभीष्टप्रदः शम्भुदर्शनादर्चनादपि ।।२५
अस्य खण्डस्य स स्वामी सर्वेशोऽपि विशेषतः।
सर्वकामप्रदस्तात सोऽवतारः शिवस्य वै ।।२६
भीमशङ्करसंज्ञस्तु षष्ठः शम्भोमहाप्रभोः।
अवतारी महालीली भीमासुरविनाशनः ।।२७
सुदक्षिणाभिव भक्तङ्कामरूपेश्वरं वृषम्।
यो ररक्षाभ्दुत हत्वाऽसुरं त भक्तदुःखदम् ।।२८
भीमशङ्करनामा स डाकिन्यां संस्थितः स्वयम्।
ज्योतिर्लिङ्गाय्वरूपेण प्राथितस्तेन शङ्करः ।।२९

हे मुने! शङ्कर के इस स्वरूप के दर्शन तथा पूजन से भक्तों के सभी अभीष्ट फल प्राप्त होते हैं। मैंने तुम्हारे सामने इस महान दिव्य ज्योति-र्लिङ्ग का वर्णन सुना दिया है।२२। शिव का पंचम ज्योतिर्लिङ्ग केदारे-श्वर के नाम से अवतीर्ण होकर केदारनाथ नामक स्थान में विराजमान है।२३। हे मुनिवर! भगवान् विष्णुके नर और नारायण नामवाले अवतारों द्वारा हिमाचल पर शिवकी प्रार्थना की गई थी।२४। इनके पूजित ही शिव केदारनाथ नामसे विख्यात हुए हैं। इनके दर्शन अर्चन से भक्तजन के सभी अभीष्ट पूर्ण होजाते हैं।२५। हे तात! यह शङ्करका अवतार सबका स्वामी एवं

समस्त कामनाओं को प्रदान करने वाला है और इस खण्ड का प्रभु है ।२६। महाप्रभु शंकर का षष्ठ अवतार भीमशंकर नाम वाला है जो अनेक लीलाओं के करने वाला तथा भीमासुर का वध करने वाला था । २७ । शिवभक्तों को सताने वाले इस दैत्य का वध कर कामरूप देश के सुदक्षिण नाम वाले राजा की भगवान शिव ने इस अवतार में रक्षा की थी ।२८। तभी से शिव भीमशकर इस नाम से विख्यात होकर डाकिनी में अपने भक्त सुदक्षिण नृप से स्तुति किये जाने पर स्वयं लिङ्गरूप में वह विराजमान हो ।२९।

विश्वेश्वरावतारस्तु काश्यां जातो हि सप्तमः ।
सर्वब्रह्माण्डरूपश्च भुक्तिभुक्तिप्रदो मुने ।।३०
पूजितः सर्वदेवैश्चभक्त्या विष्णवादिभिः सदा ।
कैलासपतिना चापि भैरवेणापि नित्यशः ।।३१
ज्योतिर्लिंगस्वरूपेण संस्थितस्तत्र मुक्तिदः ।
स्वयं सिद्धस्वरूपो हि तथा स्वपुरि स प्रभुः ।।३२
काशीविश्वेशयोर्भक्त्या तन्नामजपकारकाः ।
निर्लिप्ताः कर्मभिर्नित्यं कैवल्यपदभागिनः ।।३३
त्र्यम्बकाख्योऽवतारो यः सोऽष्टमो गौतमीतटे ।
प्रार्थितो गौतमेनाविर्बभूव शशिमौलिनः ।।३४
गौतमस्य प्राथनया ज्योतिलिंगस्वरूपतः ।
स्थितस्तत्राचलः प्रीत्या तन्मुनेः प्रीतिकाम्यया ।।३५
तस्य सन्दर्शनात्स्पर्शाद्दर्शनाच्च महेशितुः ।
सर्वे कामाः प्रसिध्यन्ति ततो मुक्तिर्भवेदहो ।।३६
शिवानुग्रहतस्तत्र गंगानाम्ना तु गौतमी ।
सस्थिता गौतमप्रीत्या पावनी शंकरप्रिया ।।३७

हे मुने ! शिव का सप्तम अवतार काशी में विश्वेश्वर इस नाम से हुआ था जो इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का स्वरूप है और भुक्ति मुक्ति का प्रदान करने वाला है ।३०। उस समय भगवान विष्णु आदि समस्त देवगण ने उनकी स्तुतिकी वह कैलाश के स्वामी यहाँ भैरव के एक रूपसे स्थित हुए।३१।और

एक अन्य ज्योतिर्लिग के स्वरूप से वहां विराजमान हैं जो मुक्ति प्रदान करने वाले स्वय सिद्ध स्वरूप एवं अपनी पुरी के प्रभु हैं ।३२। काशीपुरी तथा वहां के स्वामी भगवान विश्वनाथ की भक्तिभाव से अर्चना करने वाले और उनके पावन नाम का जप करने वाले पुरुष कर्म बन्धन से मुक्त होकर मोक्ष पद के अधिकारी हो जाते है ।३३ । शिव का त्र्यम्बक- इस नाम वाला अष्टम अवतार गौतम ऋषि की प्रार्थना से गौमती नदी के तट पर हुआ ।३४। शशि शेखर शिव गौतम मुनि की प्रेम भक्ति और कामना से समन्वित प्रार्थना के होने के कारण ही ज्योतिलिंग के सहित अचल होकर वहीं विराजमान हुए हैं । ५ । यहां पर भगवान शिव के दर्शन और स्पर्श न करने से मनुष्यों की सम्पूर्ण के मानायें परिपूर्ण हो जाती हैं और अन्त समय में मोक्षपद प्राप्त होता है । ६३ । गौतम मुनि की उत्कृष्ट प्रीति के कारण ही शंकर भगवान की कृपा से वहां गौ भी गंगाके नाम वाली परम प्रसिद्ध एवं अति पावन नदी स्थित रहती है।३७।

वैद्यनाथवतारो हि नवमस्तत्र कीर्तितः ।
आविर्भूतो रावणार्थं बहुलीलाकरः प्रभुः ।।३८
तदानयनरूप हि व्याजं कृत्वा महेश्वर ।
ज्योतिर्लिंगस्वरूपेण चिताभूमौ प्रतिष्ठितः ।।३६
वैद्यनाथेश्वरो नाम्ना प्रसिद्धोऽभूज्जगत्त्रये ।
दर्शनात्पूजनाद् भक्त्या भुक्तिमुक्तिप्रदः स हि ।।४०
वैद्यनाथेश्वरशिवमाहात्म्यमनुशासनम् ।
पठतां शृण्वतां चारि भुक्तिमुक्तिप्रदः मुने ।।४१
नागेश्वरावतारस्तु दशमः परिकीर्तितः ।
अविर्भूतः स्वभक्तार्थं दुष्टानां दण्डदः सदा ।।४२
हत्वा दारुकनामनं राक्षसं धर्मघातकम् ।
स्वभक्त वैश्यनायं च प्रारक्षत्सुप्रियाभिधम् ।।४३

शिव का नवम अवतार वैद्यनाथ के नाम वाला हुआ है जो लंकेश्वर रावणकेहित सम्पादनके लिए नाना प्रकार को लालीयें प्रकट करनेवाले थे ।३८।शिवभक्त रावण उन्हें अपने साथलिये जानेकी इच्छाकर रहा था तब

उस समय बहाना करके चिता भूमि में वे ज्योतिलिंग के स्वरूप से स्थित हो गये ।३९। उस स्थान पर भगवान शिव वैद्यनाथेश्वर के नाम से सर्वत्र विख्यात हो गये जिनके भक्ति पूर्वक दर्शन करने पर तथा पूजा करने पर अपनी पूर्ण भक्ति एवं मुक्ति वे प्रदान करते हैं । ४० । हे मुनीश्वर ! वैद्यनाथेश्वर शंकर अपने इस अनुशासनयुक्त महात्म्य की पठन एवं श्रवण करने वाले पुरुष का भुक्ति तथा मुक्ति दोनों ही प्रदान किया करते हैं । ४१ । भगवान का दशम अवतार नागेश्वर नाम से प्रसिद्ध है जो अपने भक्तजनों का अर्थ और दुष्टजनों को दण्ड देने के लिए ही प्रकट हुए थे ।४२। इस अवतार में शिव ने दारुक दैत्य का वध कर सुप्रिय नाम वाले अपने परम भक्त एक वैश्य की रक्षा की थीं ।४३।

लोकानामुपकारार्थं ज्योतिर्लिंगस्वरूपधृक् ।
सन्तस्थौ साम्बिकः शंभुर्बहुलीलाकरः परः ।।४४
तद् दृष्ट्वा शिवलिंगं तु मुने नागेश्वराभिधम् ।
विनश्यन्ति द्रुतं चार्च्य महापातकराशयः ।।४५
रामेश्वरावतारस्तु शिवस्यैकादशः स्मृतः ।
रामचन्द्रप्रियकरो रामसंस्थापितो मुने ।।४६
ददौ जयवरं प्रीत्या यो रामाय सुतोषितः ।
अविर्भूतः स लिंगस्तु शंकरो भक्तवत्सलः ।।४७
रामेण प्रार्थितोत्यर्थं ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपतः ।
सन्तस्थौ सेतुबन्धे च रामससेवितो मुने ।।४८
रामेश्वरस्य महिमाद्भुतोऽभूद्भुवि चातुलः
भुक्तिमुक्तिप्रदश्चैव सर्वदा भक्तकामद ।।४९

नाना प्रकार की अद्भुत लीलायें करने वाले जगदम्बा भगवानों के सहित शिव ज्योतिर्लिगका स्वरूप धारण करके संसारके मनुष्योंकी भलाईकेलिए वहां विराजमान हुए हैं।४४। हे मुने । नागेश्वर नाम वाले भगवान शिबके लिंग का दर्शनार्चन करने से बड़े महान पात कों के समूह भी शीघ्र ही समूल नष्ट हो जाया करते हैं।४५।हे मुनिराज ! भगवान शिवका रामेश्वर नाम वाला ग्यारहवाँ अवतार हुआहैजिसको श्रीरामचन्द्र भगवान नेस्थापित

किया था और उनका प्रिय कार्य करने वाले हुए हैं। ३४। ज्योतिलिंग के सुन्दर स्वरूप में संस्थित भक्तवत्सल भगवान शम्भु श्रीरामचन्द्रजी की भक्ति भावना से अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और उन्होंने श्रीराघवेन्द्र को विजय प्राप्त करने का वरदान दिया था।४७। हे मुने! सेतुबन्ध में भगवान श्रीरामचन्द्र ने उसकी अति सेवा की और उन्ही को प्रार्थना से भववान ज्योतिलिंग के स्वरूप में विराजमान हुए हैं। ८। इस भूमिण्डल में श्रीरामेश्वर की वहुत अधिक तथा अत्यन्त अद्भुत महिमा हैं। रामेश्वर प्रभु भोग-मोक्ष और मन की सम्पूर्ण कामनाओं को पूरे करने वाले भक्तवत्सल हैं।४६।

त च गंगाजलेनैव स्नानपयिष्यति यो नरः।
रामेश्वरं च सद्भक्त्या स जीवन्मुक्त एव हि ।।५०
इह भुक्त्वाखिलान्भोगान्देवतादुर्ल्लभानपि।
अतः प्राप्य परं ज्ञान कैवल्यं मोक्षमाप्नुयात् ।।५१
घुश्मेश्वरावतारस्तु द्वादशः शंकरस्य हि।
नानालीलाकरो घुश्मानन्ददो भक्तवत्सलः ।।५२
दक्षिणस्यां दिशि मुने दैवशैलसमीपतः।
आविर्बभूव सरसि घुश्माप्रियकरः प्रभु ।।५३
सुदेह्यमारितं घुश्मापुत्रं साकल्पतो मुने।
तुष्टस्तद्भक्तितः शम्भर्योऽरक्षद्भक्तवत्सलः ।।५४
तत्प्रार्थितः स वै शम्भस्तडागे तत्र कामद।
ज्योतिलिङ्गस्वरूपेण तस्थौ घुश्मेश्वराभिधः ।।५५
तं दृष्ट्वा शिवलिंग तु समभ्यर्च्य भक्तितः।
इह सर्वमुखं भुक्त्वा ततो मुक्ति च विन्दति ।।५६

जो मनुष्य श्रीरामेश्वर महादेव को दृढ़ भक्ति की भावना से गंगाजल से स्नान कराता है वह निश्चय ही जीवन्मुक्त हो जाता है।५०।ऐसा पुरुष संसार में देवदुर्लभ परम सुख-सौभाग्य का उपभोग अत्यन्त ज्ञान की प्राप्ति करता है और अत में उसका मोक्ष हो जाता है।५१। भगवान शिव का बारहवांअवतार घुश्मेश्वरनाम वाला हुआहै। यहअवतार अपने अनन्य भक्तों के ऊपर अत्यन्तदया करने वाला हुआ है और इसनेघुश्माकोमहान आनँद

का प्रदान किया है ।५२। हे मुनीश्वर ! दक्षिण दिशा में एक देवशैल है, वहाँ पर ही एक सरोवर के निकट महाप्रभु शिव प्रकट हुए हैं । जिन्होंने घुश्मा का प्रिय कार्य किया था ।५३। हे मुने ! भक्तों पर प्यार करने वाले भगवान शंकर ने सुदेह्य नामक दैत्य के द्वारा मारे हुए घुश्मा के पुत्र के प्राणों की रक्षा भक्ति से सन्तुष्ट होकर की थी ।५४। घुश्मा की प्रार्थना पर कामना देने वाले प्रभृ शिव वहाँ एक सरोवर के समीप में ही घुश्मेश्वर नाम से ज्योतिर्लिङ्ग के स्वरूप में स्थित हो गये । ५५ । इन ज्योतिर्लिङ्ग स्वरूप शिव के दर्शन एवं भक्ति समन्वित समर्चन मे मनुष्य इहलौकिक सम्पूर्ण सुखों का आनन्दोपभोग करते हुए आगे चलकर मोक्षपद की सद्-गति का लाभ प्राप्त किया करता है ।५६।

इति ते हि समाख्याता ज्योतिर्लिङ्गावली मया ।
द्वादशप्रतिमा दिव्या भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ॥५७
एतां ज्योतिर्लिगकथां यः पठेच्छृणुयादपि ।
मुच्यते सर्वपापभ्यो भुक्ति मुक्ति च विन्दति ॥५८
शतरुद्राभिधा चेय वर्णिता संहिता मया ।
शतावतारः सत्कीर्तिः सर्वकामफलप्रदा ॥५९
इमां यः पठते नित्यं शृणुयाद्वा समाहितः ।
सर्वान्कामनवाप्नोति ततो मुक्ति लभेद् ध्रुवम् ॥६०

हे मुनिराज ! मैंने तुम्हारे समक्ष में इन द्वादश सख्या वाले ज्योति-लिंगों को पूरा वर्णन कर दिया जिनके दर्शन स्पर्शन श्रवण और पठन से भुक्ति मुक्ति दोनों की प्राप्ति निस्सन्देह ही होती है ।५७। जो कोई मनुष्य संसार में इस ज्योतिर्लिग की कथा को सुनता व सुनाता है वह समस्त पापों से छुटकारा पाकर भोग मोक्ष पाता है । ५८ । हे मुने ! मैंने अब यह शतरुद्र संहिता का वर्णन सुना दिया हैं जो कि शिव के सौ अवतारों की कीर्तिस्वरूप है और सब मनोरथों का पूरा करने वाली होती है ।५९। जो पुरुष पूर्णतया सावधान चित्त होकर इस शतरुद्र सहिता को पड़ता अथवा श्रवण करता है वह नपनी समस्त कामनाओं की प्राप्ति कर निश्चय ही पीछे मुक्ति को प्राप्त करता है । ६० ।

कोटिरुद्र संहिता

॥ द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों का माहात्म्य ॥

यो धत्ते निजमाययैव भुवनाकारं विकारोज्झितो ।
यस्याहुः करुणाकटाक्षविभवौ स्वर्गाभिधौ ।
प्रत्यग्बोधसुखाद्वयं हृदि सदा पश्यन्ति यं योगिनः ।
तस्मै शैलसुताञ्चितार्द्धवपुषु शश्वन्नमस्तेजसे ॥१

कृपाललितवीक्षणं स्मितमनोज्ञवक्त्राम्बुजं---
शशांककलयोज्ज्वलं शमितघोरतापत्रयम् ।
करोतु किमपि स्फुरत्परमसौख्यसच्चिद्वपु--
र्धराधरसुताभुजोद्वलयितमहो मङ्गलम् ॥२

सम्यगुक्तं त्वया सूत लोकानां हितकाम्यया ।
शिवावतारमाहात्म्यं नानाख्यानसमन्वितम् ॥३

पुनश्च कथ्यतां तात शिवमहात्म्यमुत्तमम् ।
लिंगसम्बन्धिसुप्रीत्या धन्यस्त्वं शैवसत्तमः ॥४

शृण्वन्तस्त्वन्मुखाम्भोजान्न तृप्ताः स्मो वय प्रभो ।
शैव यशोऽमृतं रम्यं तदेव पुनरुच्यताम् ॥५

पृथिव्यां यानि लिङ्गानि तीर्थे शुभानि हि ।
अन्यत्र वा स्थले यानि प्रसिद्धानि स्थितानि वै ॥६

तानि तानि च दिव्यानि लिङ्गामि परमेशितुः ।
व्यासशिष्य समावक्ष्व लोकानां हितकाम्यया ॥७

समस्त प्रकर के विकारों से रहित, स्वकी भुवनमोहिनी माया से अब भुवनों को धारण करने वाले और जगदम्बा पार्वतीको अपने आधे अङ्गमें धारण करतेहुए तेजमय स्वरूपवाले भगवान शकर को सर्वदाप्रणाम करता हूँ जिनके करुणापूर्ण कटाक्षसे स्वर्गतथा अपवर्गके सम्पूर्ण वैभव उनकेभक्तों को प्राप्त हो जाया करते हैंऔरयोगीजन जिनका पूर्णबोध सुख सर्वदा अपने हृदयमें देखा करते हैं १। आधिभौतिक आध्यात्मिक और आधिदैविक इन

तीनों तापों के संतापको शान्त कर देने वालेकृपा से परि पूर्ण सुन्दर दृष्टि-पात करने वाले, स्मित से मनोहर मुख कमल वाले, चन्द्रदेव की कला के परमोज्जवल स्वरूप युक्त समस्त सुखों के दाता, स्फूर्तिमान, सच्चिदानन्द स्वरूप तथा भवानी की भुजाओंसे अलिंगित भगवान शंकरका वपु हमारा सर्वदा मंगल करे। ऋषियों ने कहा हे सूतजी ! आपने लोकों को भलाई के लिए बहुत ही अच्छी बात कहने की कृपा की है। अब यह प्रार्थनाकी है कि आप अनेक सुन्दर आख्यानों से पूर्ण भगवान शिव के अवतारों का माहात्म्य हमको बताइये।३। हे तात ! आप भगवान शिवके भक्तों मेंसर्व श्रेष्ठ है और परम धन्य हैं। भगवान शंकर के लिंगस्वरूप से सम्बन्धित माहात्म्यका वर्णन विस्तृत रूप से करने की कृपा करें।४। हे प्रभो ! आपके मुखाम्बुज से विस्तृत शम्भु के यशों मृत का श्रवणों द्वारा पान करते हुए हमारे मन को तृप्ति नहीं हो रहीहै अतएव आपसे निवेदन है कि उसे पुनः सुनाने का अनुग्रह करें।५। इस भूमण्डल में प्रत्येक तीर्थमें जहां पर भी जितने शिव के शुभ लिंग स्थापित किये हैं तथा अन्य स्थलों में जितने विख्यात शिव लिंग विराजमान हैं उन समस्त परमेश महेश के दिव्य लिंगों का आपको पूर्ण ज्ञान है। हे व्यासजी के शिष्य ! आप सब लोकों के कल्याण की कामना से ही हमारे शमक्ष में इस समय वर्णन करने का अनुग्रह करें।६-७।

साधु पृष्ठमृषिश्रेष्ठा लोकानां हितकाम्यया।
कथयामि भदत्स्नेहात्तानि संक्षेपतो द्विजाः ॥८
सर्वेषां शिवलिंगानां मुने संख्या न विद्यते।
सर्वा लिङ्गमयी भूमिः सर्वं लिङ्गमयं जगत् ॥९
लिंगयुक्त क तीर्थानि सर्वलिंगे प्रतिष्ठितम्।
सख्या न विद्यते तेषां तानि किञ्चिद् ब्रवीम्यहम् ॥१०
यात्किंचिद् दृश्यते दृश्यं वर्ण्यते स्मर्यते च यत्।
तत्सर्वं शिवरूपं हि नान्यदस्तीति किञ्चन ॥११
तथापि श्रूतां प्रीत्या कणयामि यथायामि शुतम्ः
लिंगानि च ऋषिश्रेष्ठाः पृथिव्यां यानि तानि ह ॥१२

पाताले चापि वर्यन्ते स्वर्गे चापि तथा भुवि ।
सर्वत्र तज्यते शम्भुः सदेवासुरमानुषैः ॥१३

त्रिजगच्छम्भुना व्याप्तं सदेवासुरमानुषम् ।
अनुग्रहाय लोकानां लिङ्गरूपेण सत्तमाः ॥१४

श्री सूतजी ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ ! इस समय आप लोगों ने समस्त लोकों के हित की भावना लेकर अच्छा प्रश्न किया है हे ब्राह्मणों ! मुझे आप लोगों से बहुत ही स्नेह है अतः मैं सब कुछ संक्षिप्त रूप से आपके सामने वर्णन करता हूँ ।८। हे मुनीश्वर ! भगवान शिव के समस्त लिंग की संख्या बतला देना असम्भव है और उन्हें पूर्णतया बतला देने की सामर्थ्य किसी में नहीं हो सकती है क्योंकि सारा भूमण्डल एवं जगत् लिंग मय ही है ।९। समस्त तीर्थ लिंगमय हैं और सभी कुछ लिंग के द्वारा ही प्रतिष्ठित है तथा लिंग में ही स्थित हैं । उनकी संख्या वर्णनातीत है तथापि मैं दिव्य ज्योतिर्लिंगों का वर्णन करता हूँ ।१० । इस जगतीतल में जो कुछ भी दर्शनीय पदार्थ हैं तथा जिनका वर्णन किया जाता है और स्मरण किया जाना है वह सब भगवान शंकर का ही स्वरूप है । इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है ।११। हे श्रेष्ठ ऋषिवृन्द ! तो भी पृथ्वी तल में जितने दिव्य लिंग हैं उनका वर्ण ने अपने श्रुत के अनुसार मैं करता हूँ । आप प्रेमपूर्वक सुनो ।१२। भगवान शंकर के ज्योतिर्लिंग पृथ्वी स्वर्ग और पाताल में सर्वत्र विद्यमान हैं और वे देवे, असुर तथा मनुष्यों के द्वारा सभी स्थलों में पूजित एवं वन्दित होते हैं ।१३। हे ऋषिश्रेष्ठ ! देव,दैत्य और मानवों के सहित या त्रिभुवन महेश्वर से व्याप्त है और भगवान शंकर संसार के कल्याण के लिये अनुग्रह करते हुए सर्वत्र लिंग स्वरूप में विराजमान रहते हैं ।१४।

अनुग्रहाय लोकानां लिङ्गानि च महेश्वरः ।
दधाति विविधान्यत्र तीर्थे चान्यस्थल तथा ॥१५

यत्र यत्र यदा शम्भुर्भक्त्वा भक्तैश्च संस्मृतः ।
तत्र तत्रावतीर्याथ कार्यं कृत्वा स्थितस्तदा ॥१६

लोकानामुपकारार्थं स्वलिंगं चात्यकल्पयत् ।
तल्लिङ्गं पूजमित्वा तु सिद्धिं सम धगच्छति ॥१७

पृथिव्यां यानि लिङ्गानि तेषां संख्या न विद्यते ।
तथापि च प्रधानानि कथ्यते च मया द्विजाः ॥१८
प्रधानेषु च यानीह मुख्यानि प्रवदाम्यहम् ।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते मानवः क्षणात् ॥१९
ज्योतिर्लिंगानि यानीह खमुयमुख्यानि सत्तम ।
तान्यहं कथमाम्यद्य श्रुत्वा पाप व्यपोहति ॥२०
सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैदे मल्लिकार्जुनम् ।
ऊर्ज्जयन्त्यां महाकालमोकारे परमेश्वरम् ॥२१

भगवान म्हेश्वर लोक कल्याणार्थ अनुग्रह करके समस्त तीर्थ स्थलों में विविध प्रकार के लिंगों का स्वरूप धारण करते हैं । १५ । जब जिस समय जहां जहां पर शिव भक्तों ने अपने अभीष्ट देव शिव का स्मरण किया है उसी समय वहां-वहां पर अवतार लेकर भक्त-कार्य पूर्ण करके महेश्वर विराजमान हो गये हैं ।१६। सांसारिक लोगों के उपकार करने के लिये महेश्वर ने अपना लिंग स्वरूप प्रकट कर दिया हैं । उसी लिंग प्रतिमा का समर्चन कर संसार में मनुष्य अनेकानेक सिद्धियों को प्राप्त किया करते है ।१७। हे द्विजवरो ! यद्यपि इन तल पर विराजमान लिंग भी गणना करने के योग्य नहीं हैं तथापि मैं कतिपय में प्रमुख लिंगों का वर्णन करता हूँ ।१८। इस भूमि मण्डल के प्रधान स्थलों में जहाँ-जहाँ पर भी मुख्य-मुख्य शिव की लिंग मूर्तियां विराजमान हैं मैं इस समय उन्हीं का वर्णन करना चाहता हूँ, जिनके अख्यानों का श्रवण कर मनुष्य उसी समय समस्त स्व-विहित पापों से छुटकारा पा जाता है ।१९। हे सत्तम ! जितने भी मुख्य-मुख्य-महेश्वर के ज्योतिर्लिंग हैं अब उनके ही विषय में कुछ वर्णन करता हूँ उसकी सुनकर प्राणों से विमुक्त हो जाता है ।२०। सौराष्ट्र में सोमनाथ पुरी में महा काल, श्री शैल में मल्लिकार्जुन और ओङ्कार में परमेश्वर तिर्लिंग के रूप में स्थित हैं ।२१।

केदारं हिमवत्पृष्ठे डाकिन्यां भीमशङ्करम् ।
वाराणस्यां च विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे ॥२२
वैद्यनाथं चिताभूसौ नागेशं दारुकावने ।
सेतुबधे च रामेश घुश्मेशं शिवालये ॥२३

द्वादशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।
सर्वैपापविनिर्मुक्त सर्वसिद्धिफलं लभेत् ॥२४
यं य काममपेक्ष पठिष्यन्ति नरोत्तमाः ।
प्राप्यंति कामं तं हि परत्रेह मुनीश्वराः ॥२५
ये निष्कामतया तानि पठिष्यन्ति शुभाशयाः ।
तेषां च जननीगर्भे वासो नैव भविष्यति ॥२६
एतेषां पूजनेनैव वर्णानां दुःखनाषतम् ।
इक लोमे परत्रापि मुक्तर्भवति निश्चितम ॥२७
ग्राह्यमेषां च नैवेद्यं भाजनीयं प्रयत्नतः ।
ताकर्तुः सर्वपापानि भस्मसाद्यान्यि वै क्षणात् ॥२८

हिमाचल पर केदारनाथ डाकिनी में भीमशंकर, बाराण सी पुरी में विश्वनाथ और गौतम नदी के तटपर त्र्यम्बकेश्वर नामक ज्योतिलिंग हैं। ।२२। चिताभूमि में वैद्यनाथ, सेतुबन्ध में रामेश्वरनाथ दारुक वनमेंन गेश और शिवालय में धुश्मेश्वर नाम वाम वाले शिव के ज्योतिलिंग सस्थित हैं ।२३। इन द्वादश शिव के नामों का जो प्रातः काल में उठते ही स्मरण करता है वह सब पापों से मुक्ति होकर समस्त सिद्धियां प्राप्त करता है । ४४ । हे मुनीश्वरो ! जो श्रेष्ठ मानव हृदय में जिस-जिस मनोरथ का उद्देश्य लेकर इन द्वादश शम्भु के शुभ नामों का पाठ एवं स्मरण करेंगे वे उन मनोरथों को इस लोक और परलोक में अवश्य ही प्राप्त कर लेंगे ।२५। जो मानव निष्काम भावना से ही अपना कर्त्तव्य समझते हुए उपास्य देव श्री महादेव के इन बारह नामों का स्मरण करेंगे उन्हें फिर संसार में माता के गर्भ में आकर कष्ठ नहीं भोगना पड़ेगा । २६ । उपयुक्त द्वादश ज्योतिलिंगों के अर्चन करने मात्र से समस्त वर्णों के दुःख-दारिद्रय का नाश हो जाता है और इस लोक में सुखोप भोग तथा पर लोक में मोक्ष मिलता है । २७ । इन ज्योतिलिंग स्वरूप शिव प्रतिमाओं पर चढ़ा हुआ नैवेद्य (मिठाई) ग्रहण करनी चाहिए और उसे सयत्न खा लेना भी उचित है । ऐसा करने वालों के समस्त पाप उसी समय भस्मीभूत हो जाया करता है ।२८।

ज्योतिषां चैव लिंगानां ब्रह्मादिभिरलं द्विजाः ।
विशेषनः फल वक्तु शक्यते न नरैस्तणा ॥२९
एकं च पूजित येन षण्मासं तन्निरन्तरम् ।
तस्य दुख न जायेत मातृकुक्षिसमुदभवम् ॥३०
हीनयौनौ यदा जातो ज्योतिर्लिंग च पश्यति ।
तस्य जन्म भवेत्तत्र विमले सत्कुले पुनः ॥३१
सत्कुले जन्म संप्राप्य धनाढ्यो वेदपारगः ।
शुभकर्म तदा कृत्वा मुक्ति यात्नपःयिनीम् ॥३२
म्लेच्छो वाप्यन्तजो वापि षण्णो वापि मुनीश्वरीः ।
द्विजो भूत्वा भवेन्मुक्तस्मात्तद्दर्शन चरेद् ॥३३
ज्योतिषां चैवं लिंगानां किंचित्प्रोक्तं फलं मया ।
ज्योतिषां चोपलिंगानि श्रूयन्तामृषिसत्तमाः ॥३४
सोशेश्वरस्य यल्लिगमन्तकेशमुदाहृतम् ।
मह्याः सागरसंयागे तल्लिगमन्तकेशमुपलिंगकम् ॥३५

हे द्विजवरों ! इन द्वादश ज्योतिर्लिंग का वन्दनार्चन द्वारा प्राप्त फल का यथातथ वर्णन करनेकी सामर्थ्य ब्रह्मा आदि बड़े-बड़े देवताओं में भी नहीं है अन्य साधारण की तो बात ही क्या है । २९ । जो पुरुष निरन्तर नित्य ही छै मास तक किसी भी एक ज्योतिर्लिंग का पूजन करता है उसे फिर माता की कुक्षि में निवास करने की पीड़ा नहीं भोगनी पड़ती है ।३०। जो किसी निकृष्ट योनि में जन्म लेकर भी शिव की लिंगमयी प्रतिमा का दर्शन करता है तो उसके अगले जन्म में श्रेष्ठकुल प्राप्त हो जाता है । ३१ । इस तरह शुद्ध एव श्रेष्ठ कुल में जन्म पाने के साथ धनाढ्य और वेद शास्त्र का पारगामी विद्वान भी हो जाता है । जिससे श्रेष्ठ कर्म करके विनाश-विहीन विमुक्ति की प्राप्त कर लेता है । ३६ । हे मुनीश्वने ! चाहे कोई म्लेच्छ हो अथवा अन्त्यच हो तथा नपुंसक हो--कैसा भी कोई क्यों न हो वह यदि शिवभक्त रोज शिव पूजन करता है तो दूसरे जन्म में द्विज होकर अवश्य ही मुक्त हो जाता है । अतएव महेश्वरके दर्शन हरएक को अवश्य ही करना चाहिए ।३३। हे श्रेष्टऋषि

गण ! तभी तक मैंने आप लोगों के सामने शिव के ज्योतिर्लिंग का पूजन एवं दर्शन के फल का वर्णन किया है। अब मैं उनके उप-लिंगों के फल का वर्णन करता हूँ आप उसे श्रवण करें।३४। भूमि और समुद्र के संयोग में सोमेश्वर का उपलिंग अन्तकेश नाम से प्रथित है।३५।

मल्लिकार्जुनसंभूतमुपलिंगमुदाहृम् ।
रुद्रश्वेरमिति ख्यातं भृगुकक्षे सुखावहम् ।।३६
महाकालभवं लिंग दुग्धेशमिति विश्रुतम् ।
नर्मदायां प्रसिद्धं तत्सर्वपापहरं स्मृतम् ।।३७
ॐ कारज च यल्लिङ्गं कर्दमेशमिति श्रुतम् ।
प्रसिद्धं बिन्दुसरसि सर्वं कामफलप्रदम् ।।३८
केदारेश्वरसंजातं भूतेशं यमुनातटे ।
महापापहर प्रोक्तं पश्यतामर्चतां तथा ।।३९
भीमशङ्करसंभूतं शीमेश्वरमिति स्मृतम् ।
सह्याचले प्रसिद्धं तन्महाबलविवर्द्धनम् ।।४०
नागेश्वरसमुद्भूतं भूतेश्वरमुदाहृतम् ।
मल्लिकासरस्वतीतीरे दर्शनात्पापहारकम् ।
रामेश्वरराच्च यज्जातं गुप्तेश्वरमिति स्मृतम् ।
घृश्मेशाच्चैव यज्जातं व्याघ्रेश्वरमिति स्मृतम् ।।४२
ज्योतिर्लिगोपलिंगानि प्रोक्तानीह मया द्विजाः ।
दर्शनात्पापहारीणि सर्वकामप्रदानि च ।।४३
एतानि सुप्रधानानि मुख्ययां हि गतानि च ।
अन्यायि चापि मुख्यानि श्रूयतामृषिसत्तमाः ।।४४

भृगु कक्ष में मल्लिकार्जुन से प्रकट होने वाला परमसुख का दाता रुद्रेश्वर नाम वाला उपलिंग कहा गया है। ३६। नर्मदा नदी के तट पर महाकाक ज्योतिर्लिंग से उत्पन्न हुआ दुग्धेश नाम वाला उपलिंग है जोकि समस्त पापराशि का हरण करने वाला बताया गया है।३७। श्रीओङ्कारसे समुत्पन्न कर्दमेश नाममें एक उपलिंग है जोकि विन्दु सरोवर मेंविख्यात है और सब कामनाओं कादेने वाला बताया गया है।८। श्रीसूर्य तनयायमुना

के तट पर केदारेश्वर ज्योतिलिंग से समुद्भुत होने वाला भूतेश नाम से विख्यात उपलिंग है जिसके दर्शन तथा पूजनार्चन करने से महापाप भी दूर हो जाया करते हैं ।३९। भीम शंकर से समुत्पन्न भीमेश्वर नाम वाला उपलिंग है जो कि सह्य नामक पर्वत पर विख्यात है और बहुत भारी बल का प्रदान करने वाला है ।४०। मल्लिका सरस्वतीं नदी के तट पर नागेश्वर ज्योतिलिंग उद्भव प्राप्त करने वाला भूतेश्वर नामक शिव का उपलिंग है जिसके दर्शन मात्र से ही पापों से छुटकारा हो जाता है ।४१। श्री रामेश्वर भगवान से उत्पन्न होने वाले गुप्तेस्वर तथा घुश्मेश शम्भु के ज्योतिलिंग से उत्पन्न व्याघ्रेश्वर उपलिंग है ।४२। हे द्विजगणों ! अब यह मैंने आप लोगों के सामने ज्योतिलिंगोंके समीपस्थ उपलिंगों का वर्णन किया है जिनके दर्शन का भी महान् पुण्य एवं फल होता है और समस्त पाप छूट करते हैं एवं सम्पूर्ण मनोरथ पूरे हो जाते है ।४३। हे ऋषिश्रेष्ठो ! ये वर्णित सभी उपलिंग बहुत ही प्रसिद्ध हैं और मुख्य रूप से कहे गये हैं । इसके अनन्तर अब अन्य विख्यात लिंगों का वर्णन भी करता हूँ जिसे आप लोग श्रवण करेगे ।४४।

॥ अन्यान्य शिव लिंगों का माहात्म्या ॥

गंगातीरे सुप्रसिद्धा काशी खलु विमुक्तिदा ।
सा हि लिंगमयी ज्ञेया शिववासस्थली स्मृता ॥१

लिंग तत्रैव मुख्य च सम्प्रोक्तमविमुकम् ।
कृत्तिवासेश्वरः साक्षात्तद्युल्यो सृद्धबालकः ॥२

तिलभणडेश्वैवर दशाश्वमेध एव च ।
गगासागरसंयोगे संगमेश इति स्मृतः ॥३

भूतेवश्रो यः संप्रोक्तो भक्तसर्वार्थवः सदा ।
नारीश्वर इति ख्यातः कौशिक्यः स समीपगः ॥४

वर्तते गण्डकीतीरे वटुकेश्वर एव सः ।
पूरेश्वर इति ख्यातः ज्ञलगुतीरे सुखप्रदः ॥५

सिद्धनाथेश्वरश्चैव दर्शनासिद्धिदो नृणाम् ।
दरेश्वर इति ख्यात पत्तने चोत्तरे तथा ॥६
श्रृंगेश्वरश्च नाम्ना वै वैद्यनाथस्तथैव च ।
जप्येश्वरस्तथा ख्यातो यो दधीचिरणस्थले ॥७

श्री सूतजी ने कहा—भागीरथी के परम पावन तट पर बसी हुई मुक्ति के प्रदान करने वाली अति विख्यात काशी नाम की नगरी है वह समस्त लिंगमयी तथा भगवान विश्वनाथ के निवास की भूमि कही गई है । १ । काशीपुरी में मुक्ति के प्रदान करने वाली भगवान शिव की मुख्य प्रतिमा विराजमान है और कृत्तिवास शिव भी वहाँ पर स्थिथ हैं । वहाँ काशी में नित्य निवास करने वाला, चाहे वृक्ष हो, बालक हो, साक्षात् शिव के तुल्य ही हो जाया करता है ।२। वहाँ तिलभाण्डेश्वर तथा दक्षाश्मेघ नाम वाले भी शिव हैं । गंगा सागर के संगम में सगमेश नामक शिव विराजते हैं ।३। भूतेश्वर ऐवं नारीश्वर नामों से विख्यात होने वाले शिव कौशिकी नदी के समीप में विराजमात हैं जो अपने भक्तों को निरन्तर समस्त वस्तुओं को प्रदान करने वाले हैं ।४ । गण्ड की नदी के तट पर वटुकेश्वर नाम वाले महादेव हैं और फल्गु नदी के किनारे पर सुख दाता पूरेश्वर नाम वाले भगवान शङ्कर हैं । उत्तर नगर में सिद्धनाथेश्वर शिव हैं जो दर्शन मात्र से ही मनुष्यों को सिद्धि देने वाले प्रसिद्ध हैं और वहाँ पर ही दूरेश्वर नामक भी शिव विराजमान है।५-६। दधीचि मुनि के युद्धस्थल में प्रसिद्ध होने वाले श्रृंगेश्वर वैद्यनाथ तथा जप्येश्वर नामक शिवलिंग विराजमान है ।७।

गोपेश्वर: समाख्तो रंगेश्वर इति स्मृत: ।
वामेश्वरश्च नागेश: कामेशो विमलेश्वर ॥८
व्यासेश्वरश्च विख्यात: सुखेशश्च तथैव हि ।
भाण्डेश्वरश्च विख्यातो हुकारेशस्तथैव च ॥९
सुरोचनश्च प्रोक्तो भूतेश्वर इति स्वयम् ।
संगमेशस्तथा प्रोक्तो महापातकनाशन: ॥१०
ततश्च तमकातीरे कुमारेश्वर एव च ।

सिद्धेश्वरश्च विख्यातः सेनेशश्च तथा स्मृतः ।।११
रामेश्वर इति प्रोक्तो कुंभेशश्च परो मतः ।
नन्दीश्वरश्च पुजेशः पूर्णायां पूर्णकस्तथा ।।१२
ब्रह्मेश्वरः प्रयागे च ब्रह्माणा स्थापितः पुरा ।
दशाश्वमेघतीर्थे हि चतुर्वर्गभलप्रदः ।।१३
तथा रामेश्वरस्तत्र सर्वापद्वि नवारकः ।

वहाँ पर गोपेश्वर, वागेश्वर, वामेश्वर, नागेश, कामेश और विमलेश्वर नाम वाली शिव की मूर्तियाँ स्थित हैं ।८। इनके अतिरिक्त व्यासेश्वर मुकेश, भाण्डेश्वर, हुँकारेश नाम की प्रतिमाएँ भी हैं ।६। और भी सुरोचन, भूतेश्वर, तथा संगमेश नाम से परम विख्यात भगवान शम्भु के ज्योतिर्लिंग हैं जिनके दर्शनार्त्तन से मनुष्यों के पापों का क्षय हो जाता है ।१०। तप्त का नाम नदी के तट पर शिव की सिद्धेश्वर, कुमारेश्वर शौर सेनेश नाम वाली प्रसिद्ध प्रतिमायें हैं । ११ । पूर्णा में रामेश्वर, कुम्भेश, नन्दीश्वर, पुंजेश और पूर्णक नाम वाले भगवान शिव की मूत्तियां है।१२ प्रयाग में प्राचीन समय में ब्रह्माजी के द्वारा संस्थापित दशाश्वमेघ तीर्थ पर ब्रह्मेश्वर नामक शिव कर्म अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों फलों को देने वाले विराजमान हैं ।१३। वहाँ पर सोमेश्वर नामधारी शिव समस्त आपत्तियों के हटा देने वाले हैं और भारद्वाजेश्वर ब्रह्मतेज के प्रदान करने वाले हैं ।१४।

भारद्वाजेश्वरश्चैव ब्रह्मवर्चः प्रवर्द्धकः ।१४।
शूलटकेश्वरः साक्षात्कामनाप्रद ईरितः ।
माधवेशश्च तत्रैव भक्तरक्षाविधायकः ।।१५
नागेशाख्यः प्रसिद्धो हि साकेतनगरे द्विजाः ।
सूर्यवशोद्भवानां च विशेषेण सुखप्रदः ।।१६
पुरुषोत्तमपुर्यांतु भुवनेशः सुसिद्धिदः ।
लोकेशश्च महालिंगः सर्वानन्दप्रदायकः ।।१७
कार्मेश्वरः शंभुलिगो गगेशः परशुद्धिकृत् ।
शक्रेश्वरः शुक्रसिद्धो लोकानां हितकाम्यया ।।१८

तथा बटेश्वरः ख्यातः सर्वकामफलपदः ।
सिंधुतीरे कपालेशो वक्त्रेशः सर्भपापहा ।।१९
धौतपापेश्वरः शाक्षादशेन परमेश्वरः ।
भीमेश्वर इति प्रोक्तः सूर्येश्वर इति स्मतः ।।२०
नन्देश्वरश्च विज्ञेयो ज्ञानदो लोकपूजितः ।
नाकेश्वरो महापुण्यस्तथा रामेश्वरः स्मृतः ।।२१

सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाले शूलटकेश्वर महादेव है तथा भगवान माधवेश्वर अपने भक्तों की रक्षा करने वाले विराजमान हैं ।१५। हे विप्रवृन्द ! अयोध्यापुरी में नागेश नामक परम प्रसिद्ध शिव हैं जो सूर्य वंश में उत्पन्न होने वाले तनुष्यों को विशेष रूप से सुख-सौभाग्य प्रदान किया करते हैं । १६ । पुरुषोत्तमपुरी में श्री भुवनेश शिव की प्रतिमा बहुत प्रसिद्ध है और वहां लोकश ताम वाले महालिंग मनुष्यों को पूर्ण आनन्द देने वाले हैं ।१७।भगवान शम्भु की कमेश्वर नातक मूर्ति ज्योतिर्लिंग के रूप में है तथा गणेश शुद्धि करने वाले और शुक्रेश्वर एवं शुक्र सिद्ध भगवान शिव लोकों की हित सम्पादन करने की इच्छा से वहाँ स्थापित हुए है ।१८। भगवान वटेश्वर नामक परम प्रसिद्ध शिव समस्त कामनाओ के फल का प्रदान करने वाले हैं तथा सिन्धु नदी के तट पर श्रीकपालेश्वर और वक्त्रेश समस्त पापों का हरण करने वाले हैं । १९ । साक्षात शिव के स्वरूप वाले वथां धौत पापेश्वर, भीमेश्वर और सूर्येश्वर नाम से प्रसिद्ध प्रतिमाएं विराजमान हैं । २० । समस्त संसार में पूजित नन्देश्वर शिव ज्ञान के प्रदान करने वाले-नमस्कार महान पुण्य के प्रदाता तथा रामेश्वर भगवान महान पुण्य के फलो के देने वाले स्थित हैं । २१ ।

विमलेश्वरनामा वकटकेश्वर एव च ।
पूर्णसागरसयोगे धर्तुकेशस्तथैव च ।।२२
चन्द्रेश्वरश्च विज्ञेयश्चन्द्रकान्तिफलप्रदः ।
सर्वकामप्रदश्चैव सिद्धेश्वर इति स्मृतः ।।२३
बिल्वेश्वरश्च विख्यातश्चान्धकेशस्तथैव च ।
यत्र वा अधको दैत्यः शङ्करेण हतः पुका ।।२४

अथ स्वरूपमशेन धृत्वा शंभुः पुनः स्थितः ।
शरणेश्वरविख्यातो लोकानां सुखदः सदा ।।२५
कर्दमेशः परः प्रोक्तः कोटिशश्चः बुर्दाचले ।
अचलेशश्च विख्यातो लोकानां सुखदः सदा ।।२६
नागेश्वरस्तु कौशिक्यास्तीरे तिष्ठति नित्यशः ।
कन्तेरसंज्ञश्च कल्याणशुभभाजनः ।।२७
योगेश्चरश्च विख्यातो वैद्यनाथेश्चरस्तथा ।
कोटीश्वरश्च विज्ञेयः सप्तेश्वर इति स्मृतिः ।।२८
भद्रेश्वरश्च विख्यातो भद्रनामां हरः स्वयम् ।
चण्डीश्वरस्तथा प्रोक्तः संगमेश्वर एव च ।।२९

पूर्ण सागर के संयोग के निकट में विमलेश्वर, कटकेश्वर और धर्तुकेश शिव के ज्योतिर्लिंग विराजमा हैं ।२२। चन्दमा के समान कान्ति प्रदान करने वाले चन्द्रेश्वर और सब मनोरथ दाता सिद्धेश्वर शिव बताये गये हैं ।२३। जिस स्थान पर प्राचीन काल में भगवान् शिव ने अन्धक नाम वाले दैत्य का वध किया था वहाँ अन्धकेश तथा विल्वेश्वर नाम से प्रथित हैं ।२४। भगवान् शम्भु ने अपने अंश से यही स्वरूप धारण करके यहाँ पर शरणेश्वर नाम से प्रसिद्ध होकर अपनी स्थिति की है जो संसार के प्राणियों को परम सुख प्रदान करने वाले हुए हैं ।२५। अर्बुद (आबू) नामक पर्वत पर सदा मनुष्यों को सुख प्रदान करने वाले कर्दमेश कोटीश और अचलेश नाम से भगवान् शिव विराजमान है ।२६। कौशिकी नामक नदी के तट पर नागेश्वर तथा अनन्तेश्वर नाम से विख्यात शिव प्रतिमाऐं कल्याण करने वाली है । २७ । इनके अतिरिक्त योगेश्वर, वैद्यनाथ, सप्तेश्वर और कोटिश्वर नाम वाले शिव परम विख्यात हैं ।२८। भद्र नामक साक्षात् शिव भद्रेश्वर इस नाम से एवं चण्डीश्वर और संगमेश्वर नामों से विख्यात हैं ।२९।

।। उत्तर दिशा के चन्द्रभाल पशुपति शिवलिङ माहात्म्य ।।

शृणुतादरतो विप्रा औत्तराणां विशेषतः ।
माहात्म्य शिवलिगानां प्रवदामि समासतः ।।३०

गोकर्ण क्षेत्रमपरं महापातकनाशनम् ।
महावन च तत्रास्ति पवित्रमतिविस्तरम् ।।२
तत्रास्त्रि चन्द्रभालाख्यं शिवलिंगमनुत्तमम् ।
रावणेन समानीतं सद्भक्त्या सर्वसिद्धिदम् ।।३
तस्य तत्र स्थितिर्वैद्यनाथस्येव मुनिश्वरः ।
सर्वलोकहितार्थाय करुणासागरस्य च ।।४
स्नान कृत्वा तु गोकर्णे चन्द्रभ लं समचर्य च ।
शिवलोकमवाप्नाति सत्यं सत्यं न सशयः ।।५
चन्द्रभालस्य लिंगस्य महिमा परमाऽद्भुता ।
न शक्या वर्णितुं व्यासाद् भक्तिस्तेहतरस्ये हि ।।६
चन्द्रभालमहादेवलिंगस्य महिमा महान् ।
यथापथंचित्संप्रोक्ता परलिंगस्य वै शृणु ।।७

श्री सूतीजी ने कहा-हे विप्रवृन्द ! अब मैं आपके सापने उत्तर दिशा में विराजमान शिवके ज्योतिर्लिगोंके माहात्म्य का वर्णन संक्षेपसे करता हूँ उसे आप सभी परम आदर तथा प्रेम से श्रवण करो ।१। महान् पातको का नाश करने वाले अन्य गोकर्णनाम वाला क्षेत्रहै और वहाँ अत्यतविशाल विस्तृत तथा परम पवित्र वन है । २ । उस स्थान पर चन्द्रभाल नाम ले विख्यात शिवका एकश्रेष्ठ ज्योतिर्लिंग रावणके द्वारा भक्तिसे सहित स्थापित किया हुआ है जो समस्त सिद्धियों का प्रदान करने वाला है।३। हे मुनिश्वर वृन्द ! समस्त संसार की भलाई के लिये दया के सागर भगवान चन्द्रभाल शिव के लिंग की वैद्यनाथ के तुल्य ही स्थिति हैं ।४। यह सर्वथा पूर्ण सत्य हैऔर नितांत निस्सन्देह है कि गोकर्णमें स्नानकर चन्द्रभाल शिवलिंग का अर्चन-वंदन करने वाले पुरुषों को शिवलोक की प्राप्ति हो जाती है ।।५।। अत्यन्त सक्त-वत्सल चन्द्रभाल शङ्करकीमहिमा परम अद्भुतहै जिसकायथार्थ वर्णन करने में स्वयं व्यास मुनि भी असमर्थ होते हैं ।६। यद्यपि चन्द्रभाल शिव की महिमा बहुत ही बड़ी है तो भी मैं अपनी सामर्थ्य के अनुसार उसका कुछ वर्णन करता हूँ आप लोग उसको श्रवण करें ।७।

दाधीचं शिवलिंग तु मिश्रर्षिवरतीर्थके ।
दधीचिना मुनीशेन सुप्रीत्या च प्रतिष्ठितम् ॥८
तत्र गत्वा च तत्तीर्थे स्नात्वा सम्यग्विधानतः ।
शिवलिंग समर्चेद्व दाधीश्वरमादरात् ॥९
दधचमूर्तिस्तत्रैव समर्च्या विधिपूर्वकम् ।
शिवप्रीत्यर्थमेवाशु तीर्थयात्राफलार्थिभिः ॥१०
एवं कृते मुनिश्रेष्ठाः कृतकृत्यो भवेन्नरः ।
इह सर्वसुखं भुक्त्वा परत्र पतिम प्नुयात् ॥११
नैमिषारण्यतीर्थे तु निखिलर्षिप्रतिष्ठितमे ।
ऋषिश्वरमिति ख्यातं शिवणिग सुखप्रदम् ॥१२
तद्दर्शनात्पूजनाच्च जनानां पापिनामपि ।
भश्चिसुक्तिश्व तेषां तु परत्रेह मुनीश्वराः ॥१३
हत्याहरणतीर्थे तु शिवलिंगमघापहम् ।
पूजनीयं विशेषेण हत्याकोटिविनाशनम् ॥१४

मिश्र (मिश्र ऋषिनामक तीर्थ पर दाधीच नाम वाला शिव का लिंग विराजमान है जिसको दाधीन मुनि ने परम प्रीति एवं भक्ति के साथ वहाँ स्थापित किया था ।८। वहाँ पहुँच कर सविधि स्नानादि करने के पश्चाप्र दार्धाकेश्वर शिव की अर्चना करनी चाहिए ।९। अतिशीघ्र तीर्थ-यात्रा के फल प्राप्त करनेकी इच्छा रखने वालोंको भगवान् शिवके प्रसन्न करनेके लिए दाधीच ऋषि की संस्थापित प्रतिमाका विधिपुर्वक पूजन करना आवश्यकहै ।१०। हे श्रेष्ठ मुनिय ! इस रीति से शिवार्चन करने से मनुष्य इस लोक में कृत-कृत्य होकर अन्त समयमें परलोककी सद्गतिको प्राप्त होजाया करता है ।११। नैमिषारण्य की पवित्र तपो भूमि में वहाँके तपोनिष्ठ ऋषिगणके द्वारा संस्थापित ऋषीश्वर नामधारी शिव का ज्योतिर्लिग हैं, जो मनुष्यों को सदा सुख किया करते हैं । १२ । हे मुनिवृन्द ! भगवान् ऋषीश्वर के दर्शन से पापात्मा मनुष्यों का भी उद्धार हो जाता है और वे भी अपने समस्त पाप राशिसे उन्मुक्त होते हुए इस लोकमें भुक्ति और परलोकमें मुक्ति

की प्राप्ति प्राप्त कर लिया करते हैं ।१३। हत्याहरण नामक तीर्थ में सम्पूर्ण पापों के नाश करने वाले और खासतौर से करोड़ों हत्याओं के विनाशक परम पूज्य का लिङ्ग विराजमान है ॥१४॥

देवप्रयागतीर्थे तु ललितेश्वरनामकम् ।
शिवलिंग सदा पूज्य नरैः सर्वाधनाशनम् ॥१५
नयपालाख्यपुर्य्यां तु प्रसिद्धायां महीतले ।
लिंगं पशुपतीशाख्यं सर्वकामफलप्रदम् ॥१६
शिरोभागस्वरूपेण शिवलिंग तदस्ति हि ।
तत्कथां वर्णयिष्यामि केदारेश्वरवर्णने ॥१७
तदारान्मुक्तिनाथाख्य शिवलिंगं महाद्भुतम् ।
दर्शनादर्चनात्तस्य भुक्तिर्भुक्तिश्च लभ्यते ।१८
इति वश्च समाख्यातं लिङ्गवर्णनमुत्तमम् ।
चतुर्दिक्ष मुनिश्रेष्ठाः किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ॥१९

देवप्रयास नामक तीर्थ के स्थान में सब पापों का क्षय करने वाले ललितेश्वर नाम वाले शिव का सब पुरुषों को पूजन अवश्य ही करना चाहिए ।१५। परम विख्यात नयपालपुरी में अर्थात् नैपाल में पशुपतीश्वर नाम वाले अति प्रसिद्ध तथा समस्त मनोरथों की पूर्ति करने वाले ज्योतिलिङ्ग विराजमान है ।१६। यह शिव का लिंग शिर के भाग के स्वरूप में ही संस्थित है । इनकी कथा का वर्णन में केदारश्वर के इतिहास में बतलाऊँगा ।१७। इनके समीप में ही मुक्तिनाथ वाले परम अद्भुत शिव का लिंग हैं जो दर्शन देकर एवं पूजित होकर भुक्ति-मुक्ति दोनों को प्रदान किया करते है । १८ । हे श्रेष्ठ मुनिगण ! इस प्रकार के चारों दिशाओं में विराजमान भगवान् शिव है । अब क्या श्रवण करना चाहते हो ? ॥१९॥

॥ विष्णु द्वारा शिव सहस्त्र नाम का कीर्तन ॥

श्रूयतां भो ऋषिश्रेष्ठा येन तुष्टो महेश्वर ।
तदहं कथयाम्यद्य शव नामसहस्त्रकम् ॥१

शिवो हरी मृडो रुद्रः पुष्पलोचनः ।

अर्थिगस्यः सदाचार सर्वः शंभुर्महेश्वरः ॥२

चन्द्रापीडश्चन्द्रमौलिर्विश्वं विश्वम्भरेश्वर ।

वेदान्तसारसदोह कपाली नीललोहितः ॥३

श्री सूतजी ने कहा – हे श्रेष्ठ ऋषि वृन्द ! जैसा हमने सुना है वही अब बतलाते हैं। आप लोग इसका श्रवण ध्यानपूर्वक करें। विष्णु भगवान् की प्रार्थना से श्री शिव जिससे परम सन्तुष्ट हुए थे वह परम पवित्र सहस्रनाम मैं आपको सुनाता हूँ। १। भगवान् विष्णु ने कहा–'शिवः'– यह भगवान् शङ्कर का नाम त्रिगुण से रहित परम मङ्गल वाचक होकर मङ्गल करने वाला है। शिव का "हर" यह नाम सृष्टि के अन्त में सब का संहार करने के कारण ही से पड़ा है। "मृड"—यह सुख का प्रदान करने से शिव का नाम पड़ गया है। "रुद्रः'—यह शिव का पवित्र नाम प्रजा को अन्त समय में संहार करते हुए रुलाने से हुआ है। अथवा समस्त दुःखों को दूर भगा देने से रुद्र नाम पड़ गया है। या दुष्टों को दुखों के दायक होने से रुद्र कहे जाते हैं। "पुष्कार" यह पुष्टि करने से शिव का नाम हुआ है। "पुष्पलोचनः"––यह नाम पुष्प अर्थात् कमल के समान सुन्दर नेत्र वाले होने से हुआ है। "अर्थिगम्यः"—यह शिव का शुभ नाम भक्तों को स्वर्ग-मोक्षादि की कामना पूरी करने के कारण हुआ है। "शर्व"––यह नाम सत्पुरुषों के आचरण रखने वाले होने से हुआ है। 'शम्भु.'-यह शिव का शुभ नाम भक्तों को सुख देने से हुआ है। 'महेश्वर'-यह नाम अर्थात् परमेश्वर'य परः स महेश्वरः'—इस श्रुत वचन के अनुसार जो सबसे ऊपर है वह महेश्वर होता है सबसे बड़े स्वामी होने के कारण ही हुआ।२। भगवान् शिव का 'चन्द्रापीडा" – यह शुभ नाम अपने मस्तक में चन्द्रमा धारण करने के कारण से हुआ है। 'चन्द्रमोलि'- यह नाम अपने मस्तकका चन्द्रमाभूषण बनानेके कारण हुआ है। 'विश्वम्: यह नाम शिवको परब्रह्म स्वरूप बतलाता है। 'विश्वम्भरेश्वरः'-यह नाम संसार और सपस्त देवों के स्वामी होने के कारण हुआ है। 'वेदान्त सार

सन्दोहः' यह नाम वेदान्त शास्त्र के पूर्ण रूप मे ज्ञाता होने से पड़ा है। 'कपली' कपाल धारण करने से तथा 'नील लोहित'— यह नीले और लाल रंग वाली जटा धारण करने से नाम हुए हैं ।३।

ध्यानाधरोऽपरिच्छेद्यो गोरीभर्त्ता गणेश्वरः ।
शष्टमूर्तिर्विश्वमूर्तिस्त्रिवर्गः सगंसाधनः ।।४
ज्ञानगम्यो दृढप्रज्ञो देवदेवत्रिलोचनः ।
वामदेवो महादेवो पटुः परिवृढो दृढः ।।५
विश्वरूपो विरूपाक्षो वागीश सुरसत्तमः ।
सर्वप्रमाणसवादी वृषाको वृषवाहनः ।।६

'ध्यानाधारः'—यह नाम योगियों के ध्यान का आधार बनने से हुआ है। 'अपरिच्छेय'—यह नाम देश और काल से परिच्छिन्न न होने के कारण शिव का हुआ है । 'गोरीभर्त्ता' यह पार्वती के पति होने से और प्रमथादि गणों के नियन्त्रण करने वाले होने से 'गणेश्वर'-यह नाम हुआ है। आकाश आदि आठ मूर्तियों में स्थिति रखने के कारण शिव का 'अष्ट मूर्ति नाम हुआ है । समस्त जगत् ही मूर्ति स्वरूप होने से 'विश्वमूर्ति' नाम है। 'त्रिवर्ग स्वर्गसाधनः'—यह शिव का शुभ नाम धर्म-अर्थ और काम एवं स्वर्ग के अचिन्त्य सुख के देने वाले होने के कारण हुआ है ।। ४ ।। 'ज्ञान गम्य'—यह नाम ज्ञान मात्र से ही वेदान्त के अर्थ जानने योग्य होने के कारण शिव का है। 'दृढ़ प्रज्ञ-'-यह नाम सर्वदा ज्ञान से युक्त -'देवदेवः'- यह देवों को भी कर देने वाले देवता अथवा शक्ति प्रदान कर उनको पूर्ण प्रकाश तथा आनन्द देने वाले—त्रिलोचन'-तीन नेत्रों के धारण करने वाले अथवा तीन गुण तीन लोक और तीन वेदों के ज्ञान से युक्त से युक्त किम्वा अकार उजार और मकार मोम् ये तीन अक्षर के नेत्र वाले यद्वा शास्त्र आचार्य और ध्यान त्रिदर्शन इन साधन स्वरूपी तीन नेत्रों वाले होने से यह नाम पड़ा है। महाभारत ग्रन्थ की टीका के रचयिता नीलकण्ठ ने भी वही इसका अर्थ लिखा है। 'वामदेव'-यह नाम शिव का इसलिये हुआ है कि ये दुरात्मओं के मद को निकलवा देने वाले है अथवा लोकोत्तर एवं सुन्दर देवता है किम्वा कर्म फलों के विभाजन

करने के कारण सुन्दर देवता हैं 'महादेव' इसका अर्थ ब्रह्मादि देवों के भी वन्दनीय बड़े देव हैं। "पटु" यह नाम दुःखों के नाश करने वाले अथवा अपने भक्त वर्ग के कल्याण करने में परम कुशल होने से हुआ है। 'परेच्वृढ' जगत् के प्रभु—दृढ़—महाबलवान्—होने के कारण ये नाम हुए है ॥ ५ ॥ 'विश्वरूप' समस्त जगत्स्वरूप—'विरूपाक्ष' विषम नेत्र वाले—'वागोश' वेद वाणी के स्वामी—'शुचि सत्तम' तीनों माया के गुणों से रहित होने के कारण परम विशुद्ध—सर्व प्रमाण संवादी-वेदादि के समस्त प्रमाणों के वेत्ता—'वृषाङ्क' वृष के चिन्ह को धारण करने अथवा धर्मयुद्ध और 'वृषवाहन नन्दीश्वर नामक वृष के वाहन वाले होने से ये सब शिव के नाम हुए हैं। ॥६॥

ईशपिनाकी खट्वांगी चित्रवेषश्चिरन्तनः।
तमोहरो महायोगी गोप्ता ब्रह्माण्डहृज्जटी ॥७
कालकालः कृत्तिवासाः सुभगः प्रगतात्मकः।
उन्नध्रः पुरुषो जुष्यो दुर्वासाः पुरशासनः ॥८
दिव्यायुधः स्कन्दगुरुः परमेष्ठी परात्परः।
अनादिमध्यनिधनो गिरोशो गिरिजाधवः ॥९

'ईशं-सम्पूर्ण जगत् के स्वामी-'पिनाकी' पिनाक नाम वाले धनुष को धारण करने वाले-'खट्वांग' खाट के एक अंक को अपना आयुध बना वाले 'चित्रवेप' समय पर कार्यके अनुकूल अनेक वेषों के धारण करने वाले-'चिरन्तन' तीनों कालों से बाधा न पाने वाले अर्थात् परम प्राचीन-'तमोहर' अज्ञान के अंधकार को हरण करने वाले अर्थात् अविद्या नाशक-'महायोगी' यम-नियम प्राणायामादि योग के आठों अंगों के तत्व ज्ञाता-'गोप्ता' सर्वप्रकाश से रक्षा करने वाले-'ब्रह्मा' जगत् में सभी कुछ की उत्पत्ति करने वाले और महान् समस्त गुण गणों से परिपूर्ण होने से उक्त सभी नाम भगवान् शिव के हुए हैं (५०) धूर्जटि'-सारभूत जटाओं वाले अथवा गंगा को जटाजूट में धारण करने वाले हैं। ७। 'काल-कलः' अर्थात् मृत्म और यम के काल अर्थात् संख्या करने वाले 'कृत्तिवास'

अर्थात् व्याघ्र चर्म के वस्त्र धारण करने वाले शिव हैं। पिनाक हस्त, कृत्तिवासः' यह श्रुति का भी वचन आता है अर्थात् शिव पिनाक हाथ में धारण करने वाले तथा चर्म वस्त्र वाले हैं। 'सुभग'—सुन्दर स्वरूप वाले अथवा अत्यन्त ऐश्वर्यधारी—'प्रणवात्मक' ओंकार के स्वरूप धारण करने वाले—यहां 'ओमित्येकाक्षर ब्रह्म'यह श्रुति भी यही बतलाती है। उग्नग्र' अर्थात् पापात्मा पुरुषों को पाश से बांधने वाले पुरुषः'-यह शिव का नाम इसलिए हुआ है कि शिव सबके शरीर में व्याप्त है अथवा अन्तर्यामी रूप से शयन करते हैं, अथवा सब प्रकार से परिपूर्ण होने से भी शिव का नाम पुरुष है। 'जुष्य सबके मन वचन और कर्म के द्वारा सेवा करने के योग्य हैं - 'दुर्वासा' यह नाम वल्कलादि के वस्त्रधारण करने से हुआ है अथवा दुर्वासा नाम अत्रि के यहाँ पुरुष रूप से अवतार होने वाले होने से नाम है। 'पुरुशासन' त्रिपुर नामक असुर के संहारकर्त्ता हैं। (६०) 'दिव्यायुध' पिनाक प्रभृति अत्युत्तम आयुधों के धरण करने वाले हैं। 'स्कन्द गुरु' अर्थात् षडानन कार्त्तिकेय के पिता हैं। 'परमेष्ठी अपनी अनन्त गुणमयी महिमा से युक्त और आकाश में स्थित होने से शिव के नाम हुए हैं। 'परात्पर' अर्थात् अव्यक्त, पर से भी परे हैं 'अनादि मध्य निधन' अर्थात् देश और काल से भी अपरिच्छिन्न हैं। 'गरीश' अर्थात् मेरु आदि समस्त पर्वतों के स्वामी हैं। गिरिजाधवः' अर्थात् शिव हिमाचल की पुत्री पार्वती के स्वामी हैं ॥८-९॥

कुवेरबन्धुः श्रीकण्ठो योकवणोत्तमो मृदुः।
समाधिवेद्यः कोदडी नीलकंठः परश्वधी ॥१०
विशालाक्षो मृगव्याधः सुरेशः सूर्यतापनः।
धर्माध्यक्षः क्षमाक्षेत्र भगवाग्भमनेगभित् । ११
उग्रः पशुपतिस्तार्क्ष्यः प्रियभक्तः परतपः।
दाता दयाकरो दक्षः कपर्दी कामशासनः ॥१२

कुवेरबन्धु' अर्थात् यक्षाधिपति कुवेर के भाई है। 'श्रीकण्ठ अर्थात् अपने कण्ठमें सुषमा किम्बा वेद को रखने वाले है। यहाँ इसे शिव के शुभ नाम की पुष्टि— 'ऋच सामानि यजु ऋषि [illegible] श्रीरमृतास [illegible] वह

श्रुति के वचन से होती है । लोक वर्णोत्तम' अर्थात् शिव के भास्वद्
रूप को लोक द्वारा देखा जाता है अथवा लोक से ब्रह्मणादि से भी
श्रेष्ठ है (७०) मृदु' अर्थात् भक्तों के लिये सौम्य रूप वाले हैं । 'समाधि
वेद्य' अर्थात् ध्यानुध्यानी है । नीलकण्ठ' अर्थात प्राणीमात्र के प्राण के लिये
महाविष के पान करने मे नीले कण्ठ वाले हैं । 'परश्वधी' अर्थात् अपना
सर्वस्व धन देकर भक्तों को सुख पहुचाने वाले हैं, किम्बा भक्तों में अपनी
जैसी बुद्धि प्रदान करने वाले हैं । (८०) 'विशालाक्ष' बड़े नेत्रों से युक्त-
मृगव्याध—मृग पशु के समान जीव के संहार करने के लिये व्याध के
सदृश अथवा अर्जुन पर कृपा करने के लिये व्याध का स्वरूप रखने वाले
सुरेश— अर्थात् समस्त देवों के स्वामी । सूर्य तापन'—अर्थात् दुर्जनों को
सूर्य की भांति ताप प्रदान करने वाले किम्वा सूर्य को भी तपा कर भय
देने वाले हैं । इस बात का पूर्ण पोषण करने वाला—भी षोदेति सूर्य'
यह श्रुति का वचन भी है । धर्माध्यक्ष अर्थात् वण और आश्रम प्रभृति
धर्मों के स्थान हैं (८०) 'क्षमा क्षेत्रम्'—अर्थात् क्षमा के उद्भव के
स्थान हैं । 'भगवान् अर्थात् भग नाम छै प्रकार के ऐश्वर्यों से सयुक्त
हैं । भगनेत्रभित् अर्थात् शिव दक्ष के यज्ञ से भग नामक देवता के
नेत्रों का भेदन करने वाले हैं । उग्रः— अर्थात् महाप्रलय के समय में
समस्त सृष्टि का संहार करने के कारण शिव उग्र रूप वाले हैं । पशुपति'
पशु—जीवों के पालन कर्त्ता शिव का स्वरूप होने से उनका यह नाम
हुआ है 'तार्क्ष्य।' अर्थात् कश्यप का स्वरूप है । 'प्रिय भक्तः— अर्थात्
अपने भक्तों के ऊपर अत्यन्त प्यार करने से उनके परम प्रिय शिव हैं ।
'परन्तपः'—अर्थात् शत्रुओं को ताप देने वाले हैं । जहाँ प्रिय-माह ऐसा
पाठ है वहाँ प्रिय भाषण करने वाले हैं । 'दाता-इसका मतलब है कि
शिव भक्तों को ऐश्वर्य के देने वाले हैं । दयाकरः - भगतजनों के उद्धार
करने के लिये पूर्ण अनुग्रह करने वाले हैं 'दक्ष' इस जगत के स्वरूप
में वृद्धि पाकर समस्त कर्म- कलाप के करने में कुशल हैं । कदर्पी
अर्थात् संन्यासी किम्बा कपर्दी मुनीकृत भिक्षु सुत्र के जानने वाले
अथवा कपर्दी अर्थात् के रूप से प्रकट होकर ज्ञान का दान करने वाले
शिव है काम शासन' अर्थात् कामदेव को भस्म करने वाले हैं । १२ ।

श्मशानपिलय सूक्ष्मः श्मशानस्थ महेश्वरः ।
लोककर्त्ता मृग तिर्महकर्त्ता महौषधिः ॥१३
सोमपोऽमृतपः सौम्यो महातेजा महाद्युतिः ।
तेजोमयोऽमृतमयोऽन्नमयश्च सुधापतिः ॥१४
उत्तमो गोपतिर्गोप्ता ज्ञानगम्य पुरातनः ।
नीतिः सुनीतिः शुद्धात्मा सोमः सोमातरः सुखी ॥१५

'श्मशाननिलयः'—अर्थात् श्मशान भूमि में अपना निवास बनाने वाले शिव होते हैं । 'सूक्ष्मः'— इनका अर्थ है शिव शब्दादि के स्थूल कारण से रहित हैं । यहाँ श्रुति का वचन 'सर्वगत सुसूक्ष्यम्'-यही बात पुष्ठकर देता है 'श्मशानस्थः' अर्थात् श्मशान में ठहरने वाले हैं । 'महेश्वर'-सबसे बड़े स्वामी 'लोककर्त्ता'—इस विश्व के बानने वाले 'मृगपतिः' अर्थात् पशुओं की रक्षा करने वाले और 'महाकर्त्ता-अर्थात् पाँच महाभूतों के निर्माण करने वाले हैं । इस विषय के पोषक विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्व गोप्ता' इत्यादि आगमों के वचन भी हैं । यहाँ पर भगवान् शिव के सहस्र नामों का एक शतक पूरा होता है । (१००) शिव का नाम 'महौषधि' भी है । इसका अर्थ होता है शिव व्रीहि यवादि के रूप वाले हैं अथवा ससार बन्धन स्वरूप रोग के छुड़ा देने वाले हैं । 'सोमपः यज्ञादि में देव स्वरूप से सोम के पान करने वाले हैं । किम्बा धर्म की मर्यादा को दिखाते हुए यजमान के स्वरूप से सोमपान करने वाले हैं । 'अमृतपः-अर्थात् अपनी ही आत्मा का अमृतपान करने वाले हैं । सौम्यः-भक्तों के लिये परम सौम्य शान्य स्वरूप वाले हैं । 'महातेजाः'-इसका अर्थ है परम तेजस्वी हैं जिनसे सूर्यादि तेजोनिधि भी तपते हैं । यहाँ येन सूर्यस्तपति तेजसेद्ध' यह श्रुति का वाक्य भी इसकी पुष्टि करने वाला है । 'महाश्रुतिः'— अर्थात् महान् कान्ति वाले हैं । यहाँ भी 'स्वयज्योति' यह श्रुति वचन है । कहीं पर 'महानीतिमहामतिः' ऐसा भी पाठान्तर है । तेजोमयः'— अर्थात् विश्व को प्रकाशित करने वाले हैं । किंवा हैं तेजसे युक्त हैं ।'अमृत मयः'-अर्थात् मरणसे रहित ला जलमय है । 'अमृतावा आपः'— यह श्रुति वचन है । शिव की अष्ट मूर्ति के अन्तर्गत एक जल का स्वरूप भी है अथवा मोक्ष के आनन्द से परिपूर्ण है । 'कन्नमय' अर्थात् अन्न के

स्वरूप वाले हैं। यहाँ पर भी 'अन्नमय 'आत्मा'—'अन्न ब्रह्म' इत्यादि श्रुति के वचन हैं। 'सुधापति' अर्थात् देवों को अमृत का पान कराने के लिये उसकी रक्षा करने वाले स्वामी हैं 'उत्तम'—इसका अर्थ है शिव संसार में आवागमन के समूह से पार करने में सर्वोत्कृष्ठ हैं। यहाँ 'विश्वस्म दिद्र उत्तरः' यह श्रुति का वचन भी इसका पोषक होता है।गो-पतिः—अर्थात् पृथ्वी स्वर्ग पशु, वाणी, रश्मी और जल के स्वामी हैं।

'गोप्ता'–समस्त भूतों के पालन करने वाले हैं। 'ज्ञानगम्य—इस शिव के नाम का तात्पर्य होता है भगवान् शम्भु केवल कर्म से प्राप्त करने के पश्चात् समुत्पन्न ज्ञान से प्राप्त करने के योग्य है। 'पुरातनः'–काल से अपरिच्छिन्न होने के कारण परम प्राचीन हैं। 'नीति दण्ड के योग्य व्यक्तियों को दण्ड के प्रणयध करने वाले हैं। 'सुनीति' अर्थात् अर्थात् निर्मल चित्त वाले, 'सोमः' अर्थात् चन्द्र के स्वरूप से औषधियों की पुष्टि करने वाले अथवा उमा के सहित रहने वाले है।११०। 'सोम—रतः'—चन्द्र अमृत या सोमलता के रस में अनुराग करने वाले हैं। यहाँ—'एषह्येनानन्दयति' यह श्रुति का वचन भी है। ।३ - ४--१५ ॥

अजातशत्रुरालोकसंभाव्यो हव्यवाहनः ।
सीकंकरो वेदकरः सूत्रकारः सनातनः ॥१६

महर्षिः न्नपिजाचार्य्यो विश्वदीप्तिस्त्रिलोचनः ।
पिनाकपाणिर्भूदेवः स्वस्तिद सुकृतः सुधीः ॥१७

धातृधामा धामकरः सर्वदः सर्वगोचरः ।
वह्मवृग्विश्वसृक्सर्गः कर्णिकारप्रियः कविः ॥१८

'अजातशत्रु'—शत्रु से रहित हैं क्योंकि आप शिव स्वय ही सबके शासक हैं। 'अलोकः'—अर्थात् स्वय ही प्रकाश स्वरूप हैं। 'संभाव्यः'-अर्थात् समस्त देव असुरों के माननीय हैं। 'हव्यवाहन' अर्थात् शिव 'देवेभ्योहव्य वाहनः प्रजानम् यह श्रुति का वाक्य भी प्रमाणित करता है।

'लोककरः लोकों के सृजन करने वाले, 'वेदकरः' ऋग्वादि वेदों के

प्रकाश करने वाले, 'सूत्रकार:' व्यासादि के रूप में होकर सूत्रों की रचना करने वाले और 'सनातन:'—सदा सर्वदा रहने वाले शिव हैं। "महर्षि कपिलाचार्य:"—सांख्य दर्शन के द्वारा शुद्ध आत्मा के जानने वाले कपिल के रूप में अवतीर्ण होने वाले हैं। जो वेद के एक ही देश को जानते हैं वे महर्षि कहे जाते हैं। यहाँ पर—'ऋषि प्रसूत कपिल महान्तम् यह श्रुति वाक्य भी इसकी पुष्टि करता है। 'विश्वदीप्ति'— अर्थात् यह समस्त संसार शिव की ही दीप्ति का रूप है। यह—यस्य भासा सर्वमिदम्' यह वेद का वचन भी इसका पोषक है।

'त्रिलोचन:'- अर्थात् तीन नेत्रों वाले है। 'पिनाकपाणि:'—अर्थात् पिनाक धनुष अथवा त्रिशूल को हाथ में धारण करने वाले है। भूदेव'—भूमि में दुर्वासा आदि ब्राह्मण के स्वरूप से अवतीर्ण होने वाले है। 'स्वस्तिद:'—भक्तों को कल्याण प्रदान करने वाले है। सुकृत;-अर्थात् भक्तों के मङ्गल करने वाले हैं। 'सुधी:-श्रेष्ठ ज्ञान से परिपूर्ण है ॥१७॥ धातृधामा'—अर्थात् विश्व के धारण करने वाले तेज से युक्त हैं। 'धाम' कर:' —सूर्यादि तेज और समस्त प्राणियों की देह के बनाने वाले है। सर्वग:- सब में व्याप्त रहने वाले शिव हैं। 'सर्वगोचर:'-सम्पूर्ण जगत् को प्रत्यक्ष करने वाले है। 'ब्रह्म सृक्'—अर्थात् ब्रह्मा अथवा वेद के सृजन करने वाले हैं। विश्वसृक्-- अर्थात् संसार की रचना करने वाले हैं। 'सर्ग:'—स्वय सृष्टि के स्वरूप में होने वाले, 'कवि:'— सभी कुछ के ज्ञाता हैं। यहाँ पर श्रुति का वचन है—'कविर्मनीषी परिभू: स्वयम्भू:' इत्यादि। 'नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा।' इत्यादि ।१५-१७-१८॥

शाखो विशाखो गोशाख: शिवो भिषगनुत्तम:।
गंगाप्लवोदको भव्य: पुष्कल:स्थापित:स्थिर: ॥१९

विजितात्मा विधेयात्मा भूतवाहनसारथि:।
सगणो गणकायश्च सुकीर्तिश्छिन्नसंशय: ॥२०

कामदेव: कामपालो भस्मोद्धूलितविग्रह:।
भस्मप्रियो भस्मशायी कामी कान्त: कृतागम: ॥२१

'शाख:'-इसी नाम वाले ऋषि का स्वरूप, 'विशाख-' एक ऋषि के स्वरूपधारी अथवा स्कन्द के स्वरूपसे उत्पन्नहोने वाले हैं। 'गोशाख:शिव:-

अर्थात् वेदों की शाखा के आश्रय स्वरूप, अथवा इस सम्पूर्ण जगत् के शयन करने का आधार किम्बा त्रिगुण रहित होनेके कारणशिव हैं। यहाँ दोशब्दों का एक ही शिव का नाम है। यहाँ पर'स ब्रह्मास शिवः' इत्यादि श्रुतिका वचन है। 'भिषक्'-धन्वन्तरि के स्वरूपमें अवतीर्ण होकर संसारके समस्त रोगों के नाशक हैं। यहाँ पर भी-'भिषक्तमं त्वा भिषजां शृणोमि इत्यादि श्रुति के वचन हैं जो उक्त नाम की पूर्ण पुष्टि करते हैं। अनुत्तमः':अर्थात् संसार में सबसे श्रेष्ठ हैं यहाँ जिससे उत्तम कोई नहीं ऐसा बहुब्रीहि समाज होता है। 'यस्मात्परं नायमस्ति किंचित्' यह श्रुति का वचन समर्थक है।

गंगाप्लवोदकः'—भागीरथी गंगा के जल-प्रवाह के समान हैं। 'जन तारकः'-अर्थात् भक्तों के उद्धारक हैं। भव्य'.समस्त कल्याण से परिपूर्ण हैं। पुष्कलः'-सब में व्यापक रहने वाले हैं। 'स्थपतिः स्थिरः'-अर्थात् अनन्त ब्रह्माण्डों रचने वाले अथवा माया के कचु की हैं। यहाँ पर पर ये दोनों शब्द मिलकर शिव का एक ही नाम बतलाते हैं। 'विजितात्मा'—आत्मा को जीत लेने वाले हैं। विषयात्मा'-समस्त इस प्रपञ्च जगत् की आत्मा हैं। कहीं 'विधेयात्मा' यह पाठान्तर भी होता है। भूत वाहन सारथि,'-प्राणियों के कर्मफलों को प्राप्त करने वाले ब्रह्मा को सारथी रखने वाले हैं। 'सगणः'अर्थात् प्रथमादि गणों से युक्त रहने वाले। गणकार्य-गणों के शरीर वाले किम्बा अपरिच्छेद्य काया वाले 'सुकीर्ति'—सुन्दर कीर्ति से युक्त। छिन सशयः सर्वज्ञ के कारण सब प्र ार के संशयों से रहित है ॥१९-२०॥

'कामदेव' अर्थात् धर्मार्थादि पुरुषार्थों की इच्छा रखने वाले शिव हैं। 'कामपालः'-कामिजन की कामनाओं को पूरा करने वाले। 'भस्तोद्धूलित विग्रहः'-भस्म लगाने से धूलित शरीर वाले। 'भस्म प्रियो भस्मशायी'-भस्म-प्यारी लगने के कारण उसी में शयन करने वाले। यहाँ ये दोनों शब्द मिलकर एक ही शिव का नाम बतलाते है। 'कामी—पूर्णकाम अर्थात् जिनकी सभी कामनायें स्वतः परिपूर्ण हैं। 'यहाँ-'सोऽकामाय' इत्यादि श्रुतिवाक्य भी उनको कामना रहित बतलाता है। 'कान्त'—मनोहर किम्बा द्विसीय परार्ध में ब्रह्मा के भी अन्त करने वाले हैं। 'कृता गमः'—श्रुति तथा मृत आदि आगम स्वरूप लक्षण के व्यक्त करने वाले हैं ॥ २१ ॥

समावर्त्तो निवृत्तात्मा धर्मपुंजः सदा शिवः।
अकल्मषश्च पुण्यात्मा चतुर्बाहुर्दुरासदः।
दुर्लभो दुर्गमा दुर्गः सर्वायुधविशारदः।
अध्यात्मयोगतिलयः सुतंतुस्तस्तु वर्द्धनः ॥२३
शुभांगो लोकसारङ्गी जगदीशो जनार्दनः।
भस्मशुद्धिकरेऽभीरुरोजस्वी शुद्धविग्रहः ॥२४

शिव का एक नाम समावर्त्त' होता है। इसका अर्थ संसार रूपी चक्र के घुमाने वाला होता है। अनिवृत्तात्मा—अर्थात् सर्वत्र व्याप्ति के कारण उनकी विद्यमानता रहती है। अतः अनिवृत्त आत्मा वाले हैं। धर्म पुञ्ज धर्म को राशि रूप है सदाशिव-अर्थात् शिव सर्वदा कल्याणस्वरूप वाले हैं।

शिव का एक नाम अकल्मष है इसका अर्थ होता है नित्य शुद्ध रहने वाले। 'चतुर्बाहु'-अर्थात् चार भुजाओं वाले विष्णु का सा स्वरूप वाले। 'दुरावासः'-योगिजनों की समधि में भी बड़ी कठिनाई से ध्यानगत होने वाले। यहाँ 'सर्वावास ऐसा भी पाठान्तर मिलता है उसका अर्थ है सर्वत्र सब में निवास करने वाले शिव हैं। दुरासद बड़ी कठिनता से प्राप्त होने के योग्य शिव हैं।२। 'दुर्लभ अर्थात् अत्यन्त भक्ति से ही प्राप्त होने वाले हैं। दुर्गम बड़ी कठिन मेहना से जानने के योग्य (१८० दुर्ग अर्थात् बहुत ही दुख उठाकर पाने के योग्य। सर्वायुधविशारदः—समस्त शस्त्रास्त्र की विद्याओं के पूर्ण पण्डित।

'अध्यात्म योग निलयः—'अर्थात् असंप्रज्ञात समाधि के स्थान सार की वृद्धि वा छेदन करने वाले ॥ २३ ॥ 'शुभांग' श्रेष्ठ अंगों वाले। लोक सारङ्ग—-सारंग के सदृश लोक का सार ग्रहण करने वाले किम्बा ओंकार के द्वारा जानने के योग्य। जगदीश समस्त जगत् का नियन्त्रण करने वाले 'जनार्दनः'—इस जगत् के संहारं करने वाले। भस्म शुद्धिकरः अर्थात् भस्म से शुद्धि करने वाले। (१९०) ॥ मेरु—पर्वत के स्वरूप में संस्थित। औजस्वी आत्मा के बल ओज से परिपूर्ण। 'शुद्धि विग्रह'—-अर्थात् चित्स्व-रूप वाले ॥२२-२३-२४॥

असाध्यः साधुसाध्यश्च भृत्यमर्कटरूपधृक् ।
हिरण्यरेताः भैराणो रिपुजीवहरो बली ॥२५
महाह्लदो महागर्तः सिद्धो वृन्दारवन्दितः ।
व्याघ्रचर्माम्बरो व्यालो महाभूतो महानिधिः ॥२६
अमृतोऽमृतपः श्रीमान्पाञ्चजन्यः प्रभंजनः ।
पञ्चविंशतितत्त्वस्थः पारिजातः परात्परः ॥२७

'असाध्य' चरित्रहीन पुरुषों के द्वारा प्राप्त न होने वाले । 'साधु साध्यः'-सच्चरित एव साधु वृत्ति वाले भक्तों के द्वारा प्राप्त होने के योग्य 'भृत्यकर्कटरूप धृक्' अर्थात् हनुमान केस्वरूप में स्थित होने वाले । हिरण्य रेता'अग्निके सम स्वरूपवाले अर्थात् परम तेजस्वी । पौराण-समस्तपुराणों के द्वारा ब्रह्म के रूप से प्रतिपादन करने के योग्य । रिपु जीव हरः-'शत्रु ओं के प्राणों का हरण करने वाले । 'बलः'-महान बल की शक्ति धारण करने वाले (२००)। यहाँ शिव केनामों का द्वितीय शतक समाप्त हो गया है ।) ,महाह्लदः'- ऐसे महान् सरोवर का स्वरूप जिसमें योगी विश्राम लेकर सर्वदा आनन्द में मग्न रहा करते हैं । 'महागर्त महागर्त वाले किम्व महान् दुरत्यय माया से युक्त । 'सिद्ध वृन्दारवन्दिः'—परम सिद्ध और देव समूह के द्वारा वन्दना किये जाने वाले । 'व्याघ्र चर्मारबरः'-अर्थात् बाव के चर्म का वस्त्र धारण करने वाले । 'व्याली · अर्थात् महान् विषधर वासु कि आदि अनेक सर्पों के भूषण धारी । 'महाभूतः'—महान् विराट् को उत्पन्न करने वाले अथवा तीनों कालों में अवच्छिन्न महत्तत्व स्वरूप वाले । यहाँ शी ब्रह्मार्ण विदधाति पूर्वकम्'-- यह श्रुति का वचन भी पोषक होता है । 'महानिधि'— ऐसे विशाल स्वरूप के धारण कर्त्ता जिसमें समस्त प्राणी समा जाते ॥ २५—२६ ॥ 'अमृताशः'— अपने आत्मानन्द रूपी अमृत का सदा पान करने वाले । 'अमृत बपुः'-मृत्यु रहित शरीर के धारण करने वाले । यहाँ—'अजरोऽमरः' — यह वेदका वाक्य भी शिवके मरणाभावची पुष्टि करता है । 'पाञ्चजन्यः-अर्थात् पाँच जनों में रहने वाले अग्नि स्वरूपी। यहाँ पर भी-अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः'-यह श्रुति वाक्य है। किसी जगह 'पञ्चयज्ञ'-ऐसाभी

पाठान्तर मिलता है। वहाँ इसका अर्थ यज्ञों के उत्पादक शिव है। प्रभञ्जः'-भक्तों के मायात्मक आवरण के नाशक अथवा वायु के स्वरूप में संस्थित। 'पञ्चविंशति तत्वस्थः'-अर्थात् प्रकृति आदि पच्चीस तत्वों में विराजमान रहने वाले। यहाँ-'तत्सृष्ट्वा तदेवानु प्र विशत्' यह श्रुति का वचन उक्तार्थ का समर्थक है। 'पारिज्ञातः'-अर्थात् मनुष्यों के मनोवांछित फल देने वाले कल्प वृक्ष के स्वरूप से युक्त। परात्परः'-ब्रह्म तथा जगत् के रूप वाले ॥२७॥

सुलभः सुव्रतः शूरो वांग मयैकनिधिर्निधिः ।
वर्णाश्रमगुरुर्वर्णी शत्रुजिच्छत्रुतापनः ॥२८
आश्रमः श्रमणः क्षामो ज्ञानवानचलेश्वरः ।
प्रमाणभूतो दुर्ज्ञेयः सुपर्णो तायुवाहनः ॥२९
धनुर्धरो धनुर्वेदो गुणः शशिगुणाकरः ।
सत्यः सत्यपरोऽदीनो कर्मो गोधमशासन ३०

'सुलभः'-पत्रपुष्पादि के अत्यन्त साधारण उपचारों से पूजित होने पर प्राप्त होने वाले। 'सुव्रतः शूरः अपने भक्तों की रक्षा करने का अच्छा व्रत लेने वाले किम्वा भोजन नियत करने वाले शूर अर्थात् सूर्य के स्वरूप में स्थित यहाँ इन दोनों शब्दों से शिव का एक ही नाम व्यक्त होता है। 'ब्रह्म वेद निधिः'-वेदों के प्रादुर्भाव होने का स्थल। यहाँ-अस्य महतो भूतस्य निःश्वासितदृग्वेदः-अर्थाद् इस महान् देवकाजो निःश्वास है वही ऋग्वेद है यह श्रुतिका वचन भी उक्त नामार्थ की पुष्टि करता है। 'वाङ्मयैक निधिः' कहीं ऐसा भी पाठान्तर मिलता है। वर्णाश्रम गुरुः—अर्थात् योगिजन द्वारा स्थापित ब्राह्मण आदि वर्णों और ब्रह्मचर्य आदि आश्रमों के उद्‌भव करने वाले अथवा उपदेशक ॥ २८ ॥ 'वणी'—ब्रह्मचारी के स्वरूप में रहने वाले ॥ (२२०) ॥ 'शत्रु जिच्छत्रु तापनः'—वेव शत्रु को जीतने तथा उन्हें सन्ताप देने वाले। यहाँ भी दोनों शब्दों द्वारा एक ही शिव का नाम होता है। 'अश्रयः'-आश्रय के सदृश ससार में भ्रमणशीलों को विश्राम प्रदान करने वाले। 'क्षुण्णः'-निज भक्तों के पापों का क्षय करने वाले। 'क्षाम'—प्रलयकालमें प्रजा को क्षीण करने वाले। 'ज्ञनवान्'—नित्यज्ञान से युक्त। 'अचलेश्वरः- पृथ्वी पर्वत प्रभृति के स्वामी। 'प्रमाण भूतः'— प्रत्यक्षानुपानादि प्रमाणो के

उत्पादक। 'दुर्ज्ञेय:'-अत्यन्त घोर श्रम से जानने योग्य। 'सुपर्ण:'-धर्म अधर्म रूपी पक्षों से युक्त अथवा गरुड़ के स्वरूप में संस्थित किम्बा सबके उत्पन्न करने वाले वहाँ-सुपर्णा विप्रा कवयो वचोभिरेक सन्त बहुधा कल्पयन्ति' इत्यादि श्रुति वचन है जो उक्त नाम के अर्थ को बतलाता है। अथवा छन्द स्वरूप पर्ण वाले। 'वायु वाहन:'—वायु सोपान से युक्त रथ वाले अथवा जिसके भय से वायु समस्त प्राणियों का वहन करता है। वहाँ उसका पोषक—'भीषा स्माद्वात: पवते' इत्यादि श्रुति का वाक्य है। 'धनुर्धरी धनुर्वेद:—अर्थात धनुर्वेद को प्रकट करने वाले पिनाक के धारक। यहाँ पर ये दोनों शब्द एक ही शिव नाम के वाचक होते हैं। 'गुणराशिर्गुणा कर:'—योगादि गुणों के संघात वाले और योग, सांख्य, तप, विद्या, विधि, क्रिया' ऋतु, सत्य, दया, श्रेष्ठ मति, अहिंसा, शांति, दम, ध्येय, ध्यान, मति, धृति, प्रथा, मेधा, नीति, कान्ति ऋद्धि, लज्जा, पुष्टि, तुष्टि, सरस्वती, प्रसाद, क्रिया, प्रतिष्ठा आदि अनेक गुणों की खान। यहाँ भी दोनों शिव का ही एक ही नाम बतलाते हैं। 'सत्य: सत्यपर:'—साधुओं के समाज में सत्य स्वरूप वाले और यथार्थ कथन करने में निष्ठा रखने वाले। यहाँ पर भी दोनों शब्द एक ही नाम को प्रकट करते हैं। 'दीन:'—सामान्य बाह्य दृष्टि रखने वाले के लिये श्मशान में निवास करने से एक दरिद्र के समान दिखलाई देने वाले किम्बा अदीन अर्थात सर्वदा परम सन्तुष्ट रहने वाले। 'धर्माङ्गो धर्म साधन:'—अर्थात यज्ञादि के धार्मिक अङ्गों वाले। जैसा कि हरिवंश पुराण में प्रथम पर्व २१ अध्याय में विस्तृत रूप से वर्णित किया गया है और लिखा है—वेद रूप चरण, यज्ञ स्तम्भ स्वरूप दंष्ट्रा, यज्ञ रूप हाथ वाला वाराह मूर्तिरूप है और जिसका चिति रूप मुख, अग्नि स्वरूप जिह्वा, डाभ (कुशा) रूप रोम, ब्रह्मात्मक शिव, दिनरात्रिस्वरूप नेत्र, दिव्य वेदान्त तथा श्रुति रूप आभरण, घृत रूप नासिका, स्रुवा स्वरूप तुण्ड, साभवेदात्मक शब्द, धर्म सत्य स्वरूप शोभा, कर्म-विकर्म सत्क्रिया सयुत, प्रायश्चित रूपी नख और पशु रूप जानु और विकृत भुजा, उग्रता से युक्त होम स्वरूप वाला लिङ्ग, फल बीज महौषधि वायु से समन्वित अन्तरात्मा वाला वेदरूप फिचों से हुआ सोम स्वरूप रक्त, वेदी रूप स्कन्ध, हवि रूप गन्ध, हव्य-कव्य स्वरूप वेगवान्, प्राग्वंस रूपी शरीर विचित्र

दीक्षाओंसे समर्पित, दक्षिणा रूपी हृदय, योगी और महायज्ञ से युक्त उप-
कर्म रूपी ओष्ठ प्रवगावर्त्त रूप भूषण तथा अनेक प्रकारके वेदरूप गमन,
गुप्त उपनिषद् रूपी आसन और छाया पत्नी के सहित मेरु श्रृङ्ग के तुल्य
उन्नत वाराह रूप हैं एवं धर्म के साधनों के विधाता हैं। यहाँ पर भी दानों
शब्दों से एक ही शिव के नाम की व्यक्ति होती है ॥२८ ३०॥

अनंतदृष्टिरानन्दो दंडो दमयिता दम ।
अभिचार्यो महामायो विश्वकर्मविशारद ।३१
वीतरागो विनीतात्मा तपस्वी भूतभावन: ।
उन्मत्तवेषे: प्रच्छन्नौ जितकामो जितेद्रिय: ॥३२
कल्याण प्रकृति कल्प सर्वलोकप्रजापति ।
तपस्वी तारको धीमान्प्रधान प्रभुरव्यय ॥३३

'अनन्त दृष्टि:'—अर्थात् असंख्य दृष्टियों वाले। 'आनन्द:'—अर्थात
अत्यन्त सुख के स्वरूप हैं। यहाँ-'आनन्द ब्रह्म इत्यादि श्रुति से भी उनका
नाम व्यक्त होता है 'दंडी दमयिता'-दमन करने वालों को भी दण्ड रूप
और इन्द्रादि के रूप से प्रजा के दमन करने वाले हैं। यहाँ भी दोनों का
एक ही नाम होता है। दम:'-इन्द्रियों के निग्रह के स्वरूप वाले। 'अभि-
वाद्यो महामाय.'-सुरासुरों द्वारा वन्दित और मायासंयुतों को मोहन वाले
हैं। ये दोनों भी एक ही हैं। २४०। विश्वकर्मा विशारद:'-विश्व की
रचना करने वाले और सकल कलाओंमें प्रवीण जिनके द्वारा श्रेष्ठ सर-
स्वतीका प्रादुर्भाव हुआ है। ये दोनों एक ही हैं।'वीतराग:'-भक्तोंके राग-
द्वेष को मिटाने वाले। 'विनीतात्मा'-भक्तोंके स्वभाव को विनम्र बना
देने वाले। 'तपस्वी' अर्थात तप से युक्त। 'भूत भावन'-प्राणियों की
वृद्धि के लिए सम्पादक। 'उन्मत्त वेष प्रच्छन्न'-दिगम्बर(नग्न) होने के
कारण गूढ़ रूप वाले। यहाँभी दोनोंसे एक ही नामका प्रकाशन होता है।
'जितकाम:'-कामदेव पर विजय प्राप्त करने वाले। 'अजित प्रिय!'—
विष्णु के प्यारे।

किसी स्थान में–'जितरोचि: प्रियाकवि:' ऐसा पाठान्तर भी है।
'कल्याण प्रकृति'–अर्थात् उत्तम स्वभाव से युक्त। 'कल्प'-सब चराचर के

आदि कारण। (२५०)। 'सर्वलोकप्रजापतिः' सम्पूर्ण लोकों तथा समस्त प्रजा के पालक स्वामी। 'तपस्वी'-अपने भक्तों को रक्षा करने के कार्य में वेग सहित शीघ्रता करने वाले। 'तारकः'-इस संसार रूपी सागर से तार देने वाले। 'श्रीमान' श्रेष्ठ बुद्धि एवं ज्ञान से युक्त। 'प्रधान प्रभु'-इस चराचर प्रकृति के स्वामी। 'अव्ययः' नाश से रहित ॥३१-३३॥

लोकपालोऽन्तरात्म च कल्पादिः कमलेक्षणः।
वेदशास्त्रर्थतत्वज्ञो नियमी नियमाश्रयः।३४
चन्द्रः सूर्यं शनि केतुर्वरांग विद्रुमच्छविः।
भक्तवश्यः परं ब्रह्म मृगबाणर्पणोऽनघः।३५
अद्रिग्द्रयालयः कान्तः परमात्मा जगद्गुरुः।
सर्वकर्मालयस्तुष्टो मङ्गल्योमङ्गलावृतः।३६

'लोकपालः'-लोकों के पालन पोषण करने वाले। 'अन्तरात्मा'—माया के प्रभाव से अपने स्वरूप को छिपाकर रखने वाले। 'कल्पादिः'—समस्त शास्त्रों के आदि कारण। 'कमलेक्षणः-कमल के तुल्य सुन्दर नेत्रों वाले किम्वा अपनी दृष्टि में लक्ष्मी का निवास रखने वाले।(२५०)। वेद शास्त्रार्थ तत्वज्ञः-मुनियों को वेदों एव शास्त्रों का असली तत्वार्थ का ज्ञान प्रदान करने वाले या स्वयं वेद शास्त्रों के तत्वार्थ के ज्ञाता। 'अनियम' स्वयं शिक्षा से रहित अथवा सबको शिक्षा देने वाले। नियताश्रम' सम्पूर्ण जगत के आधार स्वरूप।२४। 'चन्द्रः' सबको प्रसन्नता देने से चन्द्र के स्वरूप वाले। सूर्यः'-कर्मों में सब लोकों को प्रेरित करने वाले आदित्य स्वरूप। 'शनि'-शनि के रूप वाले। 'केतु' केतुका धूमकेतु का स्वरूप वाले। 'वरांगः'-शोभापूर्ण अङ्गों वाले। कहीं 'विरामः' ऐसा भी पाठान्तर होता है। 'विद्रुमच्छवी'-मूंगे के समान कान्ति वाले अर्थात् मंगल स्वरूप। 'भक्ति वश्यः'—भक्ति के द्वारा बस में हो जाने वाले (२७०)। 'परब्रह्म'-परात्पर ब्रह्मके स्वरूप वाले। 'मृग बाणापूर्ण'-अर्थात् अपनेभक्तों के लिये मृग के अन्वेषणमें मन रूपी बाण का अर्पण करने वाले। 'अनघ'

सब प्रकार के पापों से रहित। 'अद्रि:'–मेरु आदि पर्वत के स्वरूप वाले। अद्रयालयः,–कैलाश पर्वत के निवास करने वाले। कान्त:'--अत्यन्त सुन्दर अथवा ब्रह्मा को अपना सारथि रखने वाले। 'परमात्मा' सब में व्यापक होकर निवास करने से सर्वोत्कृष्ट महान आत्मा वाले अर्थात सर्वत्र विद्यमान। 'जगद्गुरु'––सम्पूर्ण जगत को हित का उपदेश देने वाले . सर्व कर्मालय:–अर्थात सबके नित्य के तथा नैमित्तिक कर्मों के अर्पण करने के आधार। 'तुष्ठ:'–परम सन्तोष तथा आनन्द के स्वरूप। 'मगल्यो मंगलावृत:' अपने भक्तों के मंगल में हित स्वरूप तथा अनेक मंगलो से युक्त ये दोनों शब्द एक ही शिव के शुभ नाम के द्योतक हैं ॥३४-३५-३६॥

महातपा दीदीर्घतपाः स्थाविष्ठः स्थविरो ध्रुवः।
अहः संवत्सरो व्याप्तिः प्रमाणं परमं तपः ॥३७
संवत्सरकरो मन्त्रः प्रत्ययः सर्वतापनः।
अजः सर्वेश्वरः सिद्धो महातेजा महाबलः ॥३८
योगी योग्यो महारेताः सिद्धिः सर्वादिरग्रहः।
वसुर्वसुमनाः सत्यः सर्वपापहरो हरः ॥३९

'महातपा:'–संसार के समुत्पन्न करने से महान तप करने वाले। यहाँ 'यस्य ज्ञान मय तप:'–इत्यादि वेद के वचन का प्रमाण हैं। दीर्घतपा:'–स्वयं अजर अमर होने से दीर्घतम तपस्या करने वाले भगवान शिव हैं।

'स्थविष्ट:'–अत्यन्त स्थूल। 'स्थाविर:'–अत्यन्त वृद्ध अर्थात् सबसे प्राचीन बड़े। 'ध्रुव:' अटल स्वरूप वाले। 'अहः' प्रकाश स्वरूप। 'सवंत्सर:'-वर्षात्मक काल के स्वरूप से युक्त। 'व्याप्ति:'-सर्वत्र विद्यमानता रखने के स्वरूप वाले। 'प्रमाण:'-प्रमित स्वयं प्रमाण रूप। यहाँ श्रुति वचन इसका पोषक-प्रज्ञान-ब्रह्म' होता है। 'परमेद्य'-परम शोभा से समन्वित अथवा मुक्ति स्वरूपिणी लक्ष्मी के दाता। 'तप:'-ऋत सत्य आदि के स्वरूप से युक्त। 'ऋत तप:-इत्यादि श्रुति वाक्य हैं। ३७ सवंत्सर कर:काल 'चक्र के प्रवर्त्तक अथवा प्रभाव प्रभृति वत्सरों के उत्पन्न करने वाले मन्त्र 'अत्यय:'-अर्थात ऋग्युज: साम स्वरूप मन्त्रों के द्वारा प्रतीत होने वाले सर्व

दर्शन:-सभी कुछ का प्रत्यक्ष करने वाले। यहाँ विश्वतश्चक्षुर्विश्वा-
क्षम्' इत्यादि श्रुति के वचन इस उक्त अर्थ की पुष्टि करने वाले हैं।
'सर्वेश्वर:-ईश्वरों के भी परमेश्वर।' एष सर्वेश्वर! इत्यादि वेद
के वाक्य यहाँ पर पोषक हैं। सिद्ध'-अर्थात नित्य निष्पन्न स्वरूप। महा
रेता' महान वीर्य वाले। यहाँ 'ऊर्ध्वरेतं विरूपाक्षम्'-यह श्रुति वचन
योग से युक्त अर्थात् योग में प्रवृत्त होने वाले। यहाँ ये दोनों शब्द एक
ही नाम को प्रकट करने वाले हैं। (शिव नामों का यह तृतीय शतक
समाप्त हो गया) 'तेजो':-महान प्रभाव से युक्त किम्बा दुष्टों के अत्या-
चार न सहन करने वाले। 'सिद्धि:'- अनन्त काल का स्वरूप होने के
कारण सिद्धियुक्त। 'सर्वादि:'—समस्त के आदि कारण। 'अग्रह:'—
पुण्य से हीनों के द्वारा न ग्रहण करने के योग्य। 'वसे:'—अर्थात समस्त
प्राणियों को अपने अन्दर निर्वाह देने वाले। वसुमना:' राग द्वेषादि से
कालुश रहित चित्त वाले। 'सत्य:' अर्थात् आवतक स्वरूप। यहाँ-सत्य
ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' यह वेद वचन इसका पोषक है। 'सर्व पाप हरोहर'
अर्थात कायिक प्रभृति समस्त पातकों के हरण करने वाले। यहाँ ये
दोनों शब्द एक ही नाम को बतलाने वाले हैं ॥३९॥

सुकीर्त्तिः शोभनः स्रग्वो वेदांगो वेदविन्मुनिः।
भ्राजिष्णुर्भोजनं भोक्ता लोकनाथो दुराधरः ।४०
अमृतः शाश्वतः शान्तो बाणहस्तः प्रतापवान्।
कमंडलुधरो धन्वी ह्यवाङ्मनहगोचरः ।४१
अतीन्द्रियो महामायः सर्वावासश्चतुष्पथः।
कालयोगी महानादो महोत्साही महाबलः ।४२

'सुकीर्त्ति:' सुन्दर समुज्जवल यश से युक्त। शोभन—विविध प्रकार
के वैभवों से युक्त शोभा वाले। (३०)। श्रीमान ऐश्वर्य लक्षण शोभा की
समस्त सामग्री से युक्त। अवाङ् मनस गोचर:'-चक्षु आदि का तो कथन
ही क्या है वाणी और मनसे परे यहाँ, यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा
सह' इत्यादि श्रुति वचन पोषक है। 'अमृत: शाश्वत:-अमर और नित्य
यहाँ पर भी-'अजरोऽमृत: इत्यादि श्रुति वाक्य है। ये भी दोनों एक ही

होते हैं ।४०। कमण्डलु धरः'-कमण्डलु हाथ में धारण करने वाले 'धन्वी'-धनुष के धारक। वेदांगः-वेद के बोधक अङ्ग रूप। 'वेदविन्मुनिः,-वेदों के ज्ञाता मुनि स्वरूप।

'भ्राजिष्णुः' एक रस प्रकाश के स्वरूप वाले। 'भोजनम्-इस भुवनमोहिनी माया का भोजन करने वाले। 'भोक्ता' पुरुष स्वरूप से भोग करने वाले। 'लोकनाथ'—सम्पूर्ण लोको के स्वामी किम्वा सबका शासन करने वाले। 'दुराधरः'— दैत्यादि के द्वारा आराधना करने के अयोग्य एवं अशक्य ।४१। अतीन्द्रियो महामाय'— शब्दादि का स्वरूप न होने के कारण इन्द्रियों के अविषय। यहाँ— 'अशब्द सम्पर्कम्' इत्यादि श्रुति के वचन पुष्टिकारक हैं। जो स्वयं माया किया करते हैं उन पर भी माया का प्रभाव डालने वाले। यहाँ इन दोनों शब्दों से एक ही नाम की अभिव्यक्ति होती है 'सर्व वास'— सब में निवास करने वाले। चतुष्पथः' चारों पदार्थों के साधक मार्ग वाले। 'कालयोगी'-कर्म के परिपाक होने के समय प्राणियों को भोग की प्रेरणा देने वाले। महा: नाद-अति गम्भीर ध्वनि से युक्त। 'महोत्साहः'—इस जगत की उत्पत्ति स्थित और संहृति करने के कार्य में उत्साह पूर्वक सदा उद्यत रहने वाले। 'महाबलः'-बड़े भारी बल वालों से भी बली ।४२।

महाबुद्धिर्महावीर्यो भूतचार पुरन्दरः।
निशाचरः प्रेतचारी महाशक्तिर्महाद्युतिः ।४३
अनिर्देश्यवपुः श्रीमान्सर्वाचार्यो मनोगतिः।
बहुश्रुतिर्महामायो नियतात्मा ध्रुवोऽध्रुवः ।।४४
तेजस्तेजो द्युतिधरो जनकः सर्वशासनः।
नृत्यप्रियो नित्यनृत्यः प्रकाशात्मा प्रकाशकः ।४५

'महाबुद्धिः'— अर्थात् महान बुद्धि के भण्डार। 'महावीर्यः— इस जगत के बड़ी भारी उत्पत्ति के कारणरूप वीर्य को धारण करने वाले।

'भूतचारी'-भूत पिशाच आदि के साथ सदा विचरण करने वाले। 'पुरन्दरः'-त्रिपुरासुर का विदारण करने वाले। 'निशाचरः'-रात्रि के

समय का विचरण करने वाले । 'प्रेतचारी—प्रेतों को साथ में लेकर गमन करने वाले । 'महाशक्तिर्महाद्युतिः-महान शक्ति एवं महान ज्योति के धारण करने वाले । यहाँ 'ज्योतिषीः'-ज्योतिः इत्यादि श्रुति का अर्थ भी यही है कि वह प्रकाशकों की भी ज्योति है । ये दोनों एक ही हैं ।४३। 'अनिर्देश्य वपुः'-ऐसे शरीर धारण करने वाले जिसका ज्ञान किसी को भी नहीं होता है । 'श्रीमान्' ऐश्वर्य की शोभा से युक्त ।' (३४०) ॥ 'सर्वाचार्य मनोगतिः'-समस्त आचार्यों के मन में ज्ञान का प्रकाश फैलाने वाले । बहुश्रुतः'—अनेक शास्त्रों का उद्भव करने वाले 'महामायः—बहुत बड़ी माया को उत्पन्न करने वाले । नियतात्मा ध्रुवः'–नियत आत्मा स्वरूप में स्थित निश्चल । 'अध्रुवः-ध्रुव जिससे नहीं है । 'ओजस्तेजोद्युतिधरः-प्राण, बल, शौर्यादि गुणों की दीप्ति को धारण करने वाले । नर्तकः'—तांडव नामक नृत्य के करने वाले सर्व शासकः'—समस्त प्राणियों के नियन्ता । यहाँ अन्त प्रविष्ट शास्त जनानां सर्वात्मा' यह श्रुति वचन है । इसका अर्थ है अन्दर प्रविष्ट होता हुआ जीवों का शासक सबकी आत्मा में । 'नृत्य प्रियो नित्य नृत्य'—नाच की प्रिय लगने के कारण नित्य ही शिव भक्तों के द्वारा उनके निकट नृत्य दिखाये जाने वाले । इन दोनों शब्दों के द्वारा एक ही नाम होता है । 'प्रकाशात्मा प्रकाशकः'—स्वयं तो प्रकाश स्वरूप है अतः सबको प्रकाशित करने वाले हैं । ये दोनों एक ही हैं (३५०,।।४४।४५।

स्पष्टक्षरो बुद्धो मन्त्रः समानः सारसंप्लवः ।
युगादिकृद्युगावर्तो गम्भीरो वृषवाहनः ।४६
इष्टो विशिष्टः शिष्टेः सुलभः सारशोधनः ।
तीर्थरूपस्तीर्थनामा तीर्थदृश्यस्तु तीर्थदः ।४७
अपां निधिरधिष्ठान दुर्जतो जयकालवित् ।
प्रतिष्ठमः प्रमाणज्ञो हिरण्यकवचो हरिः ।४८

'स्पष्टाक्षर'-ओङ्कार लक्षण वाले । 'बुध' सबका ज्ञान रखने वाले शिथुणिता से रहित । 'सार सप्लव' वेदान्तके स्वरूपमेंस्थित होकर संसार सागरसे पार उतारने में साधन। 'युगादि कृत युगावर्त्त'-स्वयं काल स्वरूप

होने के कारण युगादि के भेद करने वाले तथा युगों के आवर्तन कर्ता ये दोनों शब्द भगवान शिव का ही नाम व्यक्त करते हैं। 'गम्भीरः-ज्ञान तथा ऐश्वर्य प्रभृति बल से अति गहन। 'वृष वाहनः' नन्दीश्वर नामक वृष को वाहन रखने वाले।४६। 'इष्ट'-अतिशयानन्द स्वरूप होने के कारण प्रिय किम्वा यज्ञादि के द्वारा समर्चित। 'विशिष्टः'-सबसे उत्कृष्ट (३६०)। विष्टेष्टः' महापण्डितों को प्रिय लगने वाले किम्वा शिष्ट पुरुषों के द्वारा पूजित। 'शलमः' सर्वत्र गमन करने वाले। 'शरमः शरभ अवतार धारण करने वाली 'धनुः-पिनाक धनुष के धारण कर्त्ता। 'तीर्थरूपः सर्व विद्याओं के स्वरूप से युक्त। 'तीर्थनामाः' सांसारिक जीवों को सद्गति करने के लिये भागीरथी आदि के लाने वाले। 'तीर्थदृश्य'-गङ्गादि तीर्थोंके द्वारा भी दुष्प्राप्य होने वाले। स्तुतः' अर्थात ब्रह्मादि देवों के द्वारा स्तुति तथा वन्दना किये हुए। अथर्व पुरुषार्थों के प्रदान करने वाले।४७। 'अपांनिधिः-समुद्र के स्वरूप वाले। 'अधिष्ठानम् उपादान कारण से समस्त प्राणियों के आधार। विजयः ज्ञान-वैराग्य आदि तथा ऐश्वर्य प्रभृति के गुणों के द्वारा संसार पर विजय प्राप्त करने वाले। जयकाल वित्'-दैत्य तथा असुरों का नाश और देवों के विजय के समय का ज्ञान रखने वाले। 'प्रतिष्ठित': अर्थात् अपनी महिमा में स्थित। यहाँ स भगवः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति स्वे महिम्नि इत्यादि श्रुत वचनसे उसके प्रतिष्ठित होने की पुष्टि होती है।

प्रमाणयज्ञः'-प्रत्यक्षादि प्रमाणों तथा समस्त प्राणियों के प्रमा के ज्ञाता 'हिरण्य कवच' हेम के निमित्त कवच को धारण करने वाले।'नमोहिरण्य बाहवे हिरण्य वर्णायहिरण्य रूपाये,इत्यादि श्रुतिके मणवचन से उक्त नाम के अर्थ का वर्णन होता है। 'हरिः'-समस्त पापों को हरण करने वाले।४८

विमोचनः सुरगणो विद्यशो बिन्दुसंश्रयः।
वातारूपोऽमलोन्मायी विकर्त्ता गहनो गुहः।४९
कारणं कारणं कर्त्ता सर्वबन्ध विमोचनः।
व्यवसायो व्यवस्थानः स्थानदो जगदादिजः।५०
गरुदो ललितो भेदो नवात्मात्मनि संस्थितः।
वीरेश्वरो वीरभद्रो वीरासनविधिर्गुरुः।५१

विमोचनः-आध्यात्मिकादि तीनों प्रकार के नाशक । 'सुरगणः-सर्व देव स्वरूप 'विद्येशः'-सम्पूर्ण विद्याओं के प्रवर्तक स्वामी । (३८०) । 'विन्दु-संश्रयः' प्रणव (ओंकार) के आत्मभूत । 'बालरूप' ब्रह्मा के ललाट से समुत्पन्न बालक के स्वरूप में स्थित । 'बलोमत्तः-बालक द्वारा समस्त शत्रुओंके नाशक । 'विकर्त्ताः'-विचित्र भवन के करने वाले । 'गहन'-अ-पूर्व एवं अद्भुत सामर्थ्य रखने वाले ऐसे गम्भीर जिसे कोई भी जान नहीं सकता । 'गुहः' अपनी प्रवल मायाके द्वारा अपने सत्यस्वरूप छिपाने वाले 'कारणम्'-इस जगत् के उद्भव में सहायक स्वरूप । 'कारणम्'-सृष्टि रचना में उपादान तथा निमित्त कारण स्वरूप । 'कर्त्ता-परम स्वतन्त्र अर्थात सभी कुछ करने वाले ।

'सर्वबन्धविमोचनः-अपने ज्ञान के प्रदान से अविद्याकृत समस्त बन्धनों से विमुक्त कर देने वाले । 'व्यवसायः-' सत्-चित् और आनन्द के स्वरूप में स्थित । 'व्यवस्थानः' वर्णों और आश्रमोंके विभाग कर व्यवस्था करने वाले । 'स्थानदः'-सबको उनके कर्मों के अनुसार स्थान के दाता । 'जगदादिजः' हिरण्यगर्भ के स्वरूप से इस जगत् के आदि में होने वाले । ।५०। 'गुरुदः'-शत्रुओं को अधिक रूप से खण्डन करने वाले । 'ललितः'-सर्वाधिक सुन्दर स्वरूप वाले । 'भेदः'-अद्वैत स्वरूप मे स्थित । 'भावा-त्मात्मानि संस्थितः'-प्राणियों के पाँच भूतों द्वारा बने हुए शरीर और जीवात्मामें अन्तर्यामी रूप से स्थित । 'वीरेश्वरः' शूरों के पति । 'वीरभ' वीरभद्र नाम वाले एक शिवके गण के स्वरूप में स्थित । (४००) यहाँ चतुर्थ शतक नमों का समाप्त होता है ।)'वीरासन निधिः-वीरों के आसन में विधान वाले विराट्'-समस्त जगत के स्वरूप में संस्थित ।।५१।।

वीरचूडामणिर्वेत्ता चिदानन्दो नन्दीश्वरः ।
आज्ञाधरस्त्रिशली च शिपिविष्टः शिवालयः ।५२
बालखिल्यो महावीरस्तिग्मांशुबंधिरः खगः ।
अभिरामः सुशरणः सुब्रह्मण्यः सुधापति ।५३
मघवा कौशिको गोमान्विरामः सर्वसाधनः ।
ललाटाक्षो विश्वदेहः सारः संसारचक्र भृत् ।५४

वीर चूड़ामणि:—अर्थात् वीरों के शिरोभूषण। वेत्ता—सब के ज्ञाता। 'तीव्रानन्द:'—अत्यन्त आनन्द स्वरूप। दाज्ञाधारा:' मस्तक पर भागीरथ के धारण करने वाले समुद्र स्वरूप। दाज्ञाधार:'—सन्तति स्वरूप जगत के द्वारा अविच्छिन्न रूप से आज्ञा के आश्रय। 'त्रिसूली'—त्रिशूल आयुध के धारक। 'शिवविष्ट:'—यज्ञ में विष्णु के रूप से विराजमान। 'यज्ञो वै विष्णु: पशव: शिपिर्यज्ञ एवं पशुषु प्रविश्य निष्ठति' इत्यादि श्रुति का वचन प्रमाण है अथवा रश्मिमें रहने वाले। 'शिवालय:' –कल्याणयुक्त मंगलमय स्थानों में निवास करने वाले।४६०।५२।

'वालखिल्य'- बालखिल्य नामक ऋषि के स्वरूप में स्थित ' महाचापे:' विदेह राजा जनक के द्वारा अर्थित धनुष वाले। 'तिग्मांशु'—सूर्य स्वरूप में स्थित। 'वधिर:'— श्रोत्रेन्द्रिय से रहित। 'खग-अन्तरिक्ष में विचरण करने वाले। 'अभिराम:' समस्त योगियों के समूह रमण का आधार। 'सुशरण:'-पीड़ित प्राणियों की शरण (रक्षक) रूप में हो कर त्रास देने वाले 'सुब्रह्मण्य:'-समस्त वेद जाति तथा ज्ञान के ज्ञाताओं के हित-सम्पादक। 'सुधापति:'-अमृत के स्वामी।५३। 'मघवान कौशिक' इन्द्र के स्वरूप में विराजमान। यहाँ ये दोनों एक ही नाम के द्योतक हैं (४२०) 'गोमान्' - संसार रूपी गौ वाले। इनकी कथा लिंग पुराण मे वर्णित है। 'विराम:'—प्राणियों के अवसान का आधार। 'सर्व साधन:'–समस्त पुरुषार्थों के देने वाले साधनयुक्त। 'ललाटाक्ष:'-मस्तक में तृतीय नेत्र धारण करने वाले। 'विश्वदेह:'- जगत् स्वरूपी देह वाले। सार:'-महाप्रलय काल में भी स्थित रहने वाले। संसार चक्र भृत्'—सम्पूर्ण जगत् के प्रपञ्चरूपी चक्र को धारण करने वाले ॥५४॥

अमोघदण्डो मध्यस्थो हरिणो ब्रह्मवर्चस:।
परमार्थ: परमाय संचयो व्याघ्रकोमल: ।५५

रुचिर्बहुरुचिर्वै द्यो वाचस्पतिरहस्पति:।
रविर्विरोचन: स्कन्द: शास्ता वैवस्वतो यम: ।५६

युक्तिरुन्नतकीर्तिश्च सानुराग: पुरञ्जन:।
कैलासाधिपति: कान्त: सविता रविलोचन: ।५७

'अमोघ दण्डः'—सफल दण्ड वाले। 'मध्यस्थः'—न्याय में स्थित रहते हुए पक्षपात से रहित रहने वाले। 'हिरण्यः'—सुवर्ण अथवा तेज के स्वरूप में विराजमान। 'ब्रह्म वर्चस्वी' - ब्रह्म अथवा ब्रह्म की दीप्ति का प्रकाश वाले। परमार्थ —मोक्ष स्वरूप अर्थ की सिद्धि करने वाले। 'परोमायी' – उत्कृष्ट माया वाले। यहाँ दोनों एक ही हैं।

'शम्बरः'-परमोत्कृष्ट कल्याण के दाता किम्बा जल के स्वरूप में स्थित। व्याघ्र लोचनः' अर्थात् बाघ के समान दुष्टों पर क्रूर नेत्र वाले ।५५। रुचिः'-दीप्ति स्वरूप वाले। 'विरंचिः' ब्रह्माके स्वरूप में विराजमान 'स्वन्धुः' स्वर्ग लोक में बन्धु भाव के रूप में फल प्रदान करने वाले। 'वाचस्पतिः'-समस्त विद्याओं के स्वामी 'ईशान्ः सर्व विद्यानाम्' इत्यादि श्रुति वचन उनके स्वामी होने का समर्थन करता है। 'अहर्पतिः' सूर्य स्वरूप में स्थित। (४००) 'रविः'-रसों को किरणों द्वारा ग्रहण करने वाले। विरोचनः'-अग्नि अथवा सूर्य स्वरूप में स्थित। 'स्कन्दः' प्रभृत के रूप में सब में और वायुके रूप में शोषणकर्त्ता। शास्ता वैवस्वतो मुनः' सब पर शासन करने के लिये सूर्यपुत्र धर्मराज के तुल्य। यहाँ तीनों शब्दों के द्वारा एक ही को बतलाया जाता है। 'युक्तिरुन्नतकीर्तिः'-आठ अंगों वाले योग से युक्त किम्बा न्याय स्वरूप महती कीर्ति वाले। यहाँ दोनों एक है। 'सानुराग':-भक्तों पर प्रीति रखने वाले। 'परञ्जयः'— शत्रुओं को युद्ध में जीतने वाले। कैलासाधिपतिः'-कैलास गिर के स्वामी। 'कान्तः'-परम सुन्दर। 'सविता'-समस्त जगत् को प्रसूत करने (४५० 'रविलोचनः'—सूर्य रूपी नेत्रों को धारण करने वाले। 'अग्नि मूर्धा चक्षुपी चन्द्रसूर्योः' इत्यादि श्रुति का समर्थन यहाँ वचग है ।।५७

विश्वोत्तमो वीतभयो विश्वभर्ताः।
नित्यो नियत कल्याणःपुण्यश्रवण कीर्ततः ।५८
दूरश्रवो विश्वसहो ध्येय दुःस्वप्ननाशनः।
उत्तर्णोटष्कृतिहा विज्ञोयो दुःसहो धवः ।५९
अनादिर्भूर्वोलक्ष्मीःकिरीटी त्रिदशाधिपः।
विश्वगोप्ता विश्वकर्ता सुवीरो रुचिरांगदः ।६६

विश्वोत्तमः अतिशय श्रेष्ठता से युक्त। वीतभयः'—संसार के समस्त भय से शून्य। 'विश्वभर्त्ता' समस्त विश्व के भरण-पोषण करने वाले। 'अनिवारितः' कर्मफल देने में किसी के भी द्वारा न निवारण करने के योग्य। 'नित्यः'-उत्पत्ति एवं विनाश से रहित सर्वदा एक रस रहने वाले। 'नियत कल्याणः'— निश्चित कल्याण से युक्त। 'पुण्य श्रवण 'कीर्तनः'-परम पावन श्रवण और कीर्तन वाले ।।५८।। 'दूरश्रवाः'-सुदूर देश में भी श्रवण करने वाले। 'विश्वसहः'— संसार के सहने वाले (४६०)। 'ध्येदः'—ध्यान तथा विचारने योग्य। 'दुस्वप्न नाशनः' —बुरे दिखलाई देने वाले स्वप्नों के नाशक। 'उत्तारणः'— संसार से पार कर देने वाले। 'दुष्कृतिहा'-दुष्टों के नाश करने वाले। 'विक्षेपः' विशेष रूप से जानने के योग्य। दुःसहः'—दुख के साथ भी असुरादि के द्वारा सहन न करने योग्य। 'अभवः'— जन्म से रहित ।।५६।। 'अनादिः'—सब चराचर के कारण होने आदि से रहित। 'भूर्भुवों लक्ष्मीः'-भूर्भुवस्वरूपःस्वरूपः लोक की लक्ष्मीकी आत्म-विद्यावाले किरीटी —किरीट नामक शिरोभूषण धारण करने वाले। (४४)। 'त्रिदशाधिपः' देवगण के स्वामी। 'विश्वगोप्ता'-समस्त जगत के रक्षक। विश्व कर्त्ता'—इस जगत के उत्पन्न करने वाले। 'सुवीरः'— अनेक तरह की गति वाले। रुचिराँगदः' सुन्दर बाजूबन्द धारण करने वाले ।।६०।

जननो जनजन्मादिः प्रीतिमान्नीतिमान्ध्रुवः।
वसिष्टः कश्यपो भानुर्भीमो भीमपराक्रमः।६१
प्रणव सत्यथाचारी महोकोशी महाधनः।
जन्माधिपो मतादेव. शकलागमपारगः।६२
तत्वं तत्वविदेधात्मा विभूर्विष्णुविभूषणः।
ऋषिर्ब्राह्मण ऐश्वर्यं जन्ममृत्युजरातिगः।६३

'जनन'-समस्त प्राणियों की उत्पत्ति करने वाले। जन जन्मादिः'—समस्त प्राणियों के जन्म के आदि कारण। 'प्रीतिमान्-नित्यही प्रीतिसे पूर्ण 'नीतिमान'—सर्वदा नीति से युक्त। 'ध्रुवः'-सबकेस्वामी ।४८०।वसिष्ठः'-प्रलय के समान में भी विद्यमान। कश्यपः'-नामक ऋषि के स्वरूप में अवस्थित। 'भानुः'प्रकाशसे युक्त। 'तमेव भान्तमनु भाति सर्वम'-इत्यादि

श्रुति का वचन भी यहाँ इसका प्रतिपादक है। 'भीमः'—दुष्टों के लिये भय कारणस्वरूप। 'भीमपराक्रमः– असुरादि दुरात्माओं को भययुक्त पराक्रम वाले ।।६१।। 'प्रणवः'—ओंकार स्वरूप। शिव अथर्वशीर्ष में लिखा है—'अथ कस्मादुच्यते प्रणवो यस्मादुच्चार्यमाण एवर्चो यजुंषि सामान्यथर्वांगिरसश्च यज्ञे ब्रह्म ब्राह्मणेभ्यः प्रणमयति तस्मादुच्यते प्रणवः'। प्रणवः'। अर्थात् ओङ्कार कणव क्यों कहा जाता है—वह प्रश्न पूर्वक उत्तर में कहते हैं कि जिससे ऋचाओं यजुर्वेद के तथा सामानि अथर्वाङ्गिरसम् के मन्त्रों के उच्चार्यमाण होने पर यज्ञ में ब्रह्म-ब्राह्मणों के लिये प्रणाम करवाता है अतएव इसे 'प्रणव' कहते हैं।

'सत्याद्याचारः'-अर्थात् सन्मार्ग में गमन करने वाले। 'महाकोशः'—अन्नमय प्रभृति महाकोशों से युक्त। 'महाधनः'—असीम धनैश्वर्य वाले। 'जन्माधिपः'— जन्म और उत्पत्ति के स्वामी। (४००)। 'महादेवः'—समस्त भावों को त्यागते हुए आत्म ज्ञान के ही ऐश्वर्य में पहुँचनेसे महान देव हैं। सकलागमपारगः'—सम्पूर्ण वेदों के अन्त तक ज्ञान रखने वाले ।।६१।। 'तत्वमू— ब्रह्म के स्वरूप में स्थित। तत्ववित्'—ब्रह्म के स्वरूप को ठीक-ठीक जानने वाले। 'एकात्मा'–एक ही आत्मा स्वरूप। 'आत्मा' वा इदम् एकाग्र आसीत्'—इत्यादि श्रुदि वचन उक्तार्थ का पूर्ण पोषक है। 'विभुः'—सबमें व्यापक। 'विश्वभूषणः'— जगत् के भूषण अथवा जगत् के आभरण वाले। 'ऋषिः'—इन्द्रियों पर से ज्ञान रखने वाले अर्थात् जो अगोचर है उसे भी जानने वाले। यहाँ विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः'—इत्यादि वेद वाक्य को प्रमाणित करता है। 'ब्राह्मणः'—उत्तर वर्ण स्वरूप। ऐश्वर्य जन्म मृत्यु जरातिगः'-अपने ऐश्वर्य से जन्म प्रभृति षट् विकारों का अतिक्रमण करने वाले शिव हैं। (५००)।

(यह पाँचवां शतक समाप्त हो गया) ।।६३।।

पञ्चतत्व समुत्पत्तिर्विश्वेशो विमलोदयः।
अनाद्यन्तो ह्यात्मयोनिर्वत्सलो भूतलोकधृक् ।६४
गायत्रीवल्लभः पाशर्विश्वावासः प्रभाकरः।
शिशुर्गिरिरतः सम्राट् सुषेणः सुरशत्रुहा ।६५
अनेमिरिष्टनेमिश्च मुकुन्दो विगतज्वरः।
स्वयंज्योतिर्महाज्योतिस्तनुज्योतिरचंचलः ।६६

'पञ्चयज्ञ समुत्पत्ति-'-देवादि पञ्च यज्ञों की उत्पत्ति करने वाले। 'विश्वेश:'–समस्त विश्व के स्वामी। 'विमलोदय:' समस्त मंगलों के उदय करने वाले। 'आत्मयोनि:'-सब चराचर के कारण स्वरूप। अनाद्यान्त:'–आदि तथा अन्त दोनों से रहित। वत्सल:'–सब पर प्यार करने वाले अर्थात् प्रिय। 'भक्तलोकधृक्-भक्तजनों के धारण करने वाले। ६४ 'गायत्री वल्लभ:'–शिव गायत्री रूपिणी प्रिया वाले। प्रांशु:'–सुषुम्ना प्रभृति किरणों के प्रकृष्ट स्वरूप से युक्त। 'विश्वावास'–संसार में व्याप्त (५१०)।

'प्रभाकर:'–अत्यन्त दीप्ति का प्रकाश करने वाले। 'शिशु:'–बालक के स्वरूप में स्थित रहने वाले। इस सम्बन्ध में एक कथा लिंग पुराण में पार्वती स्वयम्वर के प्रकरण में लिखित है। 'गिरिरत:'—कैलास पर्वत के निवास को प्रिय समझने वाले। 'सम्राट्'–सबके अधिपति प्रभु किम्बा नियन्ता। 'सुषेण: सुरशत्रुहा'–गणों की एक विशाल एवं सुन्दर सेना के स्वामी और देव शत्रुओं के सहारक। यह दोनों एक ही हैं। 'अमोघोऽरिष्टनेमि:'-स्तुति करने पर प्रसन्न होकर सब कुछ फल देने वाले। 'सत्यसंकल्प:'-यह श्रुति इसको प्रमाणित दान करने वाले स्वरूप में स्थित। ये दोनों शब्द एक ही हैं। 'कुमुद:-' भार को हटा कर पृथ्वी को परम प्रसन्नता देने वाले। यहाँ मुकुन्दो मुक्तिद:'-ऐसा पाठान्तर मिलता है।

'विगतज्वर:'-समस्त तापों के सन्ताप से पृथक् रहने वाले। स्वय ज्योतिस्तनु ज्योति:'-स्वप्रकाशात्मक सूक्ष्म तेज के स्वरूप वाले शिव हैं। यहाँ 'नीवार' शूकवत्तन्वी पीता भावत्यणूपमा। तस्या: शिखाया मध्ये च परमात्या व्यवस्थित:'-इत्यादि श्रुति वचन से इस उक्तार्थ की पुष्टि स्पष्ट है। ये दोनों एक ही हैं। 'आत्मज्योति:' –आत्मास्वरूप ज्योति वाले। 'येन सूर्य: तपति तेजसद्ध:'-इत्यादि श्रुति के वचन से यह समर्थितार्थ है। (५२०)। 'अचञ्चल:'-स्थित स्वरूप वाले। 'वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठति'—इत्यादि श्रुति वाक्य है जिससे स्थिरता की पुष्टि हो जाती है ॥६५।६६॥

पिंगल: कपिलश्मश्रुर्भाकनेत्रस्त्रयीतनु:।
ज्ञानस्कन्धा महानोतिविश्वोत्पत्तिरुपप्लव.।६७

भगो विवस्वानादित्यो गतपारो बृहस्पतिः ।
कल्याणगुणनामा च पापहा पुण्यदर्शनः ।६८
उदारकीर्त्तिरुद्योगो सद्योगी सदतत्त्वपः ।
'नक्षत्रमाली नाकेशः' स्वाधिष्ठानः षडाश्रय ।६९

पिंगलः'-बाघ के चर्माम्बर धारण करने के कारण पिंगल वर्ण वाले हैं । 'कपिलश्मश्रु:-पिङ्गल वर्ण की दाढ़ी-मूँछ रखने वाले । 'भाल नेत्र:-मस्तक में तृतीय नेत्र रखने वाले । 'त्रयी तनुः'—वेदमय शरीर के धारी । 'ज्ञान स्कन्दो महानीतिः अर्थात् ज्ञान के दान द्वारा भक्तों को मोक्षदाता और संसार रूपी समुद्र के शोषक । इस जगत् स्वरूप यन्त्र की निर्वाह साधन करने वाली नीति रखने वाले प्रभु शिव हैं । 'विश्वोत्पत्तिः' इस समस्त विश्व को उत्पन्न करने वाले । उपप्लवः—दुष्टों को पीड़ित करने वाले ।

'भगोविवस्वानादित्यः'—भग-विवस्वान् और आदि देवों के स्वरूप रखने वाले । यहाँ ये तीनों शब्दों के द्वारा एक ही शिव का नाम होता है । योगपारः'-योग के सांग रचने से सम्पूर्णता वाले । 'योगाधारः'-अर्थात् योग के पूर्ण आश्रय ऐसा ही पाठान्तर होता है ।। (५३०) ।। 'दिवस्पतिः'—स्वर्ग के स्वामी इन्द्र के स्वरूप वाले । 'कल्याण गुणनामा शिव शम्भु आदि मंगल वाचक नामों वाले । 'पापहा'—भक्तों के पापों का नाश करने वाले । 'पुण्य दर्शनः'—परम पावन पुण्यस्वरूप दर्शन वाले ।।६७।६८ ।

'उदार कीर्त्ति'—वन्दनीय सुन्दर कीर्त्ति वाले । उद्योगी'—जगत् की सृष्टि करने के कार्य में अतिशय उद्योग करने वाली । 'सद्योगी' सर्वदा सुन्दर योग के साधन में परायण । 'सदसन्मयः'-भले बुरे इस जगत् के स्वरूप में अवस्थित । 'नक्षत्र माली'—आकाश के स्वरूप में विराजमान होकर नक्षत्र रूपी मालाओं के धारण करने वाले । 'नाकेशः-स्वर्ग के अधिपति । कहीं 'लोकेश'—ऐसा भी पाठान्तर मिलता है (५४०) 'स्वाधिष्ठान षडाश्रयः'-निज स्वरूप में लय स्थान वालों के आधारभूत ।६९

पवित्र पापनाशश्च मणिपूरो नभोगतिः ।
हृत्पुण्डरीकमासीनः शक्रः शान्तिर्वृषाकपिः ७०

उष्णो गृहपतिः कृष्णः समर्थोऽनर्थनाशनः ।
अधर्मशत्रुरज्ञेयः पुरुहूतः पुरुश्रुतः ।७१
ब्रह्मगर्भो बृहद्गर्भो धर्मधेनुर्धनागमः ।
जगद्धितैषी सुगतः कुमारः कुशलागमः ।७२

पवित्रः पापहारी'—परम पुनीत और भक्तों के पापोंके कारण करने वाले । 'मणिपूर'-रत्नादि के द्वारा भक्तों के मनोरथों को पूर्ण करने वाले 'नभोगति' आकाश में विचरण करने वाले । 'हृत्यपुण्डरीकमासीन -योगिजनों के हृदय रूपी कमल में सर्वदा निवास करने वाले । 'शक्र' इन्द्र के स्वरूप में स्थित रहने वाले । 'शांतः'-सर्वदा शांतिमय स्वरूप वाले । वृषाकपिः'-धर्म की स्थिरता रखने के कारणभूत ।७०। 'उष्ण' हलाहल महा विष के पान करने के कारण उष्णता से पूर्ण । 'गृहपतिः-सब गृहों के पालन करने वाले । (५५०) । 'कृष्णः'-काले कंठ वाले अथवा कृष्ण गोचर स्वरूप । 'समर्थः'-समस्त कार्यों के करने की सामर्थ्य वाले । अनर्थ नाशनः-संसार के समस्त दुःखों का नाश करने वाले ।

'अधर्म शत्रुः' अधर्म करने में तत्पर पापियों के नाशक किम्वा दुष्टों पर शासन करने वाले । 'अज्ञेय'-योगिजन के द्वारा भी न जानने योग्य किम्वा अगम्य । पुरुहूतः'-बहुतों के द्वारा उपासना में रहने वाले । कहीं 'पुरुहूत पुरुष्टुतः' ऐसा भी पाठान्तर है । अर्थात बहुत से गुरुओं के द्वारा श्रवण होने वाले । यहाँ ये दोनों एक ही नाम बताने वाले हैं ।७१। 'ब्रह्मगर्भ'-अपने गर्भ में वेदों की स्थिति रखने वाले । वृहद्गर्भः-इस महान् ब्रह्माण्ड को गर्भ में धारण करने वाले । 'धमधेनुः'धर्मोत्पत्ति के स्थान स्वरूप । 'धनागमः'-समस्त प्रकार के धन-वैभव के आगम करने वाले । (५६०) । 'जगद्धितैषी'-इस समस्त जगती तलके कल्याण करनेकी कामना रखने वाले । 'सुगतः'-संसार का मोह न करने के कारण भगवान बुद्ध के स्वरूपमें अवतीर्ण होने वाले । कुमार —बाल स्वरूप में स्थित किम्वा अपने सम्मुख कामदेव को पराजित कर देने वाले । 'कुशकागमः' — अर्थात् समस्त कल्याणों के प्रदान करने वाले ।।७२

हिरण्यवर्णो ज्योतिष्मान्नानाभूतरतो ध्वनिः ।
आरागो नयनाध्यक्षो विश्वामित्रो धनेश्वरः ॥७३
ब्रह्मज्योतिर्वसुधामा महाज्योतिरनुत्तमः ।
मातामहो मातरिश्वानभस्वान्नागहारधृक् ॥७४
पुलस्त्यः पुलहोऽगस्त्यो जातूकर्ण्यः पराशरः ।
निराबरणनिर्वारो वैरञ्च्यो विष्टरश्रवाः ॥७५

'हिरण्य वर्णः'—स्वर्ण के समान कान्ति वाले । नमो हिरण्य वर्णा-श्रुतेः' ये दोनों एक ही हैं । 'नानाभूत रतः'—अर्थात् भूत पिशाचादि में रमणानन्द लेने वाले । 'ध्वनिः'- नारद स्वरूप वेषधारी । 'अरागः'—राग से रहित । 'नयनाध्यक्षः'—समस्त लोकों के नेत्रों वर्तमान रहने के कारण चक्षुओं के प्रवर्त्तन कराने वाले । 'विश्वामित्रः'—अर्थात् विश्वामित्र नाम वाले गाधितनय के स्वरूपमें प्रवस्थित ऋषि रूप वाले ।(५००) 'धनेश्वरः' - कुबेर के स्वरूप में विराजमान । ब्रह्म-ज्योतिः'—सबको प्रकार देने वाले ब्रह्म-स्वरूप । वसुधामा'—धन रूपी तेज वाले । 'महा-ज्योतिरनुत्तम'—अति महान् तेज वाले होने के कारण सबसे परमोत्कृष्ट । ये दोनों एक हैं । 'मातामहः'—जगत् की माता के भी पिता । 'मातरिश्वान्' भास्वान् वायु के स्वरूप में स्थित । 'नागहार धृक्—सर्पों के हारों को धारण करने वाले ॥७३-७४॥ 'पुलस्त्य नामक ऋषि के स्वरूप में स्थित रहने वाले । 'पुलहः'—पुलह नामधारी ऋषि के स्वरूप में स्थित । 'अगस्त्यः'—अर्थात् अगस्त्य नाम वाले ऋषि के रूप में स्थित । (५८०) 'जातूकर्ण्यः'—जातूकर्ण्य ऋषि के स्वरूप में स्थित । 'पराशरः'—पराशर के स्वरूप में रहने वाले । 'निराबरण निर्वादः'—अर्थात् माया के बन्धन से परे होने के कारण वारण करने में अशक्य । 'निवारण विज्ञानः' कहीं ऐसा भी पाठान्तर होता है । 'वैरंच्यः'—अर्थात् ब्रह्मा के स्वरूप में प्रादुर्भूत । विष्टरश्रवाः'—विष्णु के स्वरूप में स्थित ॥७५॥

आत्मभूरनिरुद्धोऽत्रिर्ज्ञानमूर्तिर्महायशाः ।
लोकनीराग्रणीर्वीरश्चन्द्रः सत्यपराक्रमः ॥७६
व्यालकल्पो महाकल्पः कल्पवृक्षः कलाधरः ।
अलकरिष्णुरचलो रोचिष्णर्विक्रमोन्नतः ॥७७

आयुः शब्दपतिर्वाग्मी प्लवनः शिखिसारथिः।
असस्पृष्टोऽतिथिः शत्रुः प्रमाथी पादपासनः ॥७८

आत्मभूः'— स्वयं प्रकाण स्वरूप। 'अनिरुद्धः'-किसी भी आदुर्भाव भी कभी किसी के द्वारा निरुद्ध न होने वाले। 'अत्रि' अत्रि नामक ऋषि के स्वरूप में स्थित। 'ज्ञान मूर्त्तिः'-ज्ञान के स्वरूप वाले। यहाँ 'सत्यज्ञान मनन्त ब्रह्म' इत्यादि श्रुति वाक्य इसका पोषक है। 'महायशाः'—अतुल कीर्तिधारी। (५९० 'लोक वीराग्रणीः' लोक के वीर विष्णु आदि से भी परम श्रेष्ठ एवं प्रमुख। 'वीरः'—महान् शूर। 'चण्ड'—दुष्ट जीवों पर अत्यन्त क्रोध करने वाले। 'सत्य पराक्रम' सफल शक्ति के धारण करने वाले।७६। 'व्याल कल्प'—महाविशधर सर्पों के भूषणों से विभूषित। 'महाकल्पः'—अत्यन्त सामर्थ्य वाले। कल्पवृक्षः'—भक्तोंके मनकी कामनाओं को पूर्ण करने वाले। 'कलाधरः'—भक्तों के मन प्रसन्न करने के कारण चन्द्र के स्वरूप वाले। 'अलङ्कविष्णु'—अलंकृत करने के कारण विशेष कान्ति वाले। 'अचलः'—स्थिर स्वरूप वाले (६००) यहाँ भगवान् शिवके नामों का छठवाँ शतक समाप्त होगया हैं।) 'रोचिष्णु'—अत्यन्त दीप्ति वाले। 'विक्रमोन्नतः'—नाना प्रकारके पराक्रमसे युक्त होने के कारण सबसे बड़े हैं।७७। 'आयुः शब्दपतिः-अर्थात् समस्त प्राणिप्रों की आयु और वेदकी वाणीके नियन्त्रण करने वाले। 'वाग्मीप्लवनः'—अर्थात् बहुत शीघ्रताके साथ भक्तोंके सम्पूर्ण मनोरथों को पूर्ण करने वाले। यहाँ ये दोनों एक ही को वताते हैं। 'शिखिसारथिः'-अग्नि की सहायता वाले। 'अससृष्ट'— अर्थात् मायाके सब तरहके संसर्गसे शून्य। 'अथितिः'-अपने भक्तजन की अर्चा अतिथि के स्वरूप से ग्रहण करने वाले। 'शत्रु प्रमाथि'—असुरोंको सेना के विलोडन करने में पूरी तरह समर्थ। 'पादपासनः'—वृक्ष के समीप अपना आसन जमाकर बैठने वाले।७७।

वसुश्रवाः कव्यवाहः प्रतप्तो विश्वभोजनः।
जप्यो जरादिशमनो लोहिश्च तनूनपात् ॥७९
बृहदश्वो नभोयोनिः सुप्रतीकस्तमिस्रहा।

निदाघस्तपनो मेघभक्षः परपुरञ्जयः ॥८०

सुखानिलः सुनिष्पन्नः सुरभिः शिशरात्मकः ।

वसन्तो माधवो ग्रीष्मो नभस्यो बीजवाहना ॥८१

'वसुश्रवाः'— मधुर श्रवणसे युक्त । (६१०) 'हृव्यवाहः' देवगणों के समीप हरिको प्राप्त कराने वाले अग्नि के स्वरूप में समवस्थित । 'प्रतप्तः— उग्र तपस्या करने वाले । 'विश्वभोजनः'—समस्त विश्व का पोषण करने वाले । 'जप्य'—जप तथा उपासना करनेके योग्य । 'जरादि शमनः' वाधक्य-आदिकी पीड़ाको शान्त करने वाले । 'लोहितात्मा तनूनपात्'— भक्तों के शरीरको न गिराने वाले रक्त वर्णसे रक्त अग्नि के स्वरूपमें स्थित । यह ये दोनों शब्द एक ही को बताने वाले हैं ।७९।

'वृहदश्व'—बड़े अश्वोंसे युक्त वाले । 'निभोयोनिः'— सभी के कारण होने के कारण आकाश के भी कारण हैं । 'सुप्रतीक'—सुरम्य अवयवों से संयुक्त । 'तमिस्र हो'—अज्ञानके अन्धकारको दूर भगा देने वाले । (६२०) 'निदाघस्तपन'—ग्रीष्मके और सूर्यके स्वरूपमें स्थित । ये दोनों एकही हैं । 'मेघ'—मेघके स्वरूपमें विद्यमान रहने वाले । 'स्वक्ष'—परम सुन्दर नेत्रों वाले । 'पर पुरकजय'—शत्रुओंके पुरको जय करने वाले ।८०। 'सुखानिल' सुखप्रद वायुके समुत्पन्न करने वाले । 'सुनिष्पन्न'—इस परम सुन्दर जगत् को उत्पन्न करने वाले । 'सुरभिः शिशिरात्मकः'—अर्थात् अत्यन्त प्रसन्नता के प्रदान करने वाले शिशिर ऋतुके स्वरूप में स्थित । यहाँ दोनों एक ही हैं । 'वसन्तो माधव'—मकरन्दसे युक्त बसन्त ऋतु स्वरूप में स्थिर रहने वाले । 'ग्रीष्म' समस्त रसों के शोषण करने वाले ग्रीष्म ऋतुके स्वरूप में अवस्थित । 'नभस्य'—श्रावण मास में होने वाली वर्षा ऋतु के रूप में संस्थित । (६३०) 'बीज वाहन'—धान्यकी प्राप्ति कराने वाले शरद और हेमन्त ऋतुओं के स्वरूप में स्थित ।८१।

अङ्गिरागुरुरात्रेयो विमलो विश्वाहनः ।

पावनः पुरजिच्छक्रस्त्रैविद्यो नववारणः ॥८२

नोबुद्धिरहङ्कारः क्षेत्रज्ञः क्षेत्रपालकः ।

जमदग्निर्जलनिधिर्विगालो विश्वगालवः ॥८३

अघोरोऽनुत्तरो यज्ञः श्रेष्ठो निःश्रेयसप्रदः ।

शैलो गगनकुन्दाभो दानवारिररिन्दमः ॥८४

'अङ्गिराः'—अंगिरा नामक ऋषि के स्वरूप में स्थित रहने वाले । 'गुरुरात्रेयः'—दत्तात्रेय के स्वरूप में स्थित गुरु । यहाँ ये दोनों शब्द एक ही शिव के नाम को प्रकट करने वाले हैं । 'विमलः'—मल से रहित, परम शुद्ध । 'विश्व वाहनः'—सम्पूर्ण जगत् के निर्वहन करने वाले । 'पावनः'—पापों का नाश कर पवित्र बना देने वाले । 'सुमतिर्विद्वान्'—श्रेष्ठ बुद्धि वाले होने के कारण सभी कुछ के ज्ञाता । ये दोनों एक ही हैं । 'त्रैविद्यः'—ऋग्-यजु और साम—इन तीनों वेद विद्याओं के ज्ञाता 'नरवाहनः'—यक्षराज कुवेर के रूप में स्थित ॥८२॥ 'मनोवुद्धिः'—मन के सहित बुद्धि स्वरूप । (६४०) 'अहङ्कारः'—अहङ्कार नाम तत्व के रूप में स्थित रहने वाले । क्षेत्रज्ञः—लिङ्ग शरीर स्वरूप क्षेत्र के ज्ञाता । 'क्षेत्र पालकः'—सिद्ध स्थानों की रक्षा करने वाले । 'जमदग्निः'—जमदग्नि नाम वाले ऋषि के रूप में स्थित । 'बल निधिः'—समस्त शक्तियों के अधिष्ठान स्वरूप में स्थित । 'विगालः'—मोक्ष रूपी अमृत का विशेष रूप से श्रवण करने वाले । 'विश्वागालवः'—संसार में गालव नाम वाले ऋषि के स्वरूपमें स्थित ॥८३॥ 'अघोरः'—घोरता से रहित होकर अति अभयङ्कर । 'अनुत्तरः'—सबसे महान् अर्थात् जिनके आगे अन्य कोई भी बड़ा नहीं है । 'यज्ञः'—ज्योतिष्टोम प्रभृति यज्ञों के स्वरूप वाले । (६५०) 'श्रेयः'—कल्याण स्वरूप वाले । 'निःश्रेयसां पणः'—समस्त कल्याणों के मार्ग स्वरूप । 'शैलः'—शिलासे समुत्पन्न अर्थात् नर्मदा नदीमें लिंगात्मक । 'गगन कुन्दभिः'—गगन कुन्द के पुष्प के समान कान्ति वाले । 'दानवारिः—दैत्य दानवों के संहारक । 'अरिन्दमः'—अपने भक्तजन के शत्रुओं के नाशक ॥८४॥

रजनी जनकश्चारुनिःशल्यो लोकशल्यधृक् ।

चतुर्वेदश्चतुर्भावश्चतुरप्रियः ॥८५

आम्नायोऽथ समाम्नायस्तीर्थदेवः शिवालयः ।

बहुरूपो महारूपः सर्वरूपश्चराचरः ॥८६

न्यायनिर्मायिको नेयो न्यायगम्यो निरञ्जनः ।

सहस्रमूर्द्धा देवेन्द्रः सर्वशास्त्रप्रभंजनः ।।८७

'रजनी जनकः'—कालरात्रि रूपिणी शक्ति के उत्पादक। 'चारु-विशल्यः'—दुःखों से रहित रखने वाली सूक्ष्म बुद्धि से युक्त। 'लक कल्प धृक्—लोकों की सृष्टि पुष्टि आदि के धारण करने वाले। 'लोक शल्य-धृक्' ऐसा भी कहीं पाठान्तर प्राप्त होता है। यहाँ लोकों के दुःखों को हर्त्ता अर्थ होता है। 'चतुर्वेदः'—चारों वेदों का प्रादुर्भाव करने वाले। (६६०) 'चतुर्भावः' —धर्म, अर्थ आदि चारों भावों को प्रकट करने वाले 'चतुरश्चतुरः प्रियः'—परम प्रवीण और कुशलों से प्रेम करने वाले। यहाँ दोनों एक ही नाम के बोधक हैं ।।८५।। 'आम्नायः'—वेद स्वरूप। 'समाम्नायः'— वेद के भी प्रमाणभूत किया वह जिससे सबके प्रमाण स्वरूप वेद का प्राकट्य है अथवा वेद के तुल्य। 'तीर्थ देव शिवालयः'—तीर्थों में स्थित देवों के कल्याण के स्थान। 'बहुरूपः'—असंख्य स्वरूप वाले। 'महारूपः'—महान् एवं पूज्य स्वरूप के धारण करने वाले। 'सर्व रूपः'—जगत् की समस्त वस्तुओं के स्वरूप वाले। 'चराचरः'—अस्थित लक्ष्मी के आश्रय स्वरूप ।।८६।।

'न्याय निर्मायिकों न्यायी'—सदा सत्पक्ष के निर्वाह करने वाले और नीति के मुक्त। यहाँ दोनों एक ही नाम के बोधक हैं (६७०) 'याय गम्यः'—नीति से जानने के योग्य। 'निरन्तरः'—भेद से रहित। 'सहस्र-मूर्धा'—एक सहस्र अथवा असंख्य शिरों वाले। 'देवेन्द्रः'—समस्त देवगण के स्वामी। 'सर्व शस्त्र प्रभजनः'- समस्त प्रकार के शस्त्रों के जोड़ने वाले ।।८७।।

मुंडी विरूपो विकृतो दंडी दानी गुणोत्तमः ।

पिंगलाक्षो हि बह्वक्षो नीलग्रीवो निरामयः ।।८८

सहस्रबाहुः सर्वेशः शरण्यः सर्वलोकधृक् ।

पद्मासनः परंज्योतिः पारम्पर्यफलप्रदः ।।८९

पद्मगर्भो महागर्भो विश्वगर्भो विचक्षणः ।

परावरज्ञो वरदो वरेण्यश्च महास्वन ।।९०

'मुंडः' —लुंचित केशों वाले। 'विरूपः' सबसे श्रेष्ठ रूप-लावण्य

वाले। 'विक्रान्त' अत्यन्त महान् बल-विक्रम वाले। 'दण्डी'—काल दण्ड को धारण करने वाले। 'शान्त'—दमनशील अर्थात् इन्द्रियों को जीतने वाले। (६८०) 'गुणोत्तम'–श्रेष्ठ गुण-गण से युक्त। 'पिङ्गलाक्षः'–पिंगल वर्णके नेत्रों वाले। 'जनाध्यक्ष'—समस्त मनुष्योंके स्वामी। 'नीलग्रीव—हलाहल महाविषको कण्ठमें रख लेने के कारण नीले रंग की गर्दन वाले। 'निरामयः'—समस्त रोगोंसे शून्य अर्थात् परम स्वस्थ।८८। 'सहस्रबाहु'—एक सहस्र अथवा असंख्य भुजाओं वाले। 'सर्वेश'-सबके अधिपति। शरण्य' सबके रक्षक अर्थात् शरणागति में समागतके पालक। 'सर्वलोकधृक' भू प्रभृति समस्त लोकोंके धारणकर्त्ता। 'पद्मासन' विद्यासनसे विराजमान अथवा हृदय कमलमें पद्मासनसे स्थित। (६९०) 'पर ज्योति'–सर्वाधिक तेज वाले। 'परस्पर'—संसार दुःखसे अत्यन्त खिन्नोंको पार लगा देने वाले। 'परं फलम्'—परम पुरुषार्थ (मोक्षपद) स्वरूप।८९।

'पद्मगर्भ'—समस्त संसार को अपने गर्भमें रखने वाले अथवा हृदय कमलकी कणिका में उपासकोंके ध्यानके लिए विराजमान। 'महागर्भ'—महा वन्दनीय विराट् स्वरूप। 'विश्वगर्भ' सम्पूर्ण जगतको अपने गर्भ में रखने वाले। 'विचक्षणः'—विशेष रूपसे वेदादिके ज्ञान का कथन करने वाले। 'वरद'—भक्तोंको अभीष्ट वरदान देने वाले। 'वरेश'—वरदान के प्रदाताओंमें सर्वश्रेष्ठ (७००) (यहाँ श्री शिवके नामोंका यह सप्तम शतक समाप्त हो गया) 'महाबल' समस्त महा शक्तियोंके समुत्पादक।९०।

देवासुरगुरुर्देवो देवासुरनमस्कृतः।
देवासुर महामित्रो देवासुरमहेश्वरः ॥९०

देवासुरेश्वरो दिव्यो देव सुरमहाश्रयः।
देवदेवोऽनयोऽचिंत्यो देवतात्मासम्भवः ॥९२

सद्योनिर्ह्य सुरव्याघ्रो देवसिंहो दिवाकरः।
विबुधाग्रवरः श्रेष्ठः सर्वदेवोत्तमोत्तमः ॥९३

'देवासुर महाश्रय' देवगण और असुर समूह के महान् आधार

स्वरूप से स्थित। 'देवासुर गुरुर्देवः'—देव और असुरों को उपदेश देने वाले के भी ज्ञानदाता गुरु। यहां ये दोनों एक ही हैं। 'देवादिदेवः'—ब्रह्मादिक के भी उत्पन्न करने वाले देवों के आदि देव। 'देवाग्निः'—अग्नि को प्रकाशवान् करने वाले। 'देवाग्निसुखदः प्रभु'—देवगण को अग्नि के द्वारा सुख प्रदाता और स्वतन्त्र। ये दोनों एक ही शिव नाम को बताते हैं।६१। 'देवासुरेश्वरः'–देवगण और असुर वर्ग के स्वामी। 'दिव्यः'-अलौकिक उत्तम स्वरूप वाले। 'देवासुरमहेश्वरः'—देवगण और असुरों के परम पूजनीय प्रभु स्वरूप। 'देवदेवमयः'—देवताओं के पूज्य देव ब्रह्मादि स्वरूप वाले। (७१०)।

'अचिन्त्यः' ध्यान करने पर भी चिन्तन में न आने वाले। देव देवात्म सम्भवः'—ब्रह्मादिक देवों के भी देवता जिस ब्रह्मा से समस्त जीवों की सृष्टि हुई है।६१। 'सद्योनिः – संसार की समस्म वस्तुओं के कारण। 'असुर व्याघ्र'—असुरों के लिये बाघ के तुल्य भयंकर प्रहारक। 'देवसिंहः'—देवगण में सिंह के सदृश। दिवाकरः—दिन के बनाने वाले सूर्य स्वरूप। 'विबुधाग्रवर श्रेष्ठ है शिव उन ब्रह्मासे भी श्रेष्ठ हैं।६१।६३।

शिवज्ञानरतः श्रीमांछिखी श्रीपर्वतप्रियः।
वज्रहस्तः सिद्धखड्गो नरसिंहनिपातनः ॥६४
ब्रह्मचारी लोकचारी धर्मचारीं धनाधिपः।
नन्दीं नन्दीश्वरोऽनन्तो नग्नवृत्तिधरः शुचिः ॥६५
लिङ्गाध्यक्षः सुराध्यक्षो युगाध्यक्षो युगापहाँ।
स्वधामा स्वर्गतः स्वर्गी स्वर स्वरमय स्वन ॥६६

'शिवज्ञानरतः'—अपने स्वरूप के ज्ञान में सदा तत्पर। 'श्रीमाम्'—७१०। 'शिखि श्री पर्वत प्रियः'—चूड़ा-स्वर्ण सम्पत्ति से युक्त होने वाले। श्री पर्वत से प्रेम करने वाले। यह कथा धारी, कुमार कार्तिकेय के लिए 'ज्योतिर्लिंग माहात्म्य' में देखनी चाहिए 'वज्रहस्तः'-हाथ में वज्र-व धारी इन्द्र के स्वरूप में स्थित। 'सिद्धिखड्गी-समस्त सिद्धियों से समन्वित खड्ग को धारण करने वाले। 'नरसिंहनिपातनः'-शरभके रूपसे नृसिंहकाग

चूर-चूर करने वाले ।।९४।। 'ब्रह्मचारी'— वेद में शील सम्पन्न लोक-चारी' - भूप्रभृति लोकों में विचरणशील । 'धर्मचारी'— धर्म के कार्य करने वाले । घनाधिप:'—समस्त प्रकार के धन वैभवों के स्वामी । 'नन्दी'–नन्दीश्वर नाम वाले अपने ही गण के स्वरूप में स्थित । नन्दी'–स्वरूप नाम वाले अपने ही गण के स्वरूप में स्थित । 'नन्दीश्वर:'— नन्दियों के स्वामी (७३०) 'अनन्त:' —देश और काल के परिच्छेद से शून्य । 'नग्न व्रतधर:' - दिगम्बर रहने के वृत (नियम) को रखने वाले अर्थात् सब भूत वेष को धारण करने वाले । शुचि:'—सम्पूर्ण दोषों से हीन अर्थात् पूर्ण निर्दोष ।।९५।। 'लिङ्गाध्यक्ष.'–वाण आदि लिङ्ग (चिह्न) रूप में सबके अध्यक्ष अथवा लिङ्ग रूप देह में अधिष्ठित । 'सुराध्यक्ष:'– समस्त देवों के स्वामी । 'योगाध्यक्ष:'–योग शास्त्र के प्रवर्तक परमाचार्य । 'युगावह:'—सतयुग त्रेता आदि युग प्रभृति की समयानुसार प्राप्ति करने वाले । 'स्वधर्मा'— जगत् की रचना करने के अपने धर्म से युक्त । 'स्वर्गत:'— स्वर्ग में निवास करने वाले । 'स्वर्ग स्वर:' स्वर्ग लोक में गमन वाले । 'स्वरमय: स्वन:'– षडज ऋषभादि संगीत के सात स्वरों के समुत्पत्ति कारक ध्वनि वाले ।।९६।।

वाणाध्यक्षो बीजकर्त्ता कर्मकृद्धर्मसम्भव: ।
दम्भो लोभोऽथ वै शम्भु: सर्वभूतमहेश्वर: ।।९७
श्मशाननिलयस्त्र्यक्ष: सेतुरप्रतिमाकृति: ।
लोकोत्तरस्फुटो लोकस्त्र्यम्बको नागभूषण: ।।९८
अन्धकारिर्मखद्वेषी विष्णकन्धरपातन: ।
हीनदोषोऽक्षयगुणो दक्षारि: यूषदन्तभित् ।।९९

'वाणाध्यक्ष:'–वाणासुर के अधिपति । 'बीजकर्त्ता–शुक्र के उत्पादक । 'धर्मकृद्ध र्मसम्भव:'— परम पुण्य करने वालों के धर्म का प्रादुर्भाव करने वाले । 'दम्भ:'—अपने भक्तों की परीक्षा करने के लिए माया से विविध रूप धारण करने वाले । 'अलोभ:' – लोभ से रहित । 'अर्थविच्छम्भु:'— वेदशास्त्र आदि धर्म के ज्ञाताओं की सम्भावना करने वाले 'सर्वभूत महेश्वर:'—समस्त प्राणियों के सबसे बड़े स्वामी ।।९७।। 'श्मशान निलय:'—समस्त मृत्युगत प्राणियों के महा अनिष्ठा स्वरूप महा प्रलय के नाशक स्थान में निवास करने वाले । 'त्र्यक्ष:'—तीन नेत्रों को धारण करने वाले ।।(७३०)।।

'सेतु:'—इस संसार रूप सागर से तारने के लिए सेतु रूप। 'अप्रतिमाकृति'—उपमा से शून्य आकृति वाले। 'लोकोत्तरस्फुटालोक:'—अति उत्तम आत्म-स्वरूप वाले जिसे नेत्रों के द्वारा ग्रहण किया जाता है। 'त्र्यम्बक:'—तीन नेत्रों से युक्त। नाग भूषण:'-सर्पों के विविध भूषणों से भूषित जिनमें शेषनागादि प्रमुख सर्प भी हैं ॥९८॥ 'अन्धकारि:'—अन्धक नामक दैत्य के मानन वाले। 'मखद्वेषी'—प्रजापति दक्ष के यज्ञ का विध्वंस करने वाले। 'विष्णु कन्धर पातन:'—दक्ष के यज्ञ में विष्णु के कन्धर का निपात कर देनेवाले। हीनदोष:'—विषमतादि दोषों से रहित। 'अक्षयगुण:'—नाशशून्य अनेक अद्भुत गुण-गण से युक्त (७६०)। 'दक्षारि:' अपने श्वसुर दक्ष प्रजापति के शत्रु। 'पुषदन्तभित्' पूषा के दाँतों के तोड़ने वाले ॥९९॥

पूर्ण: पूरयिता पुण्य: सुकुमार: सुलोचन:।
सन्मार्गप: प्रियो धूर्त्त: पुणकीर्त्तिर नामय: ॥१००
मनोजवन्तीर्थकरो जटिलो तियमेश्वर:।
जीवितान्तकरो नित्यो वसुरेता वसुप्रद: ॥१०१
सद्गति: सिद्धद: सिद्ध: सज्जाति: खलकंटक।
कलाधरो महाकालभूत: सत्यपरायण: ॥१०२

'पूर्ण:'—सम्पूर्ण कलाओं से युक्त। 'पूरयित्वा:'—सबको अतुल सम्पत्ति प्रदान कर पूर्ण बना देने वाले। 'पुण्य:'—स्मरण मात्र से पापों से छुटकारा देने वाले। 'सुकुमार:'—स्कन्द के सदृश सुन्दर पुत्र वाले। 'सुलोचन:'—सुन्दर नेत्रों वाले। 'सामगेय प्रिय:'—सामवेद का गायन करने वालों को अत्यन्त प्रिय लगने वाले। 'अक्रूर:'—क्रूरता से रहित। 'पुण्य कीर्ति:'—पाप नाशक यश वाले॥ (७८०)॥ 'अनामय:'—व्याधियों से रहित ॥१००॥ 'मनोजय:'—भक्तों के दुःख दूर करने के कार्य में मन के समान वेग वाले। 'तीर्थकर:'—शास्त्रों के प्रमाणों के निर्माता। 'जटिल:'—शिर पर सुन्दर जटा-जूट धारण करने वाले। 'जीवितेश्वर:'—समस्त प्राणियों को प्राणों का दान करने वाले स्वामी। 'जीवितान्तकरो नित्य:'—सब प्राणियों के संहारक तथा नित्य। 'वसुरेता:'—सुवर्ण के वर्ण तुल्य वीर्य वाले। 'वसुप्रद:'—अपने भक्तों के विविध

रत्नों को प्रदाता ।१०१। 'सद्गति'—प्राणियों को अव्यभिचारिणी अच्छी गति के प्रदान करने वाले अथवा ब्रह्मादि सन्तों के द्वारा प्राप्त होने वाले । यहाँ पर 'सन्तमेनं ततो विदुः'—इत्यादि श्रुति का वचन इस अर्थ को प्रमाणित करता है । संस्कृतिः'—जगती तल के रक्षक करने वाली आकृति से युक्त (७९०) । 'सिद्धिः'—समस्त वस्तुओं में संचित रूप अथवा अत्यन्त फल रूप । 'सज्जातिः'—साधु लोगों की जाति को जन्म देने वाले । 'कालकण्टकः'—काल के भी वेधन करने वाले । 'कलाधरः' शिल्पादि चौंसठ कलाओं से युक्त । 'महाकालः'—काल के भी काल । 'भूत सत्य परायणः'—समस्त प्राणियों के परम आश्रय ।१०२।

'लोकलावण्यकर्त्ता च लोकोत्तरसुखालयः ।
चन्द्रसंजीवन शास्ता लोकग्राहो महाधिपः ॥१०३
लोकबन्धुर्लोकनाथः कृतज्ञः कृत्तिभूषितः ।
अनपायोऽक्षरः कान्तः सर्वशास्त्रभृतां वरः ॥१०४
तेजोमयो द्युतिधरो लोकमानी घृणार्णव ।
शुचिस्मितः प्रसन्नात्मा ह्यजेयो दुरतिक्रमः ॥१०५

'लोक लावण्य कर्ता'—लोकों की सुन्दरता के निर्माता । 'लोकोत्तर सुखालयः'—सबसे उत्कृष्ट सुख-सौभाग्य को अपने अधीन रखने वाले । 'चन्द्र संजीवनः'—चन्द्र को संजीवन देकर लोक-पीड़ा के नाशक । 'शास्ता'—दुरात्माओं को शिक्षा देने वाले । (८००) यहाँ शिव के नामों का अष्टम शतक समाप्त हो गया । 'लोक गूढ़ः' मानवों की बुद्धि रूपिणी गुहा के आश्रय होने कारण अप्रत्यक्ष । 'महाधिपः'—सबसे महान् स्वामी ।१०३। 'लोकबन्धु'—लोकों के लिए बन्धु के तुल्य । 'कृत्य' जोकि श्रुति और स्मृति के स्वरूप में स्थित हैं, उसको हिताहित के रूप में उपदेश करने वाले । 'लोकनाथः'—चौदह भुवनों के ईश्वर । 'कृतज्ञः'—प्राणियों के द्वारा किये हुए पुण्य और अपुण्य कर्म के ज्ञाता । कीर्ति-'भूषणः'—यश रूपी भूषण से विभूषित । 'अनपायोक्षर'—नाशरहित होने के कारण नित्य स्वरूप । यहाँ दोनों एक ही नाम को बताते हैं । 'कान्तः'—यमराज के भी नाशक । 'सर्वशस्त्र भृतां वरः'—समस्त शस्त्र-धारियों में अति श्रेष्ठ ।१०४। 'तेजोमयो द्युतिधरः'—अतिशय तेज की कान्ति के धारण करने वाले । (८१०) 'लोकानामग्रणीः'—सब लोकों में

परम श्रेष्ठ । 'अणू:'—अत्यन्तसूक्ष्म स्वरूप । यहां 'एषोऽणरात्मा चेतसा वेदितव्य:'— इत्यादि श्रुत वचन हैं जो इस अर्थ वाले नाम को बताता है । शुचिस्मित:'—मन्द हास से युक्त । 'प्रसन्नात्मा' प्रसाद युक्त स्वभाव वाले । 'दुर्जेय:'—महा—बलवान् शत्रुओं के द्वारा भी न जीते जाने वाले । 'दुरतिक्रम:'—दुख से भी अतिक्रमण के अयोग्य अर्थात् भय के कारण सूर्यादि को भी भीति देने वाले । यहाँ 'भयादस्माद वात: पवते भयात्तपत्तिः सूर्य भया--दिन्द्रश्वाग्नश्व मृत्युर्धावति पर्जन्य:'--इत्यादि श्रुति का वाक्य प्रमाण है ।१०५।

ज्योतिर्मयो जगन्नाथो निराकारो जलेश्वर: ।
तुम्बवीणो महाकोप: विशोक: शोकनाशन: ॥१०६
त्रिलोलपस्त्रिलोकेश: सर्वशुद्धिरोक्षज ।
अव्यक्तलक्षणो देवो व्यक्तोऽव्यक्तो विशांपति: ॥१०७
पर: शिवो वसुर्नासासारो मानधरो मय: ।
ब्रह्मा विष्णु: प्रजापालो हंसो हंसगतिर्वय: ॥१०८

'ज्योतिमय'— तेज के पुंज । 'जगन्नाथ:'—अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों के अधीश्वर । 'निराकार:'—बिना आकार वाले अथवा निर्गुण स्वरूप । 'जलेश्वर:'—भौतिक जल अथवा सुर नदी भागीरथी के स्वामी । (८२०) । 'तुम्बवीण:'—तुम्बी फल की निर्मित वीणा से युक्त । 'महाकोप:'—सृष्टि के सहार करने की बेला में महान् क्रोध करने वाले । 'शोकनाशन:'—भक्तों के शोक नाश करने वाला ।१०६। त्रिलोकप:'— त्रिभुवनों के पालक । 'त्रिलोकेक:'—त्रिभुवन को अपनी आज्ञा से कर्मों में प्रवृत्त कराने वाले प्रभु । 'सर्वशुद्धि:'—समस्त प्राणियों की शुद्धि करने वाले । 'अधोक्षज:'—इन्द्रिय जन्य ज्ञान को नीचे पतित करने वाले । 'अव्यक्त लक्षणो देव:'—अस्पष्ट चिन्ह वाले तेज पुंज के स्वरूप में अवस्थित देव । यहाँ दोनों एक ही के बोधक हैं । 'व्यक्ताव्यक्त:'— साकार स्वरूप में गुण-उपाधि व्यक्त होते हुए भी निर्गुण निराकार रूप होने से अव्यक्त । (८३०) । 'विशांपति:'—समस्त प्रजा के पालक स्वामी ।१०। 'वरशील:'—सर्वोत्तम शीलयुक्त किम्बा

श्रेष्ठ शील के दाता। 'वरगुण:'-सर्वश्रेष्ठ गुण-गान से अलंकृत। 'सारो-मानधन:' अत्यन्त बल वाले और दुष्टों के नाश करने के मान को धन समझने वाले। यहाँ दोनों एक ही हैं। 'मय:'-सुख के स्वरूप में स्थित। 'ब्रह्मा'—अपनी विभूति रूप चतुरानन के स्वरूप में स्थित करने वाले। 'विष्णु प्रजापाल:'—व्यापक होते हुए प्रजा का शासन करने के कारण विष्णु स्वरूप में स्थित। ये दोनों एक ही नाम के बोधक हैं। 'हंस:'—अज्ञान के नाश करने वाले परमात्मा के स्वरूप में विराजमान। 'हंस-गति:'—योगीजन की गति अर्थात् उद्धारक। 'वय'—पक्षी के स्वरूप में स्थित। यहाँ 'एक: सुपर्ण: स समुद्रमाविवेश स इद विश्वं भवन विचष्ठे द्वा सुपर्णा'—इत्यदि श्रुति वचन प्रमाण है (८४०) ॥१०८॥

वेधाविधाता धाता च सृष्ठा हर्त्ता चतुर्मुख।
कैलासशिखरावासी सर्वावामी सदागति ॥१०८
हिरणयगर्भो द्रुहिणो भूतपालोऽथ भूपति:।
सद्योगी योगविद्योगी वरदो ब्रह्माणप्रिय: ॥११०
देवप्रियो देवनाथो देवकी देवचिन्तक:।
विषमाक्षो विरूपाक्षो वृषदो वृषवर्द्धन ॥१११

'वेधा विधाता धाता' शिव इस जगत् की उत्पत्ति करने के कारण वेधा नाम वाले, सांसारिक मानवों के कर्म तथा उनके फल का दान करने के कारण विधाता कहे जाते हैं और विविध रूप से समस्त जगत् को धारण करने के कारण धाता हैं। यहाँ ये तीनों शब्द एक ही नाम के बोधक होते हैं। 'सृष्टा'—संसार को उत्पन्न करने वाले। 'हर्त्ता'—जगत् के संहारक। 'चतुर्मुख:'—हिरण्य गर्भ स्वरूप से अवस्थित 'कैलास-शिखरवासी—कैलास नामक गिरि की चोटी पर निवास करने वाले। 'सर्वावासी:'—सब में अन्तर्यामी स्वरूप से वास करने वाले। 'सदागति:'-सब जीवों को गति देने वाले ॥१०९॥

'हिरण्य गर्भ:'—हिरण्य गर्भ को उत्पन्न करने वाले किम्बा हिरण्यमय में व्याप्त होने से हिरण्य गर्भ अथवा ब्रह्मा के स्वरूप में अपनी ही आत्मा से स्थित। यहाँ 'हिरण्यगर्भ' समवर्त्ताग्रे: – इत्यादि श्रुति वचन उत्तार्थ को प्रमाणित करता है। द्रुहिण: ब्रह्मा के स्वरूप में स्थिति।

'भूतपाल:'—प्राणियों के पालक ।।(८५०)।। भूपति:'—भूमि के स्वामी । 'सद्योगी'—सत्कर्मों की योजना करने वाले । 'योग-विद्योगी'—योग के पूर्ण ज्ञाताओं को भी योग में प्रवृत्त कराने वाले । 'वरद:'—प्राणियों को वरदान देने वाले । 'ब्राह्मणप्रिय:'—विप्रों पर अत्यधिक प्यार करने वाले किम्वा विप्रों को प्रिय लगने वाले ।।११०।। 'देवप्रिय:'—देवगण के प्यारे अथवा वेदों पर प्यार करने वाले । 'देवनाथ:'—देवगण के स्वामी ।

'देवज्ञ:'—देवों को ज्ञानी बनाने वाले । 'देव चिन्तक:'—देवताओं के द्वारा चिन्तित होने वाले । 'त्रिषमाक्ष:'—विषम अर्थात् तीन नेत्र वाले । (८६०) 'विशालाक्ष:'—बड़े नेत्रों वाले । 'वृषदो वृष वर्द्धन:'—उपदेशक के द्वारा धर्म के वर्द्धक तथा जिनसे धर्म समृद्ध होता है । यहाँ दोनों एक ही हैं ।।१११।।

निर्ममो निरहङ्कारो निर्मोही निरुपद्रव: ।
दर्पहा दर्पदो दृप्त: सर्वर्तु परिवर्त्तक: ।।११२
सहस्त्रार्चिर्भूतिभूष: स्निग्धाकृतिरदक्षिण: ।
भूतभव्यभवन्नाथो विभवो भूतिनाशन: ।।११३
अर्थोऽनर्थो महाकोश: परकार्यैकपण्डित: ।
निष्कंटक: कृतानन्दो निर्व्याजो व्याजमर्दन: ।।११४

'निर्मम:'—ममता के भाव से शून्य । 'निरहङ्कार:'—अहङ्कार से रहित । 'निर्मोह:'—बिना मोह वाले । 'निरुपद्रव:'—उपद्रवों से रहित । 'दर्पहा दार्पद:'—सबके अभिमान का हनन करने वाले तथा शत्रुओं के दर्प के दलनकर्ता । ये दोनों एक ही हैं । 'दृप्त:'—अपने ही आत्मा के सुधार-सास्वाद से सदा परम प्रसन्न । 'सर्वर्तु परिवर्त्तक:'—समस्त ऋतुओं के परिवर्तनकर्त्ता ।।१२।। 'सपत्नजित्'—अनन्त असंख्य शत्रुओं पर जय प्राप्त करने वाले । (८७०) 'सहस्त्रार्चि:'—असंख्य दीप्तियों से युक्त । 'स्निग्ध प्रकृति दक्षिण:'—स्वाभाविक स्नेह के कारण कुशल एवं सरल । 'भूत भव्य भवन्नाथ:'—त्रिकाल के स्वामी । 'प्रभव:'—संसार को अकृष्टता से उत्पन्न करने वाले । भूति नाशन;'—शत्रुओं की सम्पत्ति के नाशक ।।११३।। 'अर्थ:'—सबके द्वारा प्रार्थनीय । 'अनर्थ:'—सब प्रकार के प्रयोजनों से रहित । 'महाकोश:'—महान् धन सम्पन्न ।

'परकार्यैकपण्डित:'—मोक्ष प्रदान करने के कार्य में महापण्डित। 'निष्कण्टक:'—कामादि क्षुद्र शत्रुओं से रहित। (८८०) 'कृतावुन्द:'—अविच्छिन्न परमानन्द से युक्त। 'निर्व्याजो व्याज मर्दन:'—स्वयं कपट के दूषित भाव से दूर रहते हुए अन्य के कपट नाशक। ये दोनों एक ही हैं।११४।

सत्त्यवान्सात्त्विक: सत्य: कृतस्नेह: कृतागम: ।
अकम्पितो गुधाग्रहो नैकात्मा नैककर्मकृत् ॥११५

सुप्रीत: सुखद: रूक्ष्म: सुकरो दक्षिणानिल: ।
नन्दिस्कन्ध धरो धुर्य्य: प्रकट: प्रीतिवर्धन: ॥११६

अपराजित: सर्वसहो गोविन्द: सत्त्ववाहन: ।
अधृत: स्वधृत: सिद्ध: पूतमूर्तिर्यशोधन: ॥११७

'सत्वान्:'—शौर्य वीर्यादि गुयों से युक्त। 'सात्त्विक'—सत्व गुण की प्रधानता रखने वाले। 'सत्य कीर्त्ति:'—वास्तविक कीर्त्ति से तुक्त। 'स्नेह कृतागम:'—अपने भक्तों पर अमित स्नेह होने के कारण उनके हित के लिए ही शास्त्रों का प्रकाश करने वाले। 'अकम्पित:'—कम्प से रहित अर्थात् निश्चल। 'गुणग्राही'—अपने भक्तजनों के सामान्य गुणों को भी आदर से ग्रहण कर कृपा करने वाले। 'नैकात्मा नैक कर्मकृत्'—अनेक स्वरूपों से युक्त तथा समस्त कर्मों के कर्त्ता।११५। 'सुप्रीति'—श्रेष्ठ प्रीति से युक्त रहने वाले। 'सूक्ष्म:'—अत्यन्त सूक्ष्म स्वरूप में सबमें व्याप्त रहने वाले। यहाँ सर्वगतं सुसूक्ष्मम्: इत्यादि श्रुति वाक्य इस कवितार्थ में प्रमाण हैं। 'सुकर:'—भक्तों को वरदान देने के कारण सुन्दर कर (हाथ) वाले। 'दक्षिणानित:'—आनन्द करने के कारण मलयाचल से समान बायु के स्वरूप में अवस्थित।

'नन्दिस्कन्धधर:'—नन्दी के कन्धे पर विराजमान। धुर्य:—समस्त प्राणियों के जन्म प्रभृति लक्षणों को धारण करने वाले। प्रकट;'—सूर्यादि के स्वरूप से सबको प्रत्यक्ष दर्शन देने वाले। यहाँ पर—उतैन गोपा अदृशाला दहार्य—यह श्रुति का वाक्य हैं जो उक्तार्थ का समर्थन करता है। 'प्रीति वर्द्धन:'—भक्तों के प्रेम को बढ़ाने वाले।११६। 'अपराजित:'—शत्रुओं से कभी भी न हारे जाने वाले। 'सर्वसत्त्व:'—

समस्त प्राणियों का उद्‌भव करने वाले। (६००) यहाँ श्री शिव के नाम का नवम शतक समाप्त हो गया है।) 'गोविन्दः'--स्वर्ग अथवा गौ-भक्तों को देने वाले। 'सत्त्व वाहनः'-मोक्ष के उपयोगी 'पराक्रम के प्रदाता। 'स्वधृतः'--अपनी आत्मा से धारण किए हुए। 'अधृतः'—अनन्य आधार। 'सिद्धिः'--समस्त प्रकार की सिद्धियों से पूर्ण। 'पूतमूर्त्तिः'—पवित्र एवं विशुद्ध मूर्त्ति वाले। 'यशोधनः'--यश रूपी धन से सम्पन्न।११७।

वाराह श्रृङ्गधृक् श्रृङ्गी बलवानेकनायकः।
श्रुतिप्रकाशः श्रुतिमानेकबन्धुरनेक धृक् ।।११८
श्रीवत्सल शिवारम्भः शान्तभद्रः समो यशः।
भूशयो भूषणो भुतिर्भूतिकृद् भूतभावनः ।।११६
अकपो भक्तिकायस्तु कालहानि कालविभुः।
सत्यव्रती महात्यागी नित्यः शान्ति परायणः ।।१२०

'वाराह श्रृङ्ग धृक्छङ्गी'--वाराह का दन्त शिखर तथा श्रृङ्ग धारण करने वाले श्रृङ्गी। ये दोनों एक ही नाम को व्यक्त करते हैं। 'बलवान्'--सब प्रकार की शक्तिसे युक्त। 'एक नायकः'--अद्वितीय स्वामी।६१०। 'श्रुति प्रकाशः'--वेदों के द्वारा प्रकाशित। यहाँ 'तन्त्वौपनिषद पुरुष पृच्छामि' इत्यादि श्रुति वाक्य इसको प्रमाणित करता है।

'श्रुतिमान्'--सर्वदा वेदों से युक्त। 'एकबन्धुः'--अद्वितीय बन्धु। 'अनेककृत्'--अपने आपके स्वरूप को अनेक बना लेने वाले। यहाँ पर 'बहुस्यां प्रजायेति तदात्मानं स्वयम् कुरुत' इत्यादि वेद वचनसे पुष्टि होती है।११८। 'श्री वत्सलः शिवारम्भः'—लक्ष्मी के प्रिय विष्णुके मंगल के लिये आरम्भ करने वाले। शान्त भद्रः'--स-पुरुषों के मङ्गल के कर्त्ता। 'समोयशः'—समस्त प्राणियों में समान किम्वा सब ऐश्वर्य लक्ष्मी के सहित यश वाले। यहाँ दोनों शब्दों द्वारा एक ही शिव का नाम बताया गया है। कहीं 'समज्जसः'--ऐसा पाठान्तर दिखलाई देता है। 'भूशयः'—भूमि में शयन करने वाले। 'भूषणः'--सबो भूषित बनाने वाले। 'भूतिः'--समस्त सम्पत्तियो के स्वरूप में स्थित। (६२०)

'भूतकृत्'—समस्त प्राणियों की उत्पत्ति करने वाले। भूतवाहनः'—सम्पूर्ण जीवों का यथा तथा निर्वाह करने वाले ॥११६॥ 'अकम्पः'—कम्प अर्थात् चञ्चलता से रहित स्थिर स्वरूप में स्थित। 'भक्तिकायः'—भक्तिरूपी काया के धर्त्ता। 'कालहा' सबको भक्षण कर जाने वाले महाबली काल के भी नाशक। 'नीललोहितः'—कण्ठ में नीलवर्ण होने पर स्वयं वर्ण वाले। 'सत्यव्रत महात्यागी' सत्यव्रत से सम्पन्न तथा समस्त पुरुषार्थों को देकर अत्यन्त त्याग करने वाले। 'नित्य शान्ति परायणः'—त्रिकाल में आवाध्य शान्ति के आगार ॥११०॥

परार्थवृत्तिर्वरदो विरक्तस्तु विशारदः।
शुभदः शुभकर्त्ता च शुभनामा शुभः स्वयम् ॥१२१
अनर्थितो गुणग्राही ह्यकर्त्ताकनकप्रभः।
स्वभावभद्रो मध्यस्थः शत्रुघ्नोविघ्ननाशनः ॥१२२
शिखण्डी कवची शूली जटी मुण्डी च कुण्डली।
अमृत्युः सर्वदृक् सिंहस्तजोराशिर्महामणिः ॥१२३

'परार्थ वृत्तिर्वरदः'—प्राणियों को परार्थ वरदान देने वाली वृत्ति से युक्त माया के आवरण को खण्डित करने वाले अथवा वरदाता। यहाँ दोनों एक ही के बोधक हैं। यहाँ पर 'तत् सृष्ट्वा तदेवानु प्राविशत्' इत्यादि श्रुति का वाक्य प्रमाण है। अथवा भक्तों के हृदय में सर्वदा प्रवेश की इच्छा रखने वाले (९३०) 'विशारदः'—समस्त विद्याओं की कलाओं में नितान्त निपुण। 'शुभद'—अपने भक्तों को शुभ का दान करने वाले। 'शुभ कर्त्ता'—भक्तों के कल्याण के उत्पादन करने वाले। 'शुभ नामा शुभः'—शुभ नाम के कारण करने वाले होने के कारण स्वयं भी परम कल्याण से सम्पन्न। यहाँ दोनों शब्द एक ही के बोधक हैं ॥१२१॥ 'अनर्थितः'—याचना से रहित रहने वाले। 'अगुणः'—गुण रहित अर्थात् निराकार स्वरूप। 'साक्षी ह्यकर्त्ता'—इस समस्त चराचर जगत् के द्रष्टा होने के कारण अकर्त्ता है और माया की उपाधि से युक्त होनेके कारण ईश्वर को जगत् का कर्त्ता होना माना जाता है। अतः ईश्वर स्वयं कर्त्ता नहीं है। यहाँ दोनों एक ही के बोधक हैं। 'कनक प्रभः'—स्वयं

के तुल्य दिव्य एवं ज्वलन्त कान्ति के धारण करने वाले। 'स्वभाव भद्रः-स्वकीय भक्तों की भावना के कारण हो मंगल स्वरूप अथवा मंगलों के दाता। 'मध्यस्थः'—ब्रह्मा और विष्णु के मध्य में संस्थित। (९४०)। 'शीघ्रगः'-निज भक्तों के कार्य सम्पादन के करने के लिए शीघ्रता से गमन करने वाले। 'शीघ्रनाशना'—भक्तों के दुःखों को अति शीघ्र नाशकर देने वाले।१२२। 'शिखण्डी, कवची, शूली चूड़ा, कवच और त्रिशूल धारण करने वाले। यहाँ तीनों शब्द एक ही नामका बोध कराते हैं।

'जटी, मुण्डी, कुण्डली'-शिरपर जटा-जूटसे युक्त, मुण्डित शिर वाले और सर्पो के कुण्डल धारण करने वाले। तीनों शब्द यहाँ एक ही शिव नाम के बोधक हैं। अमृत्युः'-मौत से रहित रहने वाले। 'सर्वदृक सहिः सबके द्रष्टा तथा दुष्टोंके संहार में सिहके स्वरूप वाले। यहाँ ये दोनों एक ही नामके बोधक हैं। 'तेजो राशिर्महामणि,'-तेजका स्वरूप होने के कारण महानमणि कौस्तुभ आदिके रूप वाले। यहाँ दोनों एक हैं।१२३।

असंख्येयोऽप्रमेथात्मा वोर्य्यवान् वीर्यकोविदः।
वेद्यश्च वै वियोगात्मा परावरमुनीश्वरः ।।१२४
अनुत्तमो दुरावर्षो मधुरः प्रियदर्शनः।
सुरेशः स्मरणः शर्व शद्वः प्रतपतां वरः ।।१२५
कालपक्षः कालकालः सुकृती कृतवासुकिः।
महेष्वासो महीभर्त्ता निष्कलङ्को विश्रृङ्खलः ।.१२६

'असंख्येयः प्रमेयात्माः' अपार एवं अपरिच्छेद्य स्वरूप वाले। 'वीर्य वान्वीर्य कोविदः'-वीर्य सम्पन्न तथा समस्त पराक्रमों में परम प्रवीणा। वेद्यः'-मुक्तिके इच्छुक पुरुषों के द्वारा जानने योग्य। (९५०)। वियो-गात्मा'-विशिष्ट योगसे युक्त आत्मा अर्थात् स्वरूप वाले। 'परावर मुनी-श्वरः' पर अवर और मुनिगण के भी ईश्वर।१२४। अनुत्तमो दुराधर्षः' सबसे उत्तम अर्थात् परम श्रेष्ठ और असह्य तेजयुक्त जिसके तेजको कोई भी आसानीसे सहन नहीं कर सकता है। 'मधुर प्रिय दर्शनः'-परमसौम्य एवं मधुर स्वरूप वाले तथा सबको प्रिय दर्शन वाले। 'सुरेशः,-देवगणके

स्वामी। 'शरणम्'–सम्पूर्ण जगत् की रक्षा करने वाले । 'पर्वः–विश्व के स्वरूप वाले विराजमान। शब्द ब्रह्म सतां गतिः, वेदके स्वरूप में संस्थित तथा साधु पुरुषों की गति अर्थात् उद्धारक। यहाँ दोनों एक ही हैं-।१२५। त्कालपक्षः'—सृष्टिकी रचना के कार्य में-कालकी सहायता वाले। 'कला-कारी'—सबके उत्पादक काल को उत्पन्न करने वाले। (६-०)'कङ्कणीकृत वासुकिः—वासुकि सर्प को अपना कङ्कण बना लेने वाले। 'महेश्वासः'–अक्षय महान् धनुष के धारी। 'महीभर्त्ता'–इस समस्त जगत् के धारण करने वाले। निष्कलङ्क'—अविद्या के दोष से रहित। विश्रृङ्खलः'—माया के बन्धन से मुक्त।२२६।

द्यु तिमणिस्तरणिर्धन्यः सिद्धिदःसिद्धिसाधनः।
विश्वतः सम्द्रवृत्तस्तु व्यूढोरस्को महाराजः ॥१२७
सर्वयोनिर्निरातङ्को नरनारायणप्रियः।
निर्लेपो यतिसङ्गात्मा निर्व्यङ्गो व्यङ्गनाशनः ॥१२८
स्वतः स्तुप्रियः स्तोताव्याक्रमूर्तिनिराकुलः।
निरवद्यमयोपायो विद्याराशिश्च सत्कृतः ॥१२९

'द्यु मणि स्तणि'–सूर्य के स्वरूप में स्थित होकर संसार रूपी सागरसे तारने वाले। 'धन्यः'--परम कृत्त कृय से सिद्धिदः सिद्ध साधनः'-अणिमा भहिदादि अष्ट सिद्धियों के प्रदाता होने के साधनों द्वारा समस्य पुरुथार्थोंके प्रदान करने वाले। ये दोनों एक ही हैं। विश्वतः सवृतः'—सब ओर से माया के द्वारा आच्छादित स्वरूप वाले। 'स्तुल्या'–देव, अनुज औरमानवों द्वारा स्तुति करने के योग्य।९७०। 'व्यूढ़ोरस्कः'–परम विस्तत वक्षःस्थल वाले। 'महाभुजः'—लम्बी भुजाओं से युक्त ।१२७। 'सर्वयोनिः'–सपूर्ण उत्पन्न करने के स्थल तथा कारण। निरातङ्क' सांसारिक व्याधि अथवा लौकिक सन्तापसे रहित। 'नरःनारायण प्रियः'—नरःनारायण मुनियों पर अतिशय प्यारकरने वाले। 'नर्लेपः निष्प्रपञ्चात्मा'-कर्मके बन्धनोसे विमुक्त होते हुए पञ्चभूतादिके समुदाय स्वरूप प्रपञ्चसे शून्य शरीरके धारणकरने वाले। यहाँ ये दोनों एकही शिवनाम के प्रकाशक हैं। 'निर्व्यंगः'-विशिष्ट अङ्गयुक्त प्राणियों के उत्पादक। 'व्यङ्गनाशनः'–व्यंग कर्मों के नाश करने

वाले ।१२८। 'स्तवा:'-स्तवन करने के योग्य । 'स्तव प्रिय:'-स्तुति से प्रेम (प्यार) करने वाले ।६८०। स्तोता'-प्रेम पूर्वक भक्तों के द्वारा स्तुत होने वाले । 'व्यात मूत्ति:'-व्यास महर्षि की मूर्ति के स्वरूप में विराजमान। निरंकुश:-मायास्वरूप अंकुश से शून्य । नि'रवद्यमयोपाय:'-अनिन्द्य स्वरूप स्वरूप मोक्ष से सम न्ना 'विद्या राशि:'समस्त-विद्याओं के समूह के स्वरूप में संस्थित । 'रस प्रिय:' भक्ति रस पर प्यार करने वाले ।१२६।

प्रशान्तबुद्धिरक्षुण्ण: संग्रही नित्यसुन्दर: ।
वैयाघ्रधुर्यो धात्रीश: शाकल्य: शर्वरीपति: ।।१३०
परमार्थगुरुर्दत्त: सूरिराश्रितवत्सल: ।
सोमो रसज्ञो रसद: सर्वसत्वावलम्बन: ।।१३१
एवं नाम्नां सहस्रेण तुष्टाव हि हर हरि: ।
प्रार्थयामास भम्भुं वै पूजयामास पंकजै: ।।१३२

'प्रशान्त बुद्धि:=परम शान्त एवं सौम्य बुद्धि वाले । अक्षुण्य:'—दूसरों के द्वारा तिरस्कृत न होने वाले । 'संग्रह;' भक्तजनों के संग्रह करने वाले । 'नित्य सुन्दर सर्वदा सुन्दर दिखाई देने वाले । ६६० । वैयाघ्र-धुर्य:'-बाघम्बर को सदा धारण करने वाले । 'धात्रीश:-समस्त भूमण्डल के अधीश्वर । 'शाकल्य:'-शाकल्य नामक ऋषि के स्वरूप में स्थिति करने वाले । शर्वरी पति:'-रात्रियों के सर्वेश्वर ।१३०। 'परमार्थ गुरु:'-तापक मन्त्र का उपदेश करते हुए मुक्ति पद प्राप्त कराने वाले गुरु । 'नेष्टि:'-चक्ष के अधिष्ठाता देवता के स्वरूप वाले । 'शरीराश्रित वत्सल:'-शरीरवाली जीवों पर अतिशय दया करने वाले । 'सोम:'—उमाके सहित सर्वदा विराजमान । 'रसोज्ञपका'–हलाहल महाविषके स्वादके ज्ञाता तथा वीर्य के प्रदान करने वाले । 'सर्वसत्दावलम्बन:'-संसार के समस्त प्राणियों के आश्रय भूत ।१३०। यहां श्री शिवके एक सहस्र नामोंका वर्णन समाप्त होता है ।१३१। इस तरह इन उक्त शिवके सहस्रनामों के द्वारा भगवान् विष्णुने शिवकी स्तुतिकी और पद्म दलोंने अर्चना करके उनकी प्रार्थना की ।१३२।

॥ शिव सहस्रनाम स्तोत्र का फल ॥

श्रुत्वा विष्णुकृतं दिव्यं परनामविभूषितम् ।
सहस्रनाम स्वस्तोत्र प्रसन्नोऽभुन्महेश्चरः ॥१

परीक्षार्थं हरेरीशः कमलेषु महेश्वरः ।
गोपयामास कमलं तदैकं भुवनेश्वरः ॥२

पंकजेषु तदा तेषु सहस्रेषु वभूव च ।
न्यूननेकं तदा विष्णुर्विकलः शिवपूजने ॥३

हृदा विचारितं तेन क्वतो वै कमलं गतम् ।
यातं यातु सुखेनैव मन्नेत्रं कमलं न निम् ॥४
ज्ञात्वेति नेत्रमुद्धृत्य सर्वसत्वावलम्बनात् ।
पूजयाभास भावेन स्तवयामास तेन च ॥५
ततः स्तुतमथो दृष्ट्वा तथाभूत हरो हरिम् ।
मामेति व्यापरन्ननेव प्रादुरासांज्जगद्गुरुः ॥६
तस्मादवततारा‌शु मंडलात्पार्थिवस्य च ।
प्रतिठितस्थहरिणा स्वलिंगस्य महेश्वरः ॥७

सूतजी ने कहा-उस समय विष्णु द्वारा निर्मित सुन्दर नामों से बिभूषित अपने सहस्रनाम नाम स्तोत्रका श्रवण कर शिवको परम प्रसन्नता हुई ।१। समस्त लोकों के स्वामी महेश्वर ने विष्णु भगवान् की परीक्षा करने के लिए उन सहस्र कमलों में से एक कमल को छिपा लिया ।२। शिव समर्चन के लिए लाते गये सहस्र कमलों में जब एक कमल कम हुआ तो विष्णु भगवान पूजा की साङ्ग सम्पूर्णता के अभाव से पहिले कुछ व्याकुल हुये और सोचा कि एक कमल कहाँ गया ? यदि कम है तो रहे उसकी पूर्ति के लिये मेरा नेत्ररूपी कमल उपस्थित है ।३-४। भगवान् ने ऐसा जानकर तुरन्त अपना नेत्र उखाड़ डाला और विविध सत्व के अवलम्ब शिव का स्वभाविक रूप से पूजन एवं स्तवन किया ।५। इस प्रकार से विष्णु को स्तवन करते हुए देखकर जगत् के गुरु महेश्वर ने

ऐसा मत करो ऐसा मत करो।' यह कहते हुए समक्ष में अपना आविर्भाव किया।६। भगवान् विष्णु के द्वारा प्रतिष्ठित अपने पार्थिव लिंगसे मण्डल शम्भु शीघ्र ही प्रकट हो गये।७।

यथोक्तरूपिणंशम्भुं तेजोराशिसमुत्थितम्।
नमस्कृत्य पुरः स्थित्वा स तुष्टाव विशेषतः ॥८
तदा प्राह मादेवः प्रसन्नः प्रहसन्निव।
सम्प्रेक्ष्य कृपया विष्णुं कृतांजललिपुटं स्थितम् ॥९
ज्ञातं मयेदं सकलं तव चित्तेप्सितं हरे।
देवकार्य्यं बिशेषेण देवकार्य्यरतात्मनः ॥१०
देवसार्य्यस्य सिद्धयर्थं दैत्यनाशाय चाश्रमम्।
सुदर्शसाख्यं चक्रं वै ददामि तव शोभनम् ॥११
यद्रूपं भवता दृष्टं सर्वलोकसुखावहम्।
हिताय तव देवेश धृतं भावय तद् ध्रुवम् ॥१२
रणाजिरे स्मृतं तद्वै देवानां दुःखनाशनम्।
इदं चक्रमिद रूपमिद नामसहस्रकम् ॥१३
ये श्रृण्वन्ति सदा भक्त्वा सिद्धिः स्यादनपाथिनो।
कामनां सकलां चैवं प्रसादान्मम सव्रत ॥१४

शास्त्र में लिखेहुए स्वरूपमें स्थित परमोज्ज्वल तेजके पुञ्ज समक्षमें प्रकट हुए शिवका दर्शन कर विष्णु ने हाथ जोड़कर नमस्कार किया और फिर विशेष रूपसे उनकी स्तुति करनेमें प्रवृत्त होगये।८। उस समय परतप्रसन्न शिव हाथजोड़कर समक्षमें भगवान् विष्णुको देखकर हंसते हुए कहनेलगे।।९। शिवने कहा-हे विष्णो ! आपके मन में जोभी कुछ विचार है वह मैंने मब समझ लिया है तुम इस समय देवगण के उत्पादन में तत्पर होते हुए उनका समस्त कार्य पूरा करने के इच्छुक हो।१०।देवगण को कार्योकी सिद्धि के लिये और बिना श्रम के दैत्यों का संहार करने के लिये मैं प्रसन्न होकर आपको 'सुदर्शन' नाम वाला परम शोभन चक्र देता हूँ।११। हे देवेश ! हे विष्णु ! आपने समस्त लोकों का सुखदायक जो स्वरूप देखा हैं उसका निश्चय ही ध्यान करो। इससे आपका परम हित होगा।१२।

रणभूमि में यदि उस रूपका ध्यान किया जावेतो देवताओंका सम्पूर्ण दुःख दूर हो जाता है। यह सुदर्शन चक्र यह रूप और सहस्रनाम स्तोत्र महान् फल देने वाले हैं।१३ हे सुव्रत ! जोभी कोई पुरुष दृढ़ भक्तिके साथ इस स्तोत्रका श्रवण किया करते हैं और नित्य ही सुनते हैं उनको मेरी कृपा से समस्त अभीप्सितोंकी अक्षय सिद्धि अवश्य ही हो जाती है। ४।

एवमुक्त्वा ददौ चक्रं सूर्य्यायुतसमप्रभम् ।
सुदर्शनं रुद्रपादोत्थं सर्वत्रुविनाशनम् ॥१५
विष्णुश्चापि सुसंस्कृत्य जग्राहोदङ्मुखस्तदा ।
नमस्कृत्य महादेवं विष्णुर्वचनमब्रवी ॥१६
शृणु देव मया ध्येयं पठनीयं च प्रभो ।
दुःखानां नाशनार्थं हि वद त्वं लोकशङ्कर ॥१७
इति पृष्टस्तदा तेन सन्तुष्टस्तु शिवोऽब्रवीत् ।
प्रसन्नमानसो भूत्वा विष्णुं देवसहायकम् ॥१८
रूपं ध्येय हरे मे हि सर्वानर्थं प्रशान्तये ।
अनेकदुःखनाशार्थं पठ नामसहस्रकम् ॥१९
धार्य्यं चक्रं सदा मे हि सर्वाभीष्टस्य सिद्धये ।
त्वया विष्णो प्रयत्नेन सर्वचक्रवरं त्विदम् ॥२०
अन्ये च ये पठिष्यन्ति पाठयिष्यन्ति नित्यशः ।
तेषां दु ख न स्वप्नेऽपि जायते नात्र संशयः ॥२१

सूतजी ने कहा— शिव ने ऐसा कहते हुए सहस्रों सूर्यों के तुल्य कान्ति वाले अपने चरणसे समुत्पन्न सम्पूर्ण शत्रुओं के नाशक सुदर्शन को दे दिया।१५। इसके अनन्तर उस समय उत्तर दिशाकी ओर अपना मुख करके भली-भाँति संस्कारके साथ सुदर्शनचक्रको ग्रहणकिया और भगवान् महेशको नमस्कार करके विष्णु ने प्रार्थना की।१६। विष्णु ने कहा हे प्रभो ! हे देव ! हे लोकोंके कल्याण करनेवाले ! मेरे ध्यानकरने के योग्य क्या है और मेरेद्वारा पढ़नेकेयोग्य क्या २ है ? यह सभी दुःखोंके निवारण करने के लिए मुझे कृपया बतला देवे।१७। सूतजी ने कहा-विष्णु भगवान्

के द्वारा इस तरह पूछने पर शिव मनमें परम प्रसन्न एवं अत्यन्त सन्तुष्ट होकर देवीकी सहायता करनेवाले वचन विष्णुने करने लये ।१८। शिवने कहा-हे विष्णो ! समस्त उपद्रवोंकी शांतिकेलिये मेरे मङ्गलमय स्वरूपका ध्यान करना चाहिए और समस्त दुःखों के नाश होनेकेलिये मेरे सहस्रनाम स्तोत्रका पाठ करना चाहये ।१९। हे विष्णो ! समस्त कामनाकों की सिद्धिके लिये चक्रोंमें परमश्रेष्ठ मरे चक्रको जिसका नाम सुदर्शन है सर्वदा प्रयत्न पूर्वक धारण करना चाहिए ।२०। जो मानव मेरे इस शिव सह नाम वाले स्तोत्र का प्रतिदिन पाठ करेंगे या श्रवण करायेंगे उनको कभी स्वप्नमें भी दुःख नहीं सतायेंगे-इसमें तनिकभी संदेह नहीं है ।२१।

राज्ञां च संकटे प्राप्ते शतावृत्ति चरेद्यदा ।
साङ्गं च विधिसयुक्तं कल्याणं लभते नरः ॥२२

रोगनाशंकर ह्येतद्विद्यावित्तदमुद्यमम् ।
सर्वकामप्रद पुण्यं शिवभक्तिप्रद सदा ॥२३
यदुद्दिश्य फलं श्रेष्ठं पठिष्यन्ति मरास्त्विह ।
यप्स्यन्ते नात्र संदेहः फलं तत्सत्यमुत्तमम् ॥२४
यश्च प्रातः समुत्थाय पूजां कृत्वा मदीयिकाम् ।
पठने मत्समक्ष वै नित्यं सिद्धिर्न दूरतः ॥२५
ऐहिकीं सिद्धिमाप्नोति निखिन्नां सर्वकामिकाम् ।
अन्ते सायुज्यमुक्ति वै प्राप्नोत्यत्र न संशयः ॥२६
एवमुक्त्वा तदा विष्णु शंकरः प्रीतिमानसः ।
उपस्पृश्य कराभ्तां तमुवाच गिरिशः पुनः ॥२७
वरदोऽस्मि सुरश्रेष्ट वरान्वृणु यथेप्सितान् ।
भक्त्या यशीकृनो नूर स्तवेनानेन सुव्रत ॥२८
इत्युक्तो देवदेवेन देवदेवं प्रणम्य तम् ।
सम्प्रसन्नतरो विष्णुः सांजलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥२९
यथेदानीं कृपा नाथ क्रियते चान्यतः पराः ।
कार्य्या चैव विशेषेण कृपालुत्वात्त्वया प्रभो ॥३०

यदि भूपतियों के द्वारा सङ्कट आनेका अवसर आवे तो सविधि अङ्ग-न्यास पूर्वक सहस्रनाम की एकशत आवृत्ति करने पर दुःख दूर होकर निश्चय ही कल्याण होता है ।२२। यह शिव सहस्रनाम स्तोत्र रोगनाशक विद्या और वैभवका दाता तथा सम्पूर्ण मनोरथों को पूर्ण करने वाला एवं निरन्तर पवित्र शिवकी भक्तिके प्रदान करने वाला है ।२३। मनुष्य जिस किसी भी श्रेष्ठ फल प्राप्त करने के उद्देश्य से इसका पाठ करेंगे वे निस्स-न्देह इस लोक में उस श्रेष्ठ फलकी प्राप्ति करेंगे ।२४।जो भी कोई मनुष्य नित्य बहुत तड़के उठकर मेरी अर्चा करके इस स्तोत्रका पाठ करेंगे उनसे सत्सिद्धि दूर नहीं रहती है । २५ । जो सहस्रनामका नित्य पाठ करता है वह लोकमें समस्त कामनाओं को सिद्ध करने वाली सम्पत्ति पाता है और अन्त में सायुज्य मुक्ति का पद प्राप्त करता इसमें कुछ भी संशय नहीं है । ।२६। सूतजी ने कहा-इस तरह विष्णु के कहने के पश्चात् शङ्कर प्रसन्न मन होकर विष्णु भगवान् की अपने दोनों हाथों से स्पर्श करते हुए कहने लगे ।२७। शिवने कहा-हे देवगण में श्रेष्ठ विष्णो ! मैं तुम्हें वरदान देता हूँ कि तुम अपने मनोवाञ्छित बरों को स्वीकार करो। हे परम शोभन व्रत वाले ! भक्ति पूर्वक इस स्तोत्र रत्नके पाठसे निश्चय ही शिव वशीभूत हो जाते हैं । २८ । सूतजी ने कहा—इस प्रकार से देवों के भी पूज्य देव महादेव के कहने पर उनको प्रणाम करके परम प्रसन्न विष्णु उनसे हाथ जोड़कर फिर प्रार्थना करने लगे । २९ । भगवान् विष्णु ने कहा हे नाथ ! हे प्रभो ! इस समय आपने जैसा अनुग्रह किया है हे दयालो वैसी ही कृपा आगे भी आपको करनी चाहिए ।३०।

॥ नारद का शिवतत्व श्रवण ॥

सूत सूत महाभाग ज्ञानवानसि सुव्रत ।
पुनरेव शिवस्यैव चरितं ब्रूहि विस्तरात् ॥१
पुरातनाश्च राजान ऋषयो देवतास्तथा ।
आराधनञ्च तस्यैव चक्रुर्देववरस्य हि ॥२
साधुपृष्टमृषिश्रेष्ठाः श्रूयतां कथयामि किम् ।
चरित्र शङ्करं रम्य शृण्वतां भुक्तिमुक्तिदम् ॥३

एतदेव पुरा पृष्ठो नारदेन पितामहः ।
प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा नारदं मुनिसत्तमम् ॥४
श्रुणु नारद सुप्रीत्या शंकरं चरितं वरम् ।
प्रवक्ष्यामि भवत्स्नेहान्महापातकनाशनम् ॥५
रभवा सहितो विष्णु शिवपूजा चकार ह ।
कृपया परयेशस्य सर्वान्कामानवाप हि ॥६
अहं पितामहश्चापि शिवपूजनकारकः ।
तस्यैव कृपया तात विश्वसृष्टिकरः सदा ॥७

ऋषियों ने कहा हे महान् भाग्य वाले ! हे सुव्रत ! हे सूतजी ! आप अत्यन्त ज्ञान वाले हैं, अतएव हमारी विनीत प्रार्थना है कि आप अब भगवान् शङ्करके चरित्रका विस्तार के सहिता वर्णन करें ।१। पहिले होने वाले राजा लोगों ने एवं ऋषिगण और देववृन्दने सर्वश्रेष्ठ भगवान् शिव का ही आराधन किया है ।२। सूतजी ने कहा-हे ऋषिप्रवर ! इस समय आपने अति उत्तम प्रश्न किया है । मैं आपके सामने अब परम सुन्दर एवं श्रोताओं को भोग और मोक्ष दोनों ही के दाता भगवान् शिवका विस्तृत चरित्र सुनाता हूँ । आप सब ध्यान के साथ सुनिये ।३। यही बात पहिले एक समय नारदजीने ब्रह्माजीसे पूछी थी । परम प्रसन्न होकर ब्रह्मा जीने नारदजी से कहा था ।४। ब्रह्माजी ने कहा-हे नारद ? तुम प्रेम पूर्वक सुनो, मैं आपके स्नेह से वशीभूत होकर ही महापातकों का नाशक शिवेश्वरके चरित्र का वर्णन करता हूँ ।५। अपनी प्रिय लक्ष्मी को साथ में लेकर भगवान् विष्णुने एकसार शिवका पूजन किया था तब उनके सभी मनोरथ पूर्ण हो गये थे ।६। हे तात ? मैं जगत् का विधाता ब्रह्मा भी शिव-समर्चन के अतुल प्रभाव के कारण ही उनकी कृपा से इस सुविस्तृत संसार की रचना किया करता हूँ ।७।

शिवपूजाकरा नित्यं मत्पुत्राः परमर्षयः ।
अन्ये च ऋषयो ये ते शिवपूजन कारकाः ॥८
नारद त्वं विशेषेण शिवपूजनकारकः ।
सप्तर्षयो वसिष्ठायाः शिवपूजनकारकाः ॥९

अरुंधती महासाध्वी लोपामुद्रा तथैव च ।
अहल्या गोतमस्त्री च शिवपूजनकारका: ॥१०
दुर्वासा: कौशिक: शक्तिर्दधीचो गोतमस्थता ।
कणादो शार्गवो जीवो वैशपायन एव च ॥११
एते च मुनय: सर्वे शिवपुजाकरा मता: ।
तथा पराशरो व्यास: शिवपूजारत: सदा ॥१२
उपमन्युर्महाभक्त: शिवस्य परमात्मन: ।
याज्ञवल्क्यो महाशवो जैमिनिर्गर्ग एव च ॥१३
शुकश्च शौनकाद्याश्च शंकरस्य प्रपूजका: ।
अन्ये पि वहव: सन्ति मुनयो मुनिसत्तमा: ॥१४

हे श्रेष्ठ ऋषिवृन्द ! मेरे पुत्र भी नित्यप्रति भगवान्‌शिवका पूजनकरते हैं तथा अन्यभी बहुत से ऋषिगण शिवकी पूजा करने वाले हुए हैं ।८। हे नारदजी ! तुमभी विशेष रूपसे भगवान्‌शिवका पूजनकरने वाले हो और अन्य ऋषि लोग भी शिवके समाराधक हुए हैं ।९। परम पतिव्रत धर्मके पालन करने वाली अरुन्धती, लोपामुद्रा और गौतम की पत्नी अहिल्या भी शङ्करकी पूजा-अर्चन करने वाली हैं ।१०। इसके अतिरिक्त दुर्वासा विश्वामित्र, शक्ति, दधीच, गौतम, कणाद, भार्गव, बृहस्पति, वैशम्पायन आदि ये समस्त ऋषि, मुनि भगवान्‌शिवकी पूजोपासना कहने वाले हैं यथा पारशर और व्यासमुनि निरन्तर शिवको आराधनामें परायण रहा करते हे ।११-१२। उपमन्यु महर्षि भी परमेश्वर शिव के महान् भक्त हुए है । याज्ञवल्क्य, जैमिनि तथा गर्ग भी परम शैव थे ।१३। शुक्र एवं शौनक आदि भी भगवान् शिव के पूजक हैं । हे मुनिश्रेष्ठो ! अन्य भी बहुत से ऋषि हैं जो एक मात्र शङ्कर भगवान् की पूजा करने वाले हैं ।१४।

अदितिर्देवमाता च नित्य प्रीत्या चकार ह ।
पार्थिवीं शैवपूजां वै सा वधू: प्रेमतत्परा ॥१५
शक्रादयो लोकपाला वसवश्च सुरास्तथा ।
मसाराजिकदेवाश्च साध्याश्च शिवपूजका: ॥१६

गन्धर्वाः किन्नराद्याश्चोपसुराः शिवपूजकाः ।
तथाऽसुरा महात्मानः शिवपूजाकरा मताः ।।१७

हिरण्यकशिपुर्दैत्यः सानुजः ससुतो मुने ।
शिवपूजाकरो नित्यं विरोचनबली तथा ।।१८

महाशैव. स्मृतो बाणो हिरण्याक्षमुतास्तथा ।
वृषपर्वा दनुस्तातः दानवाः शिवपूजकाः ।।१९

शेषश्च वासुकिश्चैव तक्षकश्च तथाऽपरे ।
षिवभक्ता महानागा गरुडाद्याश्च पक्षिणः ।।२०

सूर्यचन्द्रावुभौ देवौ पृथ्व्यां वंशप्रवर्त्तकौ ।
शिवसेवारतौ नित्य सर्वंश्यां तौ मुनीश्वर ।।२१

देवगणकी माता अदितिने अपनी वधू के सहित परम प्रेम मग्न होकर प्रीति भक्ति के साथ पार्थिव शिव का पूजन किया था ।१५। इन्द्र आदि समस्त लोकपालोंने—आठ वसुयोंने और सभी देवताओं ने महाराजिकरण के साथ एवं साध्यों के सहित भगवान् महेश्वर का पूजन किया था ।१६। इनके अतिरिक्त किन्नर गन्धर्व, प्रभृति तथा महान् आत्मा वाले दैत्यलोग भी सब शिव के उपासक हुए हैं ।१७। हे मुनिवर ! महान् दैत्यराज हिरण्यकशिपु अपने भाई एवं पुत्र के साथ नित्यहीं शिवका पूजन किया करता था । विरोचन भी शिव पूजक हुआ है ।१८। हे तात ! वाणासुर और हिरण्याक्ष पुत्र वृषपर्वा, दुनुदैत्य और उसके पुत्र ये सभी शिव की आराधना करने वाले हुए हैं ।१९। भगवान् शेष, वासुक, तक्षक और अन्यभी नाग जाति के बड़े बड़े नाग एवं गरुण आदि पक्षी भी शिव की उपासना करने वाले परम शिव भक्त हुए हैं ।२०। हे मुनीश्वर ! इस भूमण्डल पर सोम और सूर्य ये दोनों अपने-अपने महान् वंश के चलाने वाले माने गये हैं वे भी सभी स्वकीय वंशजोंने साथ शिवके अनन्य उपासक एवं परम भक्त हुए हैं ।२१।

मनवश्च तथा चक्रः स्वायभुवपुरसराः ।
शिवपूजां विशेषेण शिववेशधरा मुने ।।२२

प्रियव्रतश्च तत्पुत्रस्तथा चोंत्तानपात्सुतः ।
तद्वंशाश्चैव राजानः शिवपूजनकारकाः ।।२३

ध्रुवश्च ऋषभश्चैव भरतो नवयोगिनः ।
तद्भ्रातरः परे चापि शिवपूजनकारकः ॥२४

वैवस्वतसतास्ताक्ष्यं इक्ष्वाकुप्रमुखा नृपाः ।
शिवपूजारतात्मानः सर्वदा सुखभोगिनः ॥२५

ककुत्स्थश्चापि मांधाता सगरः शैवसत्तमः ।
मुचुकुन्दो हरिश्चन्द्रः कल्माषांघ्रिस्तथैव च ॥२६

भगीरथादयो भूपा बहवो नृपसत्तमाः ।
शिवपूजाकरो ज्ञेयाः शिववेषविधायिनः ॥२७

खट्वांगश्च महाराजो देवसाहाय्यकारकः ।
विधितः पार्थिवीं मूर्ति शिवस्यापूजयत्वदा ॥२८

हे मुने ! स्वायम्भुव आदि जो मनु हुए हैं वे सब नित्य शिवकी वेष-भूषा धारण करके ही शिवका पूजन किया करते थे ।२२। महाराज प्रियव्रत तथा उसके पुत्र और उत्तानपाद के पुत्र एवं उनके वंश में जो अतिरिक्त ध्रुव, ऋषभ, भरत नवयोगी तथा अन्य उनके समस्त भाई ये सब परम शिव-पूजक हुए हैं।२४। वैवस्वत मनुके पुत्र तार्क्ष्य तथा इक्ष्वाकु, प्रभृति नृपगण सी शङ्कर की पूजा के प्रेमी और इसी के प्रभावसे निरन्तर सुखके भोक्ता हुए हैं ।२५। ककुत्स्थमान्धाता, राजा सगर, मुकुकुन्द, राजा हरिशचन्द्र और कल्भाषपाद भी शैवों में परम श्रेष्ठ हुए हैं ।२६। भगीरथ आदि अनेक महान् पुरुषार्थी राजा शिवका वेष धारण करने वाले तथा शिवके पूजन करने वाले हुए हैं । २७ । देवों के सहायक राजा खट्वाङ्गने सविधि शिवका पार्थिव पूजन किया था ।२८।

तत्पुत्रो हि दिलीपश्च शिवपूजनकृत्सदा ।
रघुस्ततनयः शव सुप्रीत्या शिवपूजकः ॥२९

अजः शिवार्चकस्तस्य तनयो धर्मयुद्धकृत ।
जातो दशरथो भूपो महाराजो विशेषतः ॥३०

पुत्र र्थे पार्थिवी मूर्तिशैवीं दशरथो हि सः ।
समानच विशेषेण यसिष्ठस्याज्ञया मुनेः ॥३१

पुत्रेष्ठि च चकारासौ प्रार्थिवो भवभक्तिमान् ।
ऋष्यश्रृ गमुनेपाज्ञां सप्राप्य नृपसत्तमः ।।३२
कौसल्या तत्प्रिया मूर्ति पार्थिवी शांकरो मुद्रा ।
ऋष्यश्रृंगसमादिष्टा समानर्च सुताप्तये ।।३३
सुमित्रा च शिवं प्रीत्या कैकेयी नपवल्लभा ।
पूजयामास सत्पुत्रप्राप्तये मुनिसत्तम ।।३४
शिवप्रसादतस्ता वै पुत्रान्प्रापुः शुभकरान् ।
महाप्रत पितो वीरान्सन्मार्गनिरतान्मुने ।।३५

इसी वंशमें उनके पुत्र महाराज दिलीप एवं इनक पुत्रराजा रघुशैव होकर परम प्रीति से शिवका वेष रखकर उनका पूजन किया करते थे। ।२९। महाराज रघुके पुत्र अज नृप जिन्होंने धर्मसे युद्ध किया था वे शिव के परम प्रिय भक्त हुये थे इसके अनन्तर राजादशरथ तो विशेष रूप से शिव को उपासना करने वाले हुए हैं।३०। राजा दशरथ अपने गुरु वसिष्ठ मुनिकी आज्ञा से पुत्र-प्राप्ति के लिये शिवकी पार्थिव मूर्तिका निर्माणकर विशेष रूपसे नित्य ही महादेवका पुजन किया करते थे।३१। भक्तिमन् महाराज दशरथने ऋषि श्रृङ्ग मुनि की आज्ञा से पुत्रेष्टि योग किया था ।३२। दशरथ पत्नी कौशल्याने ऋष्य श्रृङ्ग मुनिकी आज्ञा से रोज ही शिवकी पार्थिव मूर्ति बनाकर अपने पुत्र की प्राप्ति के लिये शिवका पूजन किया था।३३। हे मुनिश्रेष्ठ ! दशरथ नृप की ,अन्य महारानी सुमित्रा तथा कौकेईने भी श्रेष्ठ पुत्रकी प्राप्तिकी कामनासे शिवका अर्चन किया था।३४। हे मुने ! उन सभी रानियोंने भगवान् महेशको प्रसाद से महान् प्रताप वाले, परम वीर, सन्मागगामी एवं अतिशय कल्याणकारी पुत्रों को प्राप्द किया था ।३५।

ततः शिवाज्ञया तस्मात्तासु राज्ञ. स्वय हरि ।
चतुर्भिश्चैव रूपैश्चाविर्बभूव नृपात्मजः ।।३६
कौसल्यायाः सतो रामः सुमित्रायाश्च लक्ष्मण ।
शत्रुघ्नश्चैव कैकेय्या भरतश्चेति सव्रताः ।।३७
रामः ससहजो नित्यं पार्थिवं समपूजयत् ।
भस्मरुद्राक्षधारी च विरजो योगमास्थितः ।।३८

तद्वंशे ये समुत्पन्ना राजानः सानुगा मुने ।
ते सर्वे पार्थिवं लिंग शिवस्य समपूजयन् ।।३६

सुद्युम्नश्च महाराजः शैवों मुनिसुतो मुने ।
शिवशापात्प्रियाहेतोरभून्नारी ससेवकः ।।४०

पार्थिवेशसमर्चानः पुनः सोऽभूत्पुमान्वरः ।
मासं स्त्री पुरुषो मासमेवं स्त्रीत्वं त्यवर्त्तत ।।४१

ततो राज्य परित्यज्य शिवधर्मपरायणः ।
शिववेषधरो भक्त्या दुर्लभ मोक्षमाप्तवान् ।।४२

इसी शिव-पूजन के प्रभाव से शिवकी आज्ञा पाकर विष्णु महाराज दशरथके द्वारा चतुर्भुजी मूर्ति के स्वरूप में श्रीरामचन्द्र रूप से प्रकट हुए थे ।३६। इस प्रकार से दशरथ की तीनों रानियों के पुत्र हुए । महारानी कौशल्याके श्रीराम, सुमित्राके लक्ष्मण और शत्रुघ्न तथा कैकेयीके भरत नामवाले पुत्र प्रकट हुए थे ।३७। भगवान् श्रीरामचन्द्रभी नित्य ही पार्थिव मूर्ति बनाकर शिवका बड़े ही प्रेमके साथ पूजन किया करते थे और भस्म तथा रुद्राक्षमाला धारण करके विरक्ति के मार्ग में स्थित रहा करते थे ।३८। हे मुने ! इसके पश्चात् भी उनके वंश में जो भी राजा हुए हैं वे सभी शिव का पार्थिव पूजन करने वाले थे ।३६। हे मुनीश्वर ! ऋषिके पुत्र परम शिव के भक्त महाराज सुद्युम्न शिव के शाप से अपनी स्त्री और समस्त अनुचरों के साथ स्त्री के रूप में हो गये थे ।४०। राजा सुद्युम्नने नित्य पार्थिव नित्य पार्थिव शिव के पूजन का नियम ग्रहण किया और इसके प्रभाव से पुनः पुरुष रूप हुए किन्तु महेशके शाप का फिर भी इतना प्रभाव रहा कि एकमास पर्यन्त पुरुष और एकमास तक स्त्री रहते थे । इस तरह स्त्रीत्वसे उन्होंने छुटकारा पाया था। इसके पश्चात् वे अपना राज्य त्यागकर शिवोपासना में तत्पर होकर अन्त में मोक्षपद की प्राप्ति के अधिकारी हो गये थे ।४१-४२।

पुरूरवाश्च तत्पुत्रो महाराजः सुपूजकः ।
शिवस्य देवदेवस्य तत्सुतः शिवपूजकः ।।४३

भरतस्तु महापूजां शिवस्यैव सदाऽकरोत् ।
नहुषश्च महाशैवः शिवपूजारतो ह्यभूत् ।।४४

ययातिः शिवपूजातः सर्वान्कामानवाप्तवान् ।
अजीजनत्सुतान्पञ्च शिवधर्मपरायणान् ॥४५
तत्सुता यदुमुख्याश्च पञ्चापि शिवपूजकाः ।
शिनपूजाप्रभावेण सर्वान्कामांश्च लेभिरे ॥४६
अन्येऽपि ये महाभागाः समानर्चुः शिवं हिते ।
तद्वंश्या अन्यवश्यश्च भुक्तिमुक्तिप्रद मुने ॥४७
कृष्णेन च कृत नित्य वदरीपर्वतोत्तमे ।
पूजनं तु शिवस्यैव सप्तमासावधि स्वयम् ॥४८
प्रसन्नाद् भागवांस्तस्माद्वरादिव्याननेकशः ।
सम्प्राप्य च जगत्सर्वं वशेऽनयत शङ्करात् ॥४९

राजा पुरूरवा तथा उनका पुत्र शिव के पूजक एवं परम भक्त हुए हैं। शिव के पूजन के अतुल प्रभाव से उनके सभी मनोरथ पूर्ण भी हुए थे ।४३। राजा भरत शिवकी महासमर्चा किया करते थे तथा महाराज महुष महा शैव ये और निरन्तर शिव के समाराधना में तत्पर रहा करते थे ।४४। राजा ययाति ने भी भगवान् शङ्कर की पूजा के प्रभावसे अपनी समस्त कामनाओंकी प्राप्ति की और शिव धर्ममें तत्पर पाँच पुत्रोंको जन्म दिया था ।४५। यदुवंश में मुख्य उनके पाँच पुत्र शिव के परम पूजक हुए और भगवान् शिवकी कृपा से अपनी समस्त अभीष्ट कामनाओं की उन्होंने प्राप्ति की थी ।४६। हे मुने! इनके अतिरिक्त अन्य भी जो महान भाग्यशाली राजा इस संसार में हुए है उन सबने भी शिवका पूजन किया था। उनके वंशज सभी राजाओंने भोग मोक्षके प्रदाता शिवका समर्चन किया था ।४७। महात्मा श्री कृष्ण ने बदरी गिरिपर सातमास पर्यन्त स्वयं बड़ी तत्परता के साथ शिव का पूजन किया था ।४८। उस समय प्रसन्न होने वाले शिवसे श्री कृष्ण ने अनेक दिव्य वरदान प्राप्त किये और उन्हींके प्रभावसे समस्त जगत्को वशमें कर लिया था ।४९।

प्रद्युम्नः तत्सुतस्तात शिवपूजाकर सदा ।
अन्ये च कार्ष्णिप्रवराः साम्बाद्याः शिवपूजकाः ॥५०

जरासंघो महाशैवस्तद्वंश्याश्च नृपास्तथा ।
निमि शैवश्च जनकस्तत्पुत्राः शिवपूजकाः ॥५१
नलेन च कृता पूजा वीरसेनसुतेन वै ।
पूर्वजन्मनि यो भिल्लो वने पान्थसुरक्षकः ॥५२
यातिश्च रक्षितस्तेन पुरा हरसमीपतः ।
स्वय व्याघ्रदिभी रात्रौ भक्षितश्च मृतो वृषात् ॥५३
तेन पुण्यप्रभावेण स भिल्लो हि नलोऽभवत् ।
चक्रवर्ती महाराजो दमयन्तीप्रियोऽभवत् ॥५४
इति ते कथितं तान यत्पृष्टं भवताऽनघः ।
शांकर चरित दिव्यं किमन्यत्प्रष्टुमिच्छसि ॥५५

हे तात ! भगवान् श्री कृष्ण के कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्नजी सदा शिवकी किया करते थे और साम्ब प्रभृति सभी श्रीकृष्णको वंशजों ने शिवकी परम भक्तिका आश्रय लिया था ।५०। महान् शिव भक्त राजा जरासन्ध तथा उनके अन्य वंशज सभी शिवोपासक थे । राजा निमि और जनकी तथा उनको पुत्र सभी लोग शिवके परम भक्त हुए हैं ।५१। वीरसेन राजा के पुत्र नल राजा ने भी शिवकी पूजाकी थी जोकि अपने पहिले जन्ममें वनके भील रहकर, वन मार्ग की रक्षा किया करते थे ।५२। भील को जीवन में उसने एक बार शिवके समीप में स्थिर एक सन्यासी की रक्षा की थी और भाग्य वश ही बाघ के भक्षण करने से उसका रक्षण करने के कारण मृत्युगत हो गया था ।५३। इसी महान् पुण्य कार्य के प्रभाव से अपने दूसरे जन्म में राजा नल के रूप में उत्पन्न हुआ और चक्रवर्ती राजा नल दमयन्तीरानी के परम प्रिय पति हुए ।५४। हे तात ! हे पापशून्स आपने जो प्रश्न मुझसे पूछा सो मैंने महेश्वर शिवका अनिदिव्य चरित्र तुम्हारे सामने वर्णनकर दिया । अब तुम बताओ और मुझसे क्या-क्या पूछना चाहते हो ।५५।

॥ शिवरात्रि व्रत का माहात्म्य ॥

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि जीवितं स फल तव ।
यच्छ्रावयसि नस्तात महेश्वरकथां शुभाम् ॥१

बहुभिश्चर्षिभिः सूत श्रुतं यद्यपि वस्तु सत् ।
सन्देहो न गतोऽस्माकं तदेतत्कथयामि ते ॥२
केन व्रतेन सन्तुष्टः शिवो यच्छति सत्सुखम् ।
कुशलः शिवकृत्ये त्वं तस्मात्पृच्छामहे वयम् ॥३
भुक्तिर्मुक्तिश्च लभ्येत भक्तर्येन व्रतेन वै ।
तद्वद त्वं विशेषेण व्यासशिष्य नमोऽस्तु ते ॥४
सम्यक्पृष्टमृषिश्रेष्ठा भवद्भिः करुणात्मभिः ।
स्मृत्वा शिवहृदाभोजं कथयामि यथाश्रुतम् ॥५
यथा भवद्भिः पृच्छयेत तथा पृष्टं हि वेधसा ।
हरिणा शिवया चैव तथा वै शङ्करं प्रतिः ॥६
कस्मिश्चित्समये तैस्तु पृष्टं च परमात्मने ।
केन श्रुतेन सन्तुष्टो भुक्ति मुक्ति च यच्छसि ॥७

ऋषियोंने कहा—हे सूतजी ! आप भगवान शिव की शुभ कथा का श्रवण कराते रहते हैं ।१। हे सूतजी ! हमने अन्य बहुत से ऋषियों के द्वारा अनेक उपाख्यान सुने हैं किन्तु उनसे हमारे हृदय के संशय का नाश नहीं हो सका इसी कारणसे हम अब आपसे प्रार्थना करते हैं ।२। आपतो परम कुशल शिव भक्त और उनके कृत्योंके ज्ञाता हैं । इसीलिए हम आपसे यह जानना चाहते हैं कि भगवान् शङ्कर किस व्रत से सन्तुष्ट होकर सच्चा सुख प्रदान किया करते हैं ।३। हे व्यासजी के प्रमुख शिष्य सूतजी ! जिस व्रतके करनेसे मनुष्य भोग और मोक्ष दोनों की प्राप्ति किया करता है अब आप उसे विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये । हम आपको नमस्कार करते हैं ।४। सूतजीने कहा—हे श्रेष्ठ ऋषिवृन्द ! सांसारिक प्राणियों पर दया करते हुए आपने ही सुन्दर बात पूछी है । मैंने जैसा भी सुना है वही भगवान शिव के चरण कमल का स्मरण करके आपको सुनाता हूँ ।५। आज आप लोगों ने जैसी बात पूछी है वैसी ही प्रश्न एकबार ब्रह्मा, विष्णु और जगदम्बा पार्वतीने भी शिव से पूछा था ।६। किसी समय शिव को प्रसन्न देखकर इन सबने परमेश शिवसे पूछा था कि हे शिव ! किस व्रत से सन्तुष्ट होकर आप भोग मोक्ष दोनों दिया करते हैं ।७।

इति पृष्टास्तदा तैस्तु हरिण तेन वै तदा ।
तदहं कथयाम्यद्य शृण्वतां यापहारकम् ॥८
भूरि व्रतानि मे सन्ति भुक्ति शुक्तिप्रदानि च ।
मुख्यानि तत्र ज्ञेयानि दशसंख्यानि तानि वै ॥९
दश शैवव्रतान्याहुर्जाबालश्रुतिपारगाः ।
तानि व्रतानि यत्नेन कार्याण्येव द्विजैः सदा ॥१०
प्रयष्टम्यो प्रयत्नेन कर्तव्यं नक्तभोजनम् ।
कालाष्टम्यां विशेषेण हरे त्याज्यं हि भोजनम् ॥११
एकादश्यां सितायां तु त्याज्यं विष्णोऽह्नि भोजनम् ।
असितायां तु भोक्तव्यं नक्तमभ्यर्च्य मा हरे ॥१२
त्रयोदश्यां सिताया तु कर्तव्यं निशि भोजनम् ।
असितायां तु भूतायां तन्न कार्यं शिवव्रतैः ॥१३
निशि यत्नेन कर्तव्यं भोजन सोमवासरे ।
उभयोः पक्षयोर्विष्णो सर्वस्मिञ्छिववत्परैः ॥१४

इस प्रकार सबके और विशेष रूपसे विष्णुके द्वारा किये गये इसप्रश्न को सुनकर उस समय शिवजी ने जो उत्तर दिया था, मैं श्रोआतों के उसी पापनाशक उपाय को बतलाता हूँ ।८। श्रीशिव ने कहा-हे देववृन्द ! योंतो भोग और मोक्ष दोनों को प्रदान करने वाले मेरे विविध व्रत हैं किन्तु उस सबमें दशव्रत परम मुख्य होते हैं।९। वेदोंके पारगामी जावाल आदिमुनियों ने ये दशही व्रत बतलाये हैं । इन दशव्रतों को द्विजाति मात्र को यत्नपूर्वक करना चाहिए ।१०। हे विष्णो ! प्रत्येक अष्टमीके दिन एकबार रात्रि में ही भोजन करना चाहिए । कालाष्टमीकेदिन तो खासतौरसे रात्रिके भोजन का भी त्याग करदेना चाहिये ।११। हे विष्णुदेव ! मास के शुक्ल पक्षकीएका-दशीकेदिन विशेषरूप से भोजनको सर्वथा छोड़ ही देना चाहिए । हे हरे ! कृष्णपक्षकी एकादशीकेदिनमेरा पूजन करके रात्रिमें एकबार भोजन करना उचित है ।१२। शुक्लपक्षकी त्रयोदशीकेदिन रात्रिमें एकबारभोजन करे और कृष्णपक्षकी त्रयोत्रशीके दिन तो शिवके व्रत धारण करने वालों को सर्वथा

कदापि भोजन नहीं करना चाहिए ।१३। हे विष्णु ! कृष्ण और शुक्ल दोनोंपक्षों में जो भी सोमवार पड़े उनमें शिव व्रतियों को केवल एक बार रात्रि में ही यत्न के साथ भोजन करना उचित है ।१४।

व्रतेष्वेतेषु सर्वेषु शैवा भोज्याः प्रयत्नतः ।
यथाशक्ति द्विजश्रेष्ठा व्रत संपूर्त्तिहेतवे ॥१५
व्रतान्येतानि नियमात्कर्तव्यानि द्विजन्मभिः ।
व्रतान्येतानि तु त्यक्त्वा जायन्ते तस्करा द्विजाः ॥१६
मुक्तिमार्गप्रवीणैश्च कर्तव्य नियमादिति ।
मुक्तेस्तु प्रापकं चैव चतुष्टयमुदाहृतम् ॥१७
शिवार्चन रुद्रजप उपवासः शिवालये ।
वाराणस्यां च मरण मुक्तिरेषा सनातनी ॥१८
अष्टमी सोमवारे च कृष्णपक्षे चतुर्दशो ।
चतुर्ष्वपि बलिष्ठं हि शिवरात्रिव्रतं हरे ।
तस्मात्तदेव कर्त्तव्यं भुक्तिफलेप्सुभि ॥२०
एतस्माच्च व्रतादन्यन्नास्ति नृणां तितावहम् ।
एतद् व्रतं तु सर्वेषा धर्मसाधनमुत्तमम् ॥२१

हे द्विजवरो ! इनसब व्रतोंमें शिवसेवियोंको यथाशक्ति व्रतकी समाप्ति परही भोजन करना चाहिए ।१५। हे द्विजवृन्द ! ये समस्त व्रत द्विजातियों को बहुत ही नियमके साथ करने चाहिये । जो लोग इन व्रतोंका त्यागकर दिया करते हैं वे दूसरे जन्म में चोर होते है ।१६। जो मुक्तिके मार्ग को जाना चाहते हैं उन्हें ये व्रत नियमपूर्वक अवश्य ही करने चाहिए । इसका कारण यही है कि ये चारोंबातें मोक्ष के देने वाली होती हैं ।१७। शिवका समर्चन रुद्रका जप शिवालयमें रहकर उपवास और काशीपुरीमेंमृत्यु इनसे सनातनी मुक्ति होती है ।१८। कृष्ण पक्ष में सोमवार से युक्त अष्टमी तथा चन्द्रवारसे युक्तचतुर्दशी होतोये दोनों भगवानशिवके परमप्रसन्नतादेने वाले दिन होते हैं । इसमें कुछ भी चिन्ता नहीं करनी चाहिए ।१९।हे भगवन !

ऊपर बतलाये हुए चारों व्रतों से भी शिव रात्रि का व्रत बहुत अधिक बलवान होता है। अतएव भोग-मोक्ष के दोनों फल प्राप्त करने की इच्छा वालों को यह व्रत अवश्य ही करना चाहिये।२०। शिव रात्रि के व्रत के दिन से अधिक अन्य कोई भी व्रत मनुष्यों के हित करने वाला नहीं है। यह व्रत मनुष्य के समस्त उत्तम धर्मों का साधन है।२१।

निष्कामानां सकामानां सर्वेषां च नृणां तथा।
वर्णानामाश्रमाणां च स्त्रीबालानां तथा हरे ॥२२
दासानां दासिकानां च देवादीनां तथैव च।
शरीरिणां च सर्वेषां हितमेतद् व्रतं वरम् ॥२३
माघस्य ह्यसिते पक्षे विशिष्टा साति कीर्तिता।
निशीथव्यापिनी ग्राह्या हत्याकोटि विनाशिनी ॥२४
तद्दिने चैव यत्कार्यं प्रातराम्य केशव।
श्रूयतां तन्मनो दत्वा सुप्रीत्या कथयामि ते ॥२५
प्रातरुत्थाय मेधावी परमानन्दसंयुतः।
समाचरेन्नित्यकृतं स्नानादिकमतन्द्रितः ॥२६
शिवालये ततो गत्वा पूजयित्वा यथाविधि।
मनस्कृत्य शिवं पश्चात्सङ्कल्पं सम्यगाचरेत् ॥२७
देवदेव महादेव नीलकण्ठ नमोस्तु ते।
कर्त्तुमिच्छाम्यहं देव शिवरात्रिव्रतं तव ॥२८

हे विष्णो! यह व्रत सकाम तथा निष्काम मनुष्यों के चारोंवर्णोंवाले तथा चारोंआश्रमों वाले मानवोंकेस्त्री-वर्ग और बालक वृन्दके धर्मकाश्रेष्ठ साधन माना गया है।२२। यह ऐसा शिवका श्रेष्ठव्रत है जो समस्त दास दासियों का सब देवता आदि का तथा सम्पूर्ण देहधारी मनुष्यों का हित सम्पादन करने वाला है।२३। माघ मास के कृष्णपक्ष में त्रयोदशी तिथि किसी अन्य तिथिसेमिश्रित तथा रात्रिमें व्याप्त होने वाली हो तोउसेग्रहण करना चाहिए क्योंकि ऐसी त्रयोदशी अत्यन्त श्रेष्ठ कही गई है और ऐसी तिथि कोटि (करोड़) हत्याओं के पापों की भी नाश कारणी बताई गई

है ।२४। हे केशव ! शिव चतुर्दशी के दिन प्रातःकाल के समय से लेकर जो-जो भी कर्तव्य पालन करने चाहिए उन्हें अब मैं तुमको बतलाता हूँ आप सब ध्यानपूर्वक श्रवण करो ।२५। धर्मरत बुद्धिमान् मनुष्य को प्रातः कालमें शिवरात्रि के दिन सानन्द शय्यासे उठकर आलस्य का त्यागकरते हुए स्नान आदि नित्य-कर्म करना चाहिये ।२६। इस अपने अह्निक कर्म के सांग सम्पन्न होने पर शिवालय में जाकर विधिपूर्वक भगवान् शिवका अर्चन करे और अन्त में नमस्कार करके पीछे सम्यक् रीति से सत्संकल्प करे ।२७। हे देवों के देव ! हे नीलकण्ठ ! आपको मेरा प्रणाम हैं । मैं आपके इस शिवरात्रि के व्रत को करने की सदिच्छा रखता हूँ ।२८।

तव प्रभावाद् देवेश र्निविघ्नेन भवेदिति ।
कामाद्यः शत्रवो मां वै पीड़ा कुर्वन्तु नैव हि ।।२६
एवं सम्ल्पमास्थाय पूजाद्रव्यं समाहरेत् ।
सुस्थले चैव यल्लिंग प्रसिद्धं चागमेषु वै ।।३०
रात्रौ तत्र स्वयं गत्वा स पाद्य विधिमुत्तमम् ।
शिवस्य दक्षिणे भागे पश्चिमे वा स्थले शुभे ।।३१
निधाय चैव यद् द्रव्यं पूजार्थं शिवसन्निधौ ।
पुनः स्नायात्तदा तत्र विधिपूर्वं नरोत्तमः ।।३२
परिधाय शुभं वस्त्रमन्तर्वासः शुभं तथा ।
आचम्य च त्रिवारं हि पूजारम्भं समाचरेत् ।।३३
यस्य मंत्रस्य यद्द्रव्यं तेन पूजां समाचरेत् ।
अमंत्रक न कर्तव्यं पूजनं तु हरस्य च ।।३४
गीतैर्वाद्यैस्तथा नृत्यैर्भक्तिभावसमन्वितः ।
पजन प्रथमे याम कृत्वा मंत्रं जपेद् बुधः ।।३५

हे देवेश ! मेरी प्रार्थना है कि आपके प्रभाव से मेरा यह व्रत निर्विघ्न होजावे और काम, क्रोधादि महाशत्रु मुझे पीड़ा न देवें ।२६। इस रीति से संकल्पकरकेपूजनकी समस्त वस्तुयें एकत्रितकरे और इसके पश्चातशास्त्रों में प्रसिद्ध ज्योतिर्लिंगकी सुरम्य स्थलमें स्थापना करनी चाहिए ।३०। रात्रि

में वहां स्वयं जाकर श्रेष्ठ विधानके साथ भगवान शिव के दक्षिण भाग में अथवा पश्चिमभागमें स्थलमें उन समस्त पूजा के उपचारोकोशिवके समीप रक्खे और फिर व्रत करने वालेको स्नान करना चाहिये। ये कार्यसमुचित विधि से ही करने चाहिये।३१-३२। अन्दरके वस्त्र के साथ शुभ वस्त्र धारण कर तीनवार आचमन करने चाहिए इसकेपश्चात् शिवके पूजन काआरम्भ करे।३३। जो पूजनका द्रव्य अर्पित करे वह उसीकेमन्त्र के सहितसमर्पित करना चाहिए। मन्त्रोंकेबिना शिवका पूजन वैसे ही कभी नहीं करे।३४। गायन-वादन तथा नर्तनके साथ परमभक्ति की भावनासेबुद्धिमान को प्रथम प्रहर में शिवका पूजन करके फिर 'ॐशिवाय नमः' नमः' अथवा 'ॐ नमः शिवाय:' इस पञ्चाक्षरी मन्त्र का जाप करना चाहिये।३५।

पार्थिव च तदा श्रेष्ठं विदध्यान्मत्रवान्यदि।
कृतनित्यक्रियः पश्चात्पार्थिवं च समर्चयेत् ॥३६
प्रथमं पार्थिवं कृत्वा पश्च त्स्थापनमाचरेत्।
स्तोत्रैर्नानाविधैर्देवं तोषयेद्वृषभध्वजम् ॥३७
माहत्म्यं व्रतसंभूत पठितव्यं सुधीमता।
श्रोतव्यं भक्तवर्येण व्रतसम्पूर्तिकाम्यया ॥३८
चतुष्वपि च यामेषु भूर्तिनां च चतुष्टयम्।
कृत्वाऽवाहतपूर्वं हि विसर्गविधि वै क्रमात ॥३९
कार्य जागणं प्रीत्या महोत्सवसमन्वितम्।
प्रातः स्नात्वा पुनस्तत्र स्थापयेत्पूलयेच्छिनम् ॥४०
ततः सप्राथयेच्भुं नतस्कन्धः कृताञ्जलिः।
कृरसंपूर्णव्रतको नृत्वा तं च पुनः पुनः ॥४१
नियमो यो महादेव कृतश्च व त्वदाज्ञया।
विसृज्यते मया स्वामिन्व्रतं जातमनुत्तमम् ॥४२

इस प्रकार से इस उक्त मन्त्र जप करते हुए ही परम श्रेष्ठ पार्थिव लिंग का निर्माण करे फिर उसे स्थापित करे और नित्य-क्रिया करके पार्थिव लिंग का पूजन करे और अनेक प्रकारके स्तोत्रों द्वारा स्तवन करके

भगवानशिव को सन्तुष्ट एवं प्रसन्न करे।३६-३७। इसके अनन्तर बुद्धिमान शिव-भक्त को व्रत सम्बन्धी माहात्म्य का पाठ करना चाहिए। व्रतकी साङ्गसमाप्तिकी इच्छा से व्रत माहात्म्य का श्रवण करे।३८। इस प्रकार शिव महारात्रि के चारों प्रहरों में आदि में आवाहन से लेकर क्रमशः विमर्जन पर्यन्त भगवान शिव की चारों मूर्तियोंका अर्चन करना चाहिए।३९। इस महारात्रि में बड़े ही उत्साह के साथ विशेष उत्सव करते हुए प्रीति और भक्ति के सहित जागरण करना चाहिए, और दूसरे दिन प्रातः काल होने परपुनः शिव की स्थापनाकर पूजन करना चाहिए।४०। इसके अनन्तर अपने कंधों को झुकाकर विनम्र भाव से हाथों को जोड़ते हुए सदाशिव की प्रार्थना करे। इस तरह सम्पूर्ण व्रत विधि को समाप्तकर भगवान शिव को बारम्बार नमस्कार करके प्रार्थना करनी चाहिए।३१। हे स्वामिन्! हे महादेव! आपकी आज्ञा से मैंने जो व्रत का नियम ग्रहण किया था वह अब समाप्त हो गया है! अब मैं आपका विसर्जन करना चाहता हूँ।४२।

व्रतेनानेन देवेश यथाशक्ति कृतेन च।
सन्तुष्टो भव शवद्य कृपां कुरु ममोपरि ॥४३
पुष्पाञ्जलिं शिवे दत्वा दद्याद्दानं यथाविधि।
नमस्कृत्य शिवायैव नियमं तं विसर्जयेत् ॥४४
यथाशक्ति द्विजाञ्छैवान्यतिनश्च विशेषतः।
भोजयित्वा सुसन्तोष्य स्वयं भोजनमाचरेत् ॥४५
यामे यामे यथा पूजा कार्या भक्तवरैहरे।
शिवारात्रौ विशेषेण यामहं कथयामि ते ॥४६
प्रथमे चैव यामे च स्थापितं पार्थिवं हरे।
पूजयेत्परया भक्त्या सूपचारैरनेकशः ॥४७
पंचद्रव्यैश्च प्रथमं पूजनीयो हर सदा।
तस्य तस्य च मन्त्रेण पृथग्द्रव्यं समर्पयेत् ॥४८
तच्च द्रव्यं समर्प्यैव जलधारां रुदेन वै।
तच्च द्रव्यं समर्प्यैव जलधारां रुदेन वै।
पश्चाच्च जलधाराभिर्द्रव्याण्युत्तारयेद् बुधः ॥४९

हे देवेश्वर ! हे सर्वाद्य ! आप मेरे यथा शक्ति किये हुए इस व्रत से सन्तुष्ट तथा प्रसन्न होकर मुझ सेवक पर कृपा दृष्टि करें।४३। इसके पश्चात भगवान् शंकरकोपुष्पों की अन्जलि समर्पित करके सविधि दान देवे तथा शिवको प्रणाम करके अपने गृहीत नियमका विसर्जन करे।४४।शिव के भक्त एवं उपासक ब्राह्मणोंको और विशेष रूपसे संन्यासियों को अपनी शक्तिकेअनुसार तृप्तिपूर्वक भोजनकराकर पूर्णसन्तुष्ट करे। और फिरस्वयं भी भगवान के प्रसाद के स्वरूप में प्राप्त भोजन करे।४५। हे विष्णु ! शिव के श्रेष्ठ भक्तों को जैसे प्रत्येक प्रहर में महाशिवरात्रि के दिन विशेष पूजन करना चाहिए, उस पूजन के विधान को आपको सुनाता हूं।४६। हे विष्णुदेव। पहिले प्रहर में संस्थापित पार्थिव शिवलिंग का अनेक उप-चारों के द्वारा परम भक्ति पूर्वक अर्चन करे ।४७। सर्वप्रथम पाँचकृत्यों द्वारा शिव का पूजन करे प्रत्येक वस्तु के मन्त्र से उसे समर्पित करना चाहिए, प्रत्येक द्रव्य का पृथक् २ समर्पण करे।४८। पूजन के द्रव्यों के समर्पण के साथ प्रत्येक द्रव्य के पश्चात् जल की धारा चढ़ानी चाहिए। इसके अनन्तर विद्वान व्रत करने वाले को जल की धारा से समर्पण किये हुए द्रव्य को उतारना चाहिये।४९।

शतमष्टोत्तरं मन्त्रं पठित्वा जलधारया।
पूजयेच्च शिवं तत्रनिर्गुण गुणरूपिणम् ।।५०
गुरुदत्तेन मत्रेण पूजयेद् वृषभध्वजम्।
अन्यथा नाममंत्रेण पूजयेद्वै सदाशिवम् ।।५१
चन्दनेन विचित्रेण तण्डुलैश्चाप्यखण्डितैः।
कृष्णैश्चैव तिलैः पूजा कार्या शभोः परात्मनः ।।५२
कुष्पैम्च शतपत्रैश्च करवीरैस्तथा पुनः।
अष्टभिर्नामामंत्रैश्चार्पतेत्पुष्पाणि शंकरे ।।५३
भव शर्वस्तथा रुद्रः पुनः पशुपतिस्तथा।
उग्रो महांस्तथा भीम ईशान इति तानि वै ।।५४
श्रीपूर्वैश्च चतुर्थ्यन्तैर्नामभि पूजपेच्छिवम्।
पश्चाद् धूपं च दीपं च नैवेद्यं च ततः परम् ।।५५

आद्ये यामे च नैवेद्यं पक्वान्नं कारतेद् बुधः ।
अर्घं च श्रीफलं दत्वा ताम्बूलं च वेदयेत् ॥५६

उस समय एक सौ आठवार ॐ नम शिवायः' इस परमविख्यातपंचक्षरी मन्त्रको पढ़कर निर्गुण एवं सगुणस्वरूप शिवका पूजन करना चाहिए ।५०।गुरुसे उपदिष्ट मन्त्र के द्वारा अथवा नाम मन्त्रसे सदाशिवका समर्चन करना चाहिए ।५१। शिव का पूजन सुन्दर चन्दन अखण्डित अक्षत (चावल) काले तिलों से करना उचित है ।५२। कमल के दल, सौप और कनेर से शिव का पूजन करे और शिव भगवानके ऊपर शिवकेआठों नाम मन्त्रों के द्वारा पुष्प चढ़ावे ।५३। भव, शर्व रुद्र, पशुपति, महान भीम, उग्र ईशान ये शिव भगवान के आठ नाम हैं ।५४। 'श्री' पहिले लगाकर नाम के आगे चतुर्थी विभक्ति लगावे । तथा ॐ श्री भावय नमः इत्यादिवत् सब नामों से शिव की अर्चना करे । इसके पश्चात धूप, दीप, नैवेद्य आदि चढ़ाना चाहिए ।५५। प्रथम प्रहर में बुद्धिमान भक्तों को पक्वान्न सहित नैवेद्यका समर्पण करना चाहिए तथा अर्घ, श्रीफल,विल्व, नारियल चढ़ाकर अन्त में ताम्बूल समर्पित करे ।५६।

नमस्कार ततो ध्यानं जपारप्रोक्तो गुरोर्मनोः ।
अन्यथा पञ्चवर्णेन तेषयेत्तेन शंकरम् ॥५७
धेनुमुद्रां प्रदर्श्याय सुजलेस्तर्पण चरेत् ।
पञ्चब्राह्मणभोजं च कल्पयेद्वै यथाबलम् ॥५८
महोत्सवश्च कर्तव्या यावद् यामो भवेदिह ।
ततः पूजाफल तस्मै निवेद्य च विसर्जयेत् ॥५९
पुनर्द्वितीये यामे च स कल्पं सुसमावरेत् ।
अथवैकवैव संकल्प्थ कुत्पूजां तथाविधाम् ॥६०
द्रव्यैः पूर्वैस्तथा पूजा कृत्वा धारा समर्पयेत् ।
पूर्वतो द्विगुणं मन्त्रं समुच्चार्यार्चयेच्छिवम् ॥६१
पूर्वैस्तिलयवैश्चाथ कमलः पूजयेच्छिवम् ।
बिल्वपत्रैर्विशेषेण पूजयेत्परमेश्वरम् ॥६२

अर्घ्यं च बीजपूरेण नैवेद्यं पायसं तथा ।
मन्त्रावृत्तिस्तु द्विगुणा पूर्वतोऽपि जनार्दन ।।६३

इसके पश्चात् नमस्कार और ध्यान करके गुरुदिष्ट मन्त्र का अथवा मेरे मन्त्रका जापकरना चाहिए । किम्बा पञ्चाक्षरी मन्त्र से शिवको सतुष्ट करे ।५७। इसके पश्चात् धेनुमुद्राको प्रदर्शित कर निर्मल जल के द्वारामहेश्वर की तृप्ति करे और अपनी शक्ति के अनुसार पाँच ब्राह्मणों को भोजन करावे ।५८। इसके पश्चातशेष जितना भी समय रहे महोत्सव करता रहे। इसके अनन्तर समस्त पूजाके फलोंको देकर देवका विसर्जन करना चाहिए ।५९। यहाँ तक प्रथम प्रहरकी पूजा हुई । अब द्वितीय प्रहर के आरम्भ में भली-भांति सङ्कल्प करे अथवा आरम्भमें एकही बार संकल्पकरे पूजन का आरम्भ करे जोकि पूर्ववत् ही होवे ।६०। पूर्व की भांति ही प्रथमद्रव्यों से पूजा करके फिर जलकी धारा समर्पित करे । इसदूसरे प्रहर में प्रथम प्रहर की अपेक्षा द्विगुण मन्त्रोंका जाप करते हुए शिवार्चन करना चाहिए ।६१। प्रथम प्रहरके पूजनसे शेष रक्खे हुए तिल, जौ चावल और कमलों से और विशेष रूप से बिल्व पत्रों से सदा शिव का पूजन करना चाहिए ।६२। हे विष्णो ! बिजौरा नीबू का अर्घ्य तथा खीरके नैवेद्य का अर्पण कर और पहिले से भी दुगुने मन्त्रों का जाप करना चाहिए ।६३।

ततश्च ब्राह्मणानां हि भोज्यसंकल्पमाचरेत् ।
अन्यत्सर्वं तथा कुर्याद्यावच्च गितयावधि ।।६४
यामे प्राप्ते तृतीये च पूर्ववत्पूजन चरेत् ।
यवस्थाने च गोधूमाः पुष्पाण्यर्कभवानि च ।।६५
धूपैश्च विविधैस्तत्र दीपैर्नानाविधैरपि ।
नैवेद्यापूपकैर्विष्णोः शाकैर्नानाविधैरपि ।।६६
कृत्वैवं चाथ कर्पूरैरारातिकविधिं चरेत् ।
अर्घ्यं च ताडिमं दद्याद् द्विगुणं जपम चरेत ।।६७
ततश्च ब्रह्मभोजस्य संकल्पं च सदक्षिणम् ।
उत्सवं पूर्ववत्कुर्याद्यावद्यामावधिर्भवेत ।।६८

याम चतुर्थ संप्राप्ते कुर्यात्तस्य विसर्जनम् ।
प्रयोगादि पुना कृत्वा पुजां विधिवदाचरेत् ॥६९
मापैः प्रियंगुभिर्मुद्‌गैः सप्तधान्यैस्तथाथवा ।
शंखीपुष्पैर्बिल्वपत्रैः पूजयेत्परमेश्वरम् ॥७०

इसके पीछे योग्य ब्राह्मणों के भोजन करने का सकल्प करे बाकी सम्पूर्ण पूजनको प्रथम प्रहरके समान द्वितीय प्रहरकी समप्तितक करता रहे ।६४। यहां द्वितीय प्रहर की अर्चना समाप्त हो जाती है और अब तीसरे प्रहरके पूजनका विधान आरम्भ होता है । इस प्रहरमेंभी पूर्ववत् पूजन का क्रम करना चाहिए । यज्ञोके स्थान में गेहूँ तथा आक के पुष्प चढ़ावे।६५। हे विष्णुदेव ! तीसरे प्रहरमें अनेक तरह की उत्तम धूप बहुत दीपक हुआ का नैवेद्य और अनेक भाँति के शाकों से पूजन करे ।६६। इस तरह पूजन करके शिव की आरती कपूर से करे । अनारका अर्घ्य देवे और पहिले की भपेक्षा द्विगुणित मन्त्रजाप करना चाहिए ।६७। इसके अनन्तर दक्षिणा के साथ ब्रह्मभोज करानेका संकल्पकरे और तृतीय प्रहरकी समाप्तिके पर्यन्त पहिले की तरह उत्सव करता ही करे ।६८। यह तीसरे प्रहर की पूजा समाप्त होती है अब चौथे प्रहर की अर्चन का आरम्भ होता है जब चतुर्थ प्रहर की पूजा का अवसर आवे तो पहिलेका विसर्जन कर देवे और फिर नये सिरे से आवाहन आदि करके पूर्ण विधि-विधान से पूजन करे ।६९। अब उड़द, मूंग, कांगनी अथवा सातधान्यों, शंखों पुष्प और बिल्वपत्रों से शिव का अर्चन करना चाहिये ।७०।

नैवेद्यं तत्र दद्याद्वै मधुरैर्विविधैरपि ।
अथवा चैव माषान्नैस्तोषयेच्च सदाशिवम् ॥७१
अर्ध दद्यात्कदल्यश्च फलेनैवाथ वा हरे ।
विविधैश्च फलैश्चैव दद्यादर्घ्यं शिवाय च ॥७२
पूर्वतो द्विगुणं कुर्यान्मन्त्रजापं नरोत्तमः ।
सकल्पं ब्रह्मभोजस्य यथाशक्ति चरेद् बुधः ॥७३
गीतैर्वाद्यैस्तथा नृत्यैर्नयेत्कालं च भक्तितः ।

मयोत्सववैर्भक्तजनैर्यावत्स्यादरुणोदयः ॥७४
उदये च तथा जाते पुनः स्नात्वार्चयेच्छिवम् ।
नानापूजोपहारैश्च स्वाभिषेकमथाचरेत् ॥७५
नानादिधानि दानानि भोज्यं च विविध तथा ।
ब्राह्मणानां यतीनां च कर्तव्यं यामसख्यया ॥७६
शंकराय नमस्कृत्यञ्जलिमथाचरेत् ।
प्रार्थयेत्सुस्तुतिं कृत्वा मंत्रैरेतैर्विचक्षणः ॥७७

इसके पश्चात् अनेक प्रकारके मिष्ठान्न नैवेद्योंको शिवके लिए समर्पित करे अथवा,उड़दके बने हुए पक्वान्नसे शिवको सन्तुष्ट करना चाहिए ।७१। हे हरे ! इस समय केला की गैरका अर्घ्य देवे किम्बा ऋतुके विविधफलों से भगवान शिव को अर्घ्य देना चाहिए ।७२। इसके पश्चात विद्वान शिवव्रती व्यक्ति को पहिलेसे दुगुना मन्त्र जापकर अपनी शक्ति के अनुकूल ब्राह्मण-भोजन कराने का संकल्प करना चाहिए ।७३। भक्तिपूर्वक गायन, वाद्य, नर्तन आदि को करते हुए भक्तोंके सहित महान उत्सवका समारोह अरुणोदय पर्यन्त करके समय के शेष भाग को व्यतीतकरना चाहिए ।७४। भुवन भास्कर के समुदित होने पर स्नान करके पुनःशिव का अर्चनकरना चाहिए । तत्पश्चात अनेक पूजा के योग्य भेंटों के द्वारा अपना अभिषेक करना चाहिए ।७५। इसके अनन्तर प्रहरों के अनुसार अर्थात् प्रहरों की संख्या के अनुकूल विविध तरह के दान, विभिन्न प्रकार के भोजन ब्राह्मणों तथा संन्यासियों को अपने सकल्पानुरूप समर्पित करने चाहिए ।७६। इसके पश्चात् शिवको प्रणामकर पुष्पाञ्जलि समर्पितकरे और फिर सुबुद्धि भक्त को निम्न प्रकार के मन्त्रों से प्रार्थना करनी चाहिए ।७७।

तावकस्त्वद्गतप्राणास्त्वच्चित्तोऽहं सदा मृड ।
कृपानिधे इति ज्ञात्वा यथा योग्य तथा कुरु ॥७८
अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानाज्जपपूजामिक मया ।
कृपानिधित्वाज्ज्ञात्वैव भूनाथ प्रसीद मे ॥७९
अनेनैवोपवासेन यज्जातं फलमेव च ।

तैनैव प्रीयता देवः शंकरः सुखदायकः ॥८०
कुले मम महादेव भजनं तेऽस्तु सर्वदा।
म भूक्तस्य कुले जन्म यत्र त्वं न हि देवता ॥८१
पुष्पांजलिं समर्प्यैव तिलकाशिष एव च।
गृह्णीयाद् ब्राह्मणेभ्यश्च ततः शम्भुं विसर्जयेत् ॥८२
एव व्रतं कृतं येन तस्माद् दूरो न हि।
न शक्यते फलं वक्तुं नादेयं विद्यते मम ॥८३
अनायासतया चेद्व कृतं व्रतमिद परम्।
तस्य वै मुक्तिबीज च जातं नात्र विचारणा ॥८४

हे कृपानिधे ! हे शिवजी ! मैं आपका हूँ और आपके ही प्राणोंवाला हूँ तथा आप के ही चित्त वाला हूँ यही समझकर जो भी उचित हो वही आप करें।७८। हे भूतनाथ ! मुझ सेवक के द्वारा अज्ञानवश पूजन तथा जप आदि किया गया है उससे आप अपनी स्वाभाविक दयालुता के कारण से मुझ पर प्रसन्न होवें।७९।इस परमपावन व्रतसेजोभी उत्तम फल होता है। उससे आप समस्त सुखों के प्रदान करने वाले मुझ पर प्रसत्नता करें।८०। हे महादेव ! मैं यही चाहता हूँ कि मेरे कुल में सदा आपका भजन पूजन करते रहें और मैं कभीभी ऐसे वश में न होऊँ जिसमें आपकानाम संकीर्तन न होता हो।८१। इस रीति से निवेदन करके पुष्पांजलि समर्पित कर ब्राह्मणोंसे आशीर्वाद के तिलोंका ग्रहण करे और इसके अनन्तर शिव का विसर्जन कर देवे।८२। इस प्रकार से जो भी व्रत करते, उनसे भगवान् शम्भु कभी दूर नहीं रहा करते हैं। इस व्रत का पूर्ण फल मैं नहीं कह सकता हूँ। ऐसे भक्त को मुझे कुछ भी अदेय वस्तु नहीं होती।८३। यदि बिना कुछ श्रम के भी यह परम श्रेष्ठ व्रत किया गया हो, उसी की भी मोक्ष बीज अवश्य होता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।८४।

प्रतिमासं वृतं चैव कर्तव्यं भक्तितौ नरैः।
उद्यापनविधिं पश्चात्कृत्वा सांगभलं लभेत् ॥८५
व्रतस्य करणान्न न शिवोऽहं सर्वदुःखहा।

वदद्भि र्भुक्ति मुक्ति च सर्वं वै वाञ्छितं फलम् ॥८६
इति शिववचन निशम्य विष्णुर्हिततरमद्भुतमाजगाम धाम ।
तदनु व्रतनुत्तमं जनेष समचरदात्महितेषु चैतदेव ॥८७
कदाचिन्नारदायाथ शिवरात्रिव्रतन्त्विदम् ।
भुक्तिमुक्तिप्रदं दिव्यं कथयामास केशवः ॥८८

ससार में मनुष्यों का कर्तव्य है कि शिव देव को प्रसन्न करने के लिए प्रत्येक मासमें चतुर्दशी के दिन इस व्रतको करना चाहिए और भक्ति के साथ पीछे उद्यापन करके पूर्ण अङ्गोंवाला इसके फलका लाभ प्राप्त करे ।८५। इस व्रतके करने वाले को निश्चत रूप से अवश्य ही मैं सारा दुःख दूर भाग देता हूँ और उसे भुक्ति मुक्ति दोनो प्रदान कर सम्पूर्ण अभीप्सित फल दिया करता हूँ ।८६। सूतजी ने कहा—भगवान विष्णु देव महेश्वर के इस प्रकार के परम हितप्रद वचनो का श्रवण कर अद्भुत एवं अतुल तेज को प्राप्त हुए और इसके उपरान्त उन्होने अपने हित चाहने वाले मनुष्यों के निकट में उपस्थित होकर यह शिवका परम श्रेष्ठ व्रत किया ।८७। एकबार इसी दिव्य शिव के व्रतके विषय में भगवान विष्णु ने श्रीनारदजी से कहा था कि यह भोग मोक्ष दोनो का देने वाला सर्वोत्तम व्रत है ।८८।

॥ शिवरात्रि व्रत का उद्यापन ॥

उद्यापनविधिं ब्रूहि शिवरात्रिव्रतस्य च ।
यत्कृत्वा शंकरः साक्षात्प्रसन्नो भवति ध्रुवम् ।
श्रूयतामृषयो भक्तया तदुद्यापनमादराद् ।
यस्यानुष्ठानतः पूर्ण भवति तद् ध्रुवम् ॥२
चतुर्दशाब्द कर्तव्यं शिवरात्रिव्रतं शुभम् ।
एकभक्तं त्रयोदश्यां चतुर्दश्यामुपोषणम् ॥३
शिवरात्रिदिने प्राप्ते नित्यं संपाद्य वै विधिम् ।
शिवालयं ततो गत्वा पूजां कृत्वा यथाविधि ॥४
ततश्च कारयेद्दिव्यं मण्डलं तत्र यत्नतः ।

गौरातिलकनाम्ना वै प्रसिद्धं भुवनत्रये ॥५

तन्मध्ये लेखयेद्दिव्यं लिंगतोभद्रमण्डलम् ।

अथवा सर्वतोभद्रं मण्डपान्तः प्रल्पयेत् ॥६

कुंभास्तत्रं प्रकर्तव्याः प्राजापत्यविसंज्ञया ।

सवंस्त्रा सफलास्तत्र दक्षिणाससिताः शुभ्यः ॥७

ऋषियों ने कहा—अब आप महाशिवरात्रि के व्रत की उद्यापनकीविधि का वर्णन करें जिसके करने से साक्षात् भगवान् शिव निश्चित रूप से प्रसन्न हो जाया करते हैं ।१। सूतजी ने कहा—हे ऋषिगण ! आप पूर्ण भक्ति के साथ आदर पूर्वक महाशिव रात्रि के व्रत के उद्यापन करने के विधान को परम प्रेम पूर्वक श्रवण करो जिसके कर देने से यह महाव्रत निश्चय ही पूर्ण हो जाया करता है ।२। इस परम शुभ शिवरात्रिका व्रत चौदह वर्ष तक करना चाहिये । इस व्रत में त्रयोदशी के दिन एक बार भोजन करे और चतुर्दशी के दिन उपवाश करना चाहिये ।३। शिव रात्रि के दिन नैत्यिक विधि को समाप्त करके भगवान शिव के मन्दिर में जाकर सविधि उनका अर्चन करना चाहिए ।४। इसके अनन्तर भगवान शम्भु के समीप में यत्न के साथ दिव्य मण्डल की रचना करानी चाहिये जिस मण्डल की त्रिभूवन में गौरीतिलक के शुभ नाम से ख्याति है ।५। इसके मध्य में सुन्दर लिंगतोभद्र मण्डलको बनावे अथवा मंडलके अन्दर सर्व तो भद्र चन्द्र का निर्माण करना चाहिये ।६। उस जगह प्राजापत्य के नाम से वस्त्र फल और दक्षिणा के सहित शुभ घटों की स्थापना करे ।७।

मण्डलस्य च पार्श्वे वै स्थापनीयाः प्रयत्नतः ।

मध्ये चक्रश्च संस्थाप्यः सौवर्णो वापरो धटः ॥८

तत्रोमासहिताँ शभुमूर्ति निर्माय हाटकीम् ।

पलेन वा तदर्द्धेन यथाशक्तयाऽथवा व्रती ॥९

निधाय वामभागे तु शिवामूर्तिमतन्द्रितः ।

मदीयां दक्षिणे भागे कृत्वा रात्रौ प्रपूजयेत् ॥१०

आचार्यं वरयेत्तत्रर्चात्विग्भिः सहित शुचिम् ।

अनुज्ञातश्च तैर्भक्त्या शिवपूजां समाचरेत् ।।११
रात्रौ जागरण कुर्यात्पूजां यामोद्भवां चरन् ।
रात्रिमाक्रमयेत्सर्वा गीतनृत्यादिना व्रती ।।१२
एवं सम्पूज्य विधिवत्सतोष्य प्रतिरेव च
पुनः पूजां ततः कृत्वा होम कुर्याद्यथाविधि ।।१३
यथाशक्ति विधान च प्राजाप्रत्यं समाचरेत् ।
ब्राह्मणान्भोजयेत्प्रीत्या दद्याद्दानानि भक्तितः ।।१४

उस मण्डप के समीप मध्य में एक या दो सुवर्ण कलशों की स्थापना करनी चाहिये जहाँकि शिवके व्रत करने वाले व्यक्ति एक अथवा आधेपल की सुवर्णकी पार्वतीके साथ शिव की प्रतिमा स्थापित करे ।८-९। आलस्य का त्याग कर वहाँ पर वाम भाग में जगदम्बा पार्वती की प्रतिमा और दक्षिण भाग में भगवान शिवकी मूर्ति को स्थापना सविभिकर रात्रि में उनका अर्चन करना चाहिए ।१०। उस मण्डप योग्य ऋत्विजों और आचार्य का वरण भी करे जिनकी आज्ञा के अनुसार ही भक्ति भाव के साथ शिव की वन्दनाचल करना चाहिये ।११। प्रत्येक प्रहरमें पूजन करते हुए रात्रि का जागरण करे और बड़े उत्साह के साथ गीत भजन तथा नृत्य आदि से उस रात्रि का समय व्यतीत करे ।१२। इस रीति से रात्रि को सविधि शिवपूजन कर शिव को सन्तुष्ट करे और फिर प्रातःकाल में पुनः शिवार्चन कर हवन करना चाहिए ।१३। इस प्रकार अपनी शक्ति के अनुसार प्राजापत्य व्रत का विधान करे और इसके उपरान्त प्रेमपूर्वक ब्रह्मभोज कराके दान देवे । इस समस्त विधान में पूर्ण भक्ति की भावना होनी चाहिए ।१४।

ऋत्विजश्च सपत्नीकान्वस्त्रालकारभूषणैः ।
अलंकृत्य विधानेन दद्याद्दानं पृथक्पृथक् ।।१५
गां सवत्सां विधानेन यथोपस्करसंयुताम् ।
उक्त्वा चार्याय वै दद्याच्छिवो मे प्रायतातिति ।।१६
ततः सकुम्भां तन्मूर्ति सवस्त्रां वृषभे स्थिताम् ।
बालंकारसहितामाचार्याय निवेदयेत् ।।१७

ततः संप्रार्थयेद्देवं महेशानं महाप्रभुम् ।
कृतांजलिर्नतस्कन्धः सुप्रीत्या गद्गदाक्षरः ॥१८
देवदेव महादेव शरणागतवत्सल ।
व्रतेनानेन देवेशं कृपां कुरु ममोपरि ॥१९
मया भक्त्यनुसारेण व्रतमेतत्कृतं शिव ।
न्यून सम्पूर्णता यातु प्रासाद्रात्तव शङ्कर ॥२०
अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानाज्जपपूजादिकं मया ।
कृतं तदस्तु कृपया सफलं तव शंकर ॥२१
एवं पुष्पाञ्जलिं दत्वा शिवाय परमात्मने ।
नमस्कारं ततः कुर्यात्प्रार्थनाँ पुनखे च ॥२२
एवं व्रतं कृतं येन न्यूनं तस्य न विद्यते ।
मनोऽभीष्टां ततः सिद्धिं लभते नात्र संशयः ॥२३

जो वरण किये हुए ऋत्विज हों उन्हें सपत्नीक वस्त्राभूषण आदि से सुसज्जित कर विधि के साथ पृथक्-पृथक् उन्हें दान देना चाहिए ।१५। सत्वसा दूध देने वाली गौका दान समस्त वस्तुओं के साथ आचार्य को देवे और यह कहकर देना चाहिए कि भगवान् शिव मुझ पर प्रसन्न होवें ।१६। इसके उपरान्त कलश तथा वस्त्रादि के साथ वृषभपर विराजमान शिव की प्रतिमा को वस्त्राभूषणों से युक्त आचार्य को समर्पित कर देवे ।१७। इसके पश्चात् अपने कन्धोंको नीचे की ओर झुकाकर विनम्र भाव से दोनों हाथ जोड़कर शिव के समीप गद्गद् वाणी से प्रार्थना करे ।१८। हे देवों के देव ! हे महादेव ! हे शरणागत वत्सल ! हे देवेश ! आप अब इस व्रत से मेरे ऊपर प्रसन्न होकर कृपा की दृष्टि करे ।१९। हे शिव! भक्त की भावना का आश्रय लेकर मैंने इस व्रत को किया है सो हे शङ्कर! इसमें कुछ न्यूनताभी रह गई हो तो आपकी प्रसन्नता से पूर्णता को प्राप्त हो ।२०। हे शंकर ! मैने ज्ञान या अज्ञानसे जो कुछ भी आपका पूजन तथा जप आदि किया है सो सब आपकी अपनी कृपा से सफल होवे ।२१। इस विधिसे नम्र प्रार्थना के सहित पुष्पों की अञ्जलि समर्पित कर शिव को प्रणाम करे ।२२। इस

तरह जिसने भी इस व्रत को किया है उसमें कोई भी न्यूनता नहीं रहा करती है और वह शिवव्रती मनकी चाही हुई सिद्धि को प्राप्त कर लेता है इसमें कुछ भी सन्देह नहीं ।।२३।।

व्याध-कथा प्रसंग में शिवरात्रि माहात्म्य वर्णन

सूत ते वचनं श्रुत्वा परानन्दं वयं गताः ।
विस्तरात्कथय प्रीत्या तदेव व्रतमुत्तमम् ।।१
कृतं पुरा च केनेह सूतैतद् व्रतमुत्तमम् ।
कृत्वाप्यज्ञानतश्चैव प्राप्तं किं फलमुत्तमम् ।।२
श्रूयतामृषयः सर्वे कथयामि पुरातनम् ।
इतिहासं निषादस्य सर्वपापप्रणाशनम् ।।३
पुरा कश्चिद्वने भिल्लो नाम्ना ह्यासीद् गुरुद्रुहः ।
कुटुम्बी बलवान्क्रूरः क्रूरकर्मपरायणः ।।४
निरन्तरं वने गत्वा मृगान्हन्ति स्म नित्यशः ।
चौर्य्यं च विविधं तत्र करोति स्म बने वसन् ।।५
बाल्यादारभ्य तेनह कृतं किंचिच्छुभं न हि ।
महान्कालो व्यतीयाय वने तस्य दुरात्मनः ।।६
कदाचिच्छिवरात्रिश्च प्राप्तासीत्तत्र शोभना ।
न दुरात्मा स्म जानाति महष्टननिवासकृत ।।७

ऋषियों ने कहा—हे सूतजी! आपके वचन सुनकर हम सबको अत्यन्त आनन्द हुआ है । अब आप कृपा कर उसी परम श्रेष्ठ व्रत को प्रीतपूर्वक विस्तार से कहिये ।१। हे सूतजी ! इस संसार में सर्वप्रथम यह व्रत किसने किया था और अज्ञान से भी इस श्रेष्ठ व्रत को करने से क्या फल प्राप्त होता है ? कृपा कर यह सब बताइये ।२। सूतजी ने कहा—हे ऋषिगण ! सम्बन्ध में मैं एक परम प्राचीन तथा समस्त पापों का नाशक निषाद का आख्यान तुमको सुनता हूँ ।३। बहुत पहिले पुराने समय में गुरुद्रुह नाम से विख्यात, बहु कुटुम्बी और अति बलवान् एक भील बन में रहा करता था जोकि सर्वदा हत्या आदि करने के बुरे से बुरे कर्मों में तत्पर रहता था ।४

उसका यह नित्य का काम कि बन में मृगों की शिकार करे और वहाँ आते-जाते लोगों के धन का अपहरण करे।५। उसने अपने बचपन से लेकर युवावस्था तक कोई भी शुभ कर्म कभी नहीं किया और इसी रीति से बन में रहते हुए उस दुरात्मा का बहुत समय व्यतीत हो गया ।६। इस तरह रहते हुए उसे शुभ महाशिबरात्रि का समय आ गया किन्तु उस दुष्ट बुद्धि को इस परम पावन दिन का कुछ भी ज्ञान नहीं हुआ ।७।

एतस्मिन्समये भिल्लो मात्रा पित्रा स्त्रिया तथा ।
प्रार्थितश्च क्षुधाविष्टैर्भक्ष्यं देहि वनेचर ।।८
इति संप्रार्थितः सोऽपि धनुरादाय सत्वरम् ।
जगाम मृगहिंसार्थं बभ्राम सकलं वनम् ।।९
दवयोगात्तदा तेन न प्राप्तं किंचदेव हि ।
अस्तं प्राप्तस्तदा सूर्यः स वै दुःखमुपागतः ।।१०
किं कर्तव्यं क्व गतव्यं न प्राप्तं मेऽद्य किंचन ।
बाल श्च ये गृहे तेषां किं पित्रोश्च भविष्यति ।।११
मीदय वै कलत्रं च तस्याः किंचिद् भविष्यति ।
किंचिद् गृहीत्वा हि मया मन्तव्यं नान्यथा भवेत् ।।१२
इत्थं विचार्य स व्याधो जलाशयसमीपगः ।
जलावतरण यत्र तत्र गत्वा स्वय स्थितन ।।१३
अवश्यमत्र कश्चिद्वै जीवश्चैवागमिष्यति ।
त हत्वा स्वगृह प्रीत्या यास्याभि कृतकार्यकः ।।१४

उसी समय उसके माता-पिता और पत्नी ने उससे कहा-हम भूख से अत्यन्त व्याकुल हो रहे हैं, हमको कहीं से भोजन दो ।८। माता-पिता और पत्नीकी इस बातको सुनकर वह अपना धनुष उठाकर शीघ्रही मृग मारने के लिये घोर वन में गया और चारों ओर बहुत घुमा-फिरा किन्तु देवयोग से उस दिन उसे कुछ शिकार नहीं मिली। जब सूर्य अस्ताचलगामी होगए तो उसे बड़ी चिन्ता हुई और वह अत्यन्त दुःखित हुआ ।९-१०। उसने बन में सोचा क्या करूँ और अब कहाँ जाऊँ ? खेद की बात है कि आज

मुझे कुछभी भोजन का साधन नहीं मिला है मैं अपने माता-पिता और पुत्र पत्नी को क्या खिलाऊँगा ? ।११। मेरी स्त्री गर्भवती है अतः उसके लिये अवश्य ही कुछ खानेकी वस्तु लेजाना आवश्यक है। अतः अब मैं भोजनका सामान लिये बिना घर को वापिस नहीं लौटूंगा ।१२। ऐसा विचार करके वह भील एक सरोवर के तटपर जाकर बैठ गया ।१३। उसने सोचा यह जल पीने का घाट है इसलिये यहाँ अवश्य ही कोई न कोई जीव आवेगा। उसका वध करके सफल होकर ही आनन्द से घर में जाऊँगा ।१४।

इति मत्वा स वै वृक्षमेकं बिल्वेमिसंज्ञकम् ।
सम रुह्य स्थितस्तत्र जलमादाय भिल्लकः ।।१५
कदा यास्यति कश्चिद्वै कदा हन्यामह पुनः ।
इति बुद्धि समास्थाय स्थितोऽसौ क्षुत्तृषान्वितः ।।१६
तद्रात्रौ प्रथमे यामे मृगी त्वेका समागत।
तृषार्ता चकिता सा च प्रोत्फालं कुर्वती तदा ।।१७
तां दृष्ट्वा च तदा तेद तद्वधार्थमथो शरः ।
सहृष्टेन द्रुत बाणं धनुषि स्वे हि सदधे ।।१८
इत्येवं कुर्वतस्तस्य जल बिल्वदलानि च ।
पतितानि ह्यधस्तत्र शिवलिंगमभूत्ततः ।।१९
यामस्य प्रणमस्यैव पूजा जाता शिवस्य च ।
तन्महिम्ना हि तस्यैव पातक गलितं तदा ।।२०
तत्रत्यं चैव तच्छब्दं श्रुत्वां सा हरिणी भिया ।
व्याधं दृष्ट्वा व्याकुल हि तत्त्वनं चेदमब्रतीत् ।। १

वह भील अपने दिलमें ऐसा विचार करके जल लेकर एक बेलके वृक्ष पर चढ़ गया और वहाँ बैठ गया ।१५। कब कोई जीव आवे और कब मैं उसे मारूँ-यही मनमें विचार करके भूखा-प्यासा वह भील वहाँ प्रतीक्षामें स्थित हो गया ।१६। जब रात्रि का प्रथम प्रहर हो गया तो एक हिरनी प्यास से बेचैन होकर हाँपती हुई वहाँ आई ।१७। हे विष्णुदेव ! उसी मृगी को देखकर उस व्याधको बहुत प्रसन्नता हुई और उसने हिरनी को

मारने के लिए तुरन्त ही धनुष पर बाण चढ़ा लिया ।१८। धनुष और तीर को साधनेके प्रयत्नमें उनके हाथसे बेलपत्र और जल नीचे गिर गये जहाँ कि एक शिव का ज्योतिर्लिङ्ग स्थापित था ।१६। इस तरह से अनजाने ही उसके द्वारा अनायास भगवान् शिवके प्रथम प्रहरका अर्चन हो गया । इस महारात्रि में शिव पूजनके प्रभावसे उसके समस्त पापों का क्षय हो गया । ।२०। उसके धनुष की ध्वनिको सुनकर और भील को वधके लिये प्रस्तुत देखकर वह हिरनी अत्यन्त भयभीत होकर उससे कहने लगी ।२१।

किं कर्तु मिच्छसि व्याध सत्यं वद ममाग्रतः ।
तच्छ्रु त्वा हरिणीवाक्यं व्याधो वचनमब्रवीत् ॥२२
कुटुम्ब क्षुधितं मेऽद्य हत्वा त्वं तर्पयाम्यहम् ।
दारुण तद्वचः श्रु त्वा दृष्ट्वा तं दुर्द्धरं खलम् ॥२३
किं करोमि क्व गच्छामि ह्यूपायं रचयाम्यहम् ।
इत्थ विचार्य्यं सा तत्र वचन चेदमब्रवीत् ॥२४
मन्मांसेन सुखं ते स्यद्देहस्यानर्थकारिणः ।
अधिकं किं महत्पुण्यं धन्याहं नात्र संशयः ॥२५
उपकारकरस्यै यत्पुण्यं जायते त्विह ।
तत्पुण्यं शक्यते नैव वक्तुं वर्षशतैरपि ॥२६
परं तु शिशवौ मेऽद्य वर्तन्ते स्वाश्रमेऽखिला ।
भगिन्यै तान्समर्प्येव प्रायास्ये स्वामिनेऽथवा ॥२७
न मे मिथ्यावचस्त्वं हि विजानीहि वनेचर ।
आयास्येह पुनश्चाह समीप ते न संशयः ॥२८

हिरनीने कहा—हे व्याध! तुम्हारी क्या करनेकी इच्छा है? मेरे सामने अपना सत्य विचार प्रगट करो मृगी की इस बात को सुनकर वह भील कहने लगा ।२२। व्याधने कहा—आज मेरा समस्त कुटुम्ब भूखा है, तुझे मारकर अपने परिवार वालोंके प्राणोंकी रक्षा करूँगा। भीलके इस उत्तर को सुनकर और भीषण व्याध के स्वरूप को देखकर हिरनी अपने मन में सोचने लगी।२३।इन प्राणोंकी बाधाका समय उपस्थित होजाने परमैं कहां

जाऊँ और क्या करूँ ! अच्छा कोई उपाय रचता हूँ–ऐसा मनमें विचार करके उसने कहा-।२४। मृगीने कहा–आज महान् अनर्थ करनेवाले इस मेरे शरीर से यदि आपको सुख मिले तो मेरा इससे अधिक और क्या महान् पुण्य हो सकता है। मैं आज बिना किसी सन्देह के निश्चय ही बड़ी भाग्य-शालिनी हूँ ।२५। इस लोक में उपकार करने वाले प्राणि का जितना पुण्य होता है उपकार वर्णन एक सौ वर्ष में भी नहीं किया जा सकता है ।२६। किन्तु केवल यही प्रार्थना है कि इस समय मेरे सब बच्चे अपने स्थान में अकेले हैं मैं उन्हें अपनी भगिनी अथवा स्वामी के पास सौंपकर तुरन्त आपके समीप में आ जाऊँगी ।२७। हे वनचर ! आप मेरे इस वचन को असत्य मत मानना, मैं तुम्हारे पास निश्चय ही आऊँगी- इसमें कुछ सन्देह नहीं ।।२८।।

स्थिता सत्येन धरणी सत्येनैव च वारधिः ।
सत्येन जलधाराश्च सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितम् ।।२९
इत्युक्तोऽपि तथा व्याधो न मेने तद्वचो यदा ।
तदा सुविस्मिता भीता वचन साब्रवीन्पुनः ।।३०
शृणु व्याधप्रवक्ष्यापि शपथ हि करोम्यहम् ।
अगच्छेयं यथा ते न समीप स्वगृहाद्गता ।।३१
ब्राह्मणो वेदविक्रेता सन्ध्याहीनस्त्रिकालकम् ।
स्त्रियः स्वस्वामिनो ह्याज्ञां उल्लंघ्य क्रियान्विताः ।।३२
कृतघ्ने चैव यत्पाप यत्पाप विमुखे हरेः ।
द्रोहिणश्चैव यत्पापं यत्पापं धर्मलघने ।।३३
विश्वासघातके यच्च तथा वै छलकर्तरि ।
तेन पापेन लिम्पामि यद्यह नागमे पुनः ।।३४
इत्याद्यनेकशपथं मृगी कृत्वा स्थिता यदा ।
तदा व्याधः स विश्वस्य गच्छेति गृहमब्रवीत् ।।३५
मृगी हृष्टा जलं पीत्वा गता स्वाश्रममण्डलम् ।
तावच्च प्रथमो यामस्तस्य निद्रां बिना गत ।।३६

सत्यके प्रभाव से यह भूमि स्थित है और सत्यही से सागर तथा जल

धारा स्थित है, निष्कषार्थ यही है कि सत्य में सभी कुछ स्थित है ।२६। सूतजी ने कहा—उस हिरनी की ऐसी प्रार्थना सुनकर भी व्याध ने नहीं माना तो वह अति आश्चर्यान्वित होकर बहुत डर गई और उसने फिर कहा ।३०। मृगी ने कहा—हे व्याध मैं जो भी कुछ निवेदन करती हूँ उसे आप सुनो मैं आपके समक्ष में शपथ खाकर कहती हूँ कि मैं अपने वचन का पालन अवश्य करूँगी अर्थात् मैं अवश्यही वापिस आऊँगी ।३१। वेदों के बेचने वाले और त्रिकाल में सन्ध्या न करने वाले ब्राह्मण को जो पाप होता है तथा कामों में आसक्त हुई स्त्रियों को अपनी स्वामी की आज्ञा के उल्लंघन में जो पाप होता है एवं विश्वासघात करने वाले-कृतघ्नी-छल करने वाले और शिव से विमुख रहने वाले को जो भी पाप होता है और धर्म को तोड़ने वाले को जो भी पातक लगता है मैं भी उसी पाप की भागिनी होऊँगी यदि मैं कहकर आपके पास लौटकर वापिस न आऊँ ।३२-३३-३४। इस तरह बहुत-सी शपथ खाकर वह जब स्थित हुई तो व्याधने हिरनी से कहा, मैं विश्वास करता हूं तू चली जा।३५। इसके पश्चात् जब तक वह हिरनी जल पीकर प्रसन्न हो अपने स्थान को गई तब तक प्रथम प्रहर बिना नींद लिये उस व्याध का व्यतीत हो गया ।।३६।।

तदीया भगिनी या वै मृगी च परिभाविता ।
तस्या मार्गं विचिन्वन्ती ह्याजगाम जलार्थिनी ।।३७
तां दृष्ट्वा च स्वयं भिल्लोऽकार्षीद् वाणस्य कर्षणम् ।
पूर्ववज्जलपत्राणि पतितानि शिवोपरि ।।३८
यामस्य च द्वितीयस्य तेन शम्भोर्महात्मनः ।
पूजा जाता प्रसंगेन व्याधस्य सुखदायिनी ।।३९
मृगी सा प्राह तं दृष्ट्वा किं करोषि बनेचर ।
पूर्ववत्कथितं तेव तच्छ्रुत्वाऽह मृगी पुनः ।।४०
धन्याऽहंन्नूयतां व्याध सफलं देहधारणम् ।
अनित्येन शरीरेण ह्युपकारो भविष्यति ।।४१
परन्तु मम बालाश्च गृहे तिष्ठन्ति चार्भकाः ।
भर्त्रे तांश्च समर्प्यवै ह्यागमिष्याम्यहं पुनः ।।४२

इसके उपरान्त मृगी की एक दूसरी बहिन उसकी खोज करती हुई जल पीने को वहाँ आ पहुँची।३७। इस दूसरी हिरनी को देखकर भीलने इसका वध करने के लिए फिर ज्यों ही धनुष खींचा कि उसके हाथसे पुनः पूर्ववत् वेलपत्र और जल शिव लिंग पर गिर पड़े।३८। यह इस प्रकार से द्वितीय प्रहर का शिवार्चन व्याध का अनजाने ही सुसम्पन्न हो गया जो कि महान् सुख देनेवाला होता है।३९। उस समय वह हिरनी भील को देख कर कहने लगी—यह आप क्या करना चाहते हैं? व्याध ने पूर्ववत् उसके वध करने का उत्तर दिया। यह सुनकर मृगी कहने लगी।४०। मृगी ने कहा—हे व्याध मैं परम धन्य हूँ, मेरा यह शरीर धारण करना आज सफल हो गया क्योंकि इस नाशवान् मेरे शरीर से आपका उपकार होगा—परन्तु केवल छोटी-सी प्रार्थना यही है कि मेरे बच्चे सब एकाकी घर पर मेरी प्रतीक्षा में होंगे, मैं उन्हें अपने स्वामी के सुपर्द कर आऊँ और फिर आपके समीप बहुत शीघ्र वापिस आती हूं।४१-४२।

त्वया चोक्तं न मन्येऽहं हन्मि त्वां नात्र सशयः।
तच्छ्रुत्वा हरिणी प्राह शपथ कुर्वतो हरे ॥४३
शृणु व्याध प्रवक्ष्यामि नागच्छेयं पुनर्यदि।
वाचा विचलितो यस्तु सुकृतं तेन हारितम् ॥४४
परिणीतां स्त्रिय हित्वा गच्छत्यन्यां च यः पुनाम्।
वेदधर्म समुल्लघ्य कल्पितेन च तो ब्रजेत् ॥४५
विष्णुभक्तिसमायुक्तः शिवनिन्दां करोति यः।
पित्रो क्षयाहमासाघ शून्यं चैवाक्रमेदिह ॥४६
कृत्वा च परितापं हि करोति वचन पुनः।
तेन पापेन लिम्पामि गागच्छेय पुनय दि ॥४७
इत्युक्तश्च तथा व्याधो गच्छेत्याह मृगीं च सः।
सा मृगी च जलं पीत्वा हृष्टाऽगच्छत्स्वमाश्रमम् ॥४८
तावद् द्वितीयो यामो वै तस्य निद्रां विना गतः।
एतस्मिन्समये तत्र प्राप्ते यामे तृतीयके ॥४९

भीलने कहा यह तेरा कथन मैं नहीं मान सकता—मैं अब अवश्य ही मारूँगा, इसमें कुछभी सन्देह नहीं है। हे हरे! यह व्याध के वचन सुनकर वह मृगी शपथ करती हुई कहने लगी।४३। मृगी ने कहा हे व्याध! यदि मैं वापिस लौटकर आपके समीप न आऊँ तो वचन के विधान से मेरा समस्त पुण्य चला जायगा।४४। जो मनुष्य अपनी विवाहिता पत्नी का त्यागकर अन्य स्त्री से भोग करता है तथा जो वेद विहित धर्मका उल्लंघन करके कल्पित मार्ग का अनुगमन करता है जो विष्णु भक्त बनकर शिवकी निन्दा करता है जो माता-पिता की दाह तिथि को बिना ब्राह्मण भोजन के खाली जाने देता है,जो दूसरे को दुःख देकर पीछे मधुर वचन बोलता है मैं उस पाप से लिप्त हो जाऊ यदि मैं वापिस लौटकर आपके पास न आऊँ।४५-४६। सूतजी ने कहा उस भील ने इस तरह शपथ पूर्वक कहने पर मृगी से कहा—'तू चली जा।' तब मृगी परम प्रसन्न होकर जल पान करके अपने घर चली गई।४७। तब तक उस व्याध को बिना निद्रा लिये दूसरा प्रहर व्यतीत हो गया फिर तीसरे प्रहर के आरम्भ होने पर उसने देखाकि वे हिरनियाँ वापिस नहीं आईं हैं।४९।

ज्ञात्वा विलव चकितस्तदन्वेषणातत्परः।
तद्यामे मृगमद्राक्षीज्जलमार्गगतं ततः॥५०
पुष्ट मृगं त दृष्ट्वा हृष्टो वनचरः स वै।
शर धनुषि संधाय हन्तूं त हिं प्रचक्रमे॥५१
तदैव कुर्वतस्तस्य विल्वपत्राणि कानिचित्।
तत्प्रारब्धवशाद्विष्ण पतितानि शिवोपरि॥५२
तेन तृतीययामस्य तदात्रौ तस्य भाग्यतः।
पूजा जाता शिवस्यैव कृपालुत्वं प्रदर्शितम्॥५३
श्रुत्वा तत्र च तं शब्दं किं करोषीति प्राह सः।
कुटुम्बार्थमह हन्मि त्वां व्याधश्चेति सोऽब्रवीत्॥५४
तच्छ्रुत्वा व्याधवचनं हरिणो हृष्टमानसः।
द्रुतमेव च त व्याधं वचनं चेदमब्रवीत्॥५५

धन्योऽहं पुष्टिमानद्य भवत्तृप्तिर्भविष्यति ।
यस्यांगं नोपकारार्थं तस्य सर्वं वृथा गतम् ॥५६

हिरनियों के वापिस आने में विलम्ब देखकर व्याध चकित होकर उनकी खोज करने में तत्पर हो गया किन्तु उसी समय उसने जल के मार्ग में आता हुआ एक हिरण देखा ।५०। उस परम पुष्ट शरीर वाले हिरण को देखकर व्याध ने अपने धनुष पर बाण चढ़ा लिया और वह उसका बध करने को उद्यत हो गया ।५१। हे विष्णुदेव ! जब उसने धनुष बाण का सन्धान किया तो भाग्यवश कुछ बेल-पत्र शिव के ऊपर उसके हाथ से गिर गये । उसने उस रात्रि में भील के भाग्य से तीसरे प्रहर की शिव की पूजा सम्पन्न हो गई । इस तरह उस व्याध पर शिव ने अपनी कृपालुता दिखलाई थी ।५२-५३। धनुष के शब्द को सुनकर मृग ने कहा-हे भील! यह तुम क्या कर रहे! व्याध ने कहा-मैं अपने कुटुम्ब के पोषण के लिये तुझे मारना चाहता हूँ ।५४। यह भील के वचन सुनकर हिरन परम प्रसन्न चित्त से व्याध से कहने लगा-।५५। मृग ने कहा-मैं आज अतिशय धन्य भाग्यवाला हूँ, मैं पुष्टिवाला हूँ क्योंकि मेरे शरीर से आपकी तृप्ति होगी । जिसके शरीर से दूसरे का कोई उपकार नहीं बनता, उसका शरीर धारण करना ही सर्वथा निष्फल है ॥५६॥

यो वं सामर्थ्ययुक्तश्च नोपकारं करोति वै ।
तत्सामर्थ्यं भवेद् व्यर्थं परत्र नरकं व्रजेत् ॥५७
परन्तु बालकान् स्वांश्च समर्प्य जननी शिशून ।
आश्वास्याप्यथ तान् सर्वानागमिष्याम्यहं पुन ॥५८
इत्युक्तस्तेन स व्याधो विस्मतोऽतीव चेतसिः ।
मताक् शुद्धमना नष्टपापपुञ्जो वचोब्रवीत् ॥५९
ये ये समागताश्चात्र ते ते सर्वे त्वया यथा ।
कथयित्वा गता ह्यत्र नायान्त्यद्यापि वन्धका ॥६०
त्वं चापि सङ्कटे प्राप्तो व्यलीकं गमिष्यसि ।
मम संजीवन चाद्य भविष्यति कथं मुधा ॥६१

श्रृणु व्याध प्रवक्ष्यामि नानृतं विद्यते मयि ।
सत्येन सर्वं ब्रह्माण्डं तिष्ठत्येव चराचरम् ॥६२
यस्य वाणी व्यलीका हि तत्पुण्यं गलित क्षणात् ।
तथापि श्रृणु वै सत्यां प्रतिज्ञां मम भिल्लक ॥६३

जिस प्राणी में सामर्थ्य हो और उससे वह दूसरों की भलाई नहीं करता है तो उसकी समस्त समर्थता व्यर्थ ही है। ऐसा प्राणी परलोक में नरक का गामी होता है।५७। किन्तु सिर्फ कुछ क्षण आपसे चाहता हूँ कि अपने बालकों को माता को सौंपते हुए धीरज बँधाकर शीघ्र आपकी सेवा में उपस्थित हो सकूँ।५८। मृग के इस तरह कथन से व्याध को बड़ा आश्चर्य हुआ और शिवार्चन के प्रभाव से कुछ मन की शुद्धि हो जाने से तथा पापों का क्षय होने से उस भील ने कहा-।५९। व्याध ने कहा-हे मृग, जो-जो भी जीव यहाँ आये सब तेरी भाँतिही कहकर यहाँ से चले गये और वे सब अभी तक भी वापिस नहीं आये हैं।६०। हे मृग ! उसी तरह तू भी प्राण सङ्कट में प्राप्त होकर असत्य का आश्रय लेकर समय निकालेगा, तू ही बता ! मेरा जीवन इसे तरह कैसे रहेगा।६१। मृग ने कहा-हे व्याध ! मैं जो कुछ भी आपसे कहता हूँ। उसे आप सुनिये ! मैं कभी असत्य नहीं बोलता हूँ। सत्य के प्रबल प्रभाव से ही यह चराचरमय समस्त ब्रह्माण्ड स्थित हो रहा है।६२। जिसकी वाणी में असत्यता रहती है उसका सारा पुण्य तुरन्त ही नष्ट हो जाता है। हे भील ! अब आप मेरी सत्यतापूर्ण प्रतिज्ञा का श्रवण करिये ॥६३॥

सन्ध्यायां मैथुने धस्रे शिवरात्र्यां च भोजन ।
कूटसाक्ष्ये न्यासंहारे सन्ध्याहीने द्विजे तथा ॥६४
शिवहीनं मुख यस्य नोपकर्ता क्षमोऽपि सन् ।
पर्वणि श्रीफलस्यैव त्रोटनेऽभक्ष्यभक्षणे ॥६५
असपूज्य शिवं भस्मरहितश्चान्नभुक च यः ।
एतेषां पातकं मे स्यान्नागच्छेयं पुनर्यदि ॥६६
इति श्रुत्वा वचस्तस्य गच्छ शीघ्रं समाव्रज ।
स व्याधेनैवमुक्तस्तु जलं पीत्वा गतो मृगः ॥६७

ते सर्वे मिलितास्तत्र स्वाश्रमे कृतसुप्रणाः ।
धृत्तांतं चैव त सर्वं श्रुत्वा सम्यक् परस्परम् ।।५८
गन्तव्य निश्चयेनेति सत्यपाशेन यंत्रिताः ।
आश्वास्या द्वालकांस्तत्र गन्तुमुत्कण्ठितास्तदा ।।६६
मृगी ज्येष्टा च या तत्र स्वामिनं वाक्यव्रवीद् ।
त्वां बिना वाला ह्यत्र कथं स्थास्यन्ति वै मृग ।।७०

संध्या के समय मैथुन करने से, शिवर रात्रिको दिनमें भोजन करने से झूँठी गवाही देने से, किसी की रक्खी हुई धरोहर को मारकर पचा जाने से तथा ब्राह्मण को संध्यावन्दन न करने से जो पाप होता है तथा जिसका जिसका मुख शिव भजन से रहित है, जो सर्वसमर्थ होकर भी उपकार नहीं करता है, पर्व के दिन बेल तोड़ने और अभक्ष्य का भक्षण करने से, शिवार्चन के पूर्व भोजन करने से, भस्म रहित अङ्ग रहने से महापातक होते हैं वे सभी मुझे लगें अगर मैं वचन देकर आपके पास वापिस न आऊं ।६४-६६। श्रीशिव ने कहा-ऐसे उस मृग के बचनोंको सुनकर व्याध ने कहा–'चले जाओ' शीघ्र वापिस आना ।' तब वह हिरन जल पीकर सकुशल अपने निवास स्थान पर चला गया ।६७। इसके उपरान्त वे सब हिरनी और हिरन अपने रहने के स्थान में एकत्रित होकर मिले और एक दूसरे ने परस्परमें प्रणाम करके व्याघ्रकी बात-चीत का समस्त हाल कहा और सुना, फिर वे कहने लगे ।६८। हम सबको अवश्य ही अब वहाँ उस व्याध के पास जाना ही चाहिए। इस प्रकार सत्य पाशके बन्धनमें बधे हुए उन्होंने अपने बच्चोंको धीरज बंधाकर वहाँ जानेका निश्चय किया ।६८। उनमें जो सबसे बड़ी हिरनी थी उसने अपने पति से कहा-हे मृग ! आपके बिना ये बच्चे वहाँ कैसे रह सकेंगे ।७०।

प्रथमं ते मार्या तत्र प्रतिज्ञा च कृता प्रभो ।
तस्मान्मया च गन्तव्यं भवद्भ्यां स्थीयतामिह ।।७१
इति तद्वचनं श्रुत्वा कनिष्टा वाक्यमब्रवीत् ।
अहं त्वेत्सेविका चाद्य गच्छामि स्थीयतां त्वया ।।७२
तच्छत्वा च मृगः प्राह गम्यते तत्र वे मया ।
भवत्यौ तिष्टतां चात्र मातृतः शिशुरणम् ।।७३

तत्स्वामिवचनं श्रुत्वा मेनाते तन्न धर्मतः।
प्रोचुः प्रीत्या स्वभर्तारं वैधव्ये जीवितं च धिक् ॥७४
बालानाश्वास्तत्र समर्प्य सहवासिनः।
गतास्ते सर्व एवाशु यत्रास्ते व्याधसत्तमः ॥७५
ते बाला अपि सर्वे वै विलोक्यानु समागताः।
एतेषां या गतिः स्याद्वै ह्यस्माकं सा भवत्विति ॥७६
तान् दृष्ट्वा हर्हितो व्याधो वाणं धनुषि संदधे।
पुनश्च जलपत्राणि पतितारि शिवोपनि ॥७७
तन जाता चतुर्थस्य पूजा यामस्य वै शुभा।
तस्य पाप तदा सर्वं भस्मसादभवत् क्षणात् ॥७८

हे पतिदेव ! सबसे प्रथम मैंने ही वहाँ पहुँचने का बचन दिया है। इसलिये मुझे वहाँ पहुँच जाना चाहिए। आप दोनों यहाँ पर ही रहें।७१। बड़ी मृगी के इस बचन को सुनकर सबसे छोटी कहने लगी-मैं तो आपकी टहलनी हूँ। मैं वहाँ जाती हूँ। आप सब यही रहें।७२। मृगियों के यह बचन सुनकर हिरन ने कहा मैं जाता हूँ, तुम सब यहाँ रही क्योंकि बच्चों की रक्षा करने वाली माता ही हुआ करती है।७३। अपने पति के बचन श्रवणकर उन दोनों मृगियों ने अपने धर्मका ध्यान करते हुए उस बात को न स्वीकार कर प्रेम के साथ पति से कहा—वैधव्य में जीना स्त्री के लिय धिक्कार जैसी है।७४। इस तरह बातचीत करके अपने बच्चों को धीरज देकर पड़ौसियोंके सुपर्द करते हुए सभी वहाँ चलेगये जहाँ व्याध बैठा था ।७५। पीछे से सब बच्चे भी वहीं चल दिये और मन में ठान लिया कि हमारे माता-पिता की जो दशा होगी वही दशा हम भी भोग लेंगे।७६। उस समय उन सबको आये हुए देखकर व्याध मन में बहुत ही प्रसन्न होते हुए अपने धनुष पर वाण चढ़ाने लगा। उस समय भी उसके धनुष के सन्धान करने में हाथसे शिवकी मूर्तिपर जल तथा बेलपत्र गिर गये।७७। इससे भगवान शिव के चौथे प्रहर का भी अर्चन सम्पन्न हो गया और इसके प्रभाव से व्याध के समस्त पापों का समूल विनाश हो गया।७८।

मृगी मृगी मृगश्चोचुः शीघ्र वै व्याधसत्तम ।
अस्माकं सार्थक देह कुरु त्वं हि कृपा कुरु ।।७९
इति तेषां वच श्रुत्वा व्याधो विस्मयमागतः ।
शिवपूजाप्रभावेण ज्ञानं दुर्लभमाप्तवान् ।।८०
एते धन्या मृगाश्चैव ज्ञानहीनाः सुसंमताः ।
स्वीयेनव शरीरेण परोपकरणे रताः ।।८१
मानुष्यं जन्म सप्राप्य साधितं कि मयाधुना ।
परकीय च सपीडय शरीर पौषितं मया ।।८२
कुटुम्ब पोषितं नित्य कृत्वा पापन्यनेकशः ।
एवं पापानि हा कृत्वा का गतिर्मे भविष्यतिः ।।८३
कां वा गतिं गमिष्यामि पातक जन्मतः कृतम् ।
इदानी चिन्तयाम्येवं धिग्धिक् जीवन मम ।।८४

उस समय वहाँ पहुंचकर मृग और मृगी शीघ्र व्याधसे बोले–हे व्याध श्रेष्ठ ! अब आप हमारे सबके शरीरों को सार्थक बनादो और कृपा करो। ।७९। शिव ने कहा–उन सबके इन वचनों को सुनकर उस भील को बड़ा विस्मय हुआ और शिव-पूजन के प्रभाव से उसे देव-दुर्लभ ज्ञान प्राप्त हो गया ।८०। उसने मनमें सोचा परस्पर मिले हुए ज्ञान रहित इस पशुयोनि में उत्पन्न मृग परम धन्य हैं जो अपने नश्वर शरीर से परोपकार करने में तत्पर हो रहे हैं ।८१। इस मनुष्य देह को प्राप्त कर मैंने क्या फल प्राप्त किया, जो दूसरे प्राणियों के शरीर को पीड़ा देकर जन्मभर अपना शरीर पाला ।८२। मैंने सदा बहुत से पाप-कर्म करके अपने कुटुम्ब का पालन किया । ऐसे-ऐसे बुरे पाप-कर्म करने वाले मेरी क्या गति होगी ।८३। मैं नहीं समझता मेरी क्या दुर्गति होगी । क्योंकि जन्म से ही पाप-कर्म किये आज मैं ऐसी चिन्ता कर रहा हूं । मेरे जीवन को धिक्कार है !।।८४।।

इति ज्ञान समापन्नो वाणं संवारयंस्तदा ।
गम्यतां च मृगश्रेष्ठा धन्याः स्थ इति चाब्रवीत् ।।८५
इत्युक्ते च तदा तेन प्रसन्नः शङ्करस्तदा ।
पूजितं च स्वरूपं हि दर्शयामास समतम् ।।८६

संस्पृश्य कृपया शम्भुस्त व्याधं प्रीतितोऽब्रवीत् ।
वरं ब्रूहि प्रसन्नोऽस्मि व्रतेनानेन भिल्लक ॥८७

व्याधोऽपि शिवरूपं च दृष्ट्वा मुक्तोऽभवत्क्षणात् ।
पपात शिवपादाग्रे सर्वं प्राप्तमिति ब्रुवन ॥८८

शिवाऽपि प्रसन्नात्मा नाम दत्वा गुहेति च ।
विलोक्य तं कृपादृष्ट्या तस्मै दिव्यान्यथेप्सितान् ।८९

शृणु व्याधाद्य भोगांस्त्वं भुक्ष्व दिव्यान्यथेप्सितान् ।
राजधानीं समाश्रित्य शृङ्गवेरपुरे पराम् ॥९०

अपनाया वंशवृद्धि श्लाघनीयः सुरैरपि ।
गृहे रामस्तव व्याध समायास्यति निश्चितम् ॥९१

इस तरह ज्ञान के उदय से सद्विचार वाले उस व्याध ने धनुषसे बाण हटा लिया और कहने लगा—हे मृगवरो ! तुम सब परम धन्य व सत्यनिष्ठ हो अब आप सब अपने निवास स्थानको चले जाओ।८५। शिवजी ने कहा- उस समय जब उस भील ने मृगों से यह कहा तो भगवान् शङ्कर बहुत ही प्रसन्न हुए और फिर उन्होंने उस भील को शास्त्रानुमत अपना पूज्यस्वरूप दिखलाया ।८६। शिव कृपा से पूर्ण होकर भील के शरीर को हाथसे स्पर्श करते हुए प्रीतिपूर्वक वाले हे भील! मैं तेरे इस व्रत एवं जागरण व अर्चन से बहुत ही प्रसन्न और सन्तुष्ट हूँ तू अब वर माँग ले ।८७। तब भगवान् शिव के स्वरूप का दर्शन कर व्याध भी क्षणमात्र में मुक्त होगया और हे भगवन् मैंने सभी कुछ प्राप्त कर लिया—यह कहते हुए शिव के चरणों में गिर पड़ा ।८८। अत्यन्त प्रसन्न शिव ने उसका 'गुह' यह नाम देकर कृपा भरी दृष्टि से देखते हुए उसे दिव्य वरदान दिये ।८९। शिवजी ने कहा—हे व्याधर्षे ! अब तू मनोऽभिलषत दिव्य भोगों का उपभोगकर तथा शृगवेर-पुरमें अपनी उत्तम राजधानी बनाकर वहाँ राजाके रूपमें निवासकर ।९० हे व्याध ! तुम्हारी वंशवृद्धि कभी नाश को प्राप्त नहीं होगी और उसकी प्रशंसा देवगण भी करेंगे। त्रेता में भगवान् श्रीरामचन्द्रजी साक्षात् तुम्हारे घर पर पधारेंगे इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥९१॥

करिष्यति त्वया मैत्री मद्भक्तसहकारकः ।
मत्सेवासक्तचेतास्त्वं मुक्ति यास्यसि दुर्लभाम् ।।९२
एतस्मिन्नन्तरे ते तु कृत्वा शङ्करदर्शनम् ।
सर्वे प्रणम्य सन्मुक्ति मृगयोनेः प्रपेदिरे ।।९३
विमान च समारुह्य दिव्यदेहा गतास्तदा ।
शिवदर्शनमात्रेण शापान्मुक्ता दिवंगता ।।९४
व्याधेश्वरः शिवो जात पर्वते ह्यर्बुदाचले ।
दर्शनात्पूजनात्सद्यो मुक्ति मुक्तिप्रदायकः ।।९५
व्याधोऽपि तद्दिमान्नू न भोग्रान्स सुरशत्तम ।
भुक्त्वा रामकृपां प्राप्य शिवसायुज्यमाप्तवान् ।।९६
अज्ञानत्स व्रतञ्जैतत्कृत्वा सायुज्यमाप्तवान् ।
किं पुनर्भक्तिसम्पन्ना यान्ति तन्मयतां शुभाम् ।।९७
विचार्य सर्वशास्त्राणि धर्माश्चैवाप्यनेकश ।
शिवरात्रिव्रतमिदं सर्वोष्कृष्ट प्रकीर्तितम् ।।९८

मेरे भक्तोंपर विशेष कृपा वाले श्रीराम तुम्हारे साथ मैत्री भाव रक्खेंगे और तुम मेरी सेवामें चित्तलगाकर दुर्लभ मोक्षपद को प्राप्त करोगे ।९२। इसी समय में उन मृग और मृगी ने भी साक्षात् शिव के दर्शन प्राप्त किये और उनको प्रणाम करकेवे भी मुक्तहो गये। उनकी वह मृगयोनि छूट गई ।९३। फिर वे दिव्य देह धारण करके विमानारूढ़ होकर शिव के दर्शन मात्रसे शापसे छुटकारा पा गये और शिव लोकके दिव्य धाम में चले गये ।९४। उस समयसे अर्बुदाचलको मुक्त करनेवाले शिव 'व्याधेश्वर' इसनाम से प्रसिद्ध होकर स्थापित हो गये और वे दर्शनार्चन से मनुष्यों को तुरन्त भोग-मोक्ष प्रदान किया करते हैं ।९५। हे देवोंमें श्रेष्ठ ! उस समय से वह भीलभी संसारके समस्त भोगोंको भोगकर श्रीरामचन्द्रकी कृपा से शिवको सायुज्य मुक्तिके पदको प्राप्त हो गया ।९६। भीलने तो अज्ञान से शिवका व्रतकिया और विवशता में व्रत बनपड़ा तब उसे भुक्ति मुक्तिमिलगई तोजो भक्तिवाले इसके द्वारा शुभगति को पालेंगे तो क्या आश्चर्य की बात है।९७

सम्पूर्ण शास्त्रों का मंथन कर और विविध धर्मोंका विवेचन करके सर्वोत्तम महाशिवरात्रि के व्रत को बतलाया गया है।६८।

व्रतानि त्रिविधान्यत्र तीर्थानि विधिधानि च।
दानानि च विचित्राणि मुखश्च विविधास्तथा ॥६६
तपांसि विविधान्येव जपाश्चैवाप्यनेकशः।
नैतेन समतां यान्ति शिवरात्रिव्रतेन च ॥१००
तस्माच्छुभतरं चैतत्कर्तव्यं हितमीप्सुभिः।
शिवरात्रिव्रतं दिव्यं भुक्ति मुक्तिप्रद सदा ॥१०१
एतत्सर्वं समाख्यातं शिवरात्रिव्रत शुभम्।
प्रतराजेति विख्या किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥१०२

यों तो इस लोक में विविध व्रत, अनेक तीर्थ सैकड़ों प्रकार के दान बहुत से यज्ञ नाना भांति के तप एवम् जप हैं परन्तु इस महाशिवरात्रि के व्रतोपवास तथा शिवार्चन की समताको कोईभी प्राप्तनहीं हो सकते हैं।६६ १००। इसीलिये अपना कल्याण चाहने वालों को यह परमश्रेष्ठ, भोग-मोक्ष का दाता शिवरात्रि का व्रत अवश्यही करना चाहिए।१०१।अब तक हमने शिवरात्रि के व्रत का आख्यान और महान फल भली-भांति बतला दिया है। यह सबव्रतोंमें श्रेष्ठ होने के कारण ही 'व्रतराज' कहा है। अब और आप क्या श्रवण करना चाहते हैं ॥१०२॥

॥ मुक्ति निरूपण ॥

मुक्तिर्नाम त्वया प्रोक्ता तस्यां किं नु भवेदिह।
अवस्था कीदृशी भवेदिति सर्वं वदस्वः न ॥१
मुक्तिश्चर्विधा प्रोक्ता श्रूयतां कथयामि वः।
संसारक्लेशसंहर्त्री परमानन्ददायिनी ॥२
सारूप्या चैव सालोक्या सान्निध्या च तथा परा।
सायज्या च चतुर्थी सा व्रतेनानेन या भवेत् ॥३
मुष्टेर्दाता मुनिश्रेष्ठा केवलं शिव उच्यते।
ब्रह्माद्या न हि ते ज्ञेयाः केवलं च त्रिवर्गदाः ॥४

ब्रह्माद्यास्त्रिगुणाधीशाः शिवस्त्रिगुणतः परः ।

निर्विकारी परब्रह्म तुर्यः प्रकृतितः पर ॥५

ज्ञानरूपोऽव्ययः साक्षी ज्ञानगम्योऽद्वयः स्वयम् ।

कैवल्यमुक्तिदः सोऽत्र त्रिवर्गस्य प्रदोऽपि हि ॥६

कैवल्याख्या पञ्चमी च दुर्लभा सर्वथा नृणाम् ।

तल्लक्षणं प्रवक्ष्यामि श्रूयतामृषिसत्तमा ॥७

ऋषियों ने कहा आपने जो मुक्ति का होना बतलाया है उसमें क्या हुआ करता है और मुक्तिपाने पर क्या दशा हो जाती है-यह सब कृपाकर हमको बताइये ।१। सूतजीने कहा-मोक्ष चार तरहकी होती है । वहमोक्ष साँसारिक क्लेश,पीड़ाकी हर्त्ता होती हैं और पूर्णआनन्दप्रिय है । मैं उसका स्वरूप आपको बतलारहा हूँ ।२। चारों प्रकारकी मुक्तियों के नाम-सारूप्य सालोक्य सान्निध्य और सायुज्य हैं जोकि शिवके व्रतसे प्राप्त हुआ करती हैं ।३। मुनिश्रेष्ठो । ब्रह्मा और विष्णुआदि वेद धर्म अर्थ और काम इन तीन पदार्थों के वर्गको ही दे सकतेहैं मुक्तिको नहीं । मोक्ष परम पुरुषार्थको देने वाले तो केवल एक महेश ही हैं ।४ ब्रह्मादिकदेव तो तीनों गुणों के स्वामी हैं और भगवान तीनोंगुणोंसे परे हैं तथा जो निर्विकारी परब्रह्महैं वे चतुर्थ हैं जो प्रकृति से परे हैं । ५ । वे ज्ञानरूपी महान देव अविनाश, साक्षी ज्ञान से जानने योग्य, अद्वैत, कैवल्यमुक्ति के दात और धर्मादि त्रिवर्ग के भी देने वाले ।६। हे ऋषिश्रेष्ठो ! यह पांचवी 'कैवल्य' नाम वाली मुक्ति होती है जो सभी प्रकार के मनुष्यों को दुर्लभ हुआ करती है । अब हम उसके पूरे लक्षण बताते हैं उन्हें आप लोग श्रवण करे ॥७॥

उत्पद्यते यतः सर्वं येनैतत्पाल्यते जगत् ।

यस्मिश्च लयिते तद्धि येन सर्वमिदं ततम् ॥८

तदेव शिवरूपं हि पठ्यते च मुनीश्वराः ।

सकलं निष्फलं चेति द्विविधं वेदवर्णितम् ॥९

विष्णुना तच्च न ज्ञातं ब्रह्मणा न च तत्तथा ।

कुमाराद्यैश्च न ज्ञातं न ज्ञातं नारदेन वै ॥१०

शुकेन व्यासपुत्रेण व्यासेन च मुनीश्वरैः ।
तत्पूर्वैश्चाखिलैर्देवैर्वेदैः शास्त्रैस्तथा न हि ॥११
सत्यं ज्ञानमनन्तं च सच्चिदानन्दसंज्ञितम् ।
निर्गुणो निरुपाधिश्चाव्ययः शुद्धो निरजंनः ॥१२
न रक्तो नैव पीतश्च न श्वेतो नील एवं च ।
न ह्रस्वो न च दीर्घश्च न थूलः सूक्ष्म एव च ॥१३
ययो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ।
तदेव परमं प्रोक्तं ब्रह्मैव शिवसञ्ज्ञकम् ॥१४

जिससे यह सब जगत् उत्पन्न होता है और जिसके द्वारा उस समस्त जगत्का पालन-पोषण होता है तथा जिसमहान में जाकर इसजगतका लय होता है एवं जिसशक्तिने इस सबका पूर्णविस्तारकिया है, हे मुनिगण ! वे शिवरूप कहेजाते हैं । वेदने उनको कलाओंसेपूर्ण तथा कलाओंसे रहित दो प्रकारका वर्णन किया है ।८-९। वह ऐसा विलक्षणस्वरूप है जिसका ज्ञान ब्रह्मा विष्णु कुमार चतुष्टय और देवर्षि नारदजीको भी नहीं है ।१०। यही नहीं किन्तु उसे व्यासपुत्र शुकदेवमुनि,अन्यमहामुनिश्वर, समस्तदेवगणऔर वेदशास्त्र आदि किसीने भी नहीं जान पाया है ।११। यह सत्य,ज्ञान,अनन्त सत्-चित्आनन्द स्वरूप है तथाबिना उपाधिवाला, निर्गुण, अव्ययशुद्धऔर हिरञ्जन है ।१२ वह परात्म तत्व रक्त श्वेत,पीत और नील नहीं हैं और ह्रस्व,दीर्घ,स्थूल और सूक्ष्म भी नहींहोता है ।१३ जहाँ मनके सहित वाण की पहुंच नहीं होत। वही शिव संज्ञा वाला परब्रह्म कहा जाता है । १४ ।

आकाश व्यापक यद्वत्तथैव व्यापकं त्विदम् ।
मायातीत परात्मान द्वन्द्वातीतं विमत्सरम् ॥१५
तत्प्राप्तिश्च भवेदत्र शिवज्ञानोदयाद् ध्रुवम् ।
भजनाद्वा शिवस्यैव सूक्ष्ममत्या सतां द्विजाः ॥१६
ज्ञानं तु दुष्करं लोके भजनं सुकरं मतम् ।
तस्माच्छिवं च भजत मुक्तयर्थमपि सत्तमाः ॥१७
शिवो हि भचनाधीनो ज्ञानात्मा मोक्षदः परः ।

भक्त्यैव ब्रहवः सिद्धां मुक्ति प्रायः परां मुदा ।।१८
ज्ञानमाता शम्भुभक्तिर्भुक्ति प्रदा सदा ।
सुलभा यत्प्रसादाद्धि सत्प्रेमांकुरलक्षणा ।।१९
सा भक्तिर्विविधा ज्ञेया सगुण द्विजाः ।
वैधी स्वाभाविकी या या वरा सा सा स्मृता परा ।।२०
नैष्ठिक्यनैष्टिकी भेदाद् द्विविधैव हि कीर्तिता ।
षड्विधा नैष्टिकी ज्ञेया द्वितीयैकविद्या स्मृत ।।२१

यह परमब्रह्म आकाशकी भांति सर्वव्यापक हैं और माया से परे द्वन्द रहित और मत्सरता से हीन यह परम आत्मतत्व होता है । १५ । हे द्विज गण ! इस संसार में भगवान शिव के ज्ञान का उदय हो जाने पर अथवा भक्ति भावसे शिवकाभजन करनेसे या सत्पुरुषों जैसी सूक्ष्म मति से उनकी प्रप्ति हुआ करती है ।१३। हे मुनिश्रेष्ठो ! इस संसारमें ज्ञान का प्राप्त कर लेना अतिकठिन है और भोजनोपासना करना सुगम बताया गया है । इस लिये मुक्तिपानेके लिए शिवका भजन ही करना चाहिए ।१४। भगवानशिव भजन के अधिन रहा करते हैं । वे ज्ञान की आत्मा तथा मोक्षके दाता पर पुरुष हैं । अनेक सिद्ध भक्तोंके द्वारा ही सानन्द परम मोक्ष की प्राप्ति कर लिया करते हैं ।१८। महेश्वरीकी भक्तिको ज्ञान उत्पन्न करने वाली जननी और नित्य मुक्ति एवं भोगदात्री कहा जाता है । जिस परम प्रसाद से वह सुलभ हुआ करती है वह सत्य प्रेम के अहंकार वाले लक्षणयुक्त बताई गई है ।१९। हे द्विजगण ! वह भक्ति निर्गुण तथा सगुण आदि के भेद से बहुत प्रकार की होती है । इनमें जो वैधी और स्वाभाविक हो वही श्रेष्ठ और अधिक समझनी चाहिए ।२०। फिरभी वह नैष्ठिकी और अनैष्ठिकीके भेदसे दो तरहकी होती है । इनमें अनैष्ठि की तो एक ही प्रकार की होती है । किन्तु नैष्ठि की भक्ति छैः प्रकार की होती है ।।२१।।

विहिताविहिताभेदात्तामनेकां विदुर्बुधाः ।
तयोर्बहुविधत्वाच्च विस्तारो न हि वर्ण्यते ।।२२
ते नवांगे उभे ज्ञेये श्रवणादिकभेदतः ।

सुदुष्करे तत्प्रसादं विना च सुकरे ततः ॥२३
भक्तिज्ञाने न भिन्ने हि शम्भुना वर्णिते द्विजाः।
तस्माद् भेदो न कर्तव्यस्तत्कर्तुः सर्वदा सुखम् ॥२४
विज्ञानं न भवत्येव द्विजा भक्तिविरोधिनः।
शम्भुभक्तिकरस्यैव भवेज्ज्ञानोदयो द्रुतम् ॥२५
तस्माद् भक्तिर्महेशस्य साधनीया मुनीश्वराः।
तथैव निखिलं भविष्यति न संशयः ॥२६
इति पृष्टं भवद्भिर्यत्तदेव कथितं मया।
तच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशय ॥२७

इसमें भी शास्त्रों के ज्ञाता विद्वान् लोग विहिता और अविहिता इन भेदों वाली उसे अनेक तरहकी बतलाते हैं। इन दोनों के भेद-प्रभेद करने से बहुत से प्रकार की हो जाती हैं, जिसके विस्तार का वर्णन नहीं किया जा सकता हैं।२३। ये दोनों प्रकार की भक्ति श्रवण, कीर्तन अर्चनादि के भेदों से नौ-नौ अङ्गों वाली होती हैं। ये सब शिवकी प्रसन्नताकेबिना प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। केवल शिव के प्रसाद से ही इनका पाना सुगम होता है।२३। हे द्विजो ! शिवने वर्णनकरके बतलायाहैकि भक्तिऔरज्ञान आपस में भिन्न नहीं होते हैं। अतएव भक्ति तथा ज्ञान वालों को नित्य सुख की प्राप्ति होती है। इन दोनों मे भेदका मानना उचितनहीं है।२४। हे विप्रगण ! जो भक्ति का विरोध करने वाला होता है, उसे विशेषज्ञान कभी नहीं होता है। शिवकी भक्तिसे ज्ञानकाउदय शीघ्र ही हो जाता है। हे मुनीश्वरो ! इस कारण से भगवान महेश्वर की भक्ति सबको अवश्यही करनी चाहिए। उसी के करनेसे सभी कुछ सिद्ध होता है। इससे कुछ भी सन्देह नहीं है।२६। आपने जो कुछ भी मुझ से पूछा है,वहसभी मैंने वर्णन करके आपको सुना दिया है। इसके श्रवण करने से मनुष्यों के समस्त पापों का क्षय होता है। यह सुनिश्चित बात है।२७।

शिवका सगुण निर्गुण स्वरूप

शिवः को वा हरिः को वा रुद्रः को वा विधिश्चकः।
एतेषु निर्गुणः को वा ह्येतं नश्छिन्धि संशयम् ॥१

यच्चादौ हि समुत्पन्नं निर्गुणात्परमात्मनः ।
तदेव शिवसंज्ञं हि वेदवेदांतिनो विदुः ॥२

तस्मात्प्रकृतिरुत्पन पुरुषेण समन्विता ।
ताभ्यां तपः कृतं तत्र मूलस्थे च जले सुधोः ॥३

पञ्चक्रोशोति विख्याता काशी मर्वातिवल्लभा ।
व्याप्त च सकलं ह्येतत्तज्जलं विश्वतो गतम् ॥४

संभाव्य मायया युक्तस्तत्र सुप्तो हरि सः वै ।
नारायणेति विख्यातः प्रकृतिर्नारायणी मता ॥५

तन्नाभिकमले यो व जातः स च पितामहः ।
तेनेव तपसा दृष्टः स वै विष्णुरुद हृदः ॥६

उभयोर्वामिशमने यद्रूपदर्शित बुधाः ।
महादेवेति विख्यातं निर्गुणे शिवेत हि ॥७

ऋषियों ने कहा—शिव कौन हैं विष्णु कौन हैं और रुद्र कौन है तथा ब्रह्मा कौन हैं? इन सबमें निर्गुण कौन हैं। हमारेमनमें इनके विषयमें बहुत बड़ा सन्देह रहता है,सोआपकृपाकरके यह सब बतलाकर संशयको दूर करें ।१। सूतजी ने कहा-इस शिवकी सृष्टिके आरम्भ जो निर्गुण निर्विकार परमात्मासे उत्पन्न हुए । उन्हें ही वेद वेदान्त के ज्ञाताओने 'शिव' इस नाम वाला बतलाया है ।१। हे ज्ञानियों ! उन्हीं शिवसे पुरुषके सहित प्रकृतिका उद्भव हुआ है । फिर वहाँपर उन दोनों ने मूल में स्थित होकर जल में तपस्या की है ।३। वही पचक्रोशी' इस नाम से विख्यात होने वाली काशी है जो सबको अत्यन्तप्रिय । उसका जल सम्पूर्ण संसार में व्याप्त हो गया है ।४। यहजानकर विष्णु अपनी माया के साथ उसी जल में शयनकर गये और वे हरि'नारायण'के नामसे प्रसिद्धहुए और प्रकृति 'नारायणी' नामसे विख्यात हुई ।५ उनकी नाभिमें उत्पन्न कमलसे उद्भूतहोने वाले का नाम ब्रह्मा पड़ा और उन ब्रह्मा जी ने अपनी तपस्या में जिनके दर्शन किये वे विष्णु हैं ।६। हे पण्डितो ! निर्गुण स्वरूपवाले शिव ने ब्रह्मा और विष्णु के मध्य में उठे हुए पारस्परिक विवादको शान्त करने के लिए जिसस्वरूप का प्रदर्शन कराया वही महादेव नाम से विख्यात हुए हैं ।७।

तेन प्रोक्तमह शम्भूर्भविष्यामि कपालतः ।
रुद्रो नाम स विख्यातो लोकानुग्रहकारकः ॥८
ध्यानार्थं चैव सर्वेषामरूपवानभूत् ।
स एव च शिवः साक्षाद् भक्तवात्सल्यकारकः ॥९
शिवे त्रिगुणसम्भिन्नै रुद्रे तु गुणधामनि ।
वस्तुतो न हि भेदोऽस्ति स्वर्णे तन्भूषणे यथा ॥१०
समानरूपकर्माणौ समभक्तगतिप्रदौ ।
समानाखिलससेव्यौ नानालीलाविहारिणौ ॥११
सर्वथा शिवरूपो हि रुद्रो रौद्रपराक्रमः ।
उत्पन्नो भक्तकार्यार्थे हरिब्रह्मसहायकृत ॥१२
अन्ये च ये समुत्पन्ना यथानुक्रमतो लयम् ।
यांति नैत्र यथा रुद्रः शिवे रुद्रो बिलीयते ॥१३
ते वै रुद्रं मिलित्वा तु प्रयान्ति प्रकृता इमे ।
इमान रुद्रो मिलित्वा तु न याति श्रुतिशासनम् ॥१४

उन्होंने कहा था मैं शम्भु विधाताके मस्तकसे प्रकट होऊँगा उस समय लोकों परकृपा दृष्टिरखने वाले वेही शंभु 'रुद्र'-इस नाम से प्रसिद्ध हुए ।८। अपने भक्तोंपर अनुग्रह करने वाले साक्षात् शिव स्वयं रूपसे रहित होतेहुए भी सबके ध्यान में आनेके लिए रूपवान् हुए ।६०। माया के तीनों गुणों से रहितहोकर स्थितशिव में तथा सगुण रुद्रमें वस्तुतः कुछभी भेदनहीं है जिस प्रकार स्वर्ण में और सुवर्णसे निर्मित्त भूषणमें कुछभी अन्तर नहीं होता है ।१०। ये दोनों ही समान स्वरूप औरसमान कर्मवाले अपनेभक्तों कोसमान रूपसे गति देने वाले हैं और सबके द्वारा तुल्य भाव से ही सेवन करने के योग्य हैं तथा येदोनो अनेकप्रकार की लालायें करने वाले हैं ।११। अत्यन्त पराक्रम वाले रुद्र सब तहर से शिवकेही स्वरूप हैं। येब्रह्मा और विष्णुकी सहायता करने वाले अपने भक्तोंकेलिए उनकाकार्य पूराकरनेकोही अवतीर्ण हुए हैं ।१२। संसारमें जो भी उत्पन्न हुए हैं वे सभी क्रमके अनुसार लय को प्राप्त होते हैं। उस तरहरुद्रका लय कभी नहीं होता वे केवल शिव के स्वरूपही लय होते हैं ।१३। वे सभी समुत्पन्न हुए रुद्र में मिलकर लयहोते

हैं, परन्तु वह रुद्र विष्णु आदिमें मिलकर कभी लयको प्राप्त नहीं होते हैं इस विषय में शास्त्र यही आज्ञा देता है ।१४।

सर्वे रुद्रं भजन्त्येव रुद्रः कंचिद् भजेन्न हि ।
स्वात्मना भक्तवात्सल्याद् भजत्येव कदाचन ॥१५
अन्यं भजन्ति ये नित्यं तस्मिंस्ते लीनतां गताः ।
तेनैव रुद्रं प्राप्ताः कालेन महता बुधाः ॥१६
रुद्रभक्तास्तु ये केचित्तत्क्षणं शिवतां गताः ।
अन्यापेक्षा न वै तेषां श्रुतिरेषा सनातनी ॥२७
अज्ञानं विविधं ह्येतग्ज्ञानं विविधं न हि ।
तत्प्रकारमहं वक्ष्ये शृणुतादरतो द्विजा ॥१८
ब्रह्मादितृणपर्यन्तं यत्किंचिद् दृश्यते त्विह ।
तत्सर्वं शिव एवास्ति मिथ्या नानात्वकल्पना । १९
सृष्टे पूर्वं शिवः प्रोक्तः सृष्टेर्मध्ये शिवस्तथा ।
सृष्टेरन्ते शिवः प्रोक्तः सर्वशून्ये सदाशिवः ॥२०
तस्माच्चतुर्गुणः प्रोक्तः शिव एव मुनीश्वरा ।
स एव सगुणो ज्ञेयः शक्तिमत्वाद् द्विधापि सः ॥२१

ये सब रुद्र को भजतेहैं परन्तु रुद्र किसीको भी नहीं भजते हैं । कभी कभी भक्त जन पर दया करने के कारण से अपने आपको ही भजा करते हैं।१५।हे विद्वद्गणों ! जो सर्वदा अन्यदेवों का भजनकियाकरते हैं वे अन्त में उसीसे लयभी होते हैं और इसतरह बहुत समयके पश्चात् रुद्रकी प्राप्ति कर पाते हैं ।१६। किन्तु जो रुद्र को भक्तिभावसे भजते हैं, वे उसी समय शिवकेभावको प्राप्तकर लिया करते हैं । उन रुद्रदेवकी किसभी अन्यदेवता की आवश्यकता नहीं हुआ करती है यही सनातनी अर्थात् सदा चले आने वालीश्रुति है ।१७। हे द्विजगण ! संसारमेंअज्ञान तो बहुत तरह का होता है,किन्तुविज्ञान अनेक प्रकारका कभी नहीं होता । अबउसी के भेद तुम्हारे सामने वर्णन करता हूँ । आप उसे श्रवण करो ।१८। इस लोक में ब्रह्मासे लेकर तिनकेतक जोकुछ भी दिखलाईदेता है वह सब शिवकाही स्वरूपहै ।

इससे विविधभांतिकी कल्पनाकरना मिथ्या एवं व्यर्थ ही है।१९। भृष्टि के पुर्व शिव हैं तथाइस संसार की रचनाके मध्यकालमें शिव हैं और सृष्टि के अन्तमें ही शिवही रहते हैं। जब सर्वशून्य होता है तबभी सदाशिव विद्यमान रहते हैं।२०। हे मुनीश्वरो ! इस रीति से भगवान् शिव चार गुणों वाले हैं। वे दोप्रकारके स्वरूप में स्थित होते हुए भी सबप्रकारकी शक्तिसे पूर्णता रखने के कारण सगुण ही हैं ऐस ही समझना चाहिए।२१।

येनैव विष्णवे दत्ताः सर्वे वेदाः सनातनाः।
वर्णा माता ह्यनेकाश्च ध्यान स्वस्य च पूजनम् ॥२२
ईशानः सर्वविद्यानां श्रुतिरेषा सनातनी।
वेदकर्त्ता वेदपतिस्तस्माच्छम्भुरुदाहृतः ॥२३
स एव शङ्करः साक्षात्सर्वानुग्रहकारकः।
कर्त्ता भर्त्ता च हर्त्ता च साक्षी निर्गुण एव सः ॥२४
अन्येषां कालमानं च कालस्य कलनाः न हि।
महाकालः स्वयं साक्षान्महा लीसमाश्रितः ॥२५
तथा च ब्राह्मणा रुद्र तथा काली प्रचक्षते।
सर्वं ताभ्यां ततः प्राप्तिमिच्छया सत्यलीलया ॥२६
न तत्योत्पादकः कश्चिद् भर्त्ता न तस्य हि।
स्वयं सर्वस्य हेतुस्ते कार्यभूतच्युतादयः ॥२७
स्वयं च कारण कार्यं स्वस्य नैव कदाचन।
एकोऽयनेकतां यतोऽप्यनेकोप्येकतां व्रजेत् ॥२८

जिनने भगवान् विष्णु को समस्त सनातन वेदों का उपदेश, अनेकवर्ण वाला तथा मात्राओंसे युक्त अपना ध्यान एवं अर्चन बताया है, इससे शिव समस्त विद्याओंके स्वामी वेदोंकेनिर्माता और वेदोंकेअधीश्वर कहे हैं।२२-२३। वे साक्षात् शिवही सबपर दयाकरने वाले,सबके उत्पादक,पालनकर्त्ता और विनाश करनेवाले साक्षी एवं निर्गुण हैं।२४।इस सृष्टिमें सबके समय का प्रमाण होता है,किन्तु यहकाल ऐसाहै जिसकी कोई कलनाही नहींहोती है। वह स्वयं महाकाली के सेवित साक्षात महाकाल हैं। २५। ह्मण लोग

रुद्र तथा महाकालीकोही ऐसा कहाकरते हैं। उन्होंने (दोनाने)अपनी सत्य लीलाके सहित इच्छासे सभीकुछ प्राप्त किया है।२६। इनका कोईभी अन्य उत्पादक पालक और विनाशकरनेवाला नहीं होताहै किन्तुवे व्यर्थ हीसबके कारण हैं और विष्णुकादि अन्य समस्तदेवता कार्यभूत हैं। २७। भगवान शिव तो स्वयं कारण और कार्यस्वरूप हैं। इनका अन्य कोई भी कारण नहीं होता है। वे एक होते हुए भी अनेक स्वरूप धारण कर लेते हैं तथा अनेक होकर भी फिर एक ही स्वरूप में स्थित हो जाते हैं।। २८।।

एकं बीजं वहिर्भूत्वा पु र्बीज च जायते।
लहुत्वे च स्वयं सर्वं शिवरूपी महेश्वरः ।।२९
एतत्परं शिवज्ञानं तत्वतस्तदुदाहृतम्।
जानाति ज्ञानवानेव नान्यः कश्चिदृषीश्वराः ।।३०
ज्ञानं सलक्षण ब्रुहि यज्ज्ञात्वा शिवतां व्रजेत्।
कथं शिवश्व तत्सर्वं सर्वा वा शिव एव च ।।३१
एतदाकर्ण्य वचनं सूतः पौराणिकोत्तमः।
स्मृत्वा शिवपदाम्भाजं मुनींस्तानब्रवीद्वचः ।।३२

एक बीज फल से बाहर होकर फिर वह बीज होता है। इसी तरह बहुत होने पर भी प्रब कुछ वस्तु रूपसे स्वयं शिवके रूप वाले महेश्वर ही हैं।२९। हे ऋषीश्व वृन्द ! यह शिवका ज्ञान अत्यन्त श्रेष्ठ है। इसे मैंने तुम्हारेसामने यथार्थरूपसे बतादिया है। इस भगवानशिवके ज्ञानको ज्ञानी ही समझता या जानता है अन्यकोई साधारणव्यक्ति इसेनहीं जानसकता है।३०। मुनियोंने कहा–इस शिव ज्ञान के ठीक लक्षण और स्वरूप को भली भांति बताइये जिसको प्राप्तकर शिवका स्वरूप प्राप्त होता है। अब आप खुलासा करके समझाइयेकि किसतरह वे शिव सभी कुछहैं और किसप्रकार से संसार की सभी वस्तुयें शिव स्वरूप है ? ।२१। व्यास जी ने कहा–यह सुनकर पौराणिक विद्वानों में श्रेष्ठ सूतजी भगवान शिव के चरण कमलों का स्मरण करके उन मुनियों से कहने लगे।३२।

ज्ञाननिरूपण और शिव-विज्ञान

श्रुबतामूषयः सर्वे शिवज्ञ नं तथा श्रुतम् ।
कथयामि महागुह्य परमुक्तिस्वरूपकम् ।।१
श्री नादरकुमाराणां व्यासस्य च ।
एतेषां च समाजे तैर्निश्वित्य समुदाहृतम् ।।२
इति ज्ञान सदा ज्ञेयं सर्वं शिवमयं जगत् ।
शिवः सर्वमयो ज्ञेयः सर्वज्ञेन विराश्चता ।।३
आब्रह्मतृणपर्यन्त यत्किंचिद् दश्यते जगद् ।
सत्सवं शिव एवास्ति स देवः शिव उच्यते ।।४
यदेच्छा तस्य जायेत तदा च क्रिवते त्विदम् ।
सर्वं स एवं जानाति त न जानाति कश्चन ।।५
रचयित्वा स्वयं तच्च प्रतिश्य दूरतः स्थितः ।
न तत्र च प्रविष्टोऽसौ निर्लिप्तश्चित्स्वरूपवान् ।।६
यथा च ज्योतिषश्चैव जलादौ प्रतिबिंबता ।
वस्तुतो न प्रभेशो वै तथैव च शिवः स्वयम् ।।७

सूतजी ने कहा-हे ऋहिवृन्द ! शिवका ज्ञान अत्यन्त गोपनीय और मोक्षपद स्वरूपवाला है । मैंने इसे जितना भीसुना एवं समझा वह तुम्हारे सामने वर्णन करता हूँ, आप सावधान होकर सुनो । १ । शौनक, स्वामि कार्तिके, नारद, वेदव्यासजी और कपिलदेव इन सबके समक्ष में उन्होंने शास्त्रोसे निश्चयकरके कहा है ।२। यह समस्त चराचर जगत् शितमयही है ऐसा ज्ञान सदा रखना चाहिए जो सर्व ज्ञाता दिद्वान है उसे शिवको भी सर्व जगन्मय जानना चाहिए ।३। परब्रह्मके स्वरूपसे लेकर तृण पर्यन्त जो कुछ भी इस संसार का स्वरूप दिखाईदेता है वह समस्त शिव ही का एक रूप है अर्थात् शिवही हैं । इस तरह वे शिव कहलाते हैं ।४।जब भी कभी उनके हृदयमें रचनाकरनेकी इच्छा उत्पन्न होती है तभी इससमस्त विश्व का निर्माण करदिया करते हैं । वे स्वय सबको खूब अच्छी तरह जानते हैं किन्तु उनको कोईभी नहीं जानपाता है ।५। इस सम्पुर्ण जगत् की रचना

करके स्वयं इसमें प्रविष्ट होते हुएभी सबसेपृथक स्थितरहाकरते हैं।वे इसमें प्रविष्ट नहीं होते है और न कभी उनका लय ही होता है वे तो केवल ज्ञान के स्वरूप वाले हैं ।६। जिस तरह जल में अग्नि प्रभृति के तेजकी परछाईं का मान ऐसा ही होताहै कि यह उसके अन्दर विद्यमान है किन्तु वास्तव में जलमें उसका प्रवेश सर्वथा नहीं होताहै, उसी तरह इस जगतमें साक्षात शिवका भान मात्र ही होता है और वे इसमें लिप्त नहीं होते हैं ।७।

वस्तुतस्तु स्वयं सर्वः क्रमो हि भासते शुभः ।
अज्ञानं च मतेर्भेदो नास्त्यन्यच्च द्वयं पुनः ॥८
दर्शनेषुत्च सर्वेषु मतिभेदः प्रदर्श्यते ।
पर वेदान्तिनो नित्यमद्वैतं प्रतिचक्षते ॥६
स्वस्याप्यशस्य जीवोंशो ह्यविद्यामोहितोऽवशः ।
अन्योऽहमिति जानाति तया मुक्तो भवेच्छिवः ॥१०
सर्वं व्याप्य शिवः साक्षात् व्यापकः सर्वजन्तुषु ।
चेतना चेतनेशोऽपि सर्वत्र शङ्करः स्वयम् ॥११
उपायं यः करोत्यस्य दर्शनार्थं विचक्षणः ।
वेदान्तमार्गमाश्रित्य तत्दर्शनफरं लभेत् ॥१२
यथाग्निर्व्यापकश्चैव काष्टे काष्टे च तिष्ठति
यो वै मन्थति तत्काष्ठं स वै पश्यत्यसंशयम् ॥१३
भक्त्यादिसाधनानीह यः कपोति विचक्षणः ।
स वै पश्यत्यवश्यं हि तं शिव नात्र संशयः ॥१४

अर्थात् रूपसे वह शुभ परब्रह्म वेदाक्रमणकरके सबको भासते हैं बुद्धि के भ्रमको ही अज्ञान कहाजाता है अन्य कुछभी नहीं है ।८। समस्त दर्शन शास्त्रोंमें मतिका भेदस्पष्ट दिखलाई दिया करता है क्योंकि प्रत्येक सिद्धान्त भिन्न स्वरूपवाले होते हैं, किन्तु वेदान्ती लोग नित्य परमेश्वरको अद्वैतही कहा करते हैं ।६। अपनेही अंशके स्वरूपमें स्थित यह जीवात्मा अविद्या से मोहितहोकर मैं और तू' ऐसा समझता है, परन्तु शिव उसअविद्यासेसर्वथा रहित हैं १०। सबमें व्यापक साक्षात् भगवानशिव सबकोव्याप्तकरकेसमस्त

जीवोंमें स्थित रहा करते हैं और समस्त चराचर के प्रभुशिव साक्षात कल्याण के करने वाले होते हैं ।११।जो बुद्धिमान मानव शिव के दर्शन प्राप्त करने के लिए उपाय करता है वह वेदान्त के मार्ग का आश्रय ग्रहण करके ही उनके दर्शन प्राप्त किया करता है । १२ । जिस प्रकार प्रत्येक काष्ठ में अग्नि व्याप्त होकर ही स्थित रहा करती है किन्तु जो कोई उस काष्ठ का मन्थन करता है वही उसमें अग्नि के दर्शन का फल प्राप्त कर पाता है ।१३। इसी प्रकार जो विद्वानमानव भक्तिआदि के साधनोंसे आगे बढ़ता हैं वह अवश्य ही उन शिव का साक्षात दर्शन प्राप्त कर लेता है इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ।१४।

शिवः शिव शिवश्चैव नान्यदस्तीति किंचन ।
भ्रान्त्या नानास्वरूपो हि भासते शंकरः सदाः ॥१५
यथा समुद्रो मृच्चैव सुवर्णमथवा पुनः ।
उपाधितो हि नानात्वं लभते शङ्करस्थता ॥१६
कार्यकारणयोर्भेदो वस्तुतो न प्रवर्तते ।
केवलं भ्रान्तिबुद्धयव तदभावे स नश्यति ॥१७
तदा बीजात्प्ररोहश्च नानात्वं हि प्रकाशयेत् ।
अन्ते च बीजमेव स्यात्तत्प्ररोहश्च न नश्तति ।१८
ज्ञानी बीजमेव स्यात्प्ररोहो विकृतिर्मता ।
तन्निवृतौ पुनर्ज्ञानी नात्र कार्या विचारणा ॥१९
सर्व शिवः शिव सर्वो नास्ति भेदश्च कश्चन ।
कथं च विविध वश्यत्येकत्वं च कथं पुनः ॥२०
तथैक चैव सूर्याख्यं ज्योतिर्नानाधिभं जनैः ।
जलादी च विशेषेण दृश्यते तत्तथैत्र सः ॥२१

शिव-भक्त की भावना ऐसी ही होनी चाहिए कि सर्वत्र शिवही हैंशिव के अतिरिक्त संसारमें अन्यकुछभी नहीं हैं, भ्रान्तिवश वही शिव यहां नाना स्वरूप में भासमान होते हैं जिस तरह मिट्टी सागर और सुवर्ण विभिन्न उपाधियोंके कारण अनेक रूपमें दिखलाई दिया करते हैं वैसेही शिव उपाधियोंके कारण नाना स्वरूप में रहते हैं ।१५-१६। वास्तव में विचारकरके

देखा जावे तो यहाँ कारण और कार्यमें कुछभी भेद नहीं होता है । यहभेद जो प्रतीत होता है । वह केवल अपनी बुद्धिकी भ्रान्ति के होने से होता है जब यह बुद्धिकी भ्रान्ति स्वरूपअज्ञान न मष्ट होजाता है तोयह अन्तरफिर नहीं दिखाई देता है और दूर होजाता है ।१६। कारणस्वरूप बीजसे वृक्ष अनेकरूपताको प्राप्तकिया करता है किन्तु अन्तमें वह वृक्ष तो नष्ट होजाता है और बीजही शेष रहता है ।१८ यहां ज्ञान सम्पन्नजीवात्मा बीजस्वरूप है और वह समस्त प्रकृति स्वरूपिणी विकृति वृक्ष के तुल्य है । फिर भी उसकी निवृत्तिमें ज्ञानीहो होता है इसमें कुछ विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है ।१९। यह समस्त जगत शिव है तथा शिवही में सम्पूर्ण जगत् है । इन दोनों में वस्तुतः कोई भी भेद नहीं होता है । यह कैसे अनेक स्वरूप में दिखाईदेता है और कैसे फिर एकता दिखलाई दिया करती है इसे समझाते हैं ।२०। जिस प्रकार एक ही सूर्य के स्वरूप जलमें मनुष्यों को अनेक सूर्य दिखाई देते हैं उसी तरह से वह शिव एक होते हुए भी भ्रान्ति के कारण ही अनेक रूप में भासमात हुआ करते हैं ।२१।

सर्वत्र व्यापकश्चैव स्वशत्व न विबध्यते ।
तथैव व्यापको देवो बध्यते न क्वचित्स वै ॥२२
साहकारस्तथा जीवस्तन्मुक्तः शङ्करः स्वयम् ।
जीवस्तुच्छ कर्मभोगी निर्विप्तः शङ्करो महान् ॥२३
यथैकं च सुवर्णादि मिलिपं रजतादिना ।
अल्पमूल्यं प्रजायेत तथाजीवोऽप्यहयुतः ॥२४
यथैव हि सुवर्णादि क्षारादेः शोधितं शुभम् ।
पूर्यवन्मूल्यतां याति तथा जीवोऽपि संस्कृतेः ॥२५
प्रथमं सद्गुरुं प्राप्य भक्तिभावसमन्वितः ।
शिवबुद्धया करोत्युच्चेःपूजनं स्मरणादिकम् ॥२६
ततबुद्धया देहतो याति सर्वपापादिको मलः ।
तदाऽज्ञानं च नश्येत ज्ञानवाञ्जायते यदा ॥२७
तदादंकारनिर्मुक्तो जीवो निर्मलबुद्धिमान् ।
शङ्करस्य प्रसादेन याति शङ्करतां पुनः ॥२८

जिस तरह आकाश व्यापक होकर भी किसीके स्पर्शकरनेमें नहींआता है,उसी प्रकारसे वह सर्व व्यापक परमात्मा भी कहीं बद्ध नहीं होता ।२२। वह जीवात्मा अहंकारसे युक्त है और शिव स्वयं उस अहङ्कार से रहित हैं जीवएकतुच्छ और कृत शुभाशुभ कर्मोंका भोगने वालाहैं किन्तु शंकर परम महान और निरन्तर नितांत निर्लिप्त है ।२३। शुद्धजीव भी अहङ्कारसे युक्त होनेकेकारणतुच्छबनजाता है । जैसे सुवर्ण मूल्यवानहोतेहुएभी चाँदी आदि के मिल जाने पर स्वल्प मूल्य वाला बन जाता है ।२४। तेजाब और अग्नि एवं क्षार आदिसे शोधित किए जानेपर जिसतरह सुवर्णकी शुद्धि होजाती और पूर्ववत् समुचित मूल्यवाला बन जाता है,उसी भाँति संस्कारोके द्वारा यह अहंकारी जीवात्माभी शुद्धस्वरूप वाला हो जाया करता है ।२५। जीव का कर्तव्य है कि सर्वप्रथम किसीसुयोग्यश्रेष्ठगुरुसेज्ञानकीदीक्षा प्राप्त करे, फिर परम भक्तिके भाव से शिव बुद्धि से उनका पूजन तथा उच्च स्वर से उनके नामकास्मरण करना चाहिये ।२६। इस प्रकारकी बुद्धि बना लेनेपर इस देह से समस्तपाप एवं मलदूर होजाया करते हैं और सारा अज्ञान नष्ट होकर ज्ञान उत्पन्न होता है।२६।जबयह जीवात्मा ज्ञान सम्पन्न हो जाताहै और अहंकारसे छूटजाता है तो उसकीबुद्धि अत्यन्तनिर्मल होजाती है तथा शिव के प्रसाद से शिव के स्वरूप को प्राप्त कर लिया करता है । २८ ।

यथाऽदर्शस्वरूपे च स्वीयं रूपं प्रदश्यते ।
तथा सर्वत्रगं शम्भु पश्यतीति सुनिश्चतम् ।।२९
जीवन्मुक्तः स एवासौ देहः शीर्णः शिवे मिलेत् ।
प्रारब्धवशगो देहस्तद्भिन्नो ज्ञानवान् मतः ।।३०
शुभं लब्ध्वा न हृष्येत कुप्येल्लब्ध्वाऽशुभं नहि ।
द्वन्द्वेषु समता यस्य ज्ञानवानुच्यते हि सः ।।३१
आत्मयोगेन तत्वानामथवा च विवेकतः ।
यथा शरीरतो यास्याच्छरीरं मुक्तिमिच्छता ।।३२
सदाशिवो विलीयेत मुक्तो विरहमेव च ।
ज्ञानमूलं तथाध्यात्म्यं तस्य भक्तिः शिवस्य च ।।३३

भक्तैश्व प्रेम संप्रोक्तं प्रेम्णश्च श्रवण तथा ।
श्रयणाच्चापि सत्सङ्गः सत्यसङ्गाच्च गुरूर्बुवः ।।३४
सम्पन्ने च तणा ज्ञाने मुक्तो भवति निश्चितम् ।
इति चेज्ज्ञानवान्यो नै शम्भुमेव सदा भजेत् ।।३५

जिस तरह दर्पण में अपना स्वरूप दिखाई देता है उसी तरह शिवको सर्वत्र व्यापक जानते हैं, यह निश्चय ही समझ लेना चाहिए । २६ । वह जीवात्मा फिर मुक्तहोकर देहसे रहितहोकर शिवकेही स्वरूपमें जाकरमिल जाया करता है । यह देह प्रारब्धके वशीभूत होनेके कारण ही मिलाकरता हैकिन्तु ज्ञानीका शरीरके रहते हुए भी उससे रहितही माना गया है ।३०। ज्ञानवानजीव वही है जो अपनी प्रिय वस्तुसे परमहर्षित नहीं होता है और किसीभी अप्रियवस्तु या दशामें शोक या क्रोध नहीं करताहै और सुखतथा दुःखमें जो समान ही भावना रखता है ।३१। मुक्ति का इच्छुक पुरुष अपने आत्माके योगसे या यत्वोंके विचारसे अपने शरीरसे शरीरका त्याग किया करता है ।३२। जो सदाशिवमें लीन हो जाता है, वह समस्त व्यथापीड़ाओं से छुटकारा पाकर ज्ञान के मूलस्वरूप अध्यात्म की प्राप्ति करता है और फिर उसे शिव की अनपायिनी भक्ति मिलती है । ३३ । भक्ति से प्रेम उत्पन्न होता है, प्रेम से श्रवण और श्रवण से सत्सङ्ग का लाभ होता है । और सत्सङ्गसे ससारमे विद्वान उद्धारक गुरुदेव की प्राप्ति हुआ करतीहै । ।३४। गुरुसे जब ज्ञान प्राप्त होता है तो निश्चय ही मुक्ति हो जायाकरती है । जो नित्य निरन्तर शिव की उपासना करता है । वह इसी रीति से ज्ञान सम्पन्न हो जाया करता है ।।३५।।

अन्याया च भक्त्या वै युतः शम्भुं खजेत्पुनः ।
अन्ते च मुक्तिमायाति नात्र कार्या विचारणा ।।३६
अतोधिको न देवोस्ति मुक्तिप्राप्त्यै च शङ्करात् ।
शरणं प्राप्य यञ्चैव संसाराद्विनिवर्तते ।।३७
इति मे विविधं वाक्यमृषीणं च समागतैः ।
द्विशिचात्य कथितं विप्रा धिता धार्यं प्रयत्नतः ।।३८

प्रथमं वष्णवे दत्तं शंभुना लिंगसम्मुखे ।
विष्णुनां ब्रह्मणे दत्तं ब्रह्मणां सनकादिषु ॥३६
नारदाय ततः प्रोक्तं तज्ज्ञानं सनकादिभिः ।
व्यासाय नारदेनोक्त तेन मह्यं कृपालुना ॥४०
मया चैव भवद्भयश्च भविद्भल्लोंकहेतवे ।
स्थापनीय प्रयत्नेन शिवाप्राप्तिकरं च तत् ॥४१
इति वश्च समाख्यातं यन्पृष्टोऽहमुनीश्वराः ।
गोपनीयं प्रयत्नेन किमन्यच्छ्रोतुमिच्छय ॥४२

जो मानव अत्यन्त भक्ति की भावना से शिव का भजन करता है वह निश्चय ही अन्तमें मुक्तिके परमपदकी प्राप्ति किया करता है ।३६।भगवान् शंकर से अधिक अन्य कोई भी देवता नहीं जिसकी शरण में जाकर यह जीवात्मा संसारके समस्त बन्धनोंको तोड़कर विमुक्त हो जाता है ।३६। हे ब्राह्मणो ! मैंने ऋषियों के समागम से ही यह ज्ञान प्राप्त होने वाले अनेक वाक्य पूर्ण निश्चय करके तुम से कहे हैं । सब आपको यत्न पूर्वक अपनी बुद्धिमें धारण करने चाहिए ।३८। सर्व प्रथम भगवान शिवने अपने ज्योति लिङ्गके समक्षमें भगवान विष्णु देवको यह ज्ञान प्रदान कियाथा । इसके अनन्तर विष्णुने ब्रह्माजी को उपदेश दिया और ब्रह्मा ने सनकादिक ऋषियों को इस ज्ञान का उपदेश दिया था ।३६। सनकादिक ने इसी दिव्य ज्ञानका उपदेश नारदजी को दिया था। देवर्षि नारदने व्यासजी को और वेदव्यास महर्षि ने मुझे यह ज्ञान प्रदान किया है ।४०। अब मैंने आपकी उत्कृष्ट जिज्ञासा जानकर इस ज्ञान को आपको दिया है । आप सबको संसार के हित के लिए इस ज्ञान को यत्न पूर्वक सुरक्षित रखना चाहिए । यह ज्ञान शिव के चरणों की प्राप्ति करा देने वाला है ।४१। हे मुनीश्वरो आपने जिस प्रकार से मुझ से पूछा वह भली-भाँति सभी आपको बतला दिया है । आप इस ज्ञान को यत्न पूर्वक छिपाकर रखे । अब आप मुझ से क्या श्रवण करना चाहते हैं ? ।४२।

एतच्छ्रुत्वातु ऋषय आनन्द परमं गताः ।

हर्षगद्गदया वाचा नत्वा तुष्टुवमुंहुमुंक्षः ।४३
व्यास नमस्तेऽस्तु धन्यस्त्वं शैवसत्तमः ।
श्रावित नः परं वस्तु शैवं ज्ञानमनुतन् ।४४
अस्माकं चेतसो भ्रान्तिर्गता हि कृपया तव ।
सन्तुष्टा शिवसज्ज्ञानं प्राप्यस्ततो विमुक्तिदम् ।४५
नास्तिकाय न वक्तव्यमश्रद्धाय शठाय च।
अभक्ताय महेशस्य न चाशुश्रूषवे द्विजाः ।४६
इतिहासपुराणि वेदांछास्त्राणि चासकृत् ।
विचार्योद्धृ तत्सार मह्यं व्यासेन भाषितम् ।४७
एतच्छ्रुत्वा ह्येकवारं भवेपाप हि भस्मसात् ।
अभक्तो भक्तिमाप्नोति भक्तस्य भक्तिवर्द्धनम् ।४८
पुनःश्रुत च सद्भिक्तिर्मुक्तिः स्याच्च फ्रुतेः पुनः ।
तस्मात्पुनः पुनः श्राव्यं मुक्तिफलेप्सुभिः ॥४९

व्यासजीने कहा-यह सुनकर उन सब ऋषियों को बहुतही प्रसन्नता हुई और हर्षातिरेकसे गद्गद्वाणीसे नमस्कारपूर्वक बारम्बार स्तुति करने लगे ।४३। ऋषियोंने कहा हे व्यासमहर्षि के शिष्य सूतजी ! तुम शिव के उपासकों में परमश्रेष्ठ एवं धन्य हो । आपने बड़ाभारी अनुग्रह करके हमसबको परम तत्व रूपी शिव सम्बन्धी ज्ञान का श्रवण कराया है ।४४। आपके अनुग्रह से हमारे मनकीभ्रान्ति एकदम हटगई और आपके मुख से मुक्तिदायक शिवका ज्ञानपाकर हम लोग पूर्ण सन्तुष्ट हुए हैं ।४५। सूतजी ने कहा-हे द्विजवरो ! इस तत्व तथा इतिहास को आप लोग किसी नास्तिक शिव-भक्ति रहित श्रद्धाहीन-शठ और जो सुनकर अनुराग नहीं रखता है उससे कभी मत कहना । यह परम गोप्य है ।४६। यह सारा वृतान्त अनेक इतिहास पुराण-शास्त्र और वेदों का बार-बार मनन करके उनके सारांश स्वरूप व्यासजी ने मुझसे कहा है । ४७ । इसका एक ही बार श्रवण करने से समस्तपाप भस्मीभूत होजाते हैं । यह अभक्तको भक्तिदेता है और जो भक्त हैं उनकी भक्तिको विशेष बढ़ा देता है ।४८। इनके दोबार श्रवण करने से

परम श्रेष्ठ भक्ति की प्राप्ति होती है और इसके भी सुनने से मोक्षपद मिल जाता है। अतएव भोग-मोक्ष के इच्छुक जीवों को इसका बार-बार श्रवण करना चाहिए।४९।

आवृत्तयः पञ्च मार्याः समुदिश्य फलं परम् ।
तत्प्राप्नोति न सन्देहो व्यासस्य वचनं त्विदम् ।५०
न दुर्लभं हि तस्यैव येनेद् श्रुतमुत्तमम् ।
पंचकृत्वास्तदा वृत्या लभ्यते शिवदर्शनन् ।५१
पुरातनाश्च राजानो विप्रा वैश्याश्च सत्तमाः ।
इदं श्रुत्वा पञ्चकृत्वो धिया सिद्धि परां गताः ।५२
प्रोष्यत्तद्यापि येश्चेद मानवो भक्तितत्परः ।
विज्ञान शिवसंज्ञं लै भुक्ति मुक्ति लभेच्च सः ।५३
इति तद्ववचनं श्रुत्वा परमानन्दसागताः ।
समानर्चुश्चते सूतं नानावस्तुभिरादरात् ।५४
नमस्कारैः स्तवैश्चैव स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ।
आशीर्भिर्वर्द्धयामासुः सन्तुष्टाश्छिन्नसंशताः ।५५
परस्परं च सन्तुष्टाः सूत ते च सुबुद्धयः ।
शम्भुं देव पर मत्वा नमन्ति स्म भजन्ति च ।५६

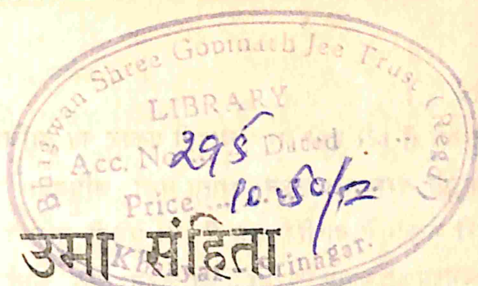
यदि किसी विशेष फल का उद्देश्य चित्तमें हो तो इसकी पाँच बार आवृत्ति अवश्यहीकरे। व्यासजीनेकहा है कि जोऐसा करतेहैं उनके उद्देश्य की सिद्धिके साथही उन्हें मुक्तिभी अवश्य मिलती है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।५०। जिस किसीने भी इसपरम उत्तम इतिहास को श्रवण कियाहै उसको कोईभी वस्तु दुर्लभ नहीं रहती है। इसका पाँचबार पाठ करने से भगवानशिवके दर्शनभी प्राप्त होजाते ५१। प्राचीन काल में अनेक राजा ब्राह्मण तथा वैश्यलोगइसकी पाँचआवृति इसी बुद्धिसे करलेने के पश्चात् परम सिद्धियों का लाभ उठा चुके हैं।५२। इस समय में भी जो सन्देह भक्ति-भावमें तत्परहोकर इसका श्रवण करेगा वह शिव-विज्ञान को भुक्ति और मुक्ति को प्राप्त कर लेगा।५३। व्यासजी ने कहा—सूतजी के ऐसे

वचन सुनकर ऋषियों को अत्यधिक आनन्द हुआ और बड़े आदरके साथ अनेक पूजोपचारों से सूतजीका वे अर्चन करने लगे।५४। परमसन्तुष्ट और सन्देहरहितहोकर स्वातिवाचन करतेहुए नमस्कारों तथा आशीर्वादोंसे उन्हें बढ़ाने लगे।५५। तब से बुद्धिशाली वे ऋषिगण तथा सूतजी शिव को ही सर्वोपरि शिरोमणिदेव मानकर उन्हें नमस्कार करते हुए पूजने लगे।५६।

एतच्छ्रुतसुविज्ञानं शिवस्यातिप्रियं महत् ।
भुक्ति मुक्तिप्रदं शिवभक्तिविवर्द्धनम् ॥५७
इय हि संहिता पुण्या कोटिरुद्राह्यया परा ।
चतुर्थी शिवपुराणस्य कथिता मे मुदावहा ॥५८
एता यः श्रणुयाद् भक्त्या श्रावयेद्वा समाहितः ।
स भुत्वेहाखिलान्भोगान्नते परगति लभेत् ॥५९

यह भगवान शिवका विज्ञान शिवको अत्यधिक प्रसन्न करने वाला है मुक्ति एवं मुक्तिका दायक तथा दिव्य भक्तिको बढ़ाने वाला है।५७। यह अत्यन्त 'कोटि रुद्र' नाम वाली शिवपुराण की संहिताका वर्णन मैंने किया जो महान आनन्द की देने वाली है।५८। जो मनुष्य सावधान चित्त से भक्ति पूर्वक इसका श्रवण करता है वह नित्य ही समस्त भोगोंका उपभोग किया करता है और अन्त समय में परम गति को प्राप्त होता है।५९।

———



उमा संहिता

सनत्कुमार का महापातक वर्णन

ये पापनिरता जीवा महानरकहेतवः ।
भगवस्तान्समाचक्ष्व ब्रह्मपुत्र नमोऽस्तु ते ।।१
ये पापनिरता जीवा महानरकहेतवः ।
ते समासेन कथ्यन्ते सावधानतया श्रृणु ।।२
परस्त्रीद्रव्यसंकल्पश्चेतसाऽनिष्टचिंतनम् ।
अकार्याभिनिवेशश्च चतुर्द्धा कर्म मानसम् ।।३
अनिबद्धप्रलापत्वमसत्य चाप्रिथं च यत् ।
परोक्षतश्च पैशन्यं चतुर्द्धा कर्म वाचिकम् ।।४
अभक्ष्यभक्षण हिंसा मिथ्याकार्यनिवेशनम् ।
परस्वानामुपादनं चतुर्द्धा कर्म कायिकम् ।।५
इत्येतद् द्वादशविध कर्मप्रोक्तं त्रिसाधनम् ।
अस्य भेदान्पुनर्वक्ष्ये येषा संसारार्णवतारकम् ।।६
ये द्विषन्ति महादेवं संसारार्णवतारकम् ।
सुमहत्पातक तेषां निरयार्णवगामिनाम् ।।७

श्रीव्यासजीने कहा-हे भगवान् ! हे ब्रह्मपुत्र ! अब आप कृपाकर उन जीवोंका वर्णनकीजिये जो महापापी हैं और नरक गमनकरनेका अधिकारी होते हैं । हम आपको सादर नमस्कार करते हैं ।१। सनत्कुमारजी ने कहा जो जीवात्मा सर्वदा पापकर्मों में परायणहोकर महाघोरनरक के अधिकारी हैं उनका वर्णन मैं अति संक्षेप के साथ करता हूँ । आप सावधान होकर श्रवण करें ।२। मानसिक कर्म भी चार प्रकार का होता है । दूसरों के धन तथा स्त्री के प्राप्त करनेकी इच्छा करना,अपने चित्तमें दूसकोंका बुरा विचारना,काम वासना विचार तथा अभिनिवश करना-ये चार मन के कर्म

कहे गये हैं ।३। इसी तरह चारही प्रकार का वाचिक कर्म भी होता है—असङ्गत सम्भाषण करना,असत्य तथा अप्रियबातें कहना, पीछेपीछे चुगल खोरी करना-ये वाणीके कम हैं ।४। ऐसेही चार तरह के शारीरिक कर्म हैं अभक्ष्यका भक्षण करना,हिंसा करना झूठे कार्य करना और दूसरों का धन उड़ालेना-ये शरीरकेकर्म कहेजातेहैं ।५। यहाँ तक शारीरिक, वाचिक और मानसिक बारह तरहका कर्म बतलाया है। इसके आगे इन भेदों के प्रभेद बतलाते हैं जिनकाकि अनन्त फल हुआकरताहै ।६। जो मनुष्य इस संसार रूपी महान अगाध सार मे तारने वाले महादेवकी निन्दा करते हैं उनका यह महापाप नरक के समुद्र में जानने लायक होता है ।७।

ये शिवज्ञानक्तारं निन्दन्ति च तपस्विनन् ।
गरुन्त्रिनथोन्मश्तास्ते यांति निरयार्णवम् ।८
शिवनिन्दा गुरोनिन्दा शिवज्ञानश्य दूषणम् ।
देवद्रव्यापहरणं द्विजद्रव्यविनाशम् ।९
हरन्ति ये च यमढाः शिवज्ञानस्य पुस्तकम् ।
महांति पातकान्याहुनन्तफलदानि षट ।१०
नाभिनन्दति ये दृष्ट्वा शिवपूजां प्रकल्पिताम् ।
न नभत्यर्शितं दृष्ट्वा शिवलिङ्ग स्तुवति न ।११
स्थानसंस्शारपृजां च ये न कुर्वंति पर्वसु ।
विधिवद्धा गुरुणां च कर्मयोगव्यवस्थिताः ।१२
यचेष्टचेष्टा निः शङ्काः सतिष्टन्ति रमति च ।
उपवारनिनिमृक्ताः शिवाग्रे गुरुसन्निधौ ।१३
ये त्यजति शिवा वर शिवभक्तान्द्विषन्ति च ।
असंपूज्य शिवज्ञान येऽधीयन्ते लिखन्ति च ।१४

जो मद्रा उन्मत्त पुरुष शिवकी गाथा कहने वाले तपस्वी तथा अपने गुरुकी एवं पितरोंकी निन्दाकिया करते हैं वे दुरात्मा जीव भी नरकगामी होते हैं ।८।शिवकी निन्दा गुरुकी निन्दा, शिव-ज्ञान में दोष लगाना और ब्राह्मणोके धनका अपहरण या नाश करना, शिव ज्ञानी की पुस्तकका हरण

ये छः अनन्त फल देने पातक बताये गये हैं ।९–१०। जो कल्पित हुई शिव-पूजा को देखकर भी हर्षित नहीं होते हैं अथवा शिव के पार्थिवलिंग को पूजित देखकर भी उन्हें प्रणाम नहीं करते हैं तथा उनका स्तवन नहीं करते हैं ।११।जो सबसे अपनी इच्छाके अनुकूल ही निःसन्देह स्थिर रखते हैं तथा रमण किया करते हैंऔर शिवजीके आगे एवंगुरुके निकट उपचार से भ्रष्ट होते हैं ।१२ जो पर्वोंमें स्नान और संस्कार नहीं करतेहैं तथा कर्म योग में व्यवस्थितरहकर सविधिअपने गुरुजनका अर्चन नहीं किया करतेहैं ।१३। जो शिवाचारसेयुक्त शिवके भक्तिसे द्वेषभावरखते हैंऔर जो शिव विज्ञान का बिना पूजन के ही पाठ किया करते हैं या लिखते हैं ।१४।

अन्यायतः प्रयच्छन्ति श्रण्वन्त्युच्चारयन्ति च ।
विक्रीडन्ति च लोभेन कुशाननियमेन च ।।१५
असंस्कृतप्रदेषु यथेष्टं स्वापयन्ति च ।
शिवज्ञानकथाऽक्षेपं यः कृत्वान्यन्प्रभाषते ।१६
न प्रबीति च यः मत्य न प्रदानं करोति च ।
अशुचिर्वाऽशुचिस्थाने यः प्रवक्ति श्रृणोति ।१७
गुरुपूजामकृत्वैवः यः शास्त्र श्रोतुमिच्छति ।
न करोति च शुश्रूषामास्थां च भक्तिभावतः ।१८
नाभनन्दिति तद्वाक्यमुक्तरं च प्रयच्छति ।
गुरुकर्मण्साध्यं तत्तदुपेक्षां करोति च।१९
गुरुमार्तमशक्तं च विदेश प्रस्थितं तथा ।
वैरिभिः परिभूत वा यः संत्यजति पापकृत ।२०
तद्भार्य्यापुत्रमित्रे यश्चावज्ञां करोति च ।
एवं सुवाचस्याहि गुरोर्धर्मानुदर्शिनः ।२१

जो अन्यायसे दान करते, सुनते तथा उच्चारण करते हैं एवं लालच के वशीभूत होकर कुत्सित ज्ञान के नियमोंसे बुरी-बुरी क्रीड़ा करते हैं।१५ जो लोगअपनीही इच्छासे असंस्कृत स्थानोंमें सोते या सुलाते हैं और शिव की ज्ञान कथामें विक्षेपकरते या [illegible] करके कुछकुतर्क करते हैं ।१३।जो

कभी सत्य नहीं बोलते हैं, कभी कुछ प्रदान नहींकरते हैं और स्वयं पवित्र हो या अपवित्रहो ऐसे स्थानोमें कुछ कहते या सुनते हैं।१७। जो बिनागुरु के पूजनकियेही शास्त्रोंको सुनते हैं या श्रवण करना चाहने हैं औरजोअपने गुरुकी सप्रेम भक्तिकेसाथ सेवानहीं करतेहैं या उनकी आज्ञाका पालन नहीं करते हैं।१८। जो गुरुजनोंके वाक्योंका आदरनहीं करतेहैं याउनको उत्तर देदेते हैं और जो गुरुके कार्यको असाध्य बताकर उसकी लापरवही किया करते हैं।१९।जो पापीगुरु,रोगी,असमर्थ तथा परदेश में स्थित या शत्रुओं द्वारा घिरे हुए या तिरस्कृत मनुष्यों को छोड़देते हैं।२०। जो उनकी स्त्री पुत्र और मित्रों का तिरस्कार करते हैं तथा श्रेष्ठवक्ता धर्म दर्शक गुरु की भार्या, पुत्र और मित्र की अवज्ञा किया करते हैं।२१।

एतानि खलु सर्वाणि कर्माणि मुनिसत्तम ।
सुमहत्पातकान्याहुः शिवनिन्दासमानि च ॥२२
ब्रह्मघ्नश्च सुपापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः ।
महापातकिनस्त्वेते तत्संयोगी च पञ्चमः ॥२३
क्रोधाल्लोभाद् भयाद् द्वेषाद् ब्राह्मणस्य वधे समः ।
मर्मांतिक महादोषमुक्त्वा स ब्रह्महा भवेत् ॥२४
ब्राह्मणः यः समाहूय दत्वा यश्चाददाति च ।
निर्दोषं दूषयेद्यस्तु स नरो ब्रह्महा भवेत् ॥२५
यश्च विद्याभिमानेन निस्तेजयति सुद्विजम् ।
उदासीन सभामध्ये ब्रह्महा स प्रकीर्तितः ॥२६
मिथ्यागुणैर्य आत्मानं नयत्युत्कर्षतां बलात् ।
गुणाकापि निरुद्धास्य स च वै ब्रह्महा भवेत् ॥२७
गवां वृषाभिभूतानां गुरुपूर्वकम् ।
यः समाचरेत् विघ्नं तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥२८

हे मुनिश्रेष्ठ ! ये उपर्युक्त समस्तकर्म शिवकी निन्दाके तुल्यही महा-पाप कहे जाते हैं।१२। ब्राह्मण की हत्या करने वाला मदिराका पानकरने वाला, चोरीकरने वाला और अपने गुरुकी पत्नीका गमनकरने वाला तथा

पांचवां इनके साथमेल मोहब्बत रखने वाला ये सब महापापी कहे जाते हैं ।२३। क्रोध से,भयसे द्वेषसे जो ब्राह्मणके वधमें मर्मोंको भेदन करने वाले महा दोषोंको कहता है वहभी ब्रह्म हत्यारा माना जाता है ।२४।जो ब्राह्मण को बुलाकर दियेहुए दानकोभी फिर वापिस लेलेता है और जो दोषरहित पवित्र व्यक्तिको भी दोष लगाता है वह भी ब्रह्म हत्यारा कहलाता है।२५। जो मनुष्य अपनी पठित विद्या के अभिमान में चूर होकर किसी उदासीन श्रेष्ठ ब्राह्मणको निस्तेज करता है वह भी ब्रह्म-हत्यारेके तुल्य ही महापापी माना जाता है ।२६। जो अपने मिथ्यागुणों से बलात् अपने ऐसे गुणों को प्रकट करके आप ही उन्नतिके पदकी प्राप्ति किया करता है वह भी ब्रह्म-हत्यारे के समान ही कहा गया है ।२७। बैल आदि से तिरस्कृत हुई गायों को तथा गुरु के सहित ब्राह्मणों को विघ्न उपस्थित करता है वह भी ब्रह्म-हत्यारा माना गया है ।२८।

देवद्विजगवां भूमिं प्रदत्तां हरते तु यः ।
प्रनष्टामि कालेन तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥२९
देवद्विजस्वहरणमन्यायेनार्जितं तु यत् ।
ब्रह्महत्यासम ज्ञेयं पातक नात्र स ंशय ॥३०
अधीत्य यो द्विजो वेद ब्रह्मज्ञान शिवात्सकम् ।
यदि त्यजति यो मूढ़ः सुरापानस्य तत्समम् ॥३१
यत्किंचिद्धि व्रतं गृह्य नियम यजनं तथा ।
सत्यागः पञ्चयज्ञानां सुरापानस्य तत्समम् ॥३२
पितृमातृपरित्यागः कूटसाक्ष्यं द्विजानृतम् ।
आमिष शिवभक्तानातभक्ष्यस्य च भक्षणम् ॥३३
वने निरपराधानां प्राणिनां चापचातनम् ।
द्विजार्थं प्रक्षिपेत्साधुनं धर्मार्थं नियोजयेत् ॥३४
गवां मार्गे वने ग्रामे यैश्चैवाग्नि प्रदीयते ।
इति पापानि घोराणि ब्रह्महत्यासमानि च ॥३५

जो देवता, विप्र और गौओं केलिए कृष्णार्पणकी हुई भूमि को काल-

वश नष्टहोने पर भी हरणकर लेता है उस मनुष्य को भी ब्रह्म-हत्याराकहा आता है ।२९।किसीभी देव तथा ब्राह्मणके धनका हरणकरना तथा अनीति से धन एकत्रित करना-यह भी कर्म ब्रह्मके समान होते हैं और इनका पापभी ब्रह्म-हत्या के तुल्य ही लगता है इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है ।३०। जो महामूढ़ विप्रवेदोंको पढ़करभी शिवके ब्रह्मज्ञानका त्यागकरदेताहै वह मदिरा पानके समान पाप बतलाया गया है ।३१। किसीभी नियम या व्रतको ग्रहणकरके पंच-महायज्ञ का त्यागकर देनाभी मदिरा-पानके समान महापाप माना गया है ।३२। अपने पूज्य माता-पिता का त्याग कर देना, मिथ्या भाषण करना,शिवके सेवक भक्तोंके माँसका सेवन करना और जो भक्षणके अयोग्यवस्तु है उसका भक्षण करना ।३३।वनमें निरपराधविचारे पशुओंका वध करता और साधु ब्राह्मणों केलिए तथा धर्मके कार्यके लिये प्राणों का मोह करना ।३४।गौओं की राहमें तथा ग्राममें आग लगा देना-ये सभी ब्रह्म-हत्या के तुल्य ही महापाप कहे जाते हैं ।३५।

दीनसर्वस्वहरण नरस्त्रीगजेवाजिनाम् ।
गोभूरजतवस्त्राणामोषधीनां रसस्य ।
चन्दनागरुकर्पूरकस्तूरीपट्टवाससाम् ।
विक्रयस्त्वविपत्तो यः कृतो ज्ञानाद् द्विजातिभिः ।३७
हस्तन्यासापहरणं रुक्मतेयसमं स्मृतम् ।
कन्यानां वरयोग्यानामदानं सदृशे वरे ।३८
पुत्रमित्रकलशेषु गमनं भगिनीषु च ।
कुमारीसाहसं घोरं मद्यपस्त्रीनिवेषैवणम् ।३९
सवर्णायाश्व गमनं गुरुभार्यासमं स्ततम् ।
महापाहापि चोक्तानि श्रृणु त्वमुपपकम् ।४०

किसी भी दीन-हीन का सर्वस्व हरण कर लेना—पुरुष, स्त्री, हाथी, घोड़ा गौ-भूमि,चाँदी,वस्त्र ओषध,रस,चन्दन, अगर, कपूर,कस्पूरी और पट्ट वस्त्र आदिके बेचनेकाकाम करना और द्विजातियों के द्वारा ही इन कामों का ज्ञानपूर्वक कराना ।३६।हाथसे रखी हुई किसी धरोहर को मार लेना

सुवर्णके चुराने के समान है। जो कन्यायें वरके देने योग्य हैं उन्हें उनके समान वरोंको न देना, पुत्र-मित्र की स्त्रियोंके साथ बहिनों के साथ गमन करना, कुमारीके साथ बलात्कार करना, मदिरा-पान करने वाली स्त्री के साथ गमन करना,सुवर्ण स्त्रीके साथ गमन करना गुरु-पत्नी के गमन के समान ही होता है-ये सभी ऊपर बतायेहुए महाघोर पाप कहेगये हैं, इसके आगेमें अबउपपातकीका वर्णन करताहूँ उनको आप सुनें ।३७-३८-३९-४०।

विभिन्न पापों का स्वरूप वर्णन

द्विजद्रव्यापहरणमपि दायव्यतिक्रम ।
अतिमानोऽतिकोपश्च दांभिषत्वं कुतघ्नतः ।१
अत्यन्तविषयासक्तिा कार्पण्यं साधुमत्सरम् ।
परदाराभिगमनं साधुकन्यासु दूषणम् ।२
परिवित्तिः परवेत्ता च यथा च परिविद्यते ।
तयोर्दानं च कन्यायास्तयोरेव च याजनम् ।२
शिवाश्रमतरूणां च पुष्पारामविनाशनम् ।
यः पीडामाश्रमस्थानांमचरेदल्लिकामपि ।४
सभृत्यपरिवामस्य पशुधान्यधनस्ध च ।
कुप्यधान्यपशुस्तेयमपां व्यापावनं तथा ।५
यज्ञारामतडागानां दारापत्यस्त विक्रयम् ।
तीर्थयात्रोपवासानां व्रतोपनयकर्मिणाम् ।६
स्त्रीधनान्पुजीवर्तिस्त्रीभिरत्यन्तनिर्जिताः ।
अव्क्षण च नारीणां मायथा स्त्रीनिषेवणम् ।७

श्रीसरत्कुमारजी ने कहा-येनीचे बताये हुए सभी उपपातक कहे जाते हैं-ब्राह्मणोंके धनको छीनलेना,किसीभी अन्यके भाग को स्वयं पचाकर उसे नहीं देना, अत्यन्त घमण्ड करना अति पाखण्ड करना और किसी के किए हुए उपकारोंको न मानना ।१।सांसारिक विषयों में ज्यादा म की प्रवृत्ति रखना,कंजूसी करना, सज्जन मनुष्योंकेसाथईर्ष्या का भावरखना दूसरोंकी स्त्रीके साथ गमन करना तथाश्रेष्ठ कन्याओंमें कोई भी दोष लगाना ।२।

पर-वित्ति परवेत्ता जिसके द्वारा जाना जाता है। इन दोनों की कन्या का दान करना,इन दोनोंसे यज्ञ कराना ।३। शिव के आश्रमोंमें स्थित वृक्ष बाग या पुरुषोंको नष्टकरना,आमश्रमें रहने वाले मनुष्यों को पीड़ा देना ये सभी उपपातक कहे जाते हैं ।४। सेवक परिवार के सहित पशु धान्य, धन का दान तथा धान्य पशुओं का चुराना, जलको अपवित्र करना ।५। यज्ञ बाग, सरोवर, स्त्री और अपनी सन्तान को बेच डालना, तीर्थ यात्री तथा तीर्थ स्थल उपवास,व्रत,उपनयन करने वालोंको विक्रय कर देना भी उप-पातक होते हैं ।६। स्त्री के धन से वृत्ति करना, स्त्रियों के द्वारा जीते हुए होना, स्त्रियों के रक्षण करने, कपट से उपभोग करना ।७।

कलागताप्रदानं च धान्यवृद्ध्युपसेवनम् ।
निन्दिताच्च धनादानं पण्यानां कूटजीवनम् ।।८
विषमारण्यपत्राणां सततं वृषवाहनम् ।
उच्चाटनाभिचारं च धन्यादान भिषविक्रया ।।९
जिह्वाकामोपभोगाथ यस्यारलभः सुकर्मसु ।
मूलेनाध्यापको नित्यं वेदज्ञानादिकं च यत् ।।१०
व्राह्ययादिव्रतसत्यागश्चान्याचारनिषेवणम् ।
असच्छ्राम्त्रागि नं शुष्कतर्कावलम्बनम् ।।११
देवाग्निगुरुसाधूनां निन्दया ब्राह्मणस्य च ।
प्रत्यक्षं वा परोक्षं वा राज्ञां मण्डलियानि ।।१२
उत्सन्नमितृदेदेज्याः स्वकर्मत्यागिनश्च ये ।
दुःशीला नास्तिकाः पापाः सदा वाऽसत्यवादिनः ।।१३
पर्वकाले दिवा वाप्सु वियोनौ पशुयोनिषु ।
रजस्वालाया योनौ च मैथुनं यः समाचरेत ।।१४

समय पर आये हुएको भीकुछ न देना धान्य वृद्धिका सेवनकरना,निन्दित धनको लेना और व्यापार में कूट-जीवन बिताना भी उपपातक बताये गये हैं ८।विषम जङ्गलोंके पत्तों का तड़ डालना, बैल का वाहन करना किसी के उच्चाटन या मारण का प्रयोग करना, धान्य का छीन लेना तथा वैद्य

वृत्तिका करना-ये सभी उपपातक होते हैं ।६। अपनी जिह्वाके रसभोग की कामनामें बुरेकर्म में प्रवृत्तहोना और वेदाज्ञान आदिमें केवल मूलको पढ़ना भी उपपातक होता है ।१०। ब्रह्म आदि व्रत का त्याग कर देना, अन्यों के आचार का सेवन,बुरे शास्त्रों का अध्ययन और शुष्क तर्कका सहारा लेना भी उपपातक हैं ।११।देवता,ब्राह्मण, अग्नि, साधु और चक्रवर्ती राजा की पीछे से निन्दा करना, पितृयज्ञ का त्याग करना, अपने स्वाभाविक कर्म का त्याग कर देना,दुराचरण करना नास्तिक भाव रखना,पापवृत्ति करना और मिथ्या बोलना-ये सभी उपपातक कहे गये हैं ।१२-१३। पर्व के समय में, दिन के समय में, जल के मध्य में,वियोनि में, पशु योनि में और रज-स्वला योनि में गमन करना उपपातक होते हैं ।१४।

स्त्रीपुत्रमित्रसंताप्तौ आशाच्छेदकाराश्च ये ।
जनस्याप्रियवंक्तारः क्रूराः समयवेदिनः ॥१५
भेत्तां तडागकूपान संक्रयाणां रसस्य च ।
एकपक्तिस्थितानां च पाकभेदं करोति यः ॥१६
इत्येतैः स्त्रीनराः पापैरुपातकिनः स्मृताः ।
युक्ता एभिस्तथान्यऽपि शृणु तांस्तु ब्रवीमिते ॥१७
ये गोब्राह्मणकन्यानां स्वामिमित्रतपस्दिनाम् ।
विनाशयन्ति कर्माणि ते नरा नारकाःस्मृताः ॥१८
परस्त्रियाऽभितप्यते ये परद्रव्यसूचकाः ।
परव्यहरा नित्य तौलमिथ्यानुसारकाः ॥१९
द्विजदुःखकरा ये च प्रहार चोद्धरति ये ।
सेवन्ते तु द्विजा शूप्रां सुरां बध्नति कामतः ॥२०
ये पापनिरताःक्रूरा येऽपि हिंसाप्रिया नरा ।
वृत्यथं येऽपि कुर्वन्ति दानयज्ञादिकाःक्रियाः ॥२१

जो स्त्री-पुत्र और मित्रोंके प्राप्त होनेपर आशाको तोड़ देतेहैं । तथा मनुष्योंकेसाथ सर्वदा कटुभाषण करते हैं और क्रूर,समयकाज्ञान नहींरखते हैं,ये सभी उपपातकी माने जाते हैं।१५।तालाब-कूप तथा किसीभी जलाशय

और रसों का भेदन करना एवं एकही पंक्तिमें बैठेहुए लोगोंकेभोजनमेंभेद भावकरनाभी उपपातक होते हैं ।१६। इनसेभी ऊपर बतायेहुये कर्मों के करनेसे स्त्रीहोया पुरुषही सब उपपातकोंकी कहे जाते हैं । जो भीकोईइन पातकोंसे युक्तहैं तथा अन्य पापों से भी युक्तहोते हैं उन सबकावर्णनकरते हैं आपलोग श्रवणकरें १७।जो पुरुष गौ, ब्राह्मण, कन्या,स्वामी, मित्र और तपस्वियोंके कार्यों को बिगाड़ डालते हैं वे निश्चयही नरक के गामी हुआ करते हैं ।१८।जो अन्यों की स्त्रियोंसे दुःखित होतेहैं तथा जो पराये धनके सूचक हैं एवं नित्यही दूसरों के धनका हरण करने वाले हैं और मिथ्या तोल करने वाले होते हैं, वे नरक के अधिकारी हैं ।१९। जो ब्राह्मणों को सताते हैं और उनपर प्रहार किया करते हैं-जो सिद्ध होकर शूद्र की स्त्री का सेवन कियाकरते हैं और कामसे मदिरा को बांधते हैं ।१०। जो सदा पापमय कर्मों में ही परायण रहा करते हैं—जो अत्यन्त क्रूर हैं—जो सर्वदा हिंसा किया करते हैं और जोअपनी जीविका के लिए दान यज्ञ आदि किया करते हैं ।२१।

गोष्ठाग्निजलरथ्यासु तरुच्छायानगेष ।
त्यजन्ति ये पुरीषाद्यानारामायनेषु च ।२२
लज्जाश्रमप्रसादेषु मद्यपानरताश्च ये ।
कृतकलिभुजंगश्च रन्ध्रान्वेषणतत्परः ।२३
वशेष्टकालिकाकाष्ठैः श्रृंगैःशंकुभिरेव च
ये मार्गमनुरुंधति परसीमां हरन्ति ये ।२४
कूटपाकान्नवस्त्रानां कूटकर्मक्रियारतः ।
कूटपाकान्नवस्त्राणाँ कूटसंव्यवहारिणः ।२५
धनुषः शस्त्रशल्यानां कर्त्ता य क्रयविक्रयी ।
निर्दयोऽतीव भृत्येषु पशूनां दमनश्च यः ।२६
मिथ्या प्रवदतो वाचआकर्णयति य शनैः ।
स्वामिमित्रगुरुद्रोही मायावी चपलः शठ ।२७
ये भार्य्यापुत्रमित्राणिवालवृद्धकृशातुरान् ।
भृत्यानतिधिधूश्च ब्यक्त्वाश्नति बुभुक्षितान् ।२८

जो गोशाला, अग्निकुण्ड, जलाशय, गलीकीराह, वृक्षोंकीछाया, पर्वत शिखर और निवासस्थान में मल-मूत्र करते या फेंकतेहैं ।२२। जो लज्जा के आश्रम तथा महलोंमें मद्यपान किया करते हैं। दूसरोंकेछिद्र की खोज करने में तत्पर सर्पोंकेसमान क्रीड़ा करतेहैं-वेसभी नरकगामी होते हैं। ।२३।जो पुरुष बांस,ईंट,पत्थर,काष्ठ,सींग और कालों से मार्ग को रोकदेते हैं तथा दूसरों की सीमा का हरण करलेते है ये सभी नरक के अधिकारी होते हैं ।२४। जो कपटसे शिक्षा देने वाले, छल भरे कर्म एवं व्यापार में तत्पर रहा करते हैं और कपटपूर्ण पाक, अन्न तथा वस्त्रों का व्यवहार करनेवाले होते हैं वे सब नरकगामी हैं ।२५।जो धनुष,शास्त्र और शल्यों के निर्माण करने वाले हैं तथा इनकी खरीद फरोख्त किया करते हैं— अपने भृत्यों (नौकरों) के साथ निर्दयता का व्यवहार किया करते हैं और जो पशुओं को बुरी तरहसे मारते हैं ये सब,नरककेगमन करने वाले होतेहैं ।२६। जो मनुष्य झूँठी बात को धीरे धीरे सुनाता है अपने मित्र, स्वामी और गुरु से द्रोहकरने वाले होते हैं ।२७। जो मनुष्य अपनी स्त्री-पुरुष, बान्धव, वृद्ध दुर्बल,रोगी,भृत्य,अतिथि और बान्धवोंको खिलाते हुए भूखा ही छोड़कर भोजन कर लिया करते हैं-ये सभी नरक के जाने वाले उपपातकी होते हैं ।२८।

यः स्वयष्टिभश्नाति विप्रेभ्यो न प्रयच्छन्ति ।
वृथापकः स विज्ञेयो ब्रह्मवादिषु गर्हितः ।२९
नियमान्स्वयमादाय ये त्यजन्त्यजितेन्द्रियाः ।
प्रव्रज्यावासिता ये सरस्यास्य प्रभेदकाः ।३०
ये ताडयन्ति यां क्रूरा दमयते मुहुर्मुहुः ।
दुर्बलान्ये न पुष्णन्ति सततं यं त्यजन्ति च ।३१
पीडयंत्ययिभारेणासहतं वाहयन्ति च ।
योजयन्नकृताहासन्न विमुंचचि संयतान् ।३२
ये भारक्षातरोगार्तान्गोवृषांश्च धातुरान् ।
न पालयन्ति यत्नेन गोघ्नास्तेनारकाः स्मृता ।३३

वृषाणां वृषणास्थे च पापिष्ठा गालयन्ति च ।
वाहयंति च गां बन्ध्यां महानारकिनोनराः ॥३४
आशया समयुप्राप्तान्क्षुत्तृष्णाश्रमकार्शितान् ।
अतीथींश्च तथा नाथान्स्वतन्त्रान्गृहमागतान् ॥३५
अन्नाभिलाषान्दीनान्वा बालवृद्धकृशातुरान् ।
नानुकपति यै सूढ़ास्ते यांदि नरकार्णवम् ॥३६

जो स्वयं नियमोंको स्वीकार करके इन्द्रियोंको जीतनेवाला नरहै और स्वीकृत नियमोंका त्यागकर देते हैं और संयास ग्रहणकरके घरमें रहते हैं तथा शिव प्रतिमाका भेदन करतेहैं ये सब नरकगामी होते हैं।२९-३०। जो अत्यन्त क्रूरतासे गायोंको मारते हैं तथा बारम्बार दमन किया करतेहैं,जो दुर्बलोंका पोषण नहीं कियाकरतेहैं तथा उनको सर्वथा त्यागदेते हैं-वे नरक गामीहोते हैं।३१। जो अत्यन्तबोझा लादकर पीड़ादेते हैं,न सहन करने वाले पशुकोभी बराबर जोततेरहाकरते हैं और जिनपशुओंको खाना न मिलाहो ऐसे भूखे पशुओंकोभी जोतते या बंधा हुआरखते हैं वे मनुष्य नरकयातना भोगने के अधिकारी हुआ करते हैं ।३२। जोअत्यन्त असह्य भारसे पीड़ित एवं घायल, रोगी और क्षुदा पीड़ित गाय. बैलोंका समुचित रूपसे पालन पोषण नहींकिया करते हैं। वे निःसन्देह गौ हत्यारे महापापी नरकके दुःख भोगने वालेहोते हैं ।३३।जो पापात्मा विचारेबैलोंके अण्डकोशों को पिटवा कर उन्हें बधिया बनाया करते हैं तथा बाँझ गौओं को भीजोता करतेहैं वे पुरुष महानरककी यातनाभोगते हैं ।३४। कुछ आशालेकर प्राप्त होनेवाले भूख-प्यास और परिश्रम के कारण विकल,अभ्यागत तथा अनाथों को अन्न पानेकी इच्छा से समागतों का दीन,बालक,वृद्ध,दुर्बल और रोगियों पर जो नहीं कहते हैं. वे महान मूर्ख अवश्य ही घोर नरक में जाते हैं ।३५-३६।

गृहेष्वर्था निवर्तन्ते श्मशानादपि बांधवा ।
सुकृत दुष्कृतं चैव गच्छन्तमनुगच्छति ॥३७
आजीविको माहिषिकः सामुदा वृषलीपतिः ।
शूद्रवत्क्षत्रवृत्तिश्च नारकी स्याद् द्विजाधमः ॥३८

यश्चोचितमतिक्रम्य स्वेच्छयैवाहरेत्करम् ।।३९
नरके पच्यते सोऽपि योपि दण्डरुचिनरः ।।४०
उत्कोचकै रुविक्रीतैस्तस्करैश्च प्रपीड्यते ।
यस्य राज्ञः प्रजा राष्ट्रे पच्यते नरकेषु सः ।।४१
ये द्विजा परिगृह्णन्ति नृपस्यान्यायवर्तिनः ।

मनुष्य मृत्युगत हो जानेपर सारा धन एश्वर्य घर में ही पड़ा छोड़ जाता है । उसे श्मशान में पहुँचाकर भाइ-बन्धुभी सब घर लौट आते हैं। केवल वही एक जीवात्मा अकेला किये हुए पाप तथा पुण्यों को साथ लेकर परलोक में जाया करता है । वहाँ अपने कर्मों का भोग भोगना पड़ता है । अतः सदा सत्कर्म ही करना चाहिये, यही इसका तात्पयार्थ है ।३७। बकरी, भैंस का क्रय-विक्रय करने वाला नीच ब्राह्मण, समुद्र पर रहने वाला, शूद्रा स्त्री का पति, शूद्रके तुल्य और क्षत्रिय की वृत्ति करने वाला महानीच होकर नरकगामी होता है ।३८। जो शास्त्रोक्त उचित करना उल्लंघन करके अपनी ही इच्छा से कर वसूल या हरण करता है और जो सर्वदा दण्ड देनेकी रुचि रखता है वह अवश्य ही नरक को भोगता है ।३४-४०। जिस राजाके राज्य में प्रजाजन घूँसखोर और अपनी इच्छा के अनुसास क्रय विक्रय करने वाले हो तथा प्रजाके लोग तस्करों से उत्पीड़ित रहते हों, वह राजा भी नरकगामी होता है । ४१ । जो ब्राह्मण अन्यायी राजा का दिया हुआ दान लेते हैं, वे भी घोर नरक में निश्चय ही जाया करते हैं ।४३।

त प्रयांति तु घोरेषु नरकेषु न संशयः ।।४२
अन्यायात्समुपादाय द्विजेभ्या यः प्रयच्छति ।
प्रजाभ्यः पच्यते सोऽपि नरकेषु नृपो यथा ।।४३
पारदारिकचौराणां चण्डना विद्यते त्वघम् ।
पारदारितस्यापि राज्ञो भवति नित्यशः ।।४४
अचौरं चौरवत्पश्येच्चौर वाऽचोररूपिणाम् ।
अविचार्य्य नृपस्तमाद्धातयन्नरकं व्रजेत् ।।४५
घृततैलान्नपापानि मधुमांससुरासवम् ।
गुडेक्षुशाकदुग्धानि दधिमूलफलानि च ।।४६

तृणं काष्टं पत्रपुष्पमौषधं चात्मभोजनम् ।
उपानच्छत्रशकटमासनं च कमंडलुम् ।।४७
माम्रसीसत्रपुः शस्त्रे खड्गाद्यं च जलोद्भवम् ।
वैद्यं च वैणवं चान्यद् गृहोपरकरणानि च ।।४८
औण्णं कार्पासि कौमेय पट्ट सुतोद्भवानि च ।
स्थूलसूक्ष्माणि वस्त्राणि ये लोभाद्धि हरन्ति च ।।४६

जो राजा प्रजा को दबाकर अन्याय पूर्वक धनलेकर ब्राह्मणों को दान रूप में देता है वह राजा अपनी शनीति ये युक्त पापसे कारण नरकगामी होता है ।३४। पराई स्त्रियों के साथ भोग तथा चोरी करने वाले पुरुषों को तथा नित्य ही पर-स्त्री में रत राजा को बड़ा पाप लगता है और उसके लिए वह नरक की यातना भोगते हैं ।४४। जो राजा चोरी न करने वाले चोर और चोरी का काम करने वाले तस्कर पुरुषों को सत्पुरुष समझता है और बिना-भली भाँति विचार किये ही ताड़ना एव दण्डदेता है, वह नरकगामी होता है ।४५। जो निम्न वस्तुओं के चोर होते हैं वे नरकगामी होते हैं यथा-घी, तेल, पीने की वस्तु-अन्न, शराब, माँस, अर्क, ईख, गुड़, धाक, दूध, दही, फल, मूल, घास, काष्ठपत्र-फुल, औषध, शपगा, भोजन जूता, छाता, गाड़ी, कमण्डल, आसन, लोह, ताम्र, सीमा, रांग, शस्त्र, शङ्ख, जलसे उत्पन्न वस्तु-वैद्य लकड़ी, घरके काम में आने वाली वस्तु-ऊनी, सूती, रेशमी, रामवास आदि एवं छालके निर्मित मोटे व वारीक वस्त्रोंको जो भी कोई लालच वश चुरा लेते हैं- वे निश्चय ही नरक की यातना भोगते हैं ।४६-४७-४६।

एवमादीनि चान्यानि द्रव्याणि विविधानि च ।
नरकेषु ध्रुवं यान्ति चापहृत्याल्पकानि च ।।५०
यद्वा तद्वा परद्रव्यमपि सर्षपमात्रकम् ।
अपहृत्य नरा यान्ति नरकं नात्र संशयः ।।५१
एवमाद्यैर्नरः पापैरुत्क्राँतसमनन्तरम् ।
शरीर यामनार्थाय सर्वाकारमवाप्नुयात् ।।५२
यमलोकं ब्रजन्त्येते शरीरेण यमाज्ञया ।
यमदूतैर्महाघोरैर्नीयमानाः सुदुःखिता ।।५३

देयं तयङ् मनुष्याणामधर्म निरतात्मनाम् ।
धर्मराजः स्मृतः शास्ता सुघोरैर्विविधैः ॥५४

नियमाचारयुक्तानां प्रमादात्स्खलितात्मनाम् ।
प्रायश्चित्तं गुरुः शास्ता न बुधैरिष्यत यमः ॥५५

परदारिकचौराणामन्यायव्यवहारिणाम् ।
नृपतिः शासकः प्रोक्तः प्रच्छन्नानां स धर्मराट् ॥५६

भस्मात्कृतस्य पापस्य प्रायश्चित्तं समाचरेत् ।
नाभुक्तस्य न्यथा नाशः कल्पकोटिशत्तरपि ॥५७

य करोति स्वयं कर्म कारयेच्चानुभोदयेत् ।
कायेन मनसा वाचा तस्य पापगतिः फलम् ॥५८

इसके अतिरिक्त भी अनेक प्रकार के बहुत से द्रव्य हैं, जिनका हरण करने से चाहे स्वल्प मात्रा में ही क्यों न हो, निश्चय ही नरक गामी होते हैं ।५०। कुछ भी क्यों न हो पराई वस्तु तो चाहे सरसों के दाने के बराबर भी चुराई आवे तो इसका बुरा परिणाम नरक यातना अवश्य ही सहना पड़ता है इसमें तनिक भी संशय नहीं है ।५१। मनुष्य उपर्युक्त चोरी करनों के पाप से नरक भोगने के पीछे शारीरिक कष्ट उठने के लिए समस्त आकार को प्राप्ति करता है ।५। ऐसे पाप कर्म करने वाले पापी शरीर को लेकर मेरे आदेश से भीषणवपु वाले यमदूतों के द्वारः पकड़े हुए अत्यन्त दुःख से भरकर यमराज के लोक को जाते हैं ।५३। धर्मराज अनेक प्रकार के वधों के द्वारा देव-मनुष्य और पक्षी सबको जो अधर्म करते हैं, दण्ड दिया करता है ।५४। जो नियम और सदाचारों में तत्पर रहा करते हैं कभी अज्ञानवश गिरजाते हैं तो ऐसे लोगों को अनेक प्रकार के प्रायश्चितों द्वारा गुरु ही शिक्षा दे दिया करते हैं। ऐसे लोगों को शिक्षा पाने के लिए धर्मराज के पास नहीं आना पड़ता है। ऐसा पण्डित लोग कहते हैं ।५५। पराई स्त्रियों से प्रसङ्ग करने वाले—चोर और अन्याय से व्यवहार करने वालों को दण्ड देकर शिक्षा देने वाला राजा बताया गया है। जो गुप्त महा-पाप किया करते हैं, उनको यमराज ही दण्ड देते हैं ।५६। इसलिये किये हुए पापों से शुद्धि प्राप्त करने को प्रायश्चित अवश्य ही करना चाहिए

अन्यथा पापोंका फल बिना भोगेहुए करोड़ों कल्पों में भी नष्ट नहीं होता है। ५७। पापकर्म स्वयं करे या मन वाणी या शरीर के द्वारा पापकर्म करावे अथवा इनका अनुमोदन करे-उसको उनका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। ५८।

नरकलोक का मार्ग और यमदूतों का स्वरूप वर्णन

अथ पापैर्नरा यांति यमलोकं चतुर्विधः।
संत्रासजनं घोर विवशाः सर्वदेहिनः ॥१
गर्भस्थैर्जायमानैश्च बालैस्तरुणममध्यमैः।
स्त्रीपुन्नपु सकैर्जीवैर्ज्ञातव्यं सर्वजन्तुषु ॥२
शुभाशुभफल चात्र देहिनां संविचार्यते।
चित्रगुप्तदिभिः सर्वैर्वसिष्ठप्रमुखैस्तथा ॥३
न केचित्प्राणन सन्ति ये न यान्ति यमक्षयम्।
अवश्यं हि कृत कर्म भोक्तव्यं तद्विचार्य्यताम् ॥४
तत्र ये शुभ कर्माणः सौम्यचित्ता दयान्विताः।
ते नरा यान्ति सौम्यन पूर्वं यमनिकेतनम् ॥५
पे पुनः पापकर्माणः पापा दानविवर्जिताः।
ते घोरेण यथा यान्ति दक्षिणेन यमलायम् ॥६
षडशीतितहस्त्राणि योजनानामयीष्य तत्।
वैवस्वतपुर ज्ञय नानरूपमवस्थितम् ॥७

श्री सनत्कुमारजी ने कहा—समस्त प्राणी चार तरह के पापों में त्रास पैदा करने वाले अत्यन्त भयङ्कर यमराजके लोकको जाया करते हैं और मजबूर होकर उन्हें वहाँ अवश्य ही जाना पड़ता है। १। गर्भमें स्थित रहकर जन्म धारण करने वाले वालक युवा, प्रौढ़ और वृद्ध तथा स्त्री एवं पुरुष और अपुंसक सभी को यह बात भलीभाँति जान व समझलेनी चाहिए। २। वहाँ पर लेखा-जोखा रखने वाले धर्मराज के मंत्री चंद्रगुप्त आदि तथा महर्षि वशिष्ठ आदि मुनियों द्वारा समस्त जीवों के शुभाशुभ कर्मका विचार किया जाता है।३। अपना किया हुआ कर्म सभीको अव-

श्य ही भोगना पड़ता है इसलिये ऐसे कोई भी प्राणी नहीं है जो यम-राज के लोकको नहीं जाते हैं। शुभ अशुभ कर्मोंका निर्णय वहाँ परही होता है ।४। इन प्राणियों के जो शुभ कर्म करने वाले और सौम्य चित्त वाले कृपापूर्ण मनुष्य होते हैं वे वहाँ यमलोक में सौम्य मार्ग से पूर्वद्वार को जाया करते हैं ।५। जो अनेक पापकर्म करने वाले महाबली एवं दान-शून्य प्राणी होते हैं वे घोर दक्षिण दिशाके मार्गसे यमराज के लोकको जाया करते हैं ।६। वह वैवस्वतपुर अनेक रूप में स्थित हैं और वहाँ जानके लिए छियासीहजार योजन कोसों का फासला तय करके जाना पड़ता है ।७।

समीपस्थमिवाभाति नराणां पुण्यकर्मणाम् ।
पापिनामतिदूरस्थं यथा रौद्रेण गच्छताम् ।।८
तीक्ष्णकंटकयुक्तेन शर्कराविचितेन च ।
क्षुरधारानिभैस्तीक्ष्णै रचितेन च ।।९
क्वचित्पंकेन महता उरुतोकैश्च पातकैः ।
लोहसूचीनिभैर्दर्भैः सम्पन्नेन यथा क्वचित् ।।१०
तटप्रायातिविषयैः पर्वतवृक्षसंकुलैः ।
प्रतप्तांगारयुक्तेन यांति मार्गेण दुःखिता ।।११
क्वचिद्विषमगर्तैश्च क्वचिल्लोष्ठैः सुदुष्करैः ।
सुतप्तबालुकाभिश्च तथा तीक्ष्णैश्च शकुभिः ।।१२
अनेकशाखाविततेर्व्याप्तं वंशवनैः क्वचित् ।
कष्टेन तमसा मार्गे नानालब्धेन कुत्रचित् ।।१३
अयः शृंगाटकैस्तीक्ष्णैः क्वचिद्दावाग्निना पुनः ।
क्वचित्तप्तशिलाभिश्च क्वचिद्व्याप्तं हिमेन च ।।१४

यही यमलोक पुण्यात्माओं को तो अत्यन्त समीपमें स्थित जैसा प्रतीत होता है और पापियोंको अत्यन्तही दूरमें स्थितजैसा लगता है। पापीप्राणी बड़ेभयङ्कर मार्गसे होकर इस लम्बी यात्री को पार करतेहुए वहाँपहुँचपाते थे ।७। मार्गमें कहीं भयानक काँटे बिछेहुए हैं तो कहीं बालू रेतही रेत भरी पड़ी है। किसी जगह छुरेकी तीखीधारके तुल्य चीरदेने वाले पाषाण बिछे

हुए हैं ऐसे मार्ग से जानापड़ता है ।९। वह मार्ग कहीं तो बहुतभारी दल-दल से युक्त कीचड़ वाला होता है-किसी जगह उत्तोंक पापों से युक्त तो कहीं लोहे की सुई के समान तीखी कुशाओं से युक्त होता है ।१०। उस मार्ग में कहीं-कहीं तटप्राय प्रदेशों के अत्यन्त कठिन पर्वत होते हैं और किसी जगह घने वृक्षों का भयानक जंगल होत है। किसी स्थान पर तपे हुए अंगार भरे होते हैं। एसे मार्ग में प्राणी बहुतही दुःखित होते हुए जाया करते हैं ।११। यमलोक के मार्ग में किसी जगह बहुत भारी गहरे गर्त आते हैं, कहीं ऊँचे टीले होते हैं और कहीं पर खूब तपी हुई बालू होती है तथा तीखे कीले गड़े होते हैं ।१२। यमपुर का रास्ता बहुत ही कठिन होता है, कहीं भयनक शाखायुक्त बाँसों का जंगल घोर अन्धकार छाया रहता है तथा उस मार्ग में ऐसे बहुत से आधार रहा करते हैं ।२३। वह रास्ता कहीं लोहे के सिंघाड़ों से व्याप्त रसता है जो बहुत ही तीखे होते हैं। किसीं जगह दावानल से व्माप्त रहता है, किसी स्थान पर तपी हुई पाषाण शिलाएँ मिलतीं हैं, तों कहीं बहुत ठन्डी बर्फ जमी हुई रहती है ।१४।

क्वचिद्वालुकया व्याप्तामाकठांती प्रवेशया।
क्वचिद् दुष्टाम्बुना व्याप्तं क्वचिच्च करिषाग्निना ॥१५
क्वचित्सिहैर्वृकैश्च सुदारुणैः।
क्वचिन्महाजलौकाभिः क्वचिच्चाजगरैस्तथा ॥१६
मक्षिकाभिश्च रौद्राभिः क्वचित्सर्पैविषोल्वणैः।
मत्तमातंगयूथैश्च बलोन्मत्तैः प्रमाथिभिः ॥१७
पंथानमुल्लिखद्भिश्च सूकरैस्तीक्ष्णदंष्ट्रिभिः।
तीक्ष्णशृंगैश्च मत्रिणैः सर्वभूतश्च श्वापदैः ॥१८
डाकिनीभिश्च रौद्राभिर्विकरालैश्च राक्षसैः।
व्याधिभिश्च महाघोरैः पीडयमाना व्रजति हि ॥१९
महाधूलिविमिश्रेण महाचण्डेन वायुना।
महापाषाथवर्षेण हन्यमानानिराश्रया ॥२०
क्वचिद्विद्युत्प्रपातेन दह्यमाना व्रजन्ति।
महता वाणवर्षेण विध्यमानाश्च सर्वतः ॥२१

उस यमपुर के मार्ग में कहीं कण्ठ पर्यन्त गड़ जाने वाली तप्तबालू है तो किसी जगह दूषित गन्दाजल भरा रहता है किसी स्थान पर करीष की अग्नि व्याप्त रहा करती हैं ।१५। मार्ग में किसी स्थान पर सिंह-बाघ और और भेड़िया आदि हिंसक एवं भयानक जीव होते हैं। कहीं पर अजगर भरे हुए है तो कहीं भयानक मच्छर तथा जौंक मिला करते हैं ।१६। यमपुर का मार्ग विषैली मक्खी, सर्प और मतवाले बलोन्मत्त हाथियों से पूर्ण रहता है जोकि बीच-बीच में जहां-तहाँ मिला करते हैं और भयदेते है ।१७। यह रास्ता सब ओर भयावह जीवों से भरा-पूरा रहता है। कहीं तीक्ष्णदाढों से जमीन खोदने वाले जंगलीशूकर है तो कहो पैनेसींगों वाले भैंसे रहा करते हैं। सभी प्रकार के हिंसक जानवर वहाँ मिला करते है ।१८। मार्ग में बहुत विकठ डाँकिनी, विकराचराक्षस दिखाई देते हैं। इस तरह उस मार्ग में अत्यन्तघोर व्याधियों से पीड़ित होकर जाया करते हैं ।१९। इस यमपुर के मार्ग प्राणी भयानक धूल से व्याप्त होकर प्रचण्ड वायुके झोंकों से झकझोरते हुए होकर और वृहत् पाषाण वृष्टि से निराश्रय एवं परम क्लेशित होकर बड़ी कठिनाई से तय किया करते हैं ।२०। किसी जगह बिजली के सन्ताप से झुझलाते हुए और किसी जगह चारों ओर से होने वा वाली वाणों की वर्षा से पीड़ित होते हुए इस यमपुर के मार्ग को पूरा करते हैं ।२१।

पतद्भिर्वज्रपतैश्च उल्कापातैश्च दारुणैः ।
प्रदीप्तांगारवर्षेण दह्यमानाश्च संति हि ॥२२
महता पाँसुवर्षेण पूर्यमाणा रुदंति च ।
महामेघवैर्घोरैस्त्रस्यते च मुहुर्मुहुः ॥२३
निशितायुधवर्षेण भिद्यानाश्च सर्वतः ।
महाक्षाराम्बुधाराभिः सिच्यमाना वृजंति च ॥२४
महाशीतेन मगुता रूक्षेण परुषेण च ।
समतात् बाध्यमानाश्च शुष्यते संकुचन्ति च ॥२५
इत्य मार्गेण रौद्रेण पाथेयरहितेन च ।
निरालम्बेन दुर्गेण निर्जलेन समंततः ॥२६

विषमेणैव महता निर्ज्जनापाश्रयेण च ।
तमोरूपेण कष्टेन सर्वदुष्टाश्रयेण च ॥२७
नीयते देहिनः सर्वे ये मूढाः पापकर्म्मिणः ।
यमदूतैर्महाघोरैस्तदाज्ञाकारिभिर्बलात् ॥२८

कहींपर प्राणियोंपर वज्रपात होता है, कहीं अत्यन्त दारुण उल्काग्नि का पातहोता है और किसी जगह अङ्गारोंकी एकदम वर्षा होती है जिससे शरीरमें भस्मीभूत होनेका कष्ट होता है ।२१। प्राणी मार्गमें धूलमें व्याप्त होकर रुदनकरते हैं और भयानक मेघोंसे भयभीत होते है ।१३। पापात्मा प्राणी यमपुरके मार्गमें चारों ओरसे तीखे शस्त्रोंकी वृद्धिसे भेदित होते हुए और महाखारी समुद्रकी लहरोंसे सिंचित होकर जाया करते हैं ।२४। मार्ग में बहुत रूखी व कठोर वायु लगती हैं, जिससे शुष्क और सुकडे हुए हो जाते हैं ।१५। इसरीतिसे वह मार्ग बहुतही अधिक भयङ्कर होता है जिसमें न कुछ चबेना है और न कोई आधार ही । उसमें पीनेके लिये जल भी प्राप्त नहीं होता है । २६ । बड़े ही विषम निर्जन आश्रयहीन, अन्धकार पूर्ण तथा दुरात्माओं से घिरा हुआ यमपुरीका मार्ग है. जिससे पापीजीव जायाकरते हैं । २७ । जो मूर्ख पापात्मा प्राणी होते हैं उन्हें यमराज के आज्ञाकारी महाघोर दूतों के द्वारा बलात्कार सेजाया जाता है ।२८।

एकाकिनः पराधीना मित्रबन्धुविवर्जिताः ।
शोचन्तः स्वानि कर्माणि रुदंतश्च मुहर्मुहः ॥२९
प्रेता भूत्वा विवस्त्राश्च शुष्ककण्ठौष्ठतलुकाः ।
असौम्या भवतीताश्च दह्यमानाः क्षुधान्विताः ॥३०
बद्धाः श्रृङ्खलया केचिदुत्त नपादका नराः ।
कृष्यते कृष्यमाणाश्च यमदूतैर्बलोत्कटैः ॥३१
उमरसाऽधोमुखाश्चान्ये घृष्यमाणाः सुदुःखितः ।
केशपाशनिबन्धन संकृष्यन्ते च रज्जुना ।३२
ललाटे चाँकुशेनान्ये भिन्ना दुष्यंति देहिनः ।
उत्ताना: कटकपथा क्वचिदगारवर्त्मना ॥३३

पश्चाद्बाहुनिबद्धाश्च जठरेण प्रपीडिताः ।
पूरिता श्रृङ्खलाभिश्च हस्तयोश्च सुकीलिताः ।३४
ग्रीवापाशेन कृष्यन्ते प्रयांत्यन्य सुदुःखिताः ।
जिह्वांकुशप्रवेशेन रज्ज्वाऽऽकृष्यन्त एव ते ॥३५
नासाभेदेन रज्ज्वा च व्याकृष्यन्ते तथापरे ।
भिन्ना कपोलयो रज्ज्वा कृष्यतेऽन्ये तथौष्ठयोः ॥३६

पापीजीव यमदूतों के द्वारा पकड़े हुये अकेले-पराधीन-विवश-मित्र तथा बन्धु-बान्धवों से विमुक्त होकर अपने कुकर्मों पर चिन्ता करते हुए और बारम्बार रोते हुए मार्गसे जाया करते हैं ।२९। पापी प्राणी जब प्रेत होते हैं तो वस्त्ररहित उनका गला होता है, ओठ और तालू सूखे हुए हैं, सौम्यता से रहित भयभीत परम सन्तप्त और भूखसे परम क्लेशित होकर यमपुरी की यात्रा करते हैं ।३०। उन पापियों में कुछ साँकलोंसे बधेहुए हैं तो कुछ ऊपरको पैर कियेहुए हैं । उन्हें बलवान् यमदूत जबर्दस्तीसे खींच-कर लेजाते हैं ।३१। पापी जीवों में कुछ उत्तान होकर मस्तकपर अंकुश से विदीर्ण होते हुए परम दुःखित हैं तो कोई हृदय से नीचे मुख कियेहुए घिसटे चले जाते हैं कुछ काल की पाशों से बँधी हुई रस्सीसे खिचे हुए ले जाये जाते हैं । कोई अत्यन्त क्लेशित हैं जोकि कण्टकाकीर्ण तथा अङ्गारपूर्ण मार्ग से ले जाये जाते हैं ।३१-३३। कुछ पापियों को यमदूतोंके द्वारा मार्ग में भुजाओं को बाँधकर ले जाया जाता है । कोई श्रृङ्खलाओंसे खूब कसकर बंधेहुए उदर से पीडित होकर जाते हैं कुछके हाथों में कीलें ठुकी हुई रहा करती हैं ।३४। कोई-कोई पापात्मा गर्दन के फाँसेसे खींचे जाते हैं । कोई जिह्वांकुश प्रवेश वाली रस्सीसे खीचे हुए परमदुःखित होकर यमपुरीके मार्गमें जाते हैं । कुछ लोग नासिकाके भेदन वाली रस्सीके द्वारा तथा कुछ कपोल और होठों को भेदन वाली रस्सी के द्वारा मार्गमें यमके दूतोंसे खीचेहुए होकर जाया करते हैं ३५-३६।

छिन्नाग्रपादहस्ताश्च छिन्नकर्णोष्ठनासिकाः ।
संछिन्नशिश्नवृषणाः छिन्नभिन्नांगसंधयः ॥३७

आभिद्यमाना कुंतैश्च भिद्यमानाश्च सायकः
इतश्चेतश्च धावतः क्रन्दमाना निराश्रयाः ॥३८
मुद्‌गरै र्लोहदण्डैश्च हन्यमाना मुहूर्मुहुः ।
कंटकविविधैर्घोरैर्ज्वलनार्कसमप्रभैः ॥३९
भिन्दिपालैर्विविद्यंते स्रवंतः यूयशोणितम् ।
शक्रुताँक्रुमिद्रिग्धाश्च नीयते विवशा नराः ॥४०
याचमानाश्च लिलमन्नं वापि बुभुक्षिताः ।
छायां प्रार्थयमानाश्च शीतार्ताश्चानल पुनः ॥४१
दानहीनाः प्रयाँत्येव प्राथयंतः सुख नराः ।
गृहीतदानपाथेयाः सुखं यांति यमालयम् ॥४२

उन पापात्माओं में कुछ आगेके हाथ-पैरोंसे छिन्न होते है कोई कान-ओठ और नाक से छिन्न तथा कुछ अण्डकोष एवं लिंगसे छिन्न और कुछ अंगों के जोड़ों से छिन्न-भिन्न होकर ले जाये हैं ।३७। यमदूतों के द्वारा अत्यन्त त्रास को प्राप्त पापात्मा यमपुरी के मार्ग में अलकोंसे विद्यमान होकर वाणों से बिदीर्ण निरस्थ्रय और इधर-उधर को रकर दौड़ते भागते हुए ले जाये जाते हैं ।३८। कुछपर मुग्दर से तथा लोहे के दण्डोंसे बारम्बार प्रहार किये जाते हैं वे घोरपरम सन्तप्त सूर्य के समान काँटों से पीड़ित हो हैं ।३९। वहाँ मार्ग में कुछ पापी भिन्दिपाल अस्त्रों से भेदित किये जाते हैं । विष्ठाके कीड़ों से. जिनसे रुधिर औप मवाद टपकता रहता है, कुछ पापात्मा नीचे आते हैं जिनके अष्टमें विवश होते हुए यमपुरी को जाया कहते हैं ।४०। यमपुर के मार्ग में उन पापियों को खाने को अन्न तथा पीने को जल नहीं मिलता है इसलिये वे अत्यन्त व्याकुल होकर अन्न की और जल की याचना करते हुए तथा शीताधिक्य से वेचैन अग्नि तार को माँगते हुए यमदूतों द्वारा ले जाये जाते हैं ।४१। जिन्होंने संसार में कभी कुछभी दान नहीं दिया, वे दान हीन मनुष्य ही ऐसी याचना भूख निवारणके लिये करते हुए जाते हैं । जिन्होंने दानदिया है वे चवेना ग्रहणकर मुखसे यमलोक को जाया करते हैं ।४२।

एवं न्यायेन कष्टेन प्राप्ताः प्रेतपुरं यदा ।
प्रज्ञापितास्ततो दूतैर्निवेश्यते य तः ॥४३

तत्र ये शुभकर्माणस्तांस्तु सम्मानयेद्यमः।
स्वागतासनदानेन पाद्यार्घ्येण प्रियेण च ॥४४
धन्या यूय महात्मानो निगमोदितकारिणः।
यैश्च दिव्यसुखार्थाय भवद्भि सुकृतं कृतम् ॥४५
दिव्य विमान मारुह्य दिव्यस्त्रीभोगभूषितमू।
स्वर्गे गच्छध्वममलं सर्वकामसन्वितम् ॥४६
तत्रभुक्त्वा माहाभोगानेते पुण्यस्य संक्षयाम्।
यत्किंचिदल्पमशुभ पुनस्तदिह भोक्ष्यथ ॥४७
धर्मात्मानो नरा ये च मित्रभूता इवात्मनः।
सौम्यं मुखं प्रपश्यति धर्मराजानमेव च ॥४८
य पुनः क्रूरकर्माणस्ते पश्यन्ति भयानकम्।
दष्ट्राकरालवदनं भृकुटीकुटिलेक्षणम् ॥४९

इस प्रकारसे वहाँ मार्ग में ही कर्मों का न्याय प्राप्त करते हुए जीवात्मा कष्ट के साथ प्रेतपुरी में पहुँचते हैं और यमदूत उन्हें बताकर यमराज के समक्ष में खड़ा करते हैं।४३। उन प्राणियों में जो शुभ कर्म करने वाले होते है उनका धर्मराज भी स्वागत करते अर्घ्य पाद्य और आसन देकर सम्मान किया करते हैं।४४। उन धार्मिक प्राणियों से यमराज कहा करते हैं-आप सब शास्त्र के अनुकूल कर्म करने वाले परम परमात्मा और धन्य हो। आप लोगों ने दिव्य सुख प्राप्त करने के लिए ही पुण्य कर्म किये हैं।४५। यमराज धार्मिक प्राणियों से कहते हैं आप लोग दिव्य विमानों पर आरूढ़ होकर दिव्यांगनाओं के उप भोगका आनन्द-स्वाद करते हुए समस्त कामनाओं के प्रदान करने वाले निर्मल स्वर्ग में जाओ। वहाँ महाभोगों के अन्त में पुण्यके क्षीण हो जाने पर जो कुछ थोड़ा पाप शेष रहा होगा तो उसे यहाँ भोगोगे।४६-४७। जो धर्मातमा मित्रस्वरूप ऐसी आत्माके पुण्यपुरुष हैं वे धर्मराजके रूप में भी सौम्य मुख पाते हैं।४८। जो क्रूर तथा बुरे पापकर्म करने वाले पुरुष होते हैं उन्हें यमराज का स्वरूपही अत्यन्त डरावना और विकराल दिखलाई देता है। उनके सामने तो यमराज बड़ी भयानक दाढ़ों से युक्त विकराल मुखाकृति

वाले और चढ़ी हुई टेढ़ी भृकुटियों से कुटिल दृष्टि वाले दिखलाईं दिया-करते हैं ।४९।

उर्ध्वकेश महाश्मश्रु मूर्द्ध प्रस्फुरिताधरम् ।
अष्टादशभुजक्रुद्धं नीलांजनचयोपमम् ।।५०
सर्वायुधोधोद्धतकरं सर्व दण्डेन तर्जयन् ।
सुमहामहिषारूढे दीप्ताग्निसमलोचनम् ।।५१
रक्तमाल्याँबरधरं महामेरुमिवोच्छ्रितम् ।
प्रलयाम्बुदनिर्घोषं पिबन्निव महोदधिम् ।।५२
ग्रसंतमिव शैलेन्द्रमुद्गिरन्तमिवानलम् ।
मृत्युश्चैव समीपस्थः कालानलसमप्रभः ।।५३
कालश्चांजनसंकाश कृतांतश्च भयानकः ।
मारी च ग्रमहामारी कालरात्रिश्च दारुणा ।।५४
विविधा व्यःधमः कुष्टा नानारूपा भयाव्हा ।
शक्तिधलाँकुशधरः पाशचक्रासिपाणयः ।।५५
वज्रतुंडधरा रुद्राः क्षुरतूणधनुर्द्धराः ।
नानायुधधराः सर्वे प्रहावीरा भयङ्कराः ।।५६

पापियों के समक्ष उनका स्वरूप शिरपर लम्बे केश-बड़ी दाढ़ी मूँछ-फड़फड़ाते हुए अधर-अठारह भुजा क्रोधसे पूर्ण और अञ्जनके समान वर्ण वाला होता है ।५०। पापात्मा जीवों के सामने तो धर्मराज समस्त शस्त्रों से सुसज्जित हाथों वाले-सब प्रकार के दण्ड देने फटकार देने वाले महा-महिषपर आरूढ और जलती हुई आगके समानरक्त एवं तेजपूर्ण नेत्रों वाले दिखाई देते हैं ।५१। पापी प्राणियोंके लिये यमका स्वरूप रक्तमाला और वस्त्रतुल्य भयानक घोरगर्जना करने वाले और समुद्रका पान करते हुए से स्थित दिखाईदेते हैं ।५२। उस समल यमराज ऐसे प्रतीत होते हैं मानो वे हिमाचल पर्वतको निगल रहे हैं-अग्निका वमन कर रहे हैं ऐसे स्वरूप में धर्मराज स्वयंस्थित रहते हैं और उनके समीप में कालानलके तुल्य कांति वाले भृत्यु स्थित रहते हैं । यमराज के दूतभी इधर-उधर

रहते हैं जिनका स्वरूप भयानक होता है और इनके अतिरिक्त अञ्जनके सामान कृष्ण वर्ण वाला काल भयानक राजमारी-उग्र महामारी तथा दारुण कालरात्रि भी वहाँ यमके निकटमें विद्यमान रहते हैं ॥५३-५४। वहाँ अनेक रूपवाले रोग नाना विधि कुष्ठादि, शक्ति, त्रिशूल, अंकुश, पाश चक्र खड्ग हाथों में धारण करने वाले दूत उपस्थित रहते हैं ।५५। यमदूतोंके पाम वज्र, तुण्डधारी रुद्र, छुरे तकस और धनुष होते हैं। ये सभी नाना भाँतिके अस्त्रों को धारण करने वाले हैं, महान् वीर और अत्यन्त भयानक होते हैं ।५६।

असंख्याता महावीराः कालाञ्जनसमप्रभाः ।
सर्वायुधोद्यतकरा यमदूता भयानकः ॥५७
अनेन परिचारेण वृत त घोरदर्शनम् ।
यमं पश्यन्ति पाविष्ठाश्चित्रगुप्त चा भीषणम् ॥५८
निर्भयति चात्तन्तं यमस्तान्पापकर्मणः ।
चित्रगुप्तश्चा भगान्धर्मवाक्यैः प्रबोधयेत् ॥५९

यमदूतों की संख्या ही नहीं है अर्थात् असंख्य होते हैं वर्ण से विल्कुत काजलके तुल्य काले और सभी हाथों में अस्त्र-शस्त्र रखने वाले परम भयानक होते हैं ।६७। ऐसे परिकर से घिरे हुए धर्मराजके भयानक स्वरूर को, अति भवङ्कर वित्रगुप्त कों पापी प्राणी देखाकरते हैं ।५८। उस समय पापियों के सामने आतेही यमराज बुरीतरह ललकारके साथ डाँटते हैं। चित्रगुप्त अनेक धर्म के बचनों से बोधन किया करते हैं ।५९।

नरकों के विभिन्न भेद वर्णन

भो भो दुष्कृत्यकर्माणः परद्रव्यापहारकाः ।
गर्विता रूपीवीर्य्येण परदाराव र्दकाः ॥1
यत्स्वयं क्रियते कर्म तदिद भुज्यते पुनः ।
तत्किमात्मोपधातार्थं भवद्भिर्दूष्कृत कृतम् ॥२
इदानीं कि प्रलप्यध्वं पीडयमानाः स्वकर्मभिः ।
भुज्यताँ स्वानि कर्माणि नास्ति दोषो हि कस्यचित् ॥३

एवं ते पृथिवीपालाः सम्प्राप्तास्तत्समीपतः
स्वकीयैः कर्मभिर्घोरैर्दुष्कर्म बलदर्पिणः ॥४
तानपि क्रोधसंयुक्तश्चित्रगुप्तो महाप्रभुः।
संशिक्षयति धर्मज्ञो यमराजानुशिक्षया ॥५
भो भो नृप दुराचाराः प्रजाविध्वंसकारिणः।
अल्पकालस्य राज्यस्कृते किं दुष्कृतं कृतम् ॥६
राज्यभोगेन मोहेन बलादन्यायतः प्रजाः।
यद्दण्डिताः फलं तस्य भुज्यतामधुना नृपाः ॥७

महाराज चित्रगुप्त ने पापात्मा प्राणियोंसे कहा—अरे महान् पाक-कर्म करने वालो ! दूसरोके धनका हरण करने वालो ! अनेक रूप लावण्य तथा वीर्य पराक्रम से गर्वित होने वालो ! दूसरों की स्त्रीसे रमण करने वालो ! तुमने जो ससार में ऐसे बुरे कर्म किये है अब उनके दण्डभोग भोगने पड़ेंगे। बताओ तुमने ही क्लेश के उत्पन्न करने के लिये ऐसे पाप क्यों किये थे ? ।१-२। इस समय तुम अपने ही कर्मों से उत्पीड़ित होते हुए क्यों रोते चिल्लाते हो ? अब कर्मों के फलों को भोगो, इसमें अन्य किसी का कुछ भी दोष नहीं है ।३। सनत्कुमारजी ने कहा—इसी प्रकार से अपने महाघोर बुरे कर्मों से युक्त और बलको घमण्ड रखने वाले राजभोग भी यमराज के सामने खड़े कियेजाते हैं ।४। महाप्रभु धर्मात्मा चित्रगुप्त यमराजके आदेश से अत्यन्त क्रोधके साथ उन राजाओं को शिक्षा देते हैं । ५ । चित्रगुप्त कहते है अरे दुराचारमग्न । प्रजा का सर्वनाश करने वाले राजाओ ! तुमने बहुत ही स्वल्प समय तक राज्य भोग करने में भी ऐसा पाप क्यों किया ? ।६। हे नृरवृन्द ! आप लोगों ने राज्य भोगने के कारण अन्याय और बलसे प्रजा को दण्ड दिया है। अब प्रजा के सताने का फल भोगो ।७।

क्क तद्राज्य कलत्रं च यदर्थ मशुभ कृतम।
तत्सर्वं संपरित्यज्य ययमेकाकिन स्थिताः ॥८
पश्यामि तत्बल नष्टं येन विर्ध्वसिताः प्रजाः।
यमत्तैर्योज्यमाना अधुना कीदृश भनेत् ॥९

एवं बहुविधैर्दाक्यैरुपयब्था यमेन ते ।
स्वानि कर्माणि शोचंति तूष्णीं तिष्ठंति पार्थिवा ॥१०
इति कर्म समुद्दिश्य नृपाणां धर्मराडयमः ।
तत्पापपकशुद्धयथमिदं दुतानब्रवीत् च ॥११
भो भोश्चण्ड गृहीत्वा नृपतोन्वलात् ।
नियमेन विशुद्धयध्वं क्रमेण नरकाग्निषु ॥१२
ततः शीघ्रं समादाय नृपान्संगृह्य पादयोः ।
भ्रामयित्वा तु मेगेन निक्षिप्योर्ध्वं प्रगृह्य च ॥१३
सर्वप्रायेण महताऽतीव तृप्ते शिलातले ।
आस्फलय ते तरसा वज्रेणेव महाद्रुमा ॥१४

अब वह तुम्हाराज्य और स्त्री कहाँ हैं जिनके लिये तुमने महान् पाप किये थे ? अव वहाँ पर तो तुम सबको छोड़कर अकेले ही उपस्थित हो ।८। मैं इस समत तुम्हारा वह समस्त बल नष्ट हुआ देख रहा हूँ जिससे तुमने अपनी प्रजा का विध्वंस कर डाला था । अब तो यमदूतों के द्वारा अपराधी की भाँति बँधे हुए कैसे हो ।९। सनत्कुमारजी ने कहा--यमराज के ऐसे अनेक बचन सुनकर राजा लोग चुपचाप अपने कर्मों को सोचते पछताते हैं ।१०। धर्मका न्याय करने वाले यमराज राजाओं के उन कर्मों के उद्देश्य को लेकर उनके पाप पंकसे शुद्धि पाने के लिये अपने दूतों को आदेश देते हैं । यमराज ने कहा—हे चण्ड ! हे महा चण्ड ! तुम जबर्दस्ती इन राजाओं को पकड़ कर क्रम से नरक रूपी आग में डाल दो और इनकी शुद्धिकरो और नियम का पूर्ण पालन करो । ११—१२। सनत्कुमारजी ने कहा—यमराज आज्ञापात ही दूतो ने बालात्कार से राजाओं को पकड़ लिया और उनके दोनों पैरों का पकड़ कर जोर से घुमाया और ऊपर उठाकर नीचे फेंक दिया ।१३। यमदूत विशाल सन्तप्त शिलाओं के तलपर उन्हें पटककर महावृक्ष के समान वज्र से बेग के साथ ताड़न करते हैं ।१४।

ततः सः रक्तं श्रोत्रेण स्रवते जर्जरीकृतः ।
निसंज्ञः स तदा देही निश्चेष्टः संप्राजायते ॥१५

ततः स वायुना स्पृष्टः स तैरुज्जीवितः पुनः ।
ततः पापविमुद्धयर्थं क्षिपन्ति नरकार्णवे ॥१६
अष्टाविंशतिसंख्याभि क्षित्यध सप्तकोटयः ।
सप्तमस्य तलस्यान्ते घोरे तमसि संस्थितः ॥१७
घोराख्या प्रथमा कोटिः सुघोरा तदधः स्थिता ।
अतिघोरा महाघोरा घोररूपा च पञ्चमी ॥१८
षष्ठी तलातलाख्या च सप्तमी च भयानका ।
अष्टमी कालरात्रिश्च नवमी च भयोत्कटा ॥१९
दशमी तदधश्चण्डा महाचण्डा तपोऽप्यधः ।
चण्डकोलाहला चान्या प्रचडा चंडनायिका ॥२०
पद्मा पद्मावती भीता भीमा भीषणनायिका ।
कराला दिकराला च वज्रा विंशतिमा स्मृता ॥२१

उस समय जब उनके कानोंसे रक्त टपकता है तब प्राणी जर्जर होकर चेतनाशून्य हो जाता है ।१५। फिर वायुका स्पर्शपाकर पुनः उनके द्वारा जीवित करके पापसे शुद्धि पानेके लिये नरकमें में डालदिया जाता है ।१६। वह नगर पृथ्वीके नीचे सातकरोड़ अट्ठाईसयोजन दूर सातवें तलके अन्तमें घोर अन्धकारी में स्थित है ।१७। उन नरकोंके नाम इस प्रकार है प्रथम कोटि घोर नामक है । उसके नीचे 'सुघोर' फिर क्रमस अतिघोर, महाघोर और पांचमीं यातना का नाम धार रूप है । १८ । छटी तलातल, सात्वी भयानक आठवीं कालरात्रि और नवमी यातनका नाय भयोत्कटा है ।१९। इसकेभी नीचे दशवीं चण्ड, फिर महाचण्ड, चण्ड कोलाहल, प्रचण्ड चण्ड नामक हैं ।२०। इसी तरह फिर आगे पद्मा, पद्मावती, भीता, भीमा भीषण नायिका, कराला, विकराला और बीसवीं वज्रा नामक है । २१ ।

त्रिकोणा पञ्चकोणा च सुदीर्घा चाखिलातिदा ।
समा भीमबलात्युग्रा दीप्तप्रायेति चाष्टमी ॥२२
इति ते नामतः प्रोक्ता घोरा नरककोटयः ।
अष्टाविंशतिरेवैताः पापानां यातनामित्मकाः ॥२३

तासां क्रमेण विज्ञया: पञ्च पञ्चैव नायका: ।
प्रत्येक सर्वकोटीनां नामत: सन्निबोधत: ।।२४
रौरव: प्रथमस्तेषां रुवते यत्र देहिन: ।
महारौरवपीडाभिर्महांतोऽपि रुदंति च ।।२५
तत: शीतं तथा चोष्णं पचाद्या नायका: स्मृता: ।
सुघोर: सुमहातीक्ष्णस्तया संजीवन: स्मृत: ।।२६
महातमो विलोमश्च विलोश्चापि कटक: ।
तीव्रवेग: करालश्च विकराल: प्रकंपन: ।।२७
महावक्रश्च कालसूत्र: प्रगर्जन: ।
सूचीमुख: सुनेतिश्च खादक: सुप्रपीडन: ।।२८

इनके बाद में त्रिकोणा, पञ्चकोना, सुदीर्घा, अखिलार्त्तिदा, समाभीमतवाला, अभोग्रा और अन्तिम दीप्तमाया है ।२२। इस तरह घोर नरक कोटि के नामों वाली वे अट्ठाईस पापों की यातनायें होती हैं ।२३। उनमें से क्रम पाँच-पाँच नायक यातना समझनी चाहिये । इनमें से सब कोटियों में प्रत्येक नामसे विख्यात हैं ।२४। उनमें से प्रथम 'रौरव' है जहाँ जाकर सभी प्राणी पीड़ित होकर रोया करते है । महा रौरव की पीड़ा तो ऐसी विकट होती है कि बड़े पुरुष भी रुदन किया करते हैं ।२५। इसके बाद शीत और उष्ण पाँच आद्य नायक है जिन्हें सुघोर, सुमहातीक्ष्ण तथा संजीवन कहा गया है ।२६। महातम, विलोम, कण्टक, तीव्रवेग, कराल, विकराल, प्रकपन ।२७। महावक्र, काल, कालसूत्र, प्रगर्जन, सूचीमुख, सुनेति, खादक, सुप्रपीडन ।२८।

कुम्भीपाक सुपाकौ च क्रकचश्चातिदारुण: ।
अङ्गारराशिभवन मेदोऽसृक्प्रहितस्तत: ।।२९
तीक्ष्णतुंडश्च शकुनिर्महासंवर्तक: क्रतु: ।
तप्तजतु: पङ्कलेप: प्रतिमांसस्त्रपूद्भव: ।।३०
उच्छ्वास: सुनिरुच्छ्वसो सुदीर्घ: कूटशाल्मलि: ।
दुरिष्ट: सुमहावाद: प्रवाह: सुयतापन: ।।३१

ततो मेघो वृष: शालम: सिंहव्याघ्रगजानन: ।
श्वसूकराजमहिषघूककोकवृकानना: ॥३२
ग्रहकुंभीननक्राख्या: सर्पकूर्माख्यवायसा: ।
गृधोभूकजलौकाख्या: शार्दूलक्रथकर्कटा: ॥३३
मडूक: पूतिवक्त्रश्च रक्ताक्ष: पूतिमृत्तिक: ।
कर्णधूम्रस्तथाग्निश्च कृमिगन्धिवपुस्तका ॥३४
अग्नीध्रश्चाप्रतिष्टश्च रुधिराभ: श्वभोजन: ।
लालाभक्षांत्रभक्षौ च सर्वभक्ष: सुदारण: ॥३५

कुम्भीपाक, सुपाक, क्रकच, अतिदारुण, अंगारराशिभ वन, मेरु, अमृक्प्रहित ।२९। तीक्ष्णतुण्ड, शकुनि, महासवर्त्तक, क्रतु, तप्तजंतु, पङ्कलेप, प्रतिमांस, त्रपूद्‌भव ।३०। उच्छ्र सुनिच्छवास, सुदीर्घ, कूट-शाल्मलि, दुरिष्ट सुमहावाद, प्रवाह, सुप्रतापन, ।३१। और मेघ वृष, शालम, सिंह, व्याघ्र, हाथीके मुखवाले ।३२। मगर, कुम्भीक, नक्र नाम-वाले, सर्प, कच्छप, काग नामक, गिद्ध, उल्लू जलौका नाम वाले, गीदड़, ऊंट, कैंकड़े नाम वाले ।३३। मेंढ़क, प्रतिवक्त, रक्ताक्ष, पूति मृतिका, कणधूम्र, अग्नि, कृमि, गन्धि वपु ।३४। अग्निध्र, अप्रतिष्ठ, रुधिराभ, श्वभोजन, लालाभक्ष, अन्त्र भक्ष, सर्वभक्ष, सुदारण ।३५।

कंटक: सुविशालश्च विकट: कटपूतन: ।
अम्बरीष: कटाहश्च कष्ठा वैतरणी नदी ॥३६
सुतप्तलोपशयन एकपाद: प्रपूरण: ।
असितालवनं घोरमस्थिभंग: सुपूरण: ॥३७
विलातसोऽसुयंत्रोपि कूटपाश: प्रमर्द्दन: ।
महाचूर्ण: सुचूर्णोऽपि तप्तलोहमयं तथा ॥३८
पर्वत: क्षुरधारा च तथा यमलपर्वत: ।
मूत्रविष्ठाश्रुकूपश्च क्षारकूमश्च शीतल: ॥३९
मुसलोलूखलं यन्त्रं शिलाशकटलांगलम् ।
तालपत्रासिगहनं महाशकटमण्डपकम् ॥४०

सम्मोहमस्थिभश्च वप्तचलमयोगुडम् ।
बहुदुख महाक्लेश: कश्मलं मलम् ॥४१
हालाहलो विरूपश्च स्वरूपश्च यमानुग: ।
एकपादस्त्रिपाश्च तीव्रश्चीवर तम: ॥४२

कण्टक, सुविशाख, विकट, कटपूतन, अम्बरीष, कटाह, कष्टदायक, वैतरणी, नदी ।३६। सुतप्त, लोहशयन, एकपाद, प्रपूरण, असितालवन, घोर अस्थिभङ्ग, सुपूरण ।३७। विलातस, असुयन्त्र, कूटपाश, प्रमर्दन, महाचूर्ण, असुचूर्ण, तप्तलोहमय ।३८। पर्वत, क्षुरधारा, यमल, पर्वत, मूत्र, विष्ठा, अश्रू कूप, क्षारकूप, शीतल ।३९। मूसल ऊखल, शिला, शकट, लांगल, तालपात्र असिगहन, महाशटक मण्डप ।४०। समोह, अस्थिभंग, तप्त, चलमय, गुड, वहुदु:ख, महाक्लेश, शमल, मलात, ।४१। हलाहल विरूप, स्वरूप, यमानुग, एकपाद, त्रिपाद, तीव्र अचीवर, तम ।४२।

अष्टाविंशतिरित्येते क्रमश: पंचपंचकम् ।
कोटीनामानुपूर्व्येण पंच पंचैव नायका: ॥४३
रौरबाय प्रबोध्यन्त नरकाणाँ शतं स्मृतम् ।
चत्वारिंशच्च्यतं प्रोक्तं महानरकमण्डलम् ॥४४
इति ते व्यास संप्रोक्ता नरकस्य स्थितिर्मया ।
प्रसंख्यानाच्च वैराग्य शृणु पापगतिं च ताम् ॥४५

ये उपर्युक्त क्रमसे सात सौ नरक हैं और प्रतिकोटि में से पाँच-पाँच नायक है ।४३। रौरव के ही सो नरक कहे हैं और चालीस सौ महानरक मण्डल कहा गया है ।४४। हे व्यासजी ! इस तरह मैंने आपको नरकों की स्थिति संख्या के सहित कही है । अब वैराग्य और उसकी पाप गति को भी सुनो ।४५।

नरक यातना वर्णन

एषु पापात्मा: प्रपंच्यन्ते शोष्यन्ते नरकाग्निपु ।
यातना: र्भिर्विचित्राभिराश्वकर्मक्षयाद् भृशम् ॥१

स्वमलप्रक्षयाद्यद्वदग्नौ धास्यन्ति धावतः ।
तत्र पापक्षयात्पापा नराः कर्मानुरूपतः ॥२
सुगाढ हस्तयोर्बद्धा ततः श्रृङ्खलयां नराः ।
महावृक्षाग्रशाखासु लम्ब्यन्ते यमकिंकरैः ॥३
ततस्ते सर्वयत्नेन क्षिप्ता दोलन्ति किंकरैः ।
दोलयन्तश्चाति वेगेन विसज्ञा योजनम् ॥४
अन्तरिक्षस्थितानां च लोहभारशतं पुनः ।
पादयोर्बध्यते तेषां यमदूतैर्महाबलैः ॥
तेन भारेण महता प्रभृश ताडिता नराः ।
ध्यायन्ति स्वानि कर्माणि तृष्णीं तिष्ठन्ति निश्चलाः ॥६
ततोऽकुंशैरग्निवर्णैर्लोहदंडैश्च दारुणैः ।
हन्यन्ते किंकरैर्घोरैः समन्तात्पापकर्मिणः ॥७

श्रीसनत्कुमार जी ने कहा-इन उक्त नरकों में पापात्मा प्राणी गिराये जाते हैं और वे वहां पर अनेक प्रकार की यातनाओं द्वारा अपने कृत दुष्कर्मों के नाश हो जाने कर अत्यन्त तीव्र नरक की अग्नियों में सुखाये जाते हैं।१। धातुओं के मैल को हटने के लिये जैसे उन्हें तीक्ष्ण अग्नि में रखते हैं उसी तरह पापी प्राणियों को पाप-नाश के उद्देश्य से ही अपने कर्मों के अनुसा रही नरकों में गिराया जाता है।२। वहाँ यमराज के दूत पापियों के हाथों को श्रृङ्खला से मजबूती के साथ बाँधकर इसके पीछे महावृक्ष की शाखों में उन्हें लटकाते हैं।३। तब वे पूर्ण यत्न द्वारा यमकिंकरों के फँके हुए काँप उठते हैं और चेतना रहित होकर योजनों तक चले जाते हैं।४। फिर महा बलवान यमदूत आकाशमें स्थित होकर उनके पैरों में सौ भार लोहा बाँध देते हैं।५। उस भारी बोझ से अत्यन्त ताड़ित मनुष्य ताड़ित मनुष्य अपने किये हुए दुष्कर्मों का स्मरण करते और निश्चय एवं मौन रह जाया करते हैं।६। इसके पश्चात् यमके चारों ओर से अंकुशों तथा अग्नि के तुल्य दारुण लोहे के दण्डों से पीटते हैं।७।

ततः क्षारेण दीप्तेन वह्नेरपि विशेषतः ।
समन्ततः प्रलिप्यन्ते तीव्रेणे तु पुनः पुनः ॥८

द्रुतेनात्यंतलिप्तेन कृत्तांगा जर्जरीकृताः ।
पुनर्विदार्य्यं चांगानि शिरसः प्रभृति क्रमात् ।।९
वृंताकवतप्रपच्चते तप्तलोहकटाहकैः ।
विष्टा पूर्णे तथा कूपे कृमीणां निचये पुनः ।।१०
मेदोऽसृक्पूयर्णायां वाप्यां क्षिप्यति ते पुनः ।
भक्ष्यंते कृमिभिस्तीक्ष्णैर्लोहतुण्डैश्च वायसैः ।।११
श्वभिर्द्दशैर्वृकैर्व्याघ्रैं रौद्रैश्च विकृताननैः ।
पच्चन्ते मत्स्यवच्चापि प्रदीप्तांगारराशिषु ।।१२
भिन्नाः शूलैः सुनीक्ष्णैश्च नराः पापेन कर्मणा ।
तैलयन्त्रेषु चाक्रम्य गोरैः कर्मभिरात्मनः ।।१३
तिला इव प्रपीडयन्ते चक्राख्ये जर्नपिडकाः ।
भ्रज्यते चातपे तप्ते लोहभाण्डेष्वनेकधा ।।१४

इसके अनन्तर बार-बार अत्यन्त जलते हुए आगके अङ्गारों से उनका सारा शरीर लिप्त किया जाता है ।८। अत्यन्त लिप्त होने के कारण छिन्नाङ्ग और अति जर्जरी भूत होकर क्रमशः मस्तक के विदीर्ण होने पर पके हुए बैंगन के सदृश लोहे के संतप्त बड़े कड़ाव में पकाये जाते हैं। इसी तरह पुनः विष्टासे भरे हुए कूट में और क्रीड़ाके समुदाय में डाल दिये जाया करते हैं ।९-१०। इसके अनन्तर उन पापी मनुष्यों को चर्बी, रुधिर और मवाद से परिपूर्ण वावड़ी मे फेंक दिया जाया है। वहाँ से बुरी तरह बहुत ही तीक्ष्ण कीड़ों के द्वारा तथा लोहे जैसी चोंचवाले कौओं से काटे और खाये जाते हैं ।११। इसी तरह कुत्ते डांस, भेड़िये, भयानक और अत्यन्त विकट मुँह वाले बाघ आदि किसके पशुओं से काटे जाते हैं तथा जलते हुए अङ्गारों में मछली की भाँति पकाये जाते हैं ।१२। वहाँ फिर ये प्राणी अपने ही किये हुए बड़े-बड़े पापों के कारण अत्यन्त तेज त्रिशूल के छेदन हुए कोल्हू में डाल दिये जाते हैं ।१३। वहां तिलों के समान उनके शरीर पीसे जाते हैं और खूब सन्तप्त एवं आग से तपे हुए लोहे के पात्रों में उनकी भुनाई की जाती है ।१४।

तैलपूर्णकटाहेषु सुतप्ते पुनः पुनः ।
वहुधा पच्यते जिह्वा प्रपीडयारसि पादयोः ।।१५

यातनाश्च महत्योऽत्र शरीरस्यापि सर्वतः ।
निःयेषनरकेष्वेवं क्रमन्ति क्रमशा नराः ॥१६
नरकेषु च सर्वेयु विचित्रा यमयातनाः ।
याम्यंश्च दीययें व्यास सर्गेषु सुकष्टदाः ॥१७
ज्वलदंगारमादाय मुखमापूय ताडचते ।
ततः क्षारेण दीप्तेन ताम्रेण च पुनः पुन ॥१८
घृतेतात्यन्ततप्तेन तदा तैलेन तन्मुखम् ।
इतस्ततः पीडयित्वा भृशमापूर्य हन्यते ॥१६
विष्ठाभि कृमिभिश्चापि पूर्यमाणाः क्वचित्क्वचित् ।
परिष्वजति चात्यग्रां प्रदीप्तां लोहशाल्मलीम् ॥२०
हन्यन्ये पृष्ठदेशे च पुनर्दीप्तैर्महाघनैः ।
दन्तुरेणातिकुंठेन क्रकचेन बलीयसा ॥२१

तेल से पूर्ण-गर्म कड़ाह में बार-बार उनके पैर और हृदय में पीड़ा देकर जिह्वा को पकाया जाता है ।१५। इसी प्रकारदे नरकों की बड़ी ही भयानक तीव्र यातनायें पाकर पापी मनुष्य समस्त नरक में क्रम से भेजे जाते हैं ।१६। हे व्यासजी ! इन सम्पूर्ण नरकों की यातनायें अत्यन्त कष्ट देने वाली बहुत ही अद्‌भुत होती हैं । वहाँ जबर्दस्ती से उन यम के दूतों के द्वारा मनुष्य के सभी अंगों को महान कष्ट दिया जाता है ।१७। जलते हुए अंगारे और कोयले मुँह में भरकर ताड़ना दी जाती है और संतप्त अंगारों से तथा तामे की शलाकाओं से जलाया जाता है ।१८। कभी-कभी गर्म तेल या घृत मुख में भरकर खूब पीड़ा देकर पीटा जाताहै।१९। कहींपर मल और कीड़ों से भरे हुए अत्यन्त उग्र लोहे की शाल्मली को लिपटा देते हैं ।२०। इसके पश्चात् सुर्ख गर्म लोहे की धनों से पीट में चोंट दीजाती है और बड़े-बड़े दाँतोंवाले आरोंसे चिराई की जाती है ।२१।

शिरः प्रभृति पीडयन्ते घोरैः कर्मभिरात्मजैः ।
खाद्यंते च स्वमांसानि पीयते शोणितं स्वकम् ॥२२
अन्नं पानं न दत्तं यैः सर्वदा स्वात्मपोषकैः ।
इक्षुवत्ते प्रपीड्यते जर्जरीकृत्य मुद्‌गरैः ॥२३

असितालवने घोरे छिद्यंते खण्डशस्ततः।
सूचीभिर्भिन्नसर्वांगास्तप्तशूलाग्ररोपिताः ॥२४
संचाल्यमाना बहुशः क्लिश्यंते न म्रियंति च।
तथा च तच्छरीराजि सुखदुःखसहानि च ॥२५
देहादुत्पाटय मांसानि भिद्यंते स्वैश्च मुद्‌गरैः।
दंतुराकृतिभिर्घोरैर्यमदूतैर्बलोत्कटैः ॥२६
निरुच्छ्वासे निरुच्छ्वासास्तिष्ठत्ति नरके चिरम्।
उत्ताडयन्ते तथोच्छ्वाशे वालुकासदने नराः ॥२७
रौरवे रोदमानाश्च पीड्यन्ते विविधर्वधैः।
महारौरवपीडाभिर्महांतोऽपि रूदेति च ॥२८

उनके ही घोर दुष्कर्मों के कारण उनके माँस खाये तथा उनका रुधिर पीया जाता है। वहाँ नरकों में पापात्मा पुरुष इसी भाँति परम पीड़ित किये जाते हैं।२२। जिन्होंने कभी किसीको अन्न का नाद न देकर केवल अपने ही शरीर का पोषण किया था वे वहाँ बड़े-बड़े मुगदरों से खूब ही कूटे तथा गन्ने के समान पेरे भी जाते हैं।२३। फिर महाघोर असिताल बन में खण्ड खण्ड करके छेदित होते हैं और सुईयों से उनके समस्त अङ्ग भिन्न हो जाते हैं। इसके पश्चात् तपाये हुए त्रिशूल पर रख दिया जाता है।२४। इस तरह वहाँ उन पापी प्राणियों को अत्यन्त कष्ट का अनुभव होता है किन्तु मरते नहीं उनको तो केवल दुःखका अनुभव करने के लिये ही ऐसी पीड़ा दी जाती है और उनका शरीर वह सभी सहन करने के योग्य होता है ।२५। अति बलवान् दन्तुर आकार वाले घोर यमदूतों के द्वारा मुन्दरों से देहका माँस उखाड़ कर भेदन किया जाता है।२६। निरुच्छास नाम वाले नरकमें बिना साँस लिये ही स्थिर रहना पड़ता है। उछ्वास नामक नरक में मनुष्य बालू के घर में ताड़ित किये जाते हैं।२७। रौरव नामक नरक में रुदन करते हुए पापी मनुष्य अनेक वधों से पीड़ित होते हैं और महारौरव नरकमें तो बड़े-बड़े पुरुष भी रो पड़ते।२८

पत्सु वक्त्रे गुदे मुण्डे नेत्रयोश्चैव मस्तके।
निहन्यंते घनैस्तीक्ष्णैः सुतप्तैर्लोहशकुभिः ॥२९

सुतप्तावलुकायाँ तु प्रयोज्यंते मुहुर्मुहुः ।
जतुपके भृशं तप्ते क्षिप्ताः क्रन्दन्ति विस्वरम् ॥३०
कुम्भीपाकेषु पच्यते तप्ततैलेषु वै मुने ।
पापिनः क्रूरकर्माणोऽसह्येषु सर्वथा पुनः ॥३१
लालाभक्षेषु पापास्ते पात्यते दुःखदेषु वै ।
नानास्थानेषु च तथा नरकेषु पुनः पुनः ॥३२
सूचीमुखे महाक्लेशे नरके पात्यते नरः ।
पापी पुण्यविहीनश्च ताडयते यमकिंकरैः ॥३३
लोहकुम्भे विनिक्षिप्ताः श्वसन्तश्चशनैः शनैः ।
महाग्निना प्रपच्यते स्वपापैरेचमानवा ॥३४
दृढं रज्ज्वादिभिर्बद्ध्वा प्रपीडयते शिलासु च ।
क्षिप्यंते चान्धकूपेषु दश्यते भ्रमरैर्भृशम् ॥३५

पैरों में, गुदा में, मुख में, शिर में, नेत्रों में सर्वत्र अत्यन्त तपी हुई लोहे की शलाका के द्वारा अत्यन्त ताड़ना दी जाती है ।२९। वहाँ खूब तपी हुई रेत में उन्हें डाल दिया जाता है तथा जीवों से परिपूर्ण कीचड़ में फेंक देते हैं जहाँ कि स्वरहीन होकर वे रुदन किया करते हैं ।३०। वे मुने ! कुम्भीपाक नामवाले नरक में अत्यन्त तपाये हुए तेल में पापी लोगों को डालकर पकाते हैं । यह यातना उनको दी जाती है जो बहुत ही क्रूरता से पूर्ण करने वाले इस संसार में रहे होते हैं ।३१। नरकों में ऐसे उग्र दुष्कर्म करने वाले पापात्मा मनुष्यों को अत्सन्त कष्टदायक लाला भक्ष नरकों में तथा अनेकमें तथा अनेक ऐसे ही भीषण नरकों में बारम्बार गिराया जाता है ।३२। सर्वथा पुण्यसे हीन महापापी प्राणियों को महान् क्लेश देनेवाले सूचीमुख नामक नरकमें यमदूतों के द्वारा बलात् गिरा दिया जाता है और वहाँ अनेक तरहकी ऊपरसे ताड़ना भी दी जाती है ।३३। लोहकुम्भ में पतितपापी धीरे-धीरे साँस लिया करते हैं । अपने पाप कर्मों के कारण वहाँ मनुष्य महाग्नि के द्वारा पकाये जाते हैं ।३४। दृढ़ रस्सी से बाँधकर शिलाओं हर यातना दी जाती है तथा अन्धकूपा में डाल दिये जाते हैं जहाँ भ्रमरों से वे खूब ही डसे जाया करते हैं ।३५।

कृमिभिर्भिन्नासर्वांगाः शतशो जर्जरीकृताः ।
सुतीक्ष्णक्षारकूपेषु क्षिप्यन्ते तदनन्तरम् ॥३६
महाज्वानेऽत्र नरके पापाः क्रदन्ति दुःखिता ।
इतश्चेतश्च धावान्ति दह्यमानास्तदर्विषा ॥३७
पृष्ठे चानीय तुण्डाभ्यां विन्यस्तकंधयाजिते ।
तयोर्मध्येन वाकृष्य बाहुपृष्ठेन बाढतः ॥३८
बद्धाः परस्पर सर्वे सुभृशं पाशरज्जुभिः ।
वद्धपिण्डाग्तु दृश्यते महाज्वाले तु यातनाः ॥३९
रज्जुभिर्वेष्टिताचैव प्रलिप्ताः कर्द्दमेन च ।
करीषतुषवह्नौ च पर्च्यते न म्रियंति च ॥४०
सुतीक्ष्ण चरितास्ते हि कर्कशासु शिलासु च ।
आस्फाल्य शतशः पापाः रच्यते तृणवत्ततः ॥४१
शरीराभ्यंमरगतैः प्रभूतैः कृमिभिर्नराः ।
भक्ष्यते तीक्ष्णवदनैरात्मदेहक्षयाद् भृशम् ॥४२

जब कीड़ों से काटे हुए होकर उनके सब अङ्ग छिन्न एवं विदीर्ण हो जाते हैं तो फिर उन्हें अत्यन्त तपी हुई भूभल में फेंक देते हैं ।३६। इस महान् ज्वाला वाले नरक में पापी परम उत्पीड़ित एवं दुःखित होकर रोया करते हैं और इधर-उधर लपट से भस्मीभूत होकर दौड़ लगाया करते हैं ।३७। मुखों द्वारा पीठपर लाकर कन्धे पर रखके बाहु तथा पीठ से या दोनोंके मध्यभाग से अत्यन्त वेगसे खींचकर पापकी रस्सीसे बँधे हुए समस्त प्राणी महा ज्वाल नामक नरकमें बद्ध पिण्ड हुए सब यातनाओं को देखा करते हैं ।३८-३९। नरक में पापी पुरुष रस्सी से बद्ध तथा कीचड़ से लिप्त आरण्यक उपलों व भुस की अग्नि में पकाये जाते हैं और मरते नहीं हैं,कष्टका घोर अनुभव किया करते हैं ।४०। कठोरतम शिलाओं पर बड़ी तेजीसे जाते हुए सैकड़ों स्थानों में ताड़न करके तिनकों की तरह भूने जाते हैं ।४१। शरीर के अन्दर प्रविष्ट तीव्र मुख वाले कीड़ों से अपने देह के होने के कारण खूब ही जाये जाते हैं ।४२।

क्रमीणां निचये क्षिप्ताः पूयमांसस्थिराशिषु।
तिष्ठत्युद्विग्नाहृदया पर्वताभ्यां निपीडिताः ॥४२
तप्तेन न वज्रलेपेन शरीरमनुलिप्यते।
अधोमुखोर्ध्वपादश्च तातप्यंते स्म वह्निना ॥४३
वदनांतः प्रविन्यस्तां सुप्रतप्तामयोगदाम्।
ते खादन्ति पराधीनास्तैस्ताड्यन्ते च मुद्गरैः ॥४४
इत्थं व्यास कुकर्माणो नरकेषु पचंति हि।
वर्णयामि क्विर्णत्व तेषां तत्वाथ क्रमिणाम् ॥४५

कीड़ों के समुदाय में फैंके हुए तथा पीव माँस और अस्थियों के मध्य में डाले हुए अत्यन्त दुःखित मनमें उन्हें रहना पड़ता है।४२। तपे हुए वज्रलेप से उनका शरीर लिप्त रहता है और उनका मुख नीचे की ओर और पैर ऊपर करके फिर ताप दिया जाता है जिसके कारण बड़ी वेदना होती है।४३। वहाँ पापी नरुषों के मुखमें अन्दर अत्यन्त तप्त लोहे की गदा दी जाती है जिसे वे विवश होकर खाते हैं और यमके दूतों के द्वारा ऊपर से खूब ही ताड़ित भी किया जाता है।४४। हे व्यासजी! इस संसार में बुरे कर्म करने वाले प्राणी परलोक में जाकर महान् से महान् नरकों की यातनाँयें भोगा करते हैं। अब मैं पापी पुरुषों के तत्त्व का वर्णन करता हूँ।४५।

नरक के विशेष कष्टों का वर्णन

मिथ्यागमं प्रवृत्तस्तु द्विजिह्वाख्ये च गच्छति।
जिह्वाद्धकोशबिस्तीर्णेहलस्तीक्ष्णैः प्रपीडयते ॥१
निर्भर्त्सयति यः क्रूरो मातर पितरं गुरुम्।
विष्ठाभिः कृमिमिश्राभिर्मुखामापूर्य हन्यते ॥२
ये शिवायतनारामवापीकूपतडागकान्।
विद्रवंति द्विजस्थानं नरास्तत्र रमन्ति च ॥३
काममुद्वर्तनाभ्यंग स्नानपानाम्बुभोजनम्।
क्रीडन मैथुनं द्यूतमाचरन्ति मदोद्धताः ॥४

पेचिरे विविधैर्घोरैरिक्षुयंत्रादिपीडनैः ।
तिरयाग्निषु पच्यंते यावदाभूतसंप्लवन् ॥५
तेन तेनैव रूपेण ताडयन्ते पारदारिकाः ।
गाढमालिंग्यते नारी सुतप्तां लोहनिर्मिताम् ॥६
पूर्वाकाराश्च पुरुषाः प्रज्वलन्वि समंततः ।
दुश्चारिणीं स्त्रियं गाढमालिगन्ति रुदति च ॥७

श्रीसनत्कुमार जी ने कहा-मिथ्या शास्त्रमें प्रवृत्ति रखने वाला पुरुष द्विजिह्व नामक नरकमें जाता है और वहाँ जीव के समान आधे कोस तक फैले हुए हलों से पीड़ित होता है ।१। जो अत्यन्त क्रूर स्वभाव वाला पुरुष अपने माता-पिता को ललनारता है । तथा गुरुको फटकार देता है वह वहाँ कीड़ों से पूर्ण विष्ठा मुखमें भरकर पीटा जाता है ।१। जो शिव के मन्दिर-बाग बावड़ी तथा कूपको तोड़ते हैं या सरोवर को नष्ट करते हैं अथवा ऐसे स्थान का नाश किया करते हैं जहां मनुष्य रमण करते हैं किम्बा किसी ब्राह्मण के स्थान को नष्ट भ्रष्ट करते हैं वे प्रलय काल तक नरक की अग्नि में पड़े रहा करते हैं ।३। जो मनुष्य काम क्रीड़ा के मदमें डूबे हुए उर्द्धत्तन (उबटन) स्नान-पान-अल-भोजन क्रीड़ा और मैथुन तथा द्युत कहते हैं वे अनेक तरह के कोल्हू के घोर उत्पीड़ित ये वहाँ नरक में क्लेशित किये जाया करते हैं ओर प्रलयके समय पर्यन्त नरक की महाग्नि में पड़े हुए दुःख भोगते रहते हैं ।४-५। जो पराई स्त्री के साथ भोग करते हैं वे वहां नरक में उसी प्रकार से ताड़ित किये जाते हैं । लोहे की सप्त स्त्री से उन्हें आलिगन कराया जाता है जिससे उनका सारा शरीर झुलसा जाता है ।६। पूर्व के ओर आकार वाले पुरुष सब ओर से जलते लगने लगते हैं और व्यभिचारिणी का बड़े वेग से आलिगन करके रोते जाते हैं ।७।

ये शृण्वंति सतां निंदां तेषां कर्णप्रपूरणम् ।
अग्निवर्णैभ्यः कीलैस्तप्तैस्ताम्रादिनिर्मितैः ॥८
त्रपुसीसारकूटाद्भिः क्षीरेण च पुनः पुनः ।
सुतप्ततीणतैलेन वह्लेपेन वा पुनः ॥९

क्रमादापूर्य कर्णास्तु नरकेषु च यातनाः ।
अनुक्रमेण सर्वेषु भवत्येताः समततः ॥१०
सर्वेन्द्रियाणामप्येवं क्रमात्पायेन यातनाः ।
भवन्ति घोराः प्रत्येकं शरीरेण कृतेन च ॥११
स्पर्शदोषेण ये मूढ़ाः स्पृशंति च परस्त्रियम् ।
तेषाँ करोऽग्निवर्णाभिः पांसुभिः पूर्यते भृशम् ॥१२
तेषां क्षारादिभिः सर्वैः शरीरमनुलिप्यते ।
यातनाश्च महाकष्टाः सर्वेषु नरकेषु च ॥१३
कुर्वन्ति पित्रोर्भृकुटि करनेत्राणि ये नराः ।
वक्त्राणि तेषां साँतानि कीर्यंते शंकुभिर्दृढम् ॥१४

जो यहाँ सत्पुरुषों की निन्दा किया करते हैं उनके वहाँ नरक में आग के तुल्य तप्त लोहे तथा तामे की कीलों से कान भर दिये जाते हैं ।८। इसके अनन्तर रांग और पीतल गलाकर जल-दूध या तप्त तेज तेल से किम्वा वज्र लेप से क्रमशः कानों को भरकर यह अत्यन्त वेदना सभी नरकों में क्रम से दी जाती है ।९-१०। इसी तरह सम्पूर्ण इन्द्रियों के द्वारा किये गये पापों से तथा प्रत्येक शरीर के अंगों से किये गये पापों के क्रम के अनुसार नरक में बहुत सख्त यातना मिलती है ।११। जो पुरुष केवल मूढ़ता वश स्पर्श के दोष से ही पराई स्त्री का स्पर्श हाथ से किया करते हैं उसने हाथ अग्नि के समान सन्तप्त लाल धूलि से भरकर जलाये जाते हैं और उनका सम्पूर्ण शरीर गर्म राख आदि से दिप्त किया जाता है। इस तरह सभी नरकों में बहुत ही कष्ट दायक पीडा दी जाती है ।१२-१३। जो मनुष्य संसार में अपने माता-पिता को हाथ या आखें दिखाया करते हैं उनके हैं उनके मुँह ऊपर तक दृढ़ता के साथ कीलों से भर दिये जाते हैं ।१४।

यैरिन्द्रियैर्नरा ये च विकुर्वंति परस्त्रियम् ।
इन्द्रियाणि च तेषाँ वै विकुर्वंति तथैव च ॥१५
परदारांश्च पश्यन्ति लुब्धाः स्तब्धेन चक्षुषा ।
सूचीभिश्चाग्निवर्णाभिस्तेषां नेत्रप्रपूरणम् । १६

क्षाराद्यैश्च कृपात्सर्वा इहैव यमयातनाः।
भवन्ति मुनिशार्दूल सत्यं सत्यं न संशयः ॥१७
देवाग्निगुरुविप्रेभ्यश्चानिवेद्य प्रभुंजते।
लोहकीलशतैस्तप्तैस्तज्जिह्वास्यं च पूज्यते ॥१८
ये देवारामपुष्पाणि लोभात्सगृह्य पाणिना।
जिघ्रन्ति च नरा भूयः शिरसा धारयन्ति च ॥१९
आपूर्यते शिरस्तेषां तप्तैर्लोहस्य शकुभिः।
नासिका वातिबहुलैस्ततः क्षारादिभिर्भृशम् ॥२०
ये निंदन्ति महात्मान वाचकं धर्मदेशिकम्।
देवाग्निगुरुभक्तांश्च धर्मशास्त्रं च शाश्वतम् ॥२१
तेषामुरसि कण्ठे च जिह्वायां दंदतसन्धिषु।
तालुन्योष्ट नासिकायां मूर्ध्नि सर्वांगसन्धिषु ॥२२
अग्निवर्णास्तु तप्ताश्व त्रिशाखा लोहशंकवः।
आखिद्यते च बहुतः स्थानेष्वेतेषु मुद्‌चरैः ॥२३

जिस अपनी इन्द्रियों से मनुष्य पराई स्त्री को दूषित किया करते हैं उनकी वही इन्द्रिय विकृत हो जाती है ।१५। रूप के लालची जो पुरुष चञ्चल नेत्रों से पराई स्त्री को देखते हैं उनके नेत्र नरक में अग्नि के समान लाल गर्म सुईयों से तथा गर्म राख से भर दिये जाते हैं ।१६। हे श्रेष्ठ मुनिवर ! नरक में इस प्रकार से यमराज के द्वारा दी हुई यातनायें प्राप्त होती है-यह सर्वथा अक्षरशः सत्य है-इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ।१७। जो पुरुष देवता-अग्नि-गुरु और ब्राह्मणों को दिये बिना ही स्वयं खा लेते हैं, उनकी जीभ और मुँह लोहे की सैकड़ों कीलों से भर दिये जाते हैं ।१८। जो मनुष्य देवता और बाग के पुष्पों को हाथ से लेकर सूँघते हैं और फिर शिर पर धारण कर लेते हैं उनका शिर तप्त लोहेकी कीलों ठोका जाता है और उनकी नासिका में गर्म राख आदि भरदी जाया करती है ।१९-२०। जो पुरुष महात्मा धर्मात्मा–उपदेशक–देवता–अग्नि–गुरु और भक्तों की तथा सनातन धर्म की एवं शास्त्र की निन्दा करते हैं उनके हृदय, कंठ तथा जिह्वा

में तथा दाँतों की सन्धियों में, तालु में, ओटों में, नासिका में, मस्तक में तथा समस्त अंगों के जोड़ों में अग्नि के तुल्य तप्त तीन शिखा वाली कीलें मुद्गरों से ठोक दी जाती हैं।२१-२२-२३।

ततः क्षारेण दीप्तेन पूर्यंते हि समततः।
यातनाश्च महत्यो वैं शरीरस्याति सर्वतः ।।२४
अशेषनरकेष्वेव क्रमश पुनः।
ये गृह्णन्ति परद्र पद्भ्यां विप्र स्पृशा त च ।।२५
शिवीसकरण गां च ज्ञानादिलिखित च यत्।
हस्तपादादिभिस्तेषामापूर्यंते समततः ।।२६
नरकेशु च सवेषु विचित्रा बहुयातनाः।
भवन्ति बहुशः कष्टाः पाणिपादेसमुद्भवाः ।।२७
शिवायतनपयन्ते देवारामेषु कुत्रचित्।
समुत्सृजति ये पापाः पुरीष मूत्रमेव च ।।२८
तेषां शिश्नं सवृषणं चूर्ण्यंते लोहमुद्गरैः।
सूचीभिरग्निवर्णाभिस्तथा त्वापूर्यंते पुनः ।।२९

इसके पश्चात् जलती हुई राखसे समस्त अग में लेपन किया जाता है जिससे सम्पूर्ण शरीरमें पूरी यातना होती है।२४। जो कोई पराये धन को ले लेते है तथा पैरोंसे ब्राह्मण के शरीर का स्पर्श करते हैं वे क्रम से सभी नरकों में जाकर पूरी यातना भोगते हैं।२५। जो शिव या किसी या देवता की पूजा की वस्तुओं को, गायको मथा ज्ञान के लेख एवं ज्ञ.नपूर्ण ग्रन्थ को पैरों से छुते हैं उनके हाथ पैर आदि कीलों से ठोके जाते हैं।२४ उनको अन्य सभी नरकों में जाकर हाथ-पैरों की बहुत कड़ी यातनायें भोगनी पड़ती हैं जिनसे अत्यन्त कष्ट होता है।२७। जो पापात्मा पुरुष शिव-मन्दिर की सीमा में देवोद्यान में किसी भी स्थान पर मल या मूत्र का त्याग किया करतेहैं उनको अण्डले सहित उपस्थेन्द्रिय लोहेके मुद्गरों से पीसी जातीहै तथा अग्निक समान तप्त सुइयोंसे पीसी जातीहै।२८-२९

ततः क्षारेण महता तीव्रेण च पुनः पुनः।

द्रुतेन पूर्यते गाढं गुदे शिश्ने च देहिपः ॥३०
मना सर्वेन्द्रियाणां च यस्माद् दुःखं प्रजायते ।
धने सत्यपि ये दानं न प्रयच्चन्ति तृष्णया ॥३१
अतिथिं चावमन्यते काले प्राप्ते गृहाश्रमे ।
तस्मात्ते दुष्कृतं प्राप्य गच्छन्ति निरयेऽशुचौ ॥३२
येऽन्नं दत्वा हि भुजति न श्वभ्यः सह वायसैः ।
तेषाँ च विवृत्तं वक्त्रं कीलकद्वयताडितम् ॥३३
कृमिभिः प्राणिभिश्चोग्रैर्लोहतुण्डैश्च वायसैः ।
उपद्रवैर्बहुविधैरुग्रैरंतः प्रपीड्यते ॥३४
श्यामश्च शवलश्चैव यममार्गानुरोधकौ ।
यो स्तस्ताभ्यां प्रयच्छामि तौ गृह्णीतामिमं बलिम् ॥३५
ये वा वरुणवायव्यायाम्या नैर्ऋत्यवासाः ।
वायसाः पुण्यकर्माणस्ते प्रगृह्णान्तु मे बलिम् ॥३६
शिवमभ्यच्य यऽनेन हुत्वाग्नो विधिपूर्वकम् ।
शैवैर्भन्त्रैर्बलिं ये च ददन्ते न च यमम् ॥३७

इसके अनन्तर उस पापीकी गुदा और लिंगमें बहुत ही गर्म राख या खारी वस्तु भर दीजाती है ।३०। इसमें उन्हें ऐसी तीव्रवेदना होती है कि जिससे मन तथा समस्त इन्द्रियों को बड़ाही अधिक कष्टहोता हैं।जो मनुष्य अपने पाप धन होने परभी तृष्णा या कृपणतासे बिल्कुल दान नहीं किया करते हैं और समयपर घरमें आये हुए अतिथिका तिरस्कार देते हैं इससे उन्हें बड़ाभारी पापलगता है और उस पापसे वे नरकमें जाते हैं।३१-३२। जो कुत्ते और काकोंको वलि न देकर स्वय भोजनकर लेते हैं उनका कंठ और मुख दोनों कीलों के द्वारा नाड़ित किये जाते हैं।३३। ऐसे पापी प्राणी कीड़े, हिंसक जन्तु, लोहेके समान सख्त चोंच वाले काकोंसे पीड़ित होते हैं और अन्य अनेक उपद्रवों से खूब ही नरकमें सताये जाते हैं।३४। यमराज के श्याम और सबल नाम वाले दो श्वान हैं जो उनके मार्ग को रोका करते हैं— मैं उन दोनों को वलि समर्पित करता हूँ-वे दोनों इन

बलि को ग्रहण करें। इस प्रकार से ही जो पश्चिम-वायव्य दिशा के तथा उत्तर-नैऋत्य दिशाके पुण्यात्मा कहे हैं वे मेरा बलिदान ग्रहण करें। जो यत्न पूर्वक शिव की पूजा कर और विधि सहित अग्नि से हवन करके शिव मन्त्रों द्वारा बलिदान किया करते हैं वे फिर यमराज का मुख नहीं देखते हैं।३५-३६-३७।

पश्यंति विदिवं याँति तस्माद्द्यादि्दने।
मण्डलं चतुरस्त्रं तु कृत्वा गंधादिवासितम् ॥३८
धन्वन्तर्यमीशान्यां प्राच्यामिद्राय नि क्षिपेत्।
याम्यां यमाय वारुण्या सुदक्षोमाय दक्षिणे ॥३९
पितृभ्यस्तु विनिःक्षिप्य प्राच्यामर्यमण ततः।
धातुश्चैव विधातुश्च द्वारदेशे विनिक्षिपेत् ॥४०
श्वभ्यश्च श्वपतिभ्यश्च वयोभ्यो विक्षिपेद् भुवि।
देवः पितृमनुष्यश्च प्रेतैर्भूतैः सगुह्यकैं ॥४१
वयोभिः कृमिकीटैश्च गृहस्थश्चोपजीव्यते।
स्वाहाकारः स्वधाकारी वषट्कारस्तृतीयकः ॥४२

ऐसा त्रिधान नित्य नियम से करने वाले लोग सीधे स्वर्ग लोक ही चले जाते हैं। इसलिये प्रतिदिन चार हाथ का मण्डल बनाकर उसे गन्धाक्षतादि से सुगन्धित करे। फिर ईशान दिशा में धन्वतरि वैद्य और पूर्वदिशा में इन्द्र देव को बलिदान देवे। उत्तर में यम को और पश्चिममें सुदक्षोम को तथा दक्षिण में पितरों को बलि देवे।३८-३९। प्राच्य दिशा में सूर्य को भाग देवे-द्वार देश में धाता तथा विधाता को भाग देवे।४०। श्वानों के लिये तथा श्वपतियों के वास्ने एवं पक्षियों के लिये जो भाग देना है उसे भूमि पर ही रख देना चाहिये। देवों से पितर और मनुष्यों से प्रेत-भूतों से गुह्यको से पक्षी कृमिकीटों गृहस्थी मनुष्य उपजीवित होते हैं।४१-४२।

हतकारस्तथैवान्यो धेन्वाः स्तनचतुष्ठयम।
स्वहाकारं स्तने देवाः स्वधां च पितरस्तथा।।४३
वषट्कारं तथैवान्ये देवा भूतेश्वरास्तथा।

हंतकारं मनुष्याश्च पिबंति सततं स्तनम् ।४४
यस्त्वेतां मानवो धेनुं श्रद्धया ह्यनुपूर्तिकाम् ।
करोति सतत काले साग्नित्वायोपकल्पते ।।४५
यस्तां जहाति वा स्वस्थस्तामिस्रे स तु मज्जति ।
तस्माद्दत्वा बलिं ताभ्यो द्वारस्थश्चिंतयेत्क्षणम् ।।४६
क्षुधार्तमतिथिं सम्यगेकग्रामनिवासिनम् ।
भोजयेत्तं शुभान्नेन यथाशक्त्यात्मभोजनात् ।
अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते ।
स तस्मै दुष्कृतं दत्वा पुण्यमादाय गच्छति ।।४८
ततोऽन्न प्रियमेवाश्नन्नरः शृङ्खलवान्पुनः ।
जिह्वावेगेन विद्धोऽत्र चिर काल स तिष्ठति ।।४९

स्वाहाकार-स्वधाकार-वषट्कार तथा हन्तकार ये चारों गायकों स्तनों में रहते हैं। स्तन में से देवता स्वाहाकार को पितृगण स्वधा को देवता वषट्को और भूतेश्वर भी इसी एवं मनुष्य हन्तकार को निरन्तर पान करते हैं ।४३-४४। जो मनुष्य गाय को श्रद्धा के साथ निरन्तर समय पर स्वभोजन देता है उसकी कल्पना साग्नित्व की जाती हैं ।४५। जो गाय को त्याग देता है, वह अस्वस्थ रहता है और तामिस्र नामक नरक में जाया करता हैं इसलिये इन उपर्युक्त सबको बलि देकर एक क्षण के लिये अपने द्वार पर स्थित होकर बिचार करना चाहिये।४६। प्रत्येक मनुष्य का परम आवश्यक कर्तव्य है कि प्रतिदिन यथाशक्ति अपने भोजनमें से किसी एक भूखे अभ्यागत को या किसी भी ग्रामके निवासीको सविधि श्रेष्ठ अन्नसे भोजन करावे ।४७। जिसके घरमें कोई अभ्यागत निराश लौट जाता है वह गृहस्थो को पापका पुञ्ज प्रदान समस्त पुण्य के सञ्चय को लेकर चला जाया करता है ।४८। अभ्यागत के निराश हो लौटजाने पर जो स्वयं भोजन करता है और स्वाद लिया करता है वह बहुत समय तक शृङ्खलायुक्त जीभ के वेग से बिंधा हुआ रहता है ।४९।

खादितुं दीयते तेषां भित्वा चैव तु शशोणितम् ।।५०
निःशेषतः कशाभिस्तु पीड्यते क्रमशः पुनः ।
बुभुक्षयातिकष्टं हि तथा चातिपिपासया ।।५१
एवमाद्या महाघोरा यातनाः पापकर्मणाम् ।
अन्ते यत्प्रतिपनं हि तत्संक्षेपेण सश्रृणु ।।५२
यः करोति महापापं धर्मं चरति वै लघु ।
धर्मं गुरुतरं वापि तपावस्थे तयोः श्रृणु ।।५३
सुकृतस्य फल नोक्तं गुरुतापप्रभावतः ।
न मिनोति सुखं तत्र भोगैर्बहुभिरन्वितः ।।५४
तथोद्विग्नोऽतिसंतप्ता न भक्ष्यैर्मन्यते सुखम् ।
अभाववादग्रतोऽन्यस्थ प्रतिकल्पं दिने दिने ।।५५
पुमान्यो गुरुधर्माऽपि सोपवासी यथा गृही ।
वित्तवान्न विजानाति पीडां नियमसंस्थितः ।।५६
तानि पापानि घोराणि सन्ति यैश्च नरो भुवि ।
शतधा भेदमाप्नोति गिरिर्वज्रहतो यथा ।।५७

नरक में ऐसे पापात्मा प्राणी के जीभके मांस का उचेल कर तिल भर प्रमाण के जन्तुओं को खानेको दिया जाता हैं। फिर उसके रुधिरको भेदन करके सादे शरीरको क्रमशः पीडित एवम् ताड़ित कियाजाता है। तब उस प्राणी से भूख-प्यासके कारण अत्यन्त कष्टके साथ चलाजाता हैं ।५०-५१। इस रीति से संसार के जीवन मे पापकर्म करनेवालों की बहुतसी यातनायें होती हैं। अन्त में जो भी कुछ उन्हे प्राप्त होता है उसको बतलाता हूँ, उसे ध्यानपूर्वक सुनो।५२। जो पुरुष पापतो बहुत बड़ा और पुण्यबहुत ही स्वल्प करता है या बहुत धर्म करता है-इन दोनोंकी दशा बतलाता हूँ उसे श्रवण करो।५३। बड़े पापका प्रभाव भी बड़ा होता है और उससे थोड़े धर्म का फ़ल नहीं मिला करता है। पापके प्रभाव से बहुत भोगों में फँसा हुआ भी उनमें सुख का अनुभव नहीं कियाकरता है।५४। ऐसा पुरुष परम दुःखित एवं हृदयमें जलता हुआ रहकर भोजनके योग्य पदार्थोंमें कभी भी सुख नहीं

माना करता है। वह सर्वदा अपने लिये उनका अभाव ही माना करता है और दूसरों के आगे देखकर उसे दुःख होता है।५५। जो अधिक धर्म करने वाला है वह उपवास करने वाले एक गृहस्थ के तुल्य धनवान् होकर सर्वदा नियममें स्थित रहकर अपनी पीड़ाका होना मानता ही नहीं है।५६। ऐसे भी अत्यन्त महा घोर पाप हैं जिनके कारण मनुष्य पृथ्वी पर बज्रसे तड़ित हुए पर्वतके समान सैकड़ों ही भेद वाला हो जाता है।५७।

॥ तर्पण तपस्या आदि परमार्थ का फल ॥

पानीयदानं परमं दानानामुक्षमं सदा।
सर्वेषां जीवपुंजानः तर्पण जीवनं स्मृतम् ॥१
प्रपादानमतः कुर्यात्सुस्नेहादनिवारितम्।
जलाश्रयविनिर्माणं महानन्दकर भवेत् ॥२
इह लोके परे वापि सत्य सत्यं न संशयः।
तस्माद्वापीश्च कूपांश्च तडागान्कारयेन्नरः ॥३
अर्द्ध पापस्य हरित पुरुषस्य विकर्मणः।
कूपः प्रवृत्तपानायः सुप्रवृत्तस्य नित्यशः ॥४
सर्व तारयते वंश यस्य खाते जलाशये।
गावः पिबंति विप्राय साधवश्च नराः सदा ॥५
निद.घकाले पानीय यस्य तिष्ठत्यवारितम्।
सुदुर्गं विषम कृच्छ्रं न कदाचिदवाप्यते ॥६
तडागानां च वक्ष्यामि कृतानां ये गुणाः स्मृताः।
त्रिषु लोकेषु सर्वत्र पूजितो यस्तडागवान् ॥७

श्री सनत्कुमारजीने कहा जलका दान समस्त दोनों में बहुत ही श्रेष्ठ एवं बड़ा दान है। यह सदा समस्त जीवोंकी पूर्णतृप्ति करनेवाला होता है। यह जीवन देनेवाला मानागया है।१। इसलिये बड़े ही प्रेम के साथ प्याऊ लगाकर जलका दान करनाचाहिए। जलाशयोंका निर्माण कराना बहुत ही आनन्दका देने वाला होता है।२। मनुष्यको कूपतथा बावड़ी का निर्माण अवश्यही करना चाहिए। इससेइस लोक और परलोकदोनों स्थानों मेंपरम

आनन्वकी प्राप्ति होती है यह अक्षरशः सत्य है । इसमें कुछ भी किसी को सन्देह नहीं करना चाहिए ।३। जल परिपूर्ण कूप नित्यही पापकर्ममें प्रवृत्त होनेवाले पुरुषको आधापाप नष्टकर देता है ।४। जिसके द्वारा निर्मित झील या सरोवरमें गौ ब्राह्मण,साधु और मनुष्य सदा जलपीते हैं उसका वशतर जाया करता है ।५। ग्रीष्म कालमें जिसका जल बिना रोके हुए ही स्थित रहता है वह निर्माणकर्त्ता कभी-कभी घोर कठिनता तथा बड़ा दुःख नहीं पाया करता है ।६। बनाये हुए सरोवरोंके जो गुण बतलाये गये हैं अब मैं उनका वर्णन करता हूँ । जो तालाबके निर्माण करानेवाला मनुष्य होता है वह तीनों लोकों में सर्वत्र आपर के सहित पूजित होता है ।७।

यतस्तन्मांसमुद्धृत्य तिलमात्रप्रमाणतः ।
अथवा मित्रसदने मैत्रं मित्राविवर्जितम् ।
कार्तिसंजननं श्रेष्ठ तडागानां निवेशनम् ।।८
धर्मस्यार्थस्य कामस्य फलमाहुर्मनीषिणः ।
तडागः सुकृतो येन तस्य पुण्यमनन्तकम् ।।९
चतुर्विधानां भूतानां तडागः परमाश्रयः ।
तडागादीनि सर्वाणि दिशन्तिश्रियमुत्तमाम् ।।१०
देवा मनुष्या गन्धर्वाः पितरो नागराक्षसः ।
स्थावराणि च भूतानि संश्रयति जलाशयम् ।।११
प्रावृड्तौ तडागे तु सलिलं यस्य तिष्ठति ।
अग्निहोत्रफलं तस्य भवतीत्यापि चात्मभूः ।।१२
शरत्काले तु शलिलं तडागे यस्य तिष्ठति ।
गोसहस्रफल तस्य भवेन्नैवात्र संशय ।।१३
हेमन्ते शिशरे चैव सलिलं यस्य तिष्ठति ।
स वै वहुसुवर्णस्य यज्ञस्य लभते फलम् ।।१४

तालाबों का निर्माण करना,मित्रके घर में मित्रमे दुःख रहित मिलता तथा कीर्त्तिका विस्तारकराने वाला अन्यन्तश्रेष्ठ होता है ।८। जिस व्यक्ति ने अपने किये हुए शुभ कर्मसे सरोवर बनवाया है उसका अनन्त पुण्य उसे मिलता है । बुद्धिमान मनुष्य धर्म अर्थ और कामको इस कारणसेही सफल

कहा करते हैं ।९। सरोवर चारप्रकार के प्राणियोंका परमआश्रय होता है। तड़ाग आदि समस्त जलाशय उत्तम लक्ष्मी के प्रदान करने वाले होते हैं ।१०। देव, मनुष्य, गन्धर्व, पितर, नाग, राक्षस, स्थावर, भूत (प्राणी) आदि सब जलाशय को आपका आश्रय बनाया करते हैं ।११।जिसके द्वारा निर्मित जलाशयमें वर्षा ऋतुमें जल रहता है उसकी अग्नि-होत्र करने के तुल्य पुण्य होता है ऐसा ब्रह्माजी ने कहा है ।१२। जिसके बनायेहुए सरोवरमें शरत्काल में जल भरा रहता है उसे एक सहस्र गोदान के समान पुण्यकी प्राप्ति हुआ करती है इसमें कुछभी सन्देह नहीं है ।१३। जिसके सरोवरमें हेमन्त तथा शिशिर ऋतु में जल ठहरता है वह अत्यधिक सुवर्ण सुवर्ण के दान के समान पुण्य का फल प्राप्त करता है ।१४।

वसंते च तथा ग्रीष्मे सलिलं यस्य तिष्ठति ।
अतिरात्राश्वमेधानां फलमाहुर्मनीषिणः ।।१५
मुने व्यासाथवृक्षाणां रोपणे च गुणाच्छृणु ।
प्रोक्तं जलाशयफल जीवप्रींणनमुत्तमम् ।।१६
अतीतानागतान्सर्वान्पितृवशांस्तु तारयेत् ।
कान्तारे वृक्षरोपी यस्तस्माद् वृक्षास्तु रोपयेत् ।।१७
तत्र पुत्रा भवन्त्येते पादपा नात्र संशयः ।
परं लोक गतः सोऽपि लोकानाप्नोति चाक्षय न् ।।१८
पुष्पैः सुरगणान्सर्वाफलैश्चापि तथा पितृन् ।
छायया चातिथीन्सर्वान्पूजयान्त्य महीरुहाः ।।१९
कन्नरोरगरक्षांसि देवगन्धर्वमानरवः ।
तथंर्वषियणःश्चौव संश्रयंति महीरुहान् ।।२०
पुष्पिताः फलवतश्च तर्पयतीह मानवान् ।
इह लोके परे चैव पुत्रास्ते धर्मतः स्मृताः ।।२१

वसन्त और ग्रीष्म ऋतुमें जिसके निर्मित सरोवर में जल रहता है उसे अतिरात्रि तथा अश्वमेध यज्ञोंका फलप्राप्त होना मनीषी लोग करते हैं ।१५ हे मुने ! हे व्यास महर्षे! मैंने जीवोंको संतुष्ट करनेवाले जलाशयके निर्माण

का पुण्य फल बता दिया है। अब वृक्षों के पुण्य के विषयमें वर्णन करते हैं उसे आप श्रवण करें।१६। जो कोई व्यक्ति वन में वृक्षोंको लगाता हैं वह व्यतीत हुएतथा आगे आनेवाले समस्त पितृ-वंशोंका उद्धार करदेता है। इसलिये वृक्षरोपण का पुण्य कार्य अवश्यही करना चाहिये।१७। ये लगाये हुए वृक्ष दूसरे जन्म में उस लगाने वाले के पुत्र सम होते हैं। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। वह वृक्षारोपण कर्त्ता भी मृत्युगत होकर अक्षय लोकों को प्राप्त होता है।१८। लगाये हुए वृक्ष पुष्पोंके द्वारा देवगण को, फलों से पितरों को, छाया से अतिथियों के इस तरह सबमें पूजक होते है।१७। किन्नर सर्प, राक्षस, देवता, गन्धर्व, मनुष्य तथा ऋषिगणसे सभी वृक्षों को अपना आश्रय बनाया करते हैं।२०। लोक में पुष्पित तथा फलित वृक्ष मनुष्यों को पूर्ण मानसिक एवं शारीरिक तृप्ति प्रदान किया करते हैं। इसलिये वे इस लोक तथा परलोक में धर्मके पुत्र कहे जाते हैं।२१।

तडागकृद् वृक्षरोपी चेष्ठयज्ञश्च यो द्विजः।
एते स्वर्गान्न हीयते ये चान्ये सत्यवादिनः ॥२२
सत्यमेव परं ब्रह्म सत्यमेव परं तपः।
सत्यमेव परो यज्ञः सत्यमेव परं श्रुतम् ॥२३
सत्यं सुप्तेषु जागर्ति सत्यं च परम पदम्।
सत्येनैव धृता पृथ्वी सत्ये सर्व प्रतिष्ठितम् ॥२४
तपो यज्ञश्च पुण्यं च देवर्षिपितृपूजने।
आपो विद्या च ते सर्वे सर्व सत्ये प्रतिष्ठितम् ॥२५
सत्यं यज्ञस्तपो दानं मन्त्रा देवी सरस्वती।
ब्रह्मचर्यं तथा सत्यमोंकारः सत्यमेव च ॥२६
सत्येन वायुरभ्येति सत्येन तपते रविः।
सत्येनाग्निर्दहति स्वर्गः सत्येन तिष्ठति ॥२७
पालनं सर्व वेदानां सर्वतीर्थावगाहनम्।
सत्येन वहते लोके सर्व माप्नोत्यसंशयम् ॥२८

जो द्विज सरोवर, बाग बनाने वाला तथा पंच महायज्ञ करने वाला होता है वह कभी भी स्वर्गलोकसे नीचे नहीं पतित होता है।२१। सत्य ही

परब्रह्म है, सत्य ही परम तप है,सत्य ही परम यज्ञ है और सत्य ही परम आदरणीय शस्त्र है ।२३। सत्य ही सोने वालोंको जगाता है,सत्य ही परम पद है, इस सत्य ने ही पृथ्वी मंडल को धारण कररखा है,इस परम श्रेष्ठ सत्य ही में कुछ विद्यमान रहता है ।२४। तप, यज्ञ, पुण्य, देव, ऋषि,पितृ पूजन, जल और विद्या आदि सभी इस एक सत्य ही में प्रतिष्ठित होते हैं ।२५। सत्य ही यज्ञ, तप, दान, ब्रह्मचर्य है । सत्य ही ओंकार है और सत्य ही मन्त्रों वाली देवी सरस्वती है ।२६। सत्यके प्रभाव से यह वायु जलती है और सत्यसेही स्वर्गकी प्राप्ति हुआकरती है ।२७। समस्त वेदोंकी प्राप्ति तथासमस्त तीर्थोंमें स्नानकरने का फलकेवल एक सत्यसेही प्राप्त हो जाता है । सत्यसे सभीकुछ मिलजाता है, इसमें कुछभी संशय है ।२८।

अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम् ।
लक्षाणि क्रतवश्चैव सत्यमेव विशिष्यते ।।२६

सत्येन देवाः पितरो मानवोरगराक्षसाः ।
प्रीयन्ते सत्यतः सर्वे लोकाश्च सचराचराः ।।३०

सत्यमाहुः परं धर्मः सत्यमाहुः पर पदम् ।
सत्यमाहुः प ब्रह्म तस्मात्सत्य सदा वदेत् ।।३१
मुनयः सत्यनिरतास्तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् ।
सत्यधर्मरतः सिद्धास्ततः स्वर्वं च ते गताः ।।३२
अप्सरोगणयं विष्टै विमानैः परिमातृभिः ।
वक्तव्यं च सदा सत्यं न सत्याद्विद्यते परम् ।।३३
अगाधे विपुले सिद्धे सत्यतीर्थे शुचि ह्रदे ।
स्नातव्यं मनसा युक्तं स्थानं तत्परमं स्मृतम् ।।३४
आत्मार्थे वा परार्थे वा पुत्रार्थे वापि मानवाः ।
अनृतं ये न भाषन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ।।३५

सहस्रों अश्वमेधों का फल तथा लाखों अन्य यज्ञों का पुण्य तराजू में एक ओर रखो और एक ओर दूसरे पलड़ेमें सत्यको रखो तो सत्य वाला

पलड़ाही नीचेकी ओर झुकेगा । अतः सत्य इन सबसे विशेष होता है ।२९ सत्यसे देवता, पितृगण, मनुष्य, सर्प, राक्षस आदि चर एवं अचरके सहित सम्पूर्णलोक प्रसन्न होते हैं ।३०। सत्यही सबसे श्रेष्ठ परम धर्म कहा गया हैं, सत्यही सर्वोत्तम परमपद बतायागया है और सत्यहीको साक्षात् पर-ब्रह्मका स्वरूप माना गया है । इसलिये सर्वदा सत्यका ही भाषण करना चाहिये ।३१। सत्यमें परायण मुनि अति कठिन तपश्चर्या करके तथा सत्य स्वरूप धर्ममें प्रवृत्त सिद्ध सभी स्वर्गको प्राप्त हुए हैं ।३२। अप्सराओं से प्रविष्टहुए विमानों के सहित परिमाताओंको सदा सत्य कहना चाहिये क्यों कि सत्य से अधिक धर्म कुछभी नहीं है ।३३। सत्यरूपी तीर्थका ह्रदपरम अगाध, परम सिद्ध एवं अतिपवित्र है इनमें मनसहित स्नान करके अतुल सुख प्राप्त करना चाहिए । इसे सर्वोपरि परम स्थान कहा गया है ।३४। जो सत्पुरुष अपने लिए, पराये काज के लिये या अपने पुत्र के हित के लिये झूँठ नहीं बोलते हैं वे मनुष्य निश्चय ही स्वर्ग के गामी होते हैं ।३५।

वेदा यज्ञास्तथा मंत्राः संति विप्रेषु नित्यशः ।
नो भांत्यपि ह्यसत्येषु तस्मात्सत्य समाचरेत् ॥३६
तपसो मे फल ब्रूहि पुनरेव विशेषतः ।
स्वषां चैव वर्णानां ब्रह्मणाना तपोधने ॥३७
प्रवक्ष्यामि तपोऽयाय सर्वकामाथधकम् ।
सुदुश्चरं निजातीनां तन्ने निगदतः शृणु ॥३८
तपो हि परमं प्रोक्तं तपसा विद्यते फलम् ।
तपोरता हि ये नित्य मोदंत सह दैवतैः ॥३९
तपसा प्राप्यते स्वर्गस्तपसा प्राप्यते यशः ।
तपसा प्राप्यते कामस्तपः सर्वार्थसाधनम् ॥४०
तपसा मोक्षमाप्नोति तपसा विदते महत् ।
ज्ञानविज्ञानसंपत्तिः सौभाग्यं रूपमेव च ॥४१
नानाविधानि वस्तूनि तपसा लभते नरः ।
तपसा लभते सर्वं मनसा यद्यदिच्छति ॥४२

वेद,यज्ञ तथा मन्त्र आदि असत्य बोलने वाले ब्राह्मणों में कभी शोभा नहीं दियाकरते हैं। इसलिये सदा सत्यही बोलना चाहिये।३६। व्यासजी ने कहा-हे तपोधन ! अब समस्त वर्णों के तथा ब्राह्मणोंके तपस्याके फलका वर्णन कीजिये। मेरी पुनः एकबार सुननेकी इच्छाहोती है।३७। सनत्कुमार जी ने कहा-अब मैं समस्तकाम और अर्थका साधक और द्विजातियों द्वारा कठिनतासे करनेयोग्य तपसे अध्यायका वर्णन करता हूँ। आपसब मुझसे स्रवण करिये।३८। तपको सबसे बड़ा बताया गया है,तपस्यासे ही विशेष फलकी प्राप्ति हुआ करती है,जो नित्यही तपश्चर्यासे अपनी प्रवृत्ति रखते हैं, वे देवताओं के सहित आनन्द का लाभ लिया करते हैं।३९। तपसे स्वर्ग मिलता है तपहीसे यशकी प्राप्ति होती है,तपसे समस्त कामनाओं का लाभ होता है और तप ही सम्पूर्ण अर्थो का साधन होता।४०। तप से परम पुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति होती है। तपसे ज्ञान तथा विज्ञान की सम्पत्ति मिलती है तपसे परम सौभाग्य और लोकोत्तर रूप-लावण्य प्राप्त होता है।४१। मनुष्य तपके द्वारा अनेक तरहकी वस्तुओं को पा लेता है, अधिक क्या-क्या बताया जावे तपका ऐसा विलक्षण भाव है कि इसमें रत व्यक्ति मन से जो-जो भी इच्छा करता है सो उसे मिल जाता है।४२।

नातप्ततपसो यांति ब्रह्मलोकं कदाचन।
नातप्ततपसां प्राप्यः शङ्करः परमेश्वरः ।।४३
यत्कार्यं किंचिदास्थाय पुरुषस्तपते तपः।
तत्सव समवाप्नोति परत्रेह च मानवः। ४४
सुरापः परदारी च ब्रह्महा गुरुतल्पगः।
तपसा तरते सर्वं सर्वगश्च विमुंगति ।।४५
अपि सर्वेश्वरः स्थाणुश्चेव सनातनः।
ब्रह्मा हुताशनः शक्रो ये चान्ये तपसान्तिः ।।४६
अष्टाशिति सहस्राथि मुनीनामूर्ध्वरेतसाम्।
तपसा दिवि मादन्ते समेता दैवतैः सह ।।४७
तपसा लभ्यते राज्यं स च शक्र सुरश्चरः।

तपसाऽपालयत्सर्वमहन्यहनि वृत्रहा ।।४८

सूर्याचन्द्रमसौ देवी सर्वलोकहिये रतौ।

तपसैव प्रकाशन्ते नक्षत्राणि ग्रहास्तथा ।।४६

यपस्या के बिना न तो कभी ब्रह्म को पा सकते हैं और न परमेश्वर शिव ही प्राप्त किये जासकते हैं।४३। मनुष्य जिस कार्य का उद्देश्य लेकर तप किया करता है वह सभी इसलोक और परलोक में अवश्य ही प्राप्त हो जाता है।४२। मदिरा पान करने वाले पराई स्त्री के साथ रमण करने वाला ब्रह्म हत्यारा और गुरु-पत्नीसे गमन करने वाला महा पातकी भी तप से तर जाया करता है और समस्त प्रकार के पापों से छुटकारा पा जाता है।४५। सबके स्वामी शिव, सनातन विष्णु जगत्स्रष्टा ब्रह्मा, देवेन्द्र, इन्द्र, अग्नि आदि सब तपसे युक्त है।४६। ऊर्ध्वरेता अट्ठामी सहस्र मुनि-गण देवताओं के सहित सभी स्वर्ग लोक में तप से ही आनन्द करते हैं।४७। तपके अतुल-असीम प्रभाव से राज्य की प्राप्ति होती है। तपसे सुर-राज इन्द्र देव प्रति दिन सबका पालन किया करते हैं।४८। समस्त लोकों के हित करने वाले सूर्य और चन्द्र देव नक्षत्र, ग्रहादि सभी तप से ही नित्य प्रकाशित होते है।४६।

न चास्ति तत्सुख लोके यद्विना तपसा किल ।

तपसव सुख शर्वमिति वेदविदो विदुः ।।५०

ज्ञानं विज्ञानमारोग्य रूपवत्वं तथैव च ।

सौभाग्यं चैव तपसा प्राप्यते सर्वदा सुखम् ।।५१

तपसा सृजज्यते विश्वं ब्रह्माविश्वं विना श्रमम् ।

पाति विष्णुर्हरोऽप्येति धत्तो शेषोऽखिलां महीम् ।।५२

दिश्वामित्रो गाधिसुतस्तपसैव महामुने ।

क्षत्रियोऽथाभवद्धि प्रः प्रसिद्धं त्रिभवे त्विदम् ।।५३

इत्युक्तं ते महाप्राज्ञ तपोमाहात्म्यमुत्तमम् ।

शृण्वध्ययनमाहात्म्यं तमसोऽधिकमुत्तमम् ।।५४

संसार में ऐसा कोई भी सुख नहीं है जो बिना तपके प्राप्तहो जाता हो। तपसे ही सब सुख मिलता है वेदके ज्ञाता ऐसा ही कहते हैं।५०।तपस्यासे

ज्ञान-विज्ञान आरोग्य, रूपवत्ता और सौभाग्य, सुखादि निरन्तर प्राप्त हुआ करते हैं ।५१। तप से ब्रह्मा बिना किसी परिश्रम के संसार की विशाल रचना किया करते हैं, विष्णु इस महान् जगत्का राक्षण एवं पोषण करते हैं, शिव इस समस्त विश्व का संहार करते हैं और शेष इस भूमण्डल को धारण कियाकरते हैं ।५२हे महामुने ! तपसेही गाधिके पुत्र विश्वामित्रजीने क्षत्रिय जातिसे ब्राह्मत्वको प्राप्तकिया और तीनों लोकों में विख्यात होगये ।५३। हे महाप्राज्ञ ! मैंने वह तपका उत्तम महात्म्य बतादिया, अब तप से अधिक श्रेष्ठ अध्ययनका माहात्म्य वर्णनकरता हूँ उसेआप श्रवण करें।५४।

पुराण माहात्म्य वर्णन

तपस्तपति योऽरण्ये वन्यमूलफलाशन; ।
योऽधीते ऋचमेकां हि फल स्यात्तत्समं ।।१
श्रुनेरध्यनात्पुण्यं यदाप्नोति द्विजोत्तमः ।
तदध्यापनतश्चापि द्विगुणं फलमश्नुते ।।२
जगत्तया निरालोकं जायतेऽशशिभास्करम् ।
विना तथा पुराणं ह्यव्येयमस्मान्मुने सदा ।।३
तप्यमानं सदाज्ञानान्निरये योऽपि शास्त्रतः ।
सम्बोधयति लोकं तं तस्मात्पूज्यः पुराणग ।।४
सर्वेषां चैव पात्राणां मध्ये श्रेष्ठ पुराणवित् ।
पतनात्त्रायते यस्मात्तस्मात्पात्रमुदाहृदम् ।।५
यँबुद्धिर्न कर्तव्या पुराणज्ञ कदाचन ।
पुराणज्ञः सर्ववेत्ता ब्रह्मा विष्णुर्हरो गुरुः ।।६
धनं धान्यं हिरण्यं च वासांसि विविधानि च ।
देयं पुराणविज्ञाय परत्रेह च शर्मणे ।।७

श्री सनत्कुमारजी ने कहा-हे मुने ! वन में कन्द, मूल, फल खाकर तप करने के तुल्य एक वेद की ऋचा के पढ़ने का फल होता है ।१। श्रेष्ठ ब्राह्मण वेदके अध्ययनसे जो पुण्य प्राप्त करता है उसकेपाठ करनेले दुगुना फल प्राप्त कियाकरता है ।२।हे मुने ! जिस तरह बिना दिवाकर औरचंद्र

के जगत् प्रकाशहीन रहता है, उसी तरह बिना पुराणके ज्ञानके यह सारा संसार प्रकाशशून्य-सा रहता है। अतः सदा पुराणों का अध्ययन अवश्य ही करना चाहिए ।३। सर्वदा अज्ञानसे परिपूर्ण लोक को शास्त्र के द्वारा ही समझा जाता है। पुराण अज्ञान का भली भाँति निराकरण कर देता है। इसलिये पुराणों का वक्ता सदा पूजा के योग्य होता है ।४। समस्त प्रकार के पत्रों के मध्य में पुराणों का ज्ञाता अत्यन्त श्रेष्ठ होता है। यह वस्तुतः पतनसे रक्षा किया करता है इसलिये इसे पात्र कहा जाता है ।५। पुराणों के ज्ञान रखने वाले ब्राह्मण में मनुष्य बुद्धि कभी नहीं करनी चाहिये, क्योंकि पुराणों का ज्ञानी विद्वान् सर्वज्ञ, ब्रह्मा, विष्णु शिव गुरु होता है ।६। परलोक तथा इस लोक में अपने कल्याणके लिये पुराण के ज्ञाता विद्वानको धन धान्य, सुवर्ण और वस्त्रादि देने चाहिए ।७।

योो ददाति महीप्रीत्या पुराणज्ञाय सज्जनः ।
पात्राय शुभवस्तूनि स याति परमां गतिम् ॥८
महीं गांवा स्यदनांश्च गजानश्वांश्च शोभनान् ।
यः प्रयच्छति पात्राय यस्य पुण्यफलं शृणु ॥९
अक्षयान्सर्वकामांश्च परत्रेह च जन्ममि ।
अश्वमेधफल चापि स फल लभते पुमान् ॥१०
महीं ददाति यस्तस्मै कृष्ठां फलवती शुभाम् ।
स तारयति वैश्यान्दश तूर्वान्दशापरान् ॥११
इह भुक्त्वाखिलान्कामानते दिव्यशरीरवान् ।
विमानेन च दिव्येन शिवलोक स गच्छति ॥१२
न यज्ञैस्तुष्ठिमायाति देवाः प्रोक्षणकैरपि ।
बलिभिः पुष्पपूजाभिर्यथा पुस्तकवाचनैः ॥१३
शंभोरायतने यस्तु कारयेद्धर्मपुस्तकम् ।
विष्णोरर्कस्य कस्यापि शृणु तस्यापि तत्फमम् ॥१४
राजसूयाश्वमेधानां फलमाप्नीोति मानवः ।
सूर्यलोकं च भित्त्वाशु ब्रह्मलोक स गच्छति ॥१५

जो सत्पुरुष पुराणवेत्ता को जो कि सच्चासुपात्र होता है, श्रेष्ठ पदार्थ सप्रेम अर्पण करता है वह परम गतिको प्राप्त किया करता है ।८। जो कोई उत्तम सुपात्रको भूमि,गौ,रथ,अश्व और शोभन हाथी देता है उसके महापुण्य की फल यह है कि दातामनुष्य इस जन्ममें तथा परलोकमें अक्षय मनोरथों की प्राप्तिके साथ-साथ अश्वमेध यज्ञके पुण्यका फलभी प्राप्तकिया करता है ।९-१०। जो जुतीहुई सुफल देनेवाली भूमिका दानकरता है वह दश पहिले और दश अगले वंशजोंको तार दिया करता हैं ।११। इस जन्म में समस्त भोगोंका उपभोग करके अन्तमें सुन्दर शरीर धारण करके दिव्य विमानके द्वारा वह शिव लोकमें चला जाता है ।१२। सभी देव प्रोक्षणयुक्त यज्ञादि से तथा भेंटोंसे और पुष्पादि उपचारों से, पूजा से इतने सन्तुष्ट नहीं होते जैसे कि पुराण-वाचनसे प्रसन्न होते हैं ।१३। शिवालय अथवा विष्णुदेवा-लय तथा सूर्य या अन्य किसीभी देव-मन्दिर में धर्म पुस्तक पुराण आदि का वचन जो कोई भी व्यक्ति करता है उसका फल यह होता है कि वह राजसूर्य तथा अश्वमेध यज्ञोंके पुण्यका फल प्राप्त करता है और सूर्यलोक का भेदन करके अन्त में ब्रह्मलोक को चला जाता है ।१४-१५।

स्थित्वा कल्पशतान्यत्र राजा भवति भूतले ।
भुंक्ते निष्कंटक भोगा न्नात्र कार्या विचारणा ।।१६
अश्वमेघसहस्रस्य यत्फलं समुदाहृतम् ।
तत्फलं समवाप्नोति देवाग्रं तो जप चरेत् ।।१७
इतिहासपुराणाभ्यां शम्भोरायतने शुभे ।
नान्यत्प्रीतकर शम्भोस्तथान्येषां दिवौकसाम् ।।१८
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्य पुस्तकवाचनम् ।
तथास्य श्रवण प्रेम्णा सवकामफलप्रदम् ।।१९
पुराणश्रवणाच्छम्भोर्निष्पापो जायते नरः ।
भुक्त्वा भोगान्सुविपुलाच्छिवलोकमवाप्नुयाम् ।।२०
राजसूयेन यत्पुण्यमग्निष्ठोमशतेन च ।
तत्पुण्य लभते शभोः कथास्रवणमात्रतः ।।२१

वह व्यक्ति ब्रह्मलोक सैकड़ों कल्पोंतक निवास कर फिर पृथ्वी पर राजा होता है और निष्कटक रूपसे भोगोंका उपभोग किया करता हैं। इसमें तनिक भी सन्देहका कोइ अवसरनहीं है।१६। देव प्रतिमाके सामने बैठकर जो कोई जाप करता है वहभी सैकड़ों अश्वमेधोंके फलके तुल्यही पुण्य का भागी होता है।१७। शिवालयमें इतिहास पुराणों की गाथा के प्रवचन के बिना शिव तथा अन्यकिसी देवताको प्रसन्न एव संतुष्ट करने का अन्यकोई उपाय ही नहीं है।१८। इसीलिए पूर्ण प्रयत्न से पुराण ग्रन्थोंका वाचन तथा श्रवण हरएक कल्याणकामी को करना चाहिए, क्योंकि यह एक ही उपाय ऐसा जो समस्तकामनाओंकी पूर्ति करदेनेवालाहोता है।१६ शिव पुराणश्रवण करनेसे मनुष्य पाप रहित होजाता हैं और समस्त भोगों कोपाकर शिव लोकको जाता है।२०। राजसूय यज्ञ से यथा सौ अग्निष्टोम यज्ञों के करने से जो पुण्य मिलता है वही पुण्य शिव की कथा सुनने से होता है।२१।

सव तीर्थावगाहेन गवां कोटिप्रदानतः।
तत् फल लभते शम्भोः कथाश्रवणतो मुने ।।२२
ये शृण्वन्ति कथाँ शम्भोः सदा भुवनपापनीम्।
ते मनुष्या न मन्तव्या रुद्रा एव न संशयः।।२३
शृण्वतां शिवसत्कीर्ति सतां कीर्तयतां ताम्।
हृदाम्बुजांस्येव तीर्थानि मुनयो विदुः ।।२४
गनुं पिःश्रंयप्तं स्थानं येऽभिवांछन्ति देहिनः।
कथाँ पौराणिकीं शैवीं भक्त्या शृण्वन्तु ते सदा ।।२५
कथां पौराणिकीं श्रोतुं यद्यशक्तः सदा भवेत्।
नियतात्मा प्रतिदिन शृणुयाद्वा मुहुर्टकम् ।।२६
यदि प्रतिदिन श्रोतुमशक्ता मानवो भवेत्।
पुण्यमासादिषु मुने शृणुयाच्छांकरीं कथाम् ।।२७
शैवी कथां हि शृण्वानः पुरुषो हि मुनीश्वर।
स निस्तरति संसारं दग्ध्वा कर्ममहाटवीम् ।।२८

हे मुने ! समस्त शुभ तीर्थोंमें स्नान से तथा करोड़ गोदानसे जो महा-पुण्यका उदयहोता है वही फल मनुष्य शिवकी गाथाके सुनने या बाँचनेसे

प्राप्त कर लेता है ।२२। जो कोई लोक पावनी शिव-कथा सुनते हैं वेदर असल मनुष्य नहीं माने जाने चाहिए, किन्तु वे तो साक्षात् रुद्रही हैं—इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ।२३। भगवान् शिव की सुन्दर कीर्त्ति का श्रवण करने वालों तथा कहने वालों के चरण की धूलि को मुनिगण ने पवित्र तीर्थ बताया है ।२४। जो मनुष्य किसी भी कल्याणकारण स्थान को प्राप्त करना चाहते हैं उन्हें चाहिए कि सदा नियम पूर्वक शिवपुराण की कथा का श्रवण या वाचन किया करें ।२५-२६। यदि सदा पुराण-एक बार अवश्य ही कथा का श्रवण करें ।२७। हे मुनीश्वर ! जो मनुष्य शिव कथा सुनते हैं वे अपने कर्म रूपी विशाल वन को भस्म करके संसार से तर जाते हैं ।२८।

कथां शैवीं मुहूर्तं वा तदर्द्धं वा क्षण च वा ।
ये श्रृण्वंति नरा भक्त्या य तेषां दुर्गतिभवेत् ।।२९
यत्पुण्यं सर्वदानेषु सर्वयज्ञेषु वा मुने ।
शंभोः पुराणश्रवणात्तत्फलं निश्चल भवेत् ।।३०
विशेषतः कलौ व्यास पुराण श्रवणादृते ।
परो धर्मो न पुंसां हि मुक्तिध्यानपरः स्मृतः ।।३१
पुराणश्रवणं शंभोर्नामसंकीर्तनं तथा ।
कल्पद्रुमफलं रम्यं मनुष्याणां न संशयः ।।३२
कलौ दुर्मेधसां पुंसां धर्माचरोज्जितात्मनाम् ।
हिताय विदधे शंभुः पुराणाख्य सुधारसम् ।।३३
एकोऽजरामरः स्याद्वै पिहन्नवामृतं पुमान् ।
शंभो कथामृतापोनात्कुलमेवाजरामरम् ।।३४
या गतिः पुण्यशीलानां यज्विनां च तपस्विनाम् ।
सा गतिः सहसा तात पुराणश्रवणात्खलु ।।३५

जो पुरुष क्षणमात्र भी भक्तिपूर्वक शिवकी कथा सुनते हे उनकी कभी भी दुर्गति नहीं होती है ।२९। हे मुने जो समस्त दानोंमें या सम्पूर्ण यज्ञों में पुण्य होता है वह फल भगवान् शिवके पराणके सुनने मात्र सेही होजाता

है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।३०। हे व्यासजी ! कलयुग में खास तौर में पुराण स्रवण के बिना मनुष्यों को मुक्ति दान में परायण अन्य कोई भी धर्म नहीं कहा गया है।३१। मनुष्यके लिये शिवपुराणका स्रवण और नाम-संकीर्तन कल्पवृक्ष के फलके समान सुन्दर बताया गया है इसमें कुछभी संशय नहीं है।३२। इस कलियुग में धर्माचार के त्याग देने वाले दुर्बुद्धि मानवों के हितके लिये भगवान् शिवने अपने नाम वाला पुराण नामक अमृत रसका विधान किया है।३३। अमृत के पान से केवल पान करने वाला एकही मानव अजर अमर हो जाता है, किन्तु शिव-कथारूपी अमृत के पान करनेसे अमृत के पान करने से समस्त कुलही अजर-अमर होता है।३४। हे तात ! पुण्यात्माओं की तथा यज्ञकर्त्ता और तामसों की जो गतिहोती है वही गति एकबार पुराणके स्रवण करने से होती है।३५।

ज्ञानावाप्तिर्यदा न स्याद्योगशास्त्राणिय त्नतः।
अध्येतव्यानि पौराणं शास्त्र श्रोतव्यमेव च ॥३६
पापं सक्षीयते नित्य धर्मश्चैव विवद्धते।
पुराणस्रवणाज्ज्ञानी न संसारं प्रपद्यते ॥३७
अतएव पुराणानि स्रोतव्यानि प्रयत्नतः।
धर्मार्थकमलाभाय मोक्षमार्गाप्तये यथा ॥३८
यक्षैर्दानैस्तपोभिस्तु यत्फलं तीर्थसेवया।
तत्फलं समवाप्नोति पुराणस्रवणान्नरः ॥३९
न भवेयुः पुराणानि धर्ममार्गेक्षणानि तु।
यद्यत्र यद्व्रती स्थाता चात्र पारत्रिकीं कथाम् ॥४०
षड्विंशतिपुराणानां मध्येऽप्येकं शृणति यः।
पठेद्वा भक्तियुक्तस्तु स मुक्तो नात्र सशयः ॥४१
अन्यो न दृष्टाः सुखदा हि मार्गः पूराणमार्गो हि सदा वरिष्ठः।
शास्त्रं बिना सर्वामिदं न भाति सूर्येण हीना इव जीवलोकाः ।४२

ज्ञानकी प्राप्ति के अभावमें यत्न सहित योग शास्त्रों को पढ़ना चाहिये और परायण शास्त्रोंका स्रवण करना चाहिये।३६। पुराणके स्रवणसे पाप

छूटते हैं, धर्म नित्य बढ़ता है। उससे यह होता है कि वह ज्ञानी होकर संसार के आवागमन से मुक्त हो जाता है।३७। इसीसे धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की प्राप्ति के लिये यत्नपूर्वक पुराणों का श्रवण प्रत्येक को करना चाहिये।३८। यज्ञ, दान, तप तथा तीर्थ सेवक से जो फल मिलता है वही पुराण श्रवण से मनुष्य प्राप्त कर लेता है।३९। यदि धर्म के मार्ग दर्शक पुराण न होते तो इस लोक और परलोक की कथा सुनाने वाला कोई व्रती न रहता।४०। छब्बीस पुराणों में किसी एक भी कोई श्रवण कर लेता है अथवा भक्ति के साथ पढ़ लेता है तो वह निस्सन्देह मुक्त हो जाता है।४१। इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी सुखपद मार्ग देखने में नहीं आता है। पुराण श्रवण का मार्ग ही परम श्रेष्ठ है। बिना शास्त्र के यह संसार भी इस तरह शोभायुक्त नहीं है, जिस प्रकार बिना सूर्य देव के यह जीव लोक शोभा नहीं पाया है।४२।

किस पाप के फल से किस नरक से जाना पड़ता है तथा प्रायश्चित वर्णन

तेषां मूर्द्धोपपरिष्टाद्वै नरकास्ताञ्छृणुष्व च।
मत्तो मुनिवरश्रेष्ठ पच्यन्ते यत्र पापिनः।१
रौरवः शूकरो राधस्ताला विवमनस्तथा।
महाज्वालस्तप्तकुम्भो लवणोऽपि विलोहितः।२
वैतरणी पूयवहा क्रमिणः क्रमिभोजनः।
असिपत्रवन घोर लालाभक्षश्च दारुणः।३
तथा पूयवहः प्रायो वह्निज्वालो ह्यधशिराः।
सदशः कालसूत्रश्च तमश्चावीचिरोधनः।४
श्वभोजनोऽथ रुष्टश्च महारौरवशाल्मली।
इत्याद्या बहवस्तत्र नरका दुःखदायकः।५
पच्यते तेषु पुरुषाः पापकर्मरतास्तु ये।
क्रमद्वक्ष्ये तु तान् व्यास सावधानतया शृणु।६

कूटसाक्ष्यं तु यो वक्ति विना विप्रान् सुराश्च गाः ।
सदाऽनृतवदेद्यस्तु स नरो याति रौरवम् ।७

श्री सनत्कुमारजी ने कहा–हे मुनिश्रेष्ट ! उन लोगोंके ऊपरजो नरक है उसका वृत्तान्त अब आप मुझसे श्रवणकरो जहाँपर पापात्माजीव जाकर दुःख भोगा करते हैं ।१। रौरव,शूकर,रोध,ताल तथा विवसन, महाज्वाल, तप्तकुम्भ,लवण विलोहित,वैतरणी,पूयवहा,कृमी-कृमि भोजन,घोर असिपत्र वन,दारुण, लालाभक्ष,पूयवह, बहिर्ज्वाल, अधशिर, सदश कालसूत्र, तमश्चावी,विरोधन, श्वभोजन, रुष्ट, महारौरव, शाल्मि इत्यादि वहाँ बहुत से परमदुःखदायक नरक हैं ।२-५। हे व्यासजी ! इन नरकोंमें जोभी पापात्मा पुरुषोंका पातनकिया जाता है मैं उनके विषयमें क्रमसे सबसुनाता हूँ। आप सावधान चित्तसे श्रवण करें ।६। जो मनुष्य बिना ब्राह्मण,बिना देवताऔर बिना गौ के कूटसाध्य अर्थात् झूँठी गवाही देता है और सर्वथा मिथ्या बोलता है वह रौरव नामक नरक में डाला जाता है ।७।

भ्रूणहा स्वर्णहर्त्ता च गोरोधी विश्वघातकः ।
सुरापो ब्रह्महंता च परद्रव्यापहारक। ।८
यस्ततसङ्गी स वै याति मृतो व्यासगुरोर्वधात् ।
ततः कुम्भ स्वसुर्मातुर्गोश्चव दुहितुस्तथा ।९
साध्व्या विक्रयवृच्चार्थ वार्द्धकी केशविक्रयी ।
तप्तलोहेषु पच्येत् यश्च भक्तं परित्यजेत् ।१०
अवमंता गुरूणां यः पश्चाद् भोक्ता नराधमः ।
देवदूषयिता चैव देवविक्रयिकश्च यः ।११
अगम्यगामी यश्चांते याति सप्तबलं द्विज ।
चौरो गोघ्नो हि पतितो मर्यादादूषकस्तथा ।१२
देवद्विजपितृद्वेष्टा रत्नदूषयिता च यः ।
स याति कृमिभक्ष वै कृमिमत्ति दुरिष्टकृत् ।१३
पितृदेवसुरान् यस्तु पर्यंश्नाति नराधमः ।
लालाभक्ष स य त्यज्ञो यः शास्त्रकूटकृन्नरः ।१४

जो भ्रूण हत्यारा, सुवर्ण चोर, विश्वासघातक, यद्यपी ब्रह्म हत्यारा परधनापहारी और गायको रोकने वाला होता है तथा हे व्यासजी ! जो इनका सङ्ग-साथ देने वाला होता है ये सब और गुरुके वधकर्त्ता, बहिन, माता गौ पुत्रीके वधकरने वाला तप्तकुम्भ नामक नरक में जाते है ।८-९। साध्वी स्त्री को वेच देनेवाला, व्याज खानेवाला, केशीका बेचने वाला और भक्तों का त्याग करने वाला ये सब 'तप्तलोह' नामक नरकमें जाया करते हैं ।१०। जो गुरुजन का तिरस्कार करने वाला पीछे भोजन करने वाला, मनुष्यों में नीचदेवताओं को दूषित बताने वाला और जो देब प्रतिमाओं का विक्रय करनेवालाहै हेद्विज! जो अगम्य स्त्रीमें गमनकरता है-ये सबतप्त बलकेअन्त में जाते हैं । चोर, गौ हत्या करने वाला, पतित, मर्यादा तोड़ने वाला, देब, ब्राह्मण और पितरोंसे द्वेषकरनेवाला और रत्नोंमें मेल मिलाप करनेवाला ये सब कृमिभक्ष नामम नरकमें जाते हैं और वहाँ कीड़ोंको खाते हैं ।११-१३। जोनीच मनुष्य देवता, पितर, मनुष्य और अतिथियों के बिना स्वयं खाता हैं तथा शस्त्रकूट है, वह लालाभक्ष नामक नरक में जाता है ।१४।

यश्चात्यजेन ससेव्यो ह्यसद्ग्राही तु यो द्विजः ।
अयाज्ययाजकश्चैव तथैवाभक्ष्यभक्षकः ।१५

रुधिरौघे पतंत्येते सोमविक्रयिणश्च ये ।
मधुहा ग्रामहा यात्ति क्रूरां वैतरणी नदीम् ।१६

नवयौवनमत्ताश्च मर्यादाभेदिनश्च ये ।
ते कृस्य यांत्यशौचाश्च कुलकाजीविनश्च ये ।१७

असिपत्रवनं याति वृक्षच्छेदी वृथैव यः ।
क्षु रभ्रका मृगव्याधा वह्निज्वाले पतंति तेः ।१८

भ्रष्टाचारो हि यो विप्रः क्षत्रियो वैश्य एव च ।
यात्यंते द्विज तत्रै व यः श्वकाकेषु वह्नियः ।१९

व्रतस्य लोपका यं च स्वाश्रमादिच्युताश्च ये ।
संदशयातनामध्ये पतंति भृशदारुणे ।२०

वीर्यं स्वप्नेषु स्कदेयुर्ये नरा ब्रह्मचारिण: ।
पुत्रा नाध्यापिता यैश्च ते पतित श्वभोजने ।२१

ब्राह्मण होकर अन्त्यव के साथ सेवन करने वाला दुर्जनों से ग्रहण करने वाला, बिना याचकों के यज्ञ कराने वाला तथा अभक्ष्य पदार्थों को खाने वाला सोमन्स को बेचने वाला ये सब रुधिरौध नामक नरक में जाते हैं। मधु का हरण करने वाला, ग्राम की हत्या करने वाला-ये क्रूर वैतरणी नदी में जाया करते हैं ।१५-१६। जो अपने नये यौवन से उन्मत्त होकर मर्यादा तोड़ने वाला अपवित्र हैं-जो स्त्री के द्वारा अपनी जीविका चलाते हैं वे सब कृस्य नामक वाले नरक में जाया करते हैं ।१७। वृथा ही वृक्षों को काटने वाले जो होते हैं वे असिपत्रवन नामक नरक में जाते हैं। जो क्षरम्रक और मृग हिंसक व्याघ्र हैं वे बह्नि-ज्वाला नाम वाले नरक में जाते हैं ।१८। हे द्विज ! जो ब्राह्मण, क्षत्रिय या बैश्य अपने आचार से भ्रष्ट हैं श्वपाक में आग देने वाले हैं वे सब अन्त में उक्त नरकों में जाया करते हैं ।१९। जो व्रत के लोप करने वाले तथा जो अपने आश्रम से भ्रष्ट है ये सब अति कठोर नामक तथा सहश यातना में जाकर पढ़ते हैं ।२०। जो ब्रह्मचारी मनुष्य स्वप्न वीर्य का स्खलित करते हैं वे स्वभोजन नामक नरक में पड़ते हैं ।२१।

एत चान्ये च नरका: शतशोऽथ शहस्रश: ।
येषु दुष्कर्मकर्माण: पच्यते यातनागत: ।२२
तथैव पापन्युक्तानि तथान्यति सहस्रश ।
भूज्यते यानि पुरुषैनरकांतरगौचरै: ।२३
वर्णाश्रमविरुद्ध च कर्म कुर्वन्ति ये नरा: ।
कर्मणा मनसा वाचा निरये तु पतन्ति त ।२४
अध:शिरोभि हश्यन्ते नरका दिवि दैवतै: ।
देवानधामुखान्सवानध: पश्यन्ति नारका: ।२५
स्थावरा. कृमिपाकाश्च धक्षिण: पशवो मृगा: ।
धार्मिक स्त्रिदशास्तद्वन्मोक्षिणश्च यथाक्रमम् ।२६

यावंतो जंतवः सवर्गे तावंतो नरकौकसः ।
पापकृद्याति नरकं प्रायश्चित्तपराङ्मुखः ।२७
गुरूणि गुरुभिश्चैव लघूनि लघुभिस्तथा ।
प्रायश्चित्तानि ह्यन्येच मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीद् ।२८

ये पूर्वोक्त तथा अन्य सैकड़ों एवं सहस्रों नरक हैं जिनमें पापात्मा मनुष्य यातना भोगने के लिये पटके जाते हैं ।२२। पाप भी सहस्रों प्रकार के होते हैं । ये बताये गये तथा अन्य भी बहुत से हैं लिनके कारण मनुष्य नरकों में पड़कर उनका फल भोगा करते हैं ।२३। जो मनुष्य मन, वाणी और कर्म से अपने वर्ण तथा आश्रम के विपरीत कर्म किया करते हैं वे निश्चय ही नरकगामी होते हैं ।२४। ऐसे नरकों में निवास करने वाले पुरुष देवों के द्वारा नीचे की ओर मुख करके देखे जाते हैं और नरकवासी स्वयं नीचे की ओर मुख करके देवों को देखा करते हैं ।२५। जिस तरह स्थावर कृमिपाक पक्षी मृग है इसी तरह क्रम से वार्जिक स्वर्ग-मोक्ष वाले जीव हैं ।२६। जितने जीव-जन्तु स्वर्ग में रहते हैं ठीक उतने ही नरक में स्थित होते हैं । जो मनुष्य अपने किये हुये दुष्कर्मों का कोई भी प्रायःश्चित शास्त्रानुसार नहीं किया करते हैं वे ही पापात्मा प्राणी नरक में जाया करते हैं ।२७। स्वायम्भुव मनु ने तथा अन्य महर्षियों ने भी बड़े पापों के बड़े प्रायश्चित और छोटे-छोटे पाप कर्मों के छोटे प्रायश्चित बतलाये हैं ।२८।

यानि तेषामशेषाणां कर्माण्युक्तानि तेषु वै ।
प्रायश्चित्तमशेषेण हरानुस्मरणं परम् ।२९
प्रायश्चित्तं तु यस्यैव पापं पुंसः प्रजायते ।
कृते पापेऽनुयापोऽपि शिवसंस्मरणं परम् ।३०
महेश्वरमवाप्नोति मध्याह्न दिषु संस्मरन् ।
प्रार्तनिशि च सध्यायां क्षीणपापो भवेन्नरः ।३१
मुक्तिं प्रयाति स्वर्गं वा समस्तक्लेशसंक्षयम् ।
शिवस्थ स्मरणावेव तस्य शंभोरुमापतेः ।३२
पापास्तरायो विपेन्द्र जपहोमार्चनादि च ।
भवस्येव न कुत्रापि त्रैलोक्ये मुनिसत्तम ।३३

महेश्वरे मतियस्य जपहोमार्चनादिषु ।
गत्युण्प्र तत्कृत तेन देवेन्द्रत्वादिक फलम् ।३४
पुमान्न नरक याति यः स्परेद् भक्तितो मुने ।
अहर्निशं शिवं तस्मात्स क्षीणाशेषहातकः ।३५

उनमें जितने भी कर्म बतलाये हैं उन सभी के सम्पूर्ण प्रायश्चित भी हैं, किन्तु भगवान्शिवका स्मरणार्चन करना समस्त प्रायश्चितोंसे बड़ा है । इसी रीतिसे जिसव्यक्तिको प्राग्श्चितकरना हैं उसे पापकर्म किये जानेका पश्चात्ताप करके शिवका स्मरण करना बतलाया गया हैं ।२९-३०। जो प्राणी प्रातःकालमें सन्धामें, रात्रिमें और मध्यान्हके समयमें किसी भी समयमें नित्य नियमसे भगवान्शिवका स्मरणकरता है वह समस्तपापोंमें विमुक्त होजाता है ।३१। ऐसा दुष्कर्मकर्त्ता पापात्मा प्राणी उमेस्वर शिव के केवल स्मरणसे ही समस्त दुःखों से दूर होकर स्वर्ग या मोक्ष पद को पहुँच जाता है ।३२। विपेन्द्र ! हे मुनिवर ! त्रिभुवनों में कही भी पापोंका प्रायश्चित जप, होम और अर्चन आदि कुछभी नहीं होते हैं और जिसकी दुद्धि शिवके चरणोंमें संलप्न हो उसको जप, होम अर्जनादिसे जो पुण्यमिलता हैं वहसब पुन्यऔर देवराजइन्द्र का पद फल प्राप्त करता है ।३३-३४। हे मुनिराज ! जोमनुष्य अहर्निश भक्तिपूर्वक शिवका स्मरण किया करताहैं वहकभी नरकगामी नहीं होता है, क्योंकि इससे ही वह पापरहित हो जाया करता हैं ।३५।

नरकस्वर्गसंज्ञायै पापपुण्यै द्विजोत्तम ।
दयोस्त्वेक तु दुखायान्यत्सूखायोद्भवाय च ।३६
तदेव पीयत भूत्वा पुनर्दुःखाय जायते ।
तस्माद् दुःखात्मकं नास्ति न किंचित्मुखात्मकम् ।३७
मनसः पारणामोऽयं सुखदुःखोपलक्षणः ।
ज्ञानमेव पर ब्रह्मज्ञानं तत्वाय कल्पते ।३८
ज्ञानात्मकामिद विश्वं सकलं सचराचरम् ।
परविज्ञानतः किंचिद्विद्यते न परं मुने ।३९

हे द्विजोत्तम ! ये पाप और पुन्य ही नरक और स्वर्गके नामों के अर्थ हैं । इन दोनों स्थानों में पाप दुःखोंके भोग के वास्ते और पुन्य सुखोपभ ग

के लिए हुआ करते हैं ।३६। ऐसा भी होता है कि वही पुन्य प्राप्ति के लिये होकर फिर दुःख के लिये भी हो जाता है। इस कारण से न कुछ दुःख देने वाला है और कुछ सुख देने वाला है ।३७। यह प्राणियों के मन का परिणाम ही दुःख-सुख का लक्षण होता है। इसलिये ज्ञान हो परब्रह्म का स्वरूप है और ज्ञान ही की तत्व के लिये कल्पना की जाती है ।३८। हे मुनिवर ! यह चरचरात्मक समस्त संसार ज्ञानात्मक है परा विज्ञान से अधिक अन्य कुछ भी नहीं है ।३९।

तप से शिव लोक की प्राप्ति तथा मनुष्य जन्म की श्रेष्ठता

सनत्कुमार सर्वज्ञ तत्प्राप्ति बद सत्तम।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते शिवभक्तियुता नरः ।१
पराशरसुत व्यास श्रृणु प्रीत्या शुभां गतिम्।
व्रतं हि शुद्धभक्तानां तथा शुद्धं तपस्विनाम् ।२
ये शिवं शुद्धकर्माणः सुशुद्धतपसान्विताः।
समर्चयन्ति तं नित्यं वन्द्यास्ते सर्वथान्वहम् ।३
नातप्ततपसो यांति शिवलोकमनामयम्।
शिवानुग्रहमद्धेतुस्तप एव महामुने ।४
तपसा दिवि भोगन्ते प्रत्यक्ष देवतागणः।
ऋषयोमुनयश्चैव सत्य जानीहि मद्वचः ।५
सुदुर्द्धरं दुराध्यं सुधूरं दुरतिक्रमम्।
तत्सर्वं तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम् ।६
सुस्थितस्तपनि ब्रह्मा नित्यं विष्णुर्हरस्तथा।
देवा देव्योऽखिलाः प्राप्तस्तपसा दुर्लभं फलम् ।७

श्री व्यासजी ने कहा-हे सनत्कुमारजी ! अब आप कृपाकर उस पदकी प्राप्तिके विषयमें वर्णन करें जहाँ प्राप्त होकरश्रीशिवकी परम भक्तिमें परायण प्राणी नहीं लौटा करते हैं ।१। सनत्कुमारजी ने कहा-हे पराशर पुत्र श्री व्यासजी ! अच्छा अब आप मुझसे वही शुभगति तथा शुद्ध एवं पवित्र भक्त और तपस्वियों के व्रतके विषयमें श्रवण करें ।२। जो भी शुद्धकर्मों के

करने वाले तथा शुद्ध तपस्या में युक्त मनुष्य शिवका अर्चन किया करते हैं वे सर्वदा सभी के वन्दनीय और पूजा करने के योग्य होते है ।३। हे महामुने ! बिना तप किये नीरोग भी शिवलोक नहीं जाया करते हैं शिव की कृपा भी तपश्चर्या से बतलाई गई है ।४। आप सब मेरे इस कथन को सर्वथा सत्य समझें कि तप से ही देवगण प्रत्यक्ष होकर स्वर्ग में आनन्दोप भोग किया करते हैं और तपश्चर्या से ही ऋषि-मुनि भी परम हर्षित होते है ।५। जो सबसे कठिन, दुराराध्य और धुरधारी तथा अत्यन्त कठिनाई से अतिक्रमण करने के योग्य होता हैं, वह सब तपस्या से साध्य हो जाता है किन्तु यह यप ही एक परम दुस्साध्य वस्तु है ।६। इसी तप में ब्रह्मा रहा करते हैं–तप में ही विष्णु मग्न रहते हैं और तपस्या में शिव सदा प्रवृत्त रहते हैं मथा समस्त देवगण और देवियों ने भी तप के प्रभाव से ही दुर्लभ फल की प्राप्ति की है ।७।

येन येन हि भावेन स्थित्वा यत्क्रियते तपः ।
ततः संप्राप्यतेऽसौ तैरिह लोके न संशयः ।८
सात्विकं र.जसं चैव तामसं त्रिविधं स्मृतम् ।
विज्ञेयं हि तपो व्यास नून हि सर्वसाधनम् ।९
सात्विकं दैवतानां हि यतीनामूर्ध्वरेतसाम् ।
राजसं दानवानां हि मनुष्याणां तथैव च ।१०।
त्रिविधं तत्फलं प्रोक्तं मुनिभिस्तत्वदर्शिभिः ।
जपो ध्यानं तु देवानामर्चनं भक्तिवः शुभम् ।११
सात्विकं तद्धि निर्दिष्टमशेषफलसाधकम् ।
इह लोके परे चैव मनोभिप्रेतसाधनम् ।१२
कामनाभलमुद्दिश्य राजसं तप उच्यते ।
निजदेह सुसपीड्य देहसोषकदु सहैः ।१३
तपस्तामससमुदिष्टं मनोऽभिप्रेतसाधनम् ।१४

यह तप जिस-जिस भावना से स्थित होकर किया जाता है वही फल इस लोकमें उन करने वालों को निश्चय ही मिलता है । इस कथन में संशय नहीं करना चाहिये ।८। हे व्यासजी ! यह तप सात्विक-राजस और तामस

तीन तरह का होता है। तप ही सबका साधन है, देवगण तथा सन्यासियों का एवं ब्रह्मचारियों का तप सात्विक अर्थात् सतोगुणी होती है। दैत्य और मनुष्यों का तप राजस अर्थात् रजोगुणी होता है और राक्षस लोग तथा दुष्ट कर्म करने वालों का तप तापस हुआ करता है।१०। तत्वदर्शी मुनियों ने तप का फल भी तीन प्रकार का ही बतलाया है। जप-ध्यान और भक्ति के सहित देवताओं का अर्चन करना यह सात्विकतप समस्त फलों का प्रादाता एव साधक बतलाया गया है। यह इस लोक में एवं परलोक में मानवों की मनोकामनाओं का पूर्ण करने वाला होता है।११-१२। कामना के फल का उद्देश्य करके देह के शोषक तपस्या से जो शरीर को पीड़ित किया जाता है वह राजस तप कहा गया है।१३। जो केवल अपने मनोरथों की सिद्धि के लिए ही तप किया जाता है वह तामस तप कहा जाता है।१४।

उत्तम सात्विकं विद्याद्धर्मबुद्धिश्च निश्चला।
स्नान पूजा जपो होमः शुद्धशौचमहिंसनम्।१५
व्रतोपवासचर्या च मौनमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोथो वानं क्षांतिर्दमो दया।१६
वापीकुपतड़ागादेः प्रासादस्य च कल्पना।
कृच्छ्र चाँन्द्रायणं यज्ञः सुतीर्धान्याश्रमाः पुनः।१७
धर्मस्थानानि चैतानि सुखदांति मनीषिणाम्।
सुधर्मः परमोः व्यास शिवभक्तेश्च कारणम्।१८
संक्रांतिर्विपवद्‌योगो नादमुक्ते नियुज्वताम्।
ध्यानं त्रैकालिकं ज्योतिरुन्मनीभावधारणा।१९
रेचकः पूरकः कुम्भः प्राणायामस्त्रिधा स्मृतः।
नाडीसंचारविज्ञानं प्रत्याहारनिरोधनम्।२०
तुरीयं तदधो बुद्धिरणिमाद्यष्टसंयुतम्।
पूर्वोत्तमं समुद्दिष्टं परज्ञानप्रसाधनम्।२१

सात्विक तप सबसे उत्तम तप समझना चाहिए। इसमें निश्चय धर्म की बुद्धि, स्नान, पूजा, जप, होम, शुचि शौच अहिंसा ये होते हैं।१५। इस

तप में व्रत, उपवासचार्या, मौन, इन्द्रिय, निरोध, बुद्धि,विद्या,सत्य,अक्रोध, दान, शान्ति,दम और दया का भाव होता है।१६। सात्विक तपमें बावड़ी कूप, सरोवर एवं महल आदि का निर्माण, कृच्छाचान्द्रायण, यज्ञ, श्रेष्ठ तीर्थों का अटन और आश्रय करना होता है।१७। हे व्यासजी ! ये सब धर्म के स्थान हैं, बुद्धिमानों को सुख देने वाले और शिव की भक्ति के कारण स्वरूप होते हैं।१८। संक्रांति विषुवत् योग नादयुक्त हमें प्रयोग करना चाहिये, सीनों कालों में ध्यान,ज्योति,उन्मरी-भाव यह धारण कही जाती है।१६। रेचक पूरक और कुम्भक ये तीन प्रकार का प्राणायाम कहा जाता है। नाड़ी सञ्चार का ज्ञान करना तथा प्रत्याहार का रोकना होता हैं।२०। चतुर्थ अणिमा आदि आठ सिद्धियों के सहित अधोबुद्धि करना यह पूर्वोत्तम परम ज्ञान का साधन बताया गया है।२१।

काष्ठावस्था मृतावस्था हरिता वेति कीर्तिताः।
नानोपलब्धयो ह्येताः सर्वपापप्रणाशनाः।२२
नारी शय्या तथा पान वस्त्रधूपविलेपनम्।
ताम्बूलभक्षणं पंच राजेश्यविभूतयः।२३
हेमभारस्वथा ताभ्रं गृहाश्च रत्नधेनबः।
पांडित्य वेदशास्त्राणां गीतनृत्य विभूषणम्।२४
शङ्खवीणामृदङ्गाश्च गजेन्द्रश्छत्रचामरे।
भोगरूपाणि चैतानि एभिः सक्तोऽनुरज्यते।२५
आदशवन्मुने स्नेहैस्तिलवत्म न पीड्यते।
अर गच्छेति चाप्येनं कुरुते ज्ञानमोहितः।२६
जानन्नपीह संसारे भ्रमते घटियन्त्रवत्।
सर्वयोनिषु दुखार्तः स्थावरेषु चरेषु च।७
एवं योनिषु सर्वासु प्रतिक्रम्य भ्रमेण तु।
कालांतरवशाद्याति मानुष्यमतिदुर्लभम्।२८

काष्ठावस्था,मृतावस्था और हरितावस्था ये तीन अवस्थायें कहीं गयी हैं। ये अनेक तरह की उपलब्धियाँ और समस्त पापों को नाश करने वाली

होती है ।२२। नारी-शय्या-पान-वस्त्र-धूप-लेपन और ताम्बूल भक्षण-ये पाँच राजैश्वर्य विभूतियाँ होती है ।२३। हेम भार-ताम्र-गृह-रत्न-धेनु वेद-शास्त्रोक पाडित्य-गीत-नृत्य-आभूषण-शंख-वीणा-मृदंग-गजेन्द्र-छत्र-चामर ये सब उपादान भोगत्व रूप हैं। इनमें आरक्त हुआ मानव अनुराग को प्राप्त हो जाया करता है ।२४-२५। हे मुनिवर ! जो संसार प्राणी हैं वे दर्पण के तुल्य तथा तेल के तिलों की भाँति पेरे जाते हैं। भ्रमण को प्राप्त होकर इनको ज्ञान से मोहित करता है ।२६। सब कुछ ज्ञान रखता हुआ भी इस संसार में घड़ी के यन्त्र के समान भ्रमण किया करता है और स्थावर एवं चर स्वरूप समस्त योनिगों में परम दुःखित होकर विचरण करता रहता है ।२७। इस तरह समस्त योनियों में पर्यटन करके कालान्तर में जाकर कहीं उसे यह मनुष्य योनि प्राप्त हुआ करती है। यह मानव-जन्म का प्राप्त करना अत्यन्त दुर्लभ होता है ।२८।

व्युत्क्रमेणापि मानुष्यं प्राप्यते पुण्यगौरवात् ।
विचित्रा गतयः प्रोक्ताः कर्मणां गुरुलाघवात् ।२९
मानुष्यं च समासाद्य स्वर्गमोक्षप्रसाधनम् ।
न चरत्यामनः श्रेयः स मृतः शोचते चिरम् ।३०
देवासुराणां सर्वेषां मानुष्य चातिदुर्लभम् ।
तत्संप्राप्य तथा कुर्यान्न गच्छेन्नरकं यथा ।३१
स्वर्गाग्वगलाभाय यदि नास्ति समुद्यमः ।
दुर्लभं प्राप्य मानुष्यं वृथा तज्जन्म कीर्तितम् ।३२
सर्वस्य मूलं मानुष्यं चतुवर्गस्य कीर्तितम् ।
संप्राप्य धर्मतो व्यास तद्यत्नादनुपालयेत् ।३३
धर्ममूलं हि मानुष्यं लब्ध्वा सर्वाथसाधकम् ।
यदि लाभाय यत्नः स्यान्मूलं रक्षोत्स्वय ततः ।३४
मानुष्येऽपि च विप्रत्व यः प्राप्य खलु दुर्लभम् ।
नाचरत्यात्मनः श्रेयः कोऽन्यस्तमादचेतनः ।३५

व्युत्क्रम से भी पुण्य की गुरुता से यह मानव-जन्म प्राप्त किया जाता

है । कर्मों के बड़े होने तथा छोटेपन की अत्यन्त अद्भुत गति बतलाई गई है ।२६। जो जीवात्मा स्वर्ग प्राप्ति तथा मोक्ष के साधक इस अत्यन्त दुर्लभ मानव शरीर में जन्म पाकर भी अपने कल्याणकारक कर्म नहीं किया करता है वह मृत्यु के पश्चात् बहुत समय तक शोक एवं चिन्ता में डूबा रहता है ।३०। समस्त देवगण और असुरों में भी यह मनुष्य शरीर का जन्म पर दुर्लभ होता है । इस मानव शरीर को सौभाग्य से प्राप्त करके ऐसा ही करना चाहिये जिससे नरकों में गमन न करना पड़े ।३१। यदि इस परम दुर्लभ मनुष्य के जन्म का लाभ प्राप्त करके भी स्वर्ग तथा अपवर्ग कीप्राप्ति के लिए कुछ उद्यम नहीं किया जावे तो यह मानव-जन्म ही व्यर्थ समझना चाहिए ।३२। हे व्यासजी ! समस्त धर्म-अर्थ, काम और मोक्ष का आदि कारण मनुष्य योनि में जन्म ग्रहण करना ही बतलाया गया है । इसलिये इसे प्राप्त करके अवश्य ही धार्मिक-पद्धति से यत्नपूर्वक इसका यथोचित उपयोग करते हुए पालन करना चाहिए ।३३। यदि समस्त पदार्थों के साधन स्वरूप एवं धर्म के पालक तथा मलभूत मनुष्य के जन्म को प्राप्त कर अपने लाभ के लिए यत्न किया जावे तो स्वयं मूल की रक्षा हो जावे ।३४। इस मानव जन्म में भी ब्राह्मण का शरीर प्राप्त करना महान् दुर्लभ होता है । इसे पाकर भी जो अपने कल्याण कारक कर्म नहीं किया करता है उससे अधिक मूढ़ एवं जड़ और कौन होगा ।३५।

दीनानामेव सर्वेषां कर्मभूरियममुच्यते ।
इतः स्वर्गश्च मोक्षश्च प्राप्यते समुपार्जितः ।३६
देशेऽस्मिन्भारते वर्षं प्राप्य मानुष्यमध्रुवम् ।
न कुर्यादात्मनः श्रेयस्तेनात्मा खलु वाचतः ।३७
कर्मभूमिरिय बिप्र फलभूमिरसौ स्मृतः ।
इह यत्क्रियते कम स्वर्गं तदनुभुज्यते ।३८
यावत्स्वास्थ्य शरीरस्य तावद्धर्मं समाचरेत् ।
अस्वस्थश्चादितोऽप्यत्थेनं किंचित्कर्तुमुत्सहेत् ।३९
अध्रुवेण शरीरेण ध्रुव यो न प्रसाधनेत् ।
ध्रुव तस्य परिभ्रष्टमध्रुव नष्टमेव च ।४०

आयुषः खंडखंडानि निपतंति तदग्रतः ।
अहोनात्रोपदेशेन किमर्थं नावबुध्यते ।४१
यदा न ज्ञायते मृत्युः कदा कस्य भविष्यति ।
आकस्मिके हि मरणे धृतिं विंदति कस्थता ।४२

समस्त द्वीपों में इस भूमि को कर्म करने का क्षेत्र बतलाया गया है। यहाँ पर स्वर्ग और मोक्ष का अर्जन किया जाता है।३६। इस भारतवर्ष में इस अति अस्थिर मानव शरीर को प्राप्त कर यदि अपना कल्याण नहीं किया जाता है तो यही करना चाहिए कि निश्चित रूप से उसने अपनी आत्मा को वञ्चित किया है।३७। हे विप्र ! यह कर्म भूमि बतलाई गई है और यही फल भूमि भी बताई गई है। यहाँ पर जो सत्कर्म किया जाता है वह स्वर्ग में जाकर भोगा जाया करता है ।३८। जब तक यह सत्कर्म का साधन भूत शरीर स्वस्थता प्राप्ति किये हुये रहे तभी तक धर्म के कृत्य करे, क्योंकि स्वस्थता के अभाव में औरों की प्रेरणा प्राप्त करते हुये भी फिर कुछ भी नहीं कर सकता है और अवस्था शरीर में कोई भी उत्साह शेष नहीं रहा करता है ।३६। जो मनुष्य इस अनिश्चित क्षण भंगुर शरीर के द्वारा परम स्थिर एवं निश्चल धर्म की सिद्धि नहीं करता है उसका ध्रुव धर्म तो नष्ट हो ही जाता है और अध्रुव यह शरीर है वह तो निश्चय ही नष्ट होने वाला होता ही है ।४०। इस मानव शरीर की आयु के खण्ड २ होकर यों ही उसके आगे नष्ट होते चले जाते हैं। दिन और रात सदा उपदेश दे रहे है फिर भी नहीं जगते है ।४१। जबकि यह नहीं ज्ञात रहता है कि कब किसीकी मृत्यु होती हैं फिर अचानक मृत्यु हो जाने पर कौन ऐश्वर्य की खोज करता हैं ।४२।

परित्यज्य यदा सर्वमेकाकी यास्यति ध्रुवम् ।
न ददाति कदा कस्मात्पाथेयाथमिदं धनम् ।४३
गृहीतदानपाथेयः सुख याति यमालयम् ।
अन्यथा क्लिश्यते जंतुः पाथेयरहिते पथि ।४४
येषां कालेय पुण्य नि परिपूर्णानि सर्वतः ।

गच्छतां स्वर्गदेश हि तेषां लाभ. पदे पदे ।४५

इति ज्ञात्वा नर पुण्यं कुर्यात्पाप विवर्जयेत् ।
पुण्यन याति देवत्वमपुण्यो नरक व्रजेत् ।४६

ये मनासपि देवेश प्रपन्नां शरणं शिवम् ।
तेऽपि घोरं न पश्यति यम न नरक तथा ।४७

किंतु पापैर्महामोहैः किंचित्काल शिवाज्ञया ।
वसति तत्र मानुष्यास्ततो यान्ति शिवास्पदम् ।४८

ये पुनः सर्वभावेन प्रतिपत्राः महेश्वरम् ।
न त लिम्पन्ति पापेन पद्मपत्र मिवाम्भसा ।४९

मृत्यु के प्राप्त होने पर प्राणी अपने समस्त धनादि वैभव को यहीं त्याग करके अकेला निश्चय ही चला जायेगा तो फिर मार्ग में अपने पाथेय के लिये धनका दान क्यों नहीं करता है ।४३। जिस प्राणीने दानरूपी चवेना अपने साथ बाँध लिया है वह सुखपूर्वक यमलोक की यात्राकिया करता है । अन्यथा यह दान पुण्यके बिना यमलोक की यात्रा में बहुत दुःख होता है ।४४। हे व्यास देव ! जिन पुरुषों के पुण्यम भीओरसे परिपूर्ण है स्वर्गलोग में जाने वाले उन प्राणियों को पद-पद में लाभ होता है ।४५। यही समझकर मनुष्य को सर्वदा पुण्य कार्य अवश्य ही करने चाहिए । मानव को पाप कभी नहीं करने चाहिए । पुण्य से ही देवत्वकी प्राप्ति होती है और पाप कर्मोंसे नरक की प्राप्ति हुआ करती है ।४६। जो मनुष्य किसी भी प्रकार से भगवान् शिव की शरण में प्राप्तहो,,जाते है वे फिर कभीभी यमराजको तथा उसके द्वारा दिये जाने वाले नरक को नहीं देखते हैं ।४७। पापोंसे और महामोह के कारण थोड़े से समय के लिये शिवकी आज्ञा से नरक में निवास किया करते हैं और इसके पश्चात् वे शिव लोक की प्राप्ति किया करते हैं ।४८। जो अपने सम्पूर्ण भाव से भगवान् शिव को प्राप्त किया करते हैं,वे जलसे कमल की भाँति अर्थात् कमल पत्रके,समान पापोंसे लिप्त नहीं होते हैं।४९।

उक्तं शिवेति यैर्नाम तथा हरहरेति च ।
न तेषाँ नरकाद् भीतिर्यमाद्धि मुनिसत्तम ।५०

परलोकस्य पाथेय मोक्षोपायमनामयम् ।
पुण्यसंघैकनिलयं शिव इत्यक्षरद्वयम् ।५१
शिवनामैव संसारमहारोगैकशमनम् ।
नान्यत्संसार रोगस्य शामकं दृश्यते मया ।५२
ब्रह्महत्यासहस्राणि पुरा कृत्वा तु पुल्कशः ।
शिवेति नाम विमल श्रुत्वा मोक्ष गतः पुरा ।५३
तस्माद्विवर्द्धयेद् भक्तिमीश्वरे सततबुधः ।
शिवभक्त्या महाप्राज्ञ भुक्ति मुक्ति च विंदति ।५४

जिन्होंने कभी भी अपने मुख से भगवान् शिव का नाम या 'हर-हर' ऐना कहा है, हे मुनिसत्तम ! उनको नरकों का और यमराज का कुछ भी भय नहीं रहता है ।५०। परलोक का चबेना और निरामय मोक्ष का उपाय पुण्य समुदाय का एकमात्र स्थान 'शिव' ये महेश्वर नाम के दो अक्षर ही होते हैं—ऐसा शास्त्र बताते हैं ।५१। यह भगवान् शिव का परम पावन नाम ही संसार के समस्त महा रोगो को शान्त करने का एकमात्र उपाय है । इसके अतिरिक्त संसार के महारोगों के शमन करने वाला अन्य कोई भी उपाय नहीं देखा जाता है ।५२। प्राचीन समय में सहस्त्रों की संख्या में ब्रह्महत्या जैसा पाप करने वाले लोगों ते 'शिव-शिव-यह निर्मलनाम का श्रवण करके मोक्षपद की प्रातिकी है ।५३। हे महाराज ! इसलिये विद्वान् ध्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह निरन्तर शिव की भक्ति को हृदय में बढ़ावे । शिव भक्ति से मुक्ति और मुक्ति दोनों की प्राप्ति होती है ।५४।

।। मृत्यु काल का ज्ञान ।।

भगवन्स्त्वप्रसादेन ज्ञातं मे सकल मतम् ।
यथाचैन तु तो देव यो मन्त्रश्च तथाविधि ।१
अद्यापि संशयस्त्वेकः कालचक्र प्रति प्रभो ।
मृत्युचिन्हं यथा देव किं प्रमाणं तथायुषः ।२
सर्वं कथय मे नाथ यद्यह वल्लभा ।
इति पृष्ठस्तथा देव्या प्रत्युवाच महेश्वरः ।३

सत्यं ते कथयिष्यामि शास्त्रं सर्वोत्तमं प्रिये।
थे न शास्त्रेण देवेशिनरैः कालः प्रबुध्यते।४
अहः पक्ष तथा मासमृतुं चायनवत्सरौ।
स्थूलसूक्ष्मगतैश्चिह्नै बाह्रंतगंतैस्तथा।५
तत्तेऽहः सम्प्रवक्ष्यामि शृणू तत्वेन सुन्दरि।
लोकानामुपकारार्थं वैराग्यार्थमुमेऽधुना।६
अकस्मात्पांडुर देहमूर्ध्वराग समंततः।
तदा मृत्युं विजानीयात्षण्मासाभ्यन्तरे प्रिये।७

पार्वतीजी ने कहा—हे भगवन् ! आपकी कृपा से मैंने सब ज्ञान प्राप्त कर लिया है। हे देव ! यन्त्रों से तथा मन्त्रों से जिस तरह विधिके सहित आपका अर्चन किया जाता है वह अब कृपा करके मुझे बतलाइये।१। हे प्रभो ! हे देव ! इस काल चक्र के विषयमें मुझे अभी तक संशय होता है। मृत्यु का चिन्ह और आयु का प्रमाण जिस तरह होता है वह मुझे बताने की कृपा करें।२। हे स्वामिन ! यदि आप मुझ पर अपनी परम प्रिया समझ कर प्यार करते हैं तो मु सब बातें बताइये। इस रीति से देवी के द्वारा कहे जाने पर शिवजी ने कहना प्रारम्भ किया।३। शिवजी ने कहा–हे प्रिये ! हे देवशि ! मैं अब तुमको उस परम सत्य शास्त्र का वर्णन करता हूँ जिसके द्वारा मनुष्यों के काल का ज्ञान हो जाता है।४। जिस तरह मृत्यु के चिन्हों का ज्ञान होता है वे चिन्ह दिन, पक्ष, मास ऋतु,अयन और वत्सर आदि होते हैं। ये बाहरी तथा भीतरी स्थूल तथा सूक्ष्म हुआ करते हैं।५। हे सुन्दरी ! हे पार्वती ! मैं ये सभी लोकों के उपकार तथा वैराग्य के लिये तुम्हें बतलाता हूं सो तुम भली-भाँति श्रवण करो।६। हे प्रिये ! यदि अकस्मातही चारों ओरसे पीत वर्ण वाला शरीर ऊपर से लाल होजावे तो छः महीने के अन्दर मृत्यु जान लेनी चाहिये।७।

मुख कर्णौ तथा चक्षुर्निह्लास्तम्भो यदा भवेत्।
तदा मृत्युं विजानीत्यात्षण्मासाभ्यन्तरे प्रिये।८
रोरवानुगतं भद्रे ध्यनिं नाकर्णयेद्द्रुतम्।
षण्मासाभ्यन्तरे मृत्युर्जातव्यः क लवेविभिः।६

रविसो माग्नि संयोगाद्यदोर्द्योतं न पश्यति ।
कृष्णं सर्व समस्त च षण्मासं जीवित तथा ।१०
वामहस्ता यदा देवि सप्ताहं स्पंदते प्रिये ।
जीवितं तु तदा तस्य मासमेक न शंशय ।११
उन्मोलयंति गात्राणि तालुकं शुष्यते ददा ।
जीवितं तु तदा तस्य मासमेक न संशयः ।१२
नासा तु स्रवते यस्य त्रिदोषे पक्षजीवितम् ।
वक्त्रं कठ च शुष्तेत षण्मासांते गतायुषः ।१३
स्थूलजिह्वा भवेद्यस्य द्विजाः क्लिद्यन्ति भामिनि ।
षण्मासाज्जायते मृत्युश्चिन्हेस्तैरुपक्षयत् ।१४

हे प्रिये ! जिस समय मुख,कान,आँख,और जिह्वाका स्तम्भ हो जावे तो उस समय भी यह समझ लेना चाहिये कि छः मास के भीतर मृत्यु हो जायगी ।८।हेभद्रे ! यदि कोई व्यक्ति मनुष्योंके समुद्रदाय के द्वारा की गई ध्वनिको शीघ्रता से सुनने में असमर्थ होतो सालके ज्ञाताओंको छः मासके अन्दर उसकी मृत्यु जानलेनी चाहिये।९।जो कोई सूरज चाँद और अग्निके संयोगसे होने वाले प्रकाश को न देख पावे और सभी वस्तु काले बर्ण की दिखाईदे तो उसके जीवन के केवल छैमासही शेष समझ लेने चाहिए।१०। हे प्रिये ! हे देवि ! जो किसीका बामहस्त बराबर एकसप्ताहतक फड़कता रहे तो उस व्यक्ति का जीवन काल केवल एक मासका ही होता हैं, इसमें कुछभी सन्देह नहीं है ।११। जब शरीरके सभीअवयवोंमें टूटनसी होवेऔर तालु बराबर सूखतारहे तो समझलेना चाहियेकि उसप्राणी का जीवनकाल एकमासही शेष रह गया है इसमें तनिक भी संशय नहीं है ।१२। वातपित्त कफ इन तीनोंके दूषित होने वाले त्रिदोष रोगमेंजिस प्राणीकी नाक बहती हो तो एकपक्ष उसका शेष जीवन कालहोता है और यदि मुख तथा गला सूखतारहता है छैमास की शेष आयु समझ लेनी चाहिये ।१३। हे भामिनी हे द्विजगण ! जिस मनुष्य की जीभ स्थल होजावे और दाँत एकसाथ कींट की प्राप्त हो जावे छैमास की शे। आयु रहती है ।१४।

अंबुतैलघृतस्थं तु दर्पणे वपर्वणिनि।
न पश्यति यदात्मानं विकृतं पलमेव च।१५
षण्मासायुः स विज्ञेयः कालचक्रं विजानता।
अन्यच्च श्रृणु देवेशि येन मृत्युर्विशुद्ध्यते।१६
शिरोहीनाँ यदा छायाँ स्वकीय भुपलक्षयेत्।
अथवा छायया हीनो मासमेकं न जीविति।१७
आङ्गिकानि मयोक्तानि मृत्युचिन्हानि पार्वति।
बाह्यस्थानि प्रुवे भद्रे चिन्हानि श्रृणु साँप्रतम्।१८
रश्मिहीनं यदा देवि भवेत्सोमार्कमण्डलम्।
दृश्यते पाटलाकार मासार्द्धेन विपद्यते।१९
शरुंधती महायादमिदुं लक्षणवर्जितम्।
अदृष्टतारको योऽसौ मासमेकं स जीवति।२०
दृष्टे ग्रहे च दिङ्मोहः षण्डमासाज्जायते ध्रुवम्।
उतथ्य न ध्रुवं पश्येद्यदि वा रविमण्डलम्।२१
रात्रौ धनुर्यदा पश्येन्मध्यान्हे चोल्कपातनम्।
वेष्ट्यते ग्रध्रकाकैश्च षण्डमासायुर्न संशयः।२२

जिस आदमी को जल, तेल और घृतमें अथवा निर्मल दर्पणमें अपना मुख न दिखाई दे किम्वा उसको अपनी शकल विकृत रूप में दिखलाई देवे तो काल-चक्रके ज्ञाता पुरुषको ऐसे व्यक्ति की आयु सिर्फ छैमासकी हीबता देनीचाहिये। हे देवि! मैं अब इनकेअतिरिक्त अन्यभी मौतहोजानेके लक्षण या चिह्न तुम्हें बताता हूँ उन्हें सुनो।१५-१६ जिस मनुष्यको अपनीछाया बिना शिरके दिखाई देवे किम्वा उसे अपनी परछाँई बिल्कुल दिखलाई हीन देवे तो समझलो कि ऐसा व्यक्ति एक महीना भी जीवित नहीं रहेगा।१७। है गिरिजे ! हे भद्रे यहाँ तक मानव के अङ्गों से सम्बन्धित मृत्यु के चिह्न मैंने बतलाये हैं अब मैं अन्य बाहरीचिह्नभी बतलाता हूँ। उन्हें तुम श्रवण करो।१८। हे देवि ! जिसको सूर्यमण्डल तथा चन्द्रमण्डल बिना किरणोंके लाल आकार वाला दिखलाई देवे तो वह पन्द्रह दिनमें मर जायगा।१९।

जो व्यक्ति अरुन्धती महायान, नागवीथी चन्द्रमा और तारागण को न देख सके वह एकमासही और जीवित रहा करता है ।२०। जिसे ग्रहोंके दिखाई देनेपर भी दिशाओंका भ्रम होजावे तो उसकी छैमासमें मौत आः जाती है यदि उतथ्य अथवा ध्रुव एवं सूर्य-मण्डल को देखने में भी असमर्थ हो और रात्रि में धनुष दिखाई दे या मध्याह्न के समय उल्कापात दृष्टिगता हो एव सिद्ध और काकों से लिपटा दिखाई दे तो वह निस्सन्देह छैमास में अवश्य मर जायेगा ।२१-२२।

ऋषयः स्वर्गपथाश्च दृश्यते नैव चाम्बरे ।
षण्मासायुर्विजातीव त्प्ररुषैः कालवेदिभिः ।२३
अकस्माद्राहुता ग्रस्तं सूर्यं वा सोममेव च ।
दिक्चक्रं भ्राँतवत्पश्येत्षण्मासान्म्रियते स्फुटम् ।२४
नीलाभिर्मक्षिकाभिश्च ह्यकस्माद्वेष्ट्यते पुमान् ।
मासमेक हि तस्यायुर्ज्ञातव्यं परमार्थतः ।२५
मूर्ध्नि काकः कपोतश्च शिरश्चाकम्य तिष्ठति ।
शीघ्र तु म्रियते जतुर्मासैकेन न संशयः ।२६
एव चारष्टभेदस्तु बाह्यस्थः समुदाहृतः ।
मानुषाणां हितार्थाय सक्षेपेण वदाम्यम् ।२७
हस्तयोरुभयोदेवि यथा काल विजानते ।
वामदक्षिणयोर्मध्ये प्रत्यक्षं चेत्युदाहृतम् ।२८

यदि किसी व्यक्तिको स्वर्गके मार्ग वाले ऋषिगण आकाशमें न दिखलाईदेवे तो कालकेज्ञान रखने वालोंको उसकी छः मास की आयु समझलेनी चाहिये ।२३। जो अकेलाही राहुसेग्रस्त चन्द्रमा अथवा सूरजको देखाकरता है या दिकचक्र को भ्रान्तिके साथ देखता है तो निश्चय रूप से ही छः मास में मर जाया करता है ।२४।जिस मानवकाका शरीर अचानकही नीले रग की मक्खियों से व्याप्त हो जाता है वह एक मासकी ही आयु वाला होता है ।१५। जो मनुष्य गिद्ध काक और कबूतरोंके द्वारा आक्रमण करके शिर पर बैठते देखे तो निस्सन्देह उसे समझ लेना चाहिये कि वह एक मास में

अवश्य ही मृत्यु के मुख चला जायगा ।२६। इस रीति से मानवोंके हितार्थ ये बाहरी मौत के चिह्न तुम्हें बतला दिये हैं जब मैं संक्षेप में बतलाता हूँ ।२७। हे देवि जिस तरह वाम और दक्षिणी दोनों हाथों के मध्य में काल प्रत्यक्ष है सो बतला दिया ।२८।

एवं पक्षौ स्थितौ द्वौतु समासात्सुरसुन्दरि ।
शुचिर्भुत्वा स्मरूदेवं सुस्नातः संयतेन्द्रिः ।६
सस्तौ प्रक्षल्य दुग्धेनालक्तकेन विमदयेत् ।
गंधैःपुष्पौ करो कृत्वा मृगयेच्च शुभाशुभेम् ।३०
कनिष्ठामादितःकृत्वा यावदगुष्ठक प्रिये ।
पर्वत्रयकमेणैव हस्तयोरुभयोरपि ।३१
प्रतिपदादि विन्यस्य तिथि प्रतिपदादितः ।
सम्पुटाकारहस्तौ तु पूर्वदिङमुखः संस्थितः ।३१
स्मरेत्रवात्मक मंत्रं यावदष्टोतर शतम् ।
निरीक्षययेत्ततो हस्तौ प्रतिपर्वणि यत्नतेः ।३३
तस्मिन्पणि या देखा दृश्यते भृङ्गसन्निभा ।
तत्तियौ हि मृतिज्ञेया कृष्णे शुक्ले तथा प्रिये ।३४
अधुना नादजं वक्ष्ये सक्षेरात्काललक्षणम् ।
गमागम विदित्वा तु कर्म चुर्याच्छ्रण प्रिये ।३५

हे सुरसुन्दरि ! इसतरह जब दोनोंही पक्ष स्थित हों उस समय पवित्र होकर भगवान्‌शिवका स्मरणकरता हुआ अच्छी तरह स्नान कर जिनेन्द्रिय होवे ।२६। उस समय हाथ धोकर दूध अथवा अलक्तसे केशों को मले तथा गन्ध और फूलोंसे हाथोंको भरकर शुभ और अशुभ चिन्तन करना चाहिये ।२० हे प्रिये! अपनी कनिष्ठिकाअगुलीसे लेकर अंगुष्ठतक अपने दोनोंहाथों में तीन पर्वके क्रमसे प्रतिपदा आदि तिथियोंकी गणना करके पूर्व दिशाकी ओर मुखकरलेवे और सम्पुटाकार हाथोंसे एकसौ आठबार नौअक्षर वाला मन्त्रका जाप करे ओर प्रत्येक पर्वमें यत्नके सहित हाथोंको देखे ।३१-३२। ।३३।जिस पर्वमें भ्रमरके तुल्य वहरेखा दिखाई देदे,कृष्ण पक्षहो या शुकल

पक्ष हो, हे देवि ! उसही तिथि में उसकी मौत समझ लेनी चाहिये ।३४।
हे प्रिय ! नाद के द्वारा प्रकट हो जाने वाले काल चक्र का वर्णन करता हूँ जोकि अति संक्षिप्त ही होगा । उसकी श्रवण करो । गमन और आगमन का ज्ञान करके ही कर्म करना चाहिये ।३५।

आत्मविज्ञानं सुश्रोणि चारं ज्ञात्वा तु यत्नतः ।
क्षणं त्रुटिर्लवं चैव निमेष काष्ठकालिकम् ।३६
मुहूर्तकं त्वहोरात्रं पक्षमासर्तु वत्सरम् ।
अब्द युगं तथा कल्पं महाकल्प तथैव च ।३७
एवं स हरते कालः परिपाट्या सदाशिवः ।
वामदक्षिणमध्ये तु पथि त्रयमिदं स्मृतम् ।३८
दिनादि पञ्च चारभ्य पञ्चविंशद्दिनावधिः ।
वामाचारगतौ नादः प्रमाण कथितं तव ।६
भूररंध्रं दिशश्चैवः स्वजश्च वरवर्णिनि ।
वामचारगतो नादः प्रमाणं कालवेदिनः ।४
ऋतोर्विकारभूताश्च गुणास्तत्रैव भामिनि ।
प्रमाण दक्षिणं प्रोक्तं ज्ञातव्य द्राणवेदिभिः ।४१
भूतसंख्या यदा प्राणान्वहते च इडादयः ।
वषस्याभ्यंतरे तस्य जीवितं हि न संशयः ।४२

हे सुश्रोणि ! आत्म विज्ञान को चार तरह के यत्न से जानना चाहिए अर्थात् क्षण त्रुटि लव,निमेष और काष्ठकालिका । मुहूर्त्त ,दिनरात,पक्ष,मास ऋतु, वत्सर,अब्द,युग,कल्प और महाकल्प यह परिपाटी है ३६-३७ इसी उपर्युक्त परिपाटीसे सदाशिव कालहरण कियाकरते हैं । वाम ओर दक्षिण के मध्य में तीन मार्ग बतलाये गये हैं ।३८। पाँच दिन से आरम्भ करके पच्चीसदिन पर्यन्त वामाचारगतिमें नाद होता है । यह नादका प्रमाण मैंने तुमको बतला दिया है ।३६।हे परमसुन्दर वर्ण वाली ! कालके वेत्ता पुरुष को वामचारगतिमें भूत,रन्ध्र,दिशा और ध्वजारूप नादजान लेना चाहिए ।१०। हे भामिनि ! यदि उसमें ऋतु के विकार वाले गुण प्रतीत होते

होतो इसे प्रमाणके ज्ञान रखने वालोंके द्वारा दक्षिण प्रमाणवाला नादकहा गया है ।४१। जिससमय भूत सम्यक इडाआदि नाड़ी प्राणों का वहनकिया करती है तो एकवर्षके अन्दरही उसकी मृत्यु होजाया करती है,उसमें कुछ भी संशय नहीं होता है ।४२।

दशघस्रप्रवाहेण ह्यब्दमानं स जीवति ।
पञ्चदसत्रावाहेण ह्यब्दमेकं गतायुषम् ।४३
त्रिशद्दिनप्रवाहेण षण्मास लक्षयेत्तदा ।
पञ्चत्रिशद्दिनमितं वहते वामनाडिका ।४४
जीवितं तु तदा तस्य त्रिमास हि गत युषः ।
षड्विशद्दितमानेन मासद्वयमुदाहृतम् ।४५
सप्तविशद्दितमितं वहते त्यत्वविश्रमा ।
मासमेकं समाख्यात जीवितं वामगोचरे ।४६
एतत्प्रमाणं विज्ञेयं वामवायुप्रमाणतः ।
सव्येतरे दिनान्येव चत्वारश्चानुपूर्वशः ।४७
चतुःस्थाने स्थिता देवि षोडशैताः प्रकीर्ति ।ः ।
तेषाँ प्रमाण यक्ष्यामि सांप्रत हि यथार्थत ।४८
षड्दिनान्यादितः कृष्वा संख्यायाश्चर थाविधि ।
एतदन्तर्गते चैव वामरंध्रे प्रकाशितम् ।४६

दश दिन पर्यन्त बराबर चलते रहने से वह वर्षभर तक जीवित रहा करता हैं और पन्द्रहदिनतक चलनेसे एकवर्षकी उसकी शेषआयु जान लेनी चाहिए ।४३। बीसदिनकेप्रवाहसे छःमासकी आयुही शेष समझनी चाहिए । यदि वामननाड़ी पच्चीसदिन तक वहनकरती है तो तीनमास और छब्बीस दिनके मानस दो मास शेष आयु रहती है ।४४-४५। और यदि वाम भाग से अविश्रान्त रूपसे सत्ताईस दिन तक नाड़ी चलतीरहे तो एकमासका ही शेष जीवन होता है ।४६। इसी रीति से वाम वायु के प्रमाण से नाद का प्रमाण समझ लेना उचित हैं तथा दाहिनी ओर के क्रम से चारदिन तकही जीवन समझे ।४७। हे देवि ! चारस्थाननोंमें नाडीस्थित हुआ करती है इस

तरह वे सभी सोलह नाड़ियाँ बतलाईगई हैं। अब मैं उन सबका यथातथ्य ठीक प्रमाण बतलाता हूँ।४८। छः दिनसेलेकर विधिके साथ संख्याके अन्तर्गत दिनों में वाम रन्ध्र में प्राण प्रकाशित होता है।४६।

षड्दिनानि यदारूढं द्विवर्षं स च जीवति।
मासानष्टौ विजनीयाद्दिमान्यद्व च तानि तु।५०
प्राणाः सप्तदशे चैव विद्धि वर्षं न संशयः।
सप्तमासान्विजानीयाद्दिनैः षड्भिर्न संशयः।५१
अष्टघस्त्रप्रभेदेन द्विवर्षं हि स जीवति।
चतुर्मासा हि विज्ञेयाश्चतुर्विंशद्दिनावधि।५२
यदा नवदिनं ग्राणा वहंत्येव त्रिमासकम्।
मासद्वयं च द्व मासे दिना द्वादश कीर्तिताः।५३
पूर्ववत्कथिता ये तु कालं तेषां तु पूर्वकम्।
अवांतरदिना ये तु तेन मासेन कथ्यते।५४
एकादशप्रवाहेण वर्षमेकं स जीवति।
मासा नव तथा प्रोक्ता दिरान्यष्टनितान्यपि।५५
द्वादशेन प्रवाहेण वर्षमेकं स जीवति।
मासान् सप्त विजानीय त्पड्घस्त्रांश्चाप्युदाहरेत्।५६

जिस समय छः दिनतक नाद प्राणचढ़ा रहे तो समझ लो वह आदमी दोवर्ष आठमहीने और आठ दिनतक जीवित रहेगा।५०। जो सत्रह दिवस तक प्राण आरूढ़रहे तो वहप्राणी एकवर्ष सातमास, छःदिन तक जिन्दारहा करता है इसमें कुछ भी सन्देह नहीं होता है।५१। यदि आठ दिन बराबर चले तो वह दोवर्ष चारमास और चौबीसदिन तक जीवित रहता है।५२। जबकि नौ दिनतक इसी ओर प्राणवायु चले और पाँचमहीने बारहदिनतक इधरही प्राण चले तो दो मासका जीवनशेष रहाकरता है।५३। जो प्राण पहलेकेतुल्य कहे हैं उनका काल पहिलेकेतुल्य बतायागया है और जोअन्तर्गत दिन बताये है उनसे मास कहेजाते हैं।५४। इधर ग्यारहदिन चलनेपर वह मनुष्य एक [illegible] और आठ दिन तक जिन्दारहा करता है।५५।

बारह दिन तक इधर चलने पर एक वर्ष सात मास छै दिन पर्यन्त जीवित रहना उसको होता है।५६।

नाडी यदा छ वहति त्रयोदशदिनावधि।
सवत्सरं भवेतस्य चतुर्मासाः प्रकीतित।५७
चतुर्विशाद्दिन शेषं जीवित्ति च न संशयः।
प्राणावाहा यदा वामे चतुर्दश दिनानि तु।५८
संवत्सरं भवेत्तस्य मासाः षट् च प्रकीर्तिताः।
चतुर्विशद्दिनान्येव जोवितं च न संशयः।९
पञ्चदशप्रवाहेण चव मासान्स जीविति।
चतुर्विशद्दिनान्येव कथित कालवेदिभिः।६
षोडशाह प्रवाण दशमासांस जीविति।
चतुर्विशदिनाधिक्यं कथितं कालवेदिभिः।६१
सप्तदशप्रवाहेण नवमासैर्गतायुषम्।
अष्टादश दिनान्यत्र कथितं साधकेश्वरि।६२
वामाचारं यदा देवि ह्यष्टादश दिनावधि।
जीवितं चाष्टमास तु घस्रा द्वादस कीर्तिताः।६३

जब तेरह दिनतक इधर ही नाड़ी चलती है तो फिर व्यक्ति की आयु एकवर्ष चारमास और चौबीस दिनकी शेष रहती है। इसमें कुछभी संशय नहीं है जब वाप भाग में चौदह दिन पर्यन्त प्राण वहन किया करते हैं तो उसका जीवन काल एक वर्ष छै मास जो बीस दिन तकका शेष रहता है- इसमें बिल्कुल भी सन्देह नहीं।५७-५८-५९। काल के ज्ञाता लोगों का कथन है कि पन्द्रह जिनके प्रवाहमें मनुष्य नौ मास और चौबीस दिन तक जीवित रहा करता है।६०। सोलह दिन के प्रवाहमें दश मास चौवीस दिन का जीवन काल शेष रहता है ।६०। हे सधकेश्वरि ! सत्रह दिन तक के प्रवाह होनेपर नौमास अट्टारह दिन तक जीवन शेष बताया गया है।६१। हे देवि ! अठारह दिन तक यदि वामाचार होता है तो आठ मास बारह दिन तक जीवन रहता है।६३।

चतुर्विशद्दिनान्यत्र निश्चयेन वधारय ।
प्राणवाहो यदादेवि त्रयोविंशद्दिनावधिः ।६४
चत्वारः कथिता मासा षड् दिनानि तथोत्तरे ।
चतुर्विशप्रवाहेण त्रीन्मामांश्च स जीवति ।६५
दिनान्यत्र दशाष्ठौ च संहरत्येव चारतः ।
अवांतरदिने यस्तु संक्षेपात्ते प्रकीर्तिताः ।६६
वामाचारः समाख्यातो दक्षिणं शृणु सांप्रतम् ।
अष्टविंशप्रवाहेण तिथिमानेन जीवति ।६७
प्रवाहेण दशाहेन तत्संस्थेन विपद्यते ।
त्रिंशद्धस्रप्रवाहेण पञ्चाहेन विपद्यते ।६८
एकत्रिंशद्यदा देवि वहते च निरंतरम् ।
दिनत्रयं तदा तस्य जीवित हि न संशयः ।६९
द्वात्रिंशत्प्राणसंख्य च यदा हि वहते रविः ।
तदा तु जीवितं तस्य द्विदिनं हि संशयः ।७०
दक्षिण कथितः प्राणो मध्यस्थं कथयामि ते ।
एकभागगतो वायुप्रवाहो मुखमण्डले ।७१
धावमानप्रवाहेण दियमेकं स जीवति ।
चक्रमेतत्परासोर्हि पुराविद्भिरुदाहृतम् ।७२
एतत्ते कथितं देवि कालचक्रं गतायुषः ।
लोकानाँ च हितार्थाय किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ।७३

हे देवि ! तेईसदिन पर्यन्त प्राणप्रवाह होता है तो केवल चौबीसदिन तकका ही जीवन शेष रहता है यह निश्चित है ।६४। यहाँ चारमास और छैदिन अधिक बताये गये हैं । चौबीस दिनके प्रवाहमें वह तीन मास और अठारह दिन तक जीवित रहा करता है ।६५।इस रीतिसे प्राणके सञ्चार से अवान्तरके दिनके कालवर्णन तुम्हारे सामने करदिया है ।६५। अब तक वाम सञ्चार का वर्णन किया अब दक्षिण संसार का वर्णन करते है उसका श्रवण करो । यदि अट्ठाईस के प्रवाह से दक्षिण सचार होताहै तोवहव्यक्ति

पन्द्रह दिन तक जीवित रहा करता है ।६७। दश दिन के प्रवाह में दश ही दिनमें और तीसदिनके प्रवाहमें पाँच दिनमें मृत्युको प्राप्त होजाया करतेहैं ।६८। हे देवि ! जिस समय इक्कत्तीस दिनतक प्राण चलाते हैं तो निश्चयही तीनदिनतक उसका जीवन शेष रहा है ।६९। जब सूर्य वत्तीस की संख्याम वहनकिया करता है तो उसकाजीवन निस्सन्देह दोदिन शेषरहता है ।७०। अबतक दक्षिण प्राणके संचार का वर्णन किया था अब आगे मध्यस्थ प्राण के विषयमें वर्णन किया जाता है जबकि वायुका प्रवाह एक भाग से मुखमें छोड़ते हुए प्रवाहसे रहता है तो वह व्यक्ति केवल एकही दिन जीवित रहा करता है । पूर्व वेत्ताओं ने इसी प्रकार का कालचक्र बताया । ७१-७२ । हे देवि ! आयुके गतहोजाने वाले पुरुषोंका इस तरहका काल-चक्र लोकोसे कल्याण के लिए ही वर्णित किया गया है इसके आगे अन्य जो कुछ तुम सुनना चाहती हो सो मुझ बतलाओ ।७३।

ज्ञान किया, भक्तीयोग तथा नवारत्रिकी श्रेष्ठता का वर्णन

व्यासशिष्य महाभाग सूत पौराणिकोत्तम ।
अपरं श्रोतुमिच्छामः किमप्याख्यानमीशितुः ।१
उमाया जगदम्बायाः क्रियायोगमनुत्तमम् ।
प्रोक्तं सनत्कुमारेण व्यासाय च महात्मने ।२
धन्या यूय महात्मानो देवीभक्तिदृढव्रताः ।
पराशक्तेः परं गुप्तं रहस्य शृणुतावरात् ।३
सनत्कुमार सर्वज्ञ ब्रह्मपुत्र महामते ।
उमायाः श्रोतुमिच्छामि क्रियायोग महाद्भुतम् ।४
कीदृक्च लक्षणं तस्य किं कृते च फलं भवेत् ।
प्रिय यच्च पराम्बायास्तदशेष वदस्व मे ।५
द्वैपायन यदेतत्वं रहस्यं परिपृच्छसि ।
तच्छृणुष्व महाबुद्धे सर्वं म सर्वं वर्णयिष्यतः ।६
ज्ञानयोगः क्रियायोगो भक्तियोगस्तथैव च ।
त्रयो मार्गाः समाख्याताः श्रीमातुर्भुक्तिमुक्तिदाः ।७

मुनिगण ने कहा—हे व्यासजीके शिष्य ! हे महाभाग ! हे पौराणिकोत्तम हेसूतजी ! अब हमारी इच्छा शिवजीके और इतिहास के सुनने की होती है ।१। सनत्कुमारजीने जगजज्जनी पार्वतीजीका परम श्रेष्ठ क्रिया-योग व्यासजीसे कहा था । हम अब आपके मुखसे उसे ही श्रवण करने की इच्छा रखते हैं ।२। सूतजी ने कहा तुम सब लोग पूरे महात्मा एवं परम धन्यहो तथा देवीकी दृढ़भक्ति करनेमें भी दृढव्रतहो । अब मैं आपके समक्ष में पराशक्तिके अत्तन्त गुप्तरहस्यका वर्णन करता हूँ। आपलोग आदरपूर्वक सुनें ।३। व्यासजी ने कहा—हे सनत्कुमार ! हे सर्वज्ञ ! हे ब्रह्मपुत्र ! हे महामते ! मैं पार्वतीके परम सुन्दर क्रिया योगके सुनने का इच्छुक हूँ ।४। आपकृपाकरके मुझे यह बतानेकी उदारता अवश्यकरेंकि उसका क्यालक्षण है ईव उसके करनेसे क्या फलहोता है ? जोकि पराम्बाको अत्यन्तप्रिय है ।५। सनत्कुमारजी ने कहा हे व्यासजी ! हे महाबुद्धे ! आप जिस तरह के विषय में पूछ रहे है मैं अब उसे पूर्ण रूप से वर्णनकरता हूँ सो सब श्रवण करो ।६। जगदम्बा श्रीमाता के भुक्ति और मुक्ति प्रदाद करने वाले ज्ञान योग, क्रिया-योग और भक्ति योग के तीन मार्ग होते हैं ।७।

ज्ञानयोगस्तु संयोगश्चित्तस्यैवात्मना तु यः ।
यस्तु वाह्यार्थसयोगः क्रियायोगः स उच्यते ।८
भक्तियोगो यतो देव्या आत्मनश्चैक्य भावनम् ।
त्रयाणामपि योगानां क्रियायोगः स उच्यते ।९
कर्मणा जायते भक्तिर्भक्त्या ज्ञान प्रयायते ।
ज्ञानात्प्रजायते मुक्तिरित शास्त्रेषु निश्चयः ।१०
प्रधानं कारण यागो विमुक्तेर्मुनिसत्तम ।
क्रियायोगस्तु योगस्य परमं ध्येयसाधनम् ।११
मायां तु द्रकृति विद्यान्मायावि ब्रह्म शश्वतम् ।
अभिन्नं तद्वपुर्ज्ञात्वा मुच्यते भवबन्धनात् ।१२
यस्तु देव्यालय कुर्यात्पाषाणं दारवं तथा ।
मृन्मय वाथ कालेय तस्य पुन्यफलं शृणु ।
अहन्यहनि योगेन यजतो यन्महाफलम् ।१३

प्राप्नोति तत्फलं देव्या यः कारयति मन्दिरम् ।
सहस्त्रकुलमागामि व्यतीतं च सहस्त्रकम् ।
स तारयति धर्मात्मा श्रीमातुर्धामा कारयन् ।४

मानवके चित्तका आत्माकेसाथ जो संयोग हो जाता है यही ज्ञान योग के नामसे कहा जाता है । जिसमें बाहरी अर्थोंका सयोग है वह क्रिया योग कहागया है ।५६। भगवतीदेवी और आत्माका एक होजाना ही भक्ति योग के नामसे विख्यात है । इन तीनों योगों को क्रियाभोग कहते हैं।६। कम से ही भक्तिका उदय होता है और भक्ति से ज्ञान उत्पन्न होता है तथा ज्ञानसे मुक्तिकी प्राप्ति हुआ करती है—ऐसाही शास्त्रकरोंने निश्चय किया है।१०। हे मुनिवर ! योगही मुक्तिका प्रमुख कारण होता है और क्रियायोग, योग का परमध्येय साधन होता है।११। प्रकृति को में योजानकर और सनातन ब्रह्म को में यात्री समझकर तथा इन दोनों के अभिन्न शरीरका ज्ञानप्राप्त करके मनुष्य सांसारिक बन्धन से विमुक्त हो जाता है ।१२। हे व्यासजी! जो कोई मनुष्य पाषण — काष्ठ अथवा मिट्टीसे देवीके मन्दिर का निर्माण करायाकरता है उसके पुण्यका महान्फल होता है । प्रतिदिन यजन करनेसे जो पुण्य-फल मिलता है वही इस मन्दिरके निर्माण करानेसे होता है।१३। देवी के मन्दिर के कराने का फल नैत्यिक योग-जनक के ही तुल्य हुआ करता है । श्रीमाता के धामका निर्माता धर्मात्मा पुरुष अपने अतीत और आगामी एक-एक सहस्र कुल को तार दिया करता है ।१४।

कोटिजन्मकृतं पापं स्वल्पं वा यदि वा बहु ।
श्रीमातुर्मन्दिारम्भक्षणादेव प्रणश्यति ।१५
नदीषु च यथा गंगा शोणः सर्वनदेषु च ।
क्षमायां च यथा पृथ्गो गांभीर्य्ये च यथोदधिः ।१६
ग्रहाणां च समस्तानां यथा सूर्यो विशिष्यते ।
तथा सर्वेषु देवेषु श्रीपराऽम्बा बिशिष्यते ।१७
सर्वदेवेषु सा मुख्या यस्तस्यः कारयेद् गृहम् ।
प्रतिष्टां सपवाप्नोति स जन्मनि जन्मनि ।१८

वाराणस्यां कुरुक्षेत्रे प्रयागे पुष्करे तथा ।
गगासमुद्रतीरं च नैमिषेऽमरकष्टके ।१६
श्रीपर्वने महापुण्ये गोकर्णे ज्ञानपर्वते ।
मथुरायामयोध्यां द्वारावत्यां तथैव च ।२०
इत्यादिपुण्यदेशेषु यत्र कुत्र स्थलेऽपि वा ।
कारयन्नातुरावासं मुक्ता भवति बन्धनात् ।२१

करोड़ों जन्म के किये हुए पाप तो माता के मन्दिर के निर्माण का आरम्भ करते ही नष्ट हो जाया करते है । १५ । समस्त नदियों में गङ्गा सम्पूर्ण नदों में शोक, क्षमा में भूमि और गाम्भीर्य में सर्वोत्तम शिरोमणि होता है। इसी प्रकार समस्त ग्रहों में भुवन भास्कर कहा गया है वैसे ही समस्त देवताओं में पराम्बास सभी से मानी गई है। १६-१७। ममस्त देवों में परम प्रधान देवी के धाम का निर्माण कराने वाला प्रत्येक जन्म में प्रतिष्ठा की प्राप्ति किया करता है। १८। वाराणसी, कुरुक्षेत्र, प्रयाग, पुस्कार में तथा गङ्गाया समुद्र तटपर, नैमिषारण्य में अमरकटक में महाहवित्र हर्वत पर, गोकर्ण में ज्ञान पर्वत पर, मथुरा, अध्योया और द्वार का इत्यादि परम पवित्र स्थलों में अथवा अन्य किसी भी समुचित स्थान में जो देवी के मन्दिर का निर्माण कराता है वह मनुष्य निश्चय ही संसार के बन्धनों से विमुक्ति हो जाता है । १६-२१-२२ ।

इष्टकानां त विन्यासो यावद्वर्षाणि तिष्ठति ।
तावद्वर्षसहस्राणि मणिद्वीपे महीयते ।२३
प्रतिमाः कारयेद्यस्तु सर्वलषलक्षिता ।
स उमाया परं लोक निर्भयो व्रजति ध्रुवम् ।
देवीमूर्ति प्रतिष्ठप्य शुभर्तु ग्रहतारके ।
कृतकृत्यो भवेन्मर्त्यो योगमायाप्रसादतः ।२४
ये भविष्यन्ति येऽतीता आकल्पापुरुषाःकुले ।
तांस्तास्तासयते देव्या मूर्ति संस्थाप्य शोभनाम् ।२५
त्रिलोकीस्थापनात्पुण्यं यद् भवेन्मुनिपुंगव ।
तत्कोटिगुंण गुणं श्रीदेवोस्थापनाद् भवेत् ।२६

मध्ये देवी स्थापयित्वा पंचायतनदेवताः ।
चतुर्दिदक्षु स्थापयेद्यस्तस्य पुण्यं न गण्यते ।२७
विष्णोर्नाम्नां कोटिजपाद् ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।
यत्फलं लभ्यते तस्माच्छतकोटिगुणोत्तम् ।२८

मन्दिरकी चुनाई में जो ईट लगीहैं वे जितने वर्ष तकटिकी रहती हैं उतने वर्षों के सहस्र पर्यन्त निर्माता मनुष्य मणिद्वीपमें निवासकिया करता है ।२२। जो सभी सुलक्षणों से सम्पन्न देवी की प्रतिमा निर्माण करता है वह निडर होकर पार्वती के परमलोक की प्राप्ति किया करता है । शुभ ऋतु,ग्रेह,नक्षत्रादि के शुद्ध समय में जो देवी की प्रतिमा को प्रतिष्ठिकरके विरामान करता है वह योगमायाके प्रसाद से कृतकृत्य हो जाता है ।२३। २४। कल्प के आरम्भ से लेकर जो भी वंश में उत्पन्न हुयेथे या भविष्य में भी उत्पन्न होंगे उन सबको देवी का सुन्दर मूर्ति की स्थापना करने वाला पुरुष तार देता है ।२५। हे मुनिश्रेष्ठ ! इस त्रिभुवनके स्थापना करने से जितना पुण्य होता है उससे एककरोड़ गुना पुण्य केवल भगवती देवी का मूर्ति की स्थापना से हुआ करता है । २६ । जो कोई बीच में देवी को स्थापित करके उनके चारों ओर गणेश-गौरी आदि की पचायतन स्वरूप देवताओं की स्थापना किया करता है उसका कोई भी पुण्य नहीं समझा जा सकता है । २३ । चन्द्र तथा सूर्य के ग्रहण के समय में विष्णु के एक करोड़ नाम से जो फल मिलता है उससे सौ कोटि गुना फल प्राप्त होता है ।२८।

शिवनाम्नो जपादेव तस्मात्कोटिगुणोत्तरम् ।
श्रीदेवीनामजापत्तु ततः कोटिगुणोत्तरम् ।२९
देव्याः प्रासादकरणात्पुण्य तु समवाप्यते ।
स्थापिता येन सा देवी जगन्माता त्रीयीमयी ।३०
न तस्य दुर्लभं किंचिन्छोमातः करुणावशात् ।
बर्द्धन्ते पुत्रपौत्राद्या नश्यत्यखिलकश्मलम् ।३१
मनसा ये चिकीर्षन्ति मूर्तिस्थापनभुत्तमम् ।
तेऽप्युमायाः पर लौकं प्रयान्ति मुनिदुर्लभम् ।३२

क्रियमाणं तु यः प्रेक्ष्य केतसा ह्यनुचिन्तयेत् ।
कारयिष्याम्यहं यहि सपन्मे सभाविष्यति ।३३
एवं तस्य कुल सद्यो याति स्वर्ग न संशयः ।
महामायाप्रिभावेण दुर्लभं किं जगत्त्रते ।३४
श्रीपराम्बां लगद्योनिं केवलं ये समाश्रिताः ।
ते मनुष्या न मन्तव्याः साक्षाद् देवीगणाश्च ते ।३५
ये व्रजन्तः स्वपन्तश्च तिष्ठन्तो वाप्यहर्निशम् ।
उमेति द्व्यक्षरं नाम ब्रुवते ते शिवागणाः ।३६

शिव नाम के जपने से जो पुण्य-फल होता है। उसके करोड़ गुना फल श्रीदेवी के नाम के जाप से प्राप्त होता है। १६। तीनों देवताओं के स्वरूप वाली देवी को स्थापित किसी ने किया, उसका प्रसाद बनाने का भी पुण्य मिलता है। जिस पर श्री माता की कृपा हो जावे उसके लिये संसार में कुछ भी दुर्लभ वस्तु नहीं है। देवी के प्रसाद से समस्त पापों का क्षय और पुत्रपोत्रादि की वृद्धि होती है। ३०-३१। जो मन में भी कभी श्री माता की उत्तममूर्त्ति की स्थापना करने की इच्छा रखते हैं वे मुनियों को भी अत्यन्त दुर्लभ पार्वती के लोक की प्राप्ति किया करते है ।१३। जो मनुष्य किसी अन्य के द्वारा विनिर्मित मन्दिर को देखकर अपने चित्त में भी यह विचार करताहै कि अगर मेरे पास धन हो जायगा तो मैं भी देवी का मन्दिर बनवाऊँगा, ऐसे मन के संकल्प से ही उसका समस्त कुल शीघ्र ही स्वर्ग को निस्सन्देह चला जाता है। श्री महामाया का ऐसा प्रभाव है कि उसे तीनों लोक में कुछ भी दुर्लभ नहीं होता है ।३३-३४। जो इस मानव जगत् को उत्पन्न करने वाली श्री पराम्बा भगवती का केवल आश्रय ही ग्रहण करते हैं उनको सामान्य मनुष्य नहीं समझना चाहिये। वे तो साक्षात् भगवती के गण ही होते हैं। ३५। जो मनुष्य रात दिन स्थिति होते हुये सोते-जागते उमा के दो अक्षरों के नाम का उच्चारण करते रहा करते हैं ये शिवा के गण होते हैं ।३६।

नित्ये नैमित्तिके देवीं ये यजन्ति परां शिवाम् ।
पुष्पधूपैस्मथा दीपैस्ते प्रयास्यन्त्युमालयम् ।३७

ये देवीमण्डपं नित्यं गोमयेन मृदाऽथवा ।
उपलिम्पन्ति मार्जन्ति ते प्रयास्यत्न्युमालयम् ।३८
येर्देव्या मन्दिरं रम्यं निर्मापितमनुत्तमम् ।
तत्कुलानाञ्जनान्माता ह्याशिषः संप्रयच्छति ।३९
मदीयाः शतवर्षाणि जीवन्तु प्रेमभाजनाः ।
नापदामयनानीत्थं श्रीमातावक्त्यहर्निशम् ।४०
येन मूर्तिर्महादेव्या उमायाः कारिता शुभा ।
नरायुत तत्कुलज मणिद्वीपे महीयते ।४१
स्थापयित्वा महामायामूर्ति सम्यक्प्रपूज्य च ।
य य प्राथयते काम तं त प्राप्नोति साधकः ।४२

जो नित्य ही तथा नैमित्तिक कर्ममें पुष्प, धूप, दीप से पराश्री शिव का पूजनकिया करते हैं,वे अन्त समयमें पार्वतीके धामको प्राप्त कियाक ते हैं ।३७। जो प्रतिदिन देवीके मन्दिर या मण्डपकी गोमय मिट्टीसे लीपते हैं तथा मण्डपका मार्जनकरते हैं वे पुरुषभी उमा के लोक को प्राप्त होतेहैं ।३८। जिन्होंने माता के परम सुन्दर मन्दिर का निर्माण कराया है, उन कुलीन मनुष्यों को माता भगवती प्रसन्न होकर बहुत:से आशीर्वाद दिया करती है ।३९। भगवती ऐसेभक्तोंकेलिये आशीष देती है किमुखमें अनुराग रखने वाले मेरे भक्त सौ वर्षतक बिना आपत्ति के जीवितरहें ।४०। जिसने जगदम्बाकी शुभमूर्त्तिका निर्माण कराया और उसे स्थापित किया है उसके कुलके मनुष्य दशसहस्र वर्ष तक मणिद्वीपजाकर निवासकियाकरते हैं।४१। भगवती महामाय की प्रतिमाकी स्थापना करके भलीभांति उसका अर्चन किया करते हैं, वेमनमें जो-जो भी कोई मनोरथकरतेहैं उन्हें निश्चित रूप से प्राप्तकिया करते हैं । देवी की मूर्त्तिको ऐसा अद्भुत चमत्कार है।४२।

यः स्नापयति श्रीमातुः स्थापितां मूतिमुत्तमाम् ।
घृतेन मधुनाऽऽक्तेन तत्फलं गणयेत्तु कः ।४३
चन्दनागुरुकर्पूरमांसीमुस्तादियुग्जलैः ।
एक वर्णगवां क्षीरैः स्नापयेत्परमेश्वरीम् ।४४

धूपेनाष्टादशांगेन दद्यादाहुतिमुत्तमाम् ।
नीराजनं चरेद् देव्या साज्यकर्पूरवर्तिभिः ॥४५
कृष्णाष्टम्यां नवम्यां वामायां वा पचदिक्तिथौ ।
पूजयेज्जगतां धात्री गधपुष्पविशेषतः ॥४६
सपठञ्जननीसूक्तं श्रीसूक्तमथवा पठन् ।
देवीसूक्तमथो वाऽपि मूलमन्त्रमथापि वा ॥४७
विष्णुक्रान्तां च तुलसीं वर्जयित्वाऽखिल शुभम् ।
वीप्रातिकर ज्ञेय कमल तु विशेषतः ॥४८
अर्पयेत्स्वर्णपुष्पं यो देव्यै राजतमेव वा ।
स याति परमं धाम सिद्धकोटिभिरन्वितम् ॥४९

जो जगदम्बा भगवती की प्रतिमा की स्थापना कर उसका मधु घृत आदि से स्नान कराता हैं उसका ऐसा महान् फल होता है कि उसे कोई बता नहीं सकता ।४३। भगवती के स्नान का विधान हैं कि चन्दन कर्पूर अगर, जटामांसी, नागरमोथा आदि परम सुगन्धित पदार्थों से समन्वित सलिलसेकिम्बा एकहीरंगवालीगायकेदूधसेपरमेश्वरीका स्नानाभिषेक करना चाहिए ।४४। फिर इसके अनन्तर अठारह वस्तुओं से प्रस्तुत धूपकी आहुतियाँ देनी चाहिए और घृत तथा कपूर की बत्तियों से भगवती जगदम्बा की आरती करनी चाहिए ।४५। कृष्णपक्ष की अष्टमी अथवा नवमी एवं अमावस्या वा पंच दिक्पालों की तिथियोंमें गन्धपुष्पोंसे जगद्धारिणी देवी का विशेषरूपसे पूजन करना चाहिये ।४६। देवीसूक्तअथवा श्रीसूक्तका पाठ करके या देवी के मूलमन्त्र (नवार्ण) का जाप करके विष्णुक्रान्ता या तुलसी दलोको चढ़ाते हुए विशेष रूपसे कमलोंको देवी पर चढ़ा देवें कि ये सब पुष्प देवी को प्रसन्नता के देनेवाले हैं ।४७-४८। जो कोई भक्त देवीकी सेवा से स्वर्ण पुष्प या राजनिर्मित कुसुम समर्पित किया करता है वह करोड़ों सिद्धों के सहित परम धाम को प्राप्त होता है ।४९।

पूजानाते सदा कार्यं दासैरेन क्षमापनम् ।
प्रसीद परमेशानि जगदानन्ददायिनि ॥५०

इति वाक्यैः स्तुवन्मन्त्री देवीभक्तिपरायणः ।
ध्यायेत्कण्ठीरवारूढ़ा वरदाभयपाणिकाम् ।।५१
इत्थ ध्यात्वा महेशानी भक्ताभीष्टफलप्रदाम् ।
नानाफलानि पक्वानि नेवेद्यत्वे प्रकल्पयेत् ।।५२
नैवेद्यं भक्षयेद्यस्तु शंभुशक्तेः परात्मनः ।
स निर्धूयाखिल पङ्क निर्मलो मानवो भवत् ।।५३
चैत्रशुक्लतृतीयायां या भवानीव्रतं चरेत् ।
भवबन्धननिर्मुक्तः प्राप्नुयात्परमं पदम् ।।५४
यस्यामेव तृतीयायां कुर्याद्दोलोत्सवं बुधः ।
पूजयज्जगतां धात्रीमुमां शकरसंयुताम् ।।५५
कुसुमैः कुंकुमैर्वस्त्रैः कर्पूरागुरुचन्दनैः ।
धर्पर्दीपैःद् सनैवेद्यैः स्त्रग्गन्धैरपरैरपि ।।५६

जब पूजनकी समाप्ति हो उस समय देवीके किंकरों को हाथ जोड़कर सर्वदा पापोंका क्षमापन कराना उचित हैकि हे परमेशानि ! हे जगदानन्द-दायिनी ! आप हमपर प्रसन्नहोवें ।५०। मन्त्रोंकेपाठक इस उपर्युक्त वाक्यों के द्वारा देवीका स्तवन करे और परमभक्ति भावमें तत्परहोते हुए मयूरपर समारूढ़ वर प्रदात्री तथा अभय धन देनेवाली भगवती जगदम्बाका ध्यान करना चाहिए ।५१। इस रीतिसे भक्तोंके अभीष्ट फलोंके प्रदान करनेवाली महेश्वरीका ध्यानकर विविधफल तथा नैवेद्य अर्पणकरे ।५२। जो परमेश्वरी जगदम्बाके प्रसाद स्वरूप नैवेद्यको भक्षण करता है वह अपने समस्त पाप रूपी कीचड़को धोकर निर्मल चित्त हो जाता है ।५३। जो कोई चैत्र शुक्ला तृतीयाको भवानीके व्रतकोकरता है वह समस्तसांसारिक बन्धनों से विमुक्ति होकर परमपदका लाभ कियाकरताहै।५४।पार्वतीदेवी उसे अभीष्ट फल दिया करती हैं जो पूर्वोक्त तृतीयाकेदिन देवीका सुन्दर बोलोत्सवकरे और जगत् के धारण करनेवाली पार्वतीके सहित शिवका पूजनकरता है ।५५। पार्वती का अर्चन पुष्प, कुंकुभ वस्त्र, कर्पूर अगर चन्दन, धूप, दीप नैवेद्य तथा और भी अनेक अन्य सुन्दर गन्धों से करना चाहिए ।५६।

आनन्दोलयेत्ततो देवी महायाँ महेश्वरीम् ।
श्रीगौरीं शिवस युक्तां सर्वकल्याणकारिणीम् ॥५७
प्रत्यब्द कुरुते योऽस्या व्रतमान्दोलन तथा ।
नियमेव शिवां तस्मै सर्वमिष्टं प्रयच्जति ॥५८
माधवस्य सिते पक्षे तृतीया याऽक्षयाभिधा ।
तस्यां यो जगदम्बाया व्रतं कुर्यादतन्द्रितः ॥५६
मल्किामालतीचंपाजपाबन्धूकपंकजैः ।
कुसुमै पूजयेद् गोरीं शङ्करेण समन्विताम् ॥६०
कोटिजन्मकृतं पाद्मं मनोवाक्यायसम्भवम् ।
निर्धय चतुर वर्गानिक्षयानिह सोऽश्नुते ॥६१
ज्येष्ठशुक्लतृतीयायां व्रत कृत्वा महेश्वरीम् ।
योऽर्चं येत्परमप्रीत्या तस्यासाध्यं न किंचन ॥६२
आषाढ़शुक्लपक्षीयतृतीयायाँ रथोत्सवम् ।
देव्याँः प्रियतम कुर्य्याद्यथावित्तानुसारतः ॥६३

इसके अनन्तर महामाया महेश्वरी श्री शिव से श्री गौरी की जो कि समस्त कल्याणों के प्रदान करने वाली देवी हैं आन्दोलन करे ।५७। जो पुरुष इस तिथि में हर एक वर्ष में नियम पूर्वक व्रत तथा आन्दोलन किया करता है परम प्रसन्न पार्वती देवी उसके समस्त अभीष्टों को प्रदान किया करती है ।५८। वैशाख मास के शुक्लपक्ष में होने वाली अक्षय तृतीया के दिन निरालस्य होकर जगदम्बाका व्रत जो कोई भी करताहै और मालती मल्लिका, जवा, चम्पा, बन्धूक और कमलों से कुसुमों से शिव के सहित भगवती पार्वती की अर्चना करता है वह मनुष्य करोड़ों जन्म के किये हुए मनवचन और शरीरके महा पापोंको नष्टकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों का लाभ करता है ।५९-६०-६१। ज्येष्ठ शुक्ला तृतीया को जो मानव इस माहेश्वरी व्रतको करतेहुए देवीका अर्चन किया करताहै उसको इस संसार में कुछ भी असाध्य एवं अप्राप्य नहीं रहता है ।६२। प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि अषाढ़ शुक्ल की तृतीया तिथि के दिन भगवती के परम प्रिय रथोत्सव को अपनी धन शक्ति अनुसार करे ।६३।

रथ पृथ्वीं विजानीयाद्रथागे चन्द्रभास्करौ ।
वेदानश्वान्विजानीय त्सारथिं पद्मसभवम् ॥६४

नानामणिमणाकीर्णं पुष्पमाला विराजितम् ।
एवं रथं कल्पयित्वा तस्मि संस्थापयेच्छिवाम् ॥६५

लोकसंरक्षणार्थाय लोक दृष्टं पराम्बिका ।
रथमध्ये सस्थितति भावयेन्मतिमान्नरः ॥६६

रथे प्रचलिते मत्दजयशब्दमुदीरयेत् ।
पाहि देवि जनानस्मान्प्रन्नान्दीनवत्सले ॥६७

इति वाक्यैस्तोषयेच्च नानावादित्रनि स्वनैः ।
सीमांते तु रथ नीत्वा तत्र सपूजयेद्रथे ॥६८

नानास्तोत्रैस्ततत:स्तुत्वाप्यानयेत्तां स्ववे मनि ।
प्राणिपातशत कृत्वा प्रार्थयेज्जगदम्बिकाम् ॥६९

एवं य: कुरुते विद्वान्पूजाश्तरयोत्सवम् ।
एवं यः कुरुतेऽम्बायाः पूजनं च यथाविधि ॥७०

इस भूमि को रथ समझकर तथा चन्द्र एवं सूर्यको इस रथ के पहिये जानकर वेदोंको उसमें जोते जाने वाले अश्व तथा ब्रह्माजीको उसका हांकने वाला सारथि समझ कर अनेक मणि-रत्नों से परिपूर्ण पुष्प-मालाओं से सुशोभित होनेवाले रथकी इसीभांति कल्पना करके उसमें भगवती पार्वती को विराजमान करना चाहिये ।६४-६५। बुद्धिमानभक्तको चाहिये कि उस समय अपने मनमें ऐसी भावना करेकि भगवती परम्बिका लोकोंके कल्याण, रक्षा और देखनेकेलियेही रथके मध्यमें आज विराजमानहो रहीहैं ।६६। रथ जब धीरे धीरे चलनेलगे तो 'जयकार'का उच्चारणकरे और मुखसे यह भी कहे-हेदेवि ! हेदीनवत्सले हमसब तुम्हारी शरणगतिमें आये हैं, आप हमारी सबकी रक्षा करे ।६७। इस सुन्दररीति से वाक्यों को कहतेहुए अनेकवाद्यों को बजाते गाते भगवती को पूर्ण सन्तुष्ट करे और रथको सीमाके अन्तिम स्थल तक ले जाकर फिर उसका पूजन करे ।६८। वहां अर्चन के पश्चात् अनेकों स्तोत्रों के द्वारा देवी का स्तवन करना चाहिए । इसके उपरान्त देवीको घर लौटाकरलावे और प्रणाम करे एवं जगज्जननीकी प्रार्थनाकरनी

चाहिये ।६९। जो प्रवीण भक्त इस दिधि से जगदम्बा का पूजन व्रत और रथोत्सव को किया करते हैं वह निस्सन्देह इस लोक में समस्त भोगों का उपभोग करके अन्त में देवी के पद को प्राप्त किया करता है ।७०।

शल्यां तु तृरीयायामेवं श्रावणाभाद्रयोः ।
यो व्रतं कुरुतेऽम्बायाः पूजन च यथाविधि ।।७१
मोदिते पुत्रपौत्रादयैर्धनाद्यैरिह सन्ततम् ।
सोऽन्तै गच्छेदुमालोक सर्वलोकोपरि स्थितम् ।।७२
आश्विने धवले पक्षः नवरात्रव्रत चरेत् ।
यत्कृते सकलाः कामाः सिद्धयन्त्येव न सशय ।।७३
नवरात्रव्रतस्यास्य प्रभाव वक्तुमीश्वरः ।
चतुरास्योन पञ्चास्यो न षडास्यो न कोऽपर ।।७४
व गात्रव्रतं कृत्वा धूपालो विरथात्मजः ।
हृ त राज्यं निजं लेभे सुरथो मुनिसत्तमाः ।।७५
ध्र ुवसंधिसतो धीमानयोध्याधिपतिर्नृपः ।
सुदर्शना हृत राज्यं प्रापदस्य प्रभावतः ।।७६
व्रतराजमिम कृत्वा समाराध्य महेश्वरीम् ।
संसारवन्धना मुक्तः समाधिमुक्तिभागभुत् ।।७७

इसी तरह से श्रावण मासतथा भाद्रपद मास की मुक्लपक्ष की तृतीया तिथिके दिन को मानव श्रीतातःदेवी का व्रत तथासविधि समर्चन करता है वह संसारमें अपने पौत्र-पौत्रादिके परमसुख तथा धन-धान्यादि की समृद्धि का अनुपम आनन्द प्राप्तकर जीवनके अन्तमें समस्तलोकोंके ऊपर स्थित उमा के लोकको जाया करता है।७१-७२। आश्विनमास को नवरात्रिकी तृतीया के दिन व्रत अवश्यही प्रत्येक को करना चाहिए । इस व्रत के करने से समस्त मानव मनोरथोंकी सिद्धि हुआकरती है इसमेंकुछभी सन्देहका अवसर नहीं है ।७३। नवरात्रिके व्रतका ऐसा अतुल एवं अद्भुत माहात्म्य होताहै जिसे ब्रह्मा,शिव, स्वामिकार्तिकेय तथा अन्य कोई देवभी वर्णन करने में असमर्थ होतेहैं।७४। हे मुनिश्रेष्ठा । इन नवरात्रि के व्रत को करके पहिलेविरथ के

पुत्र राजा सुरथने अपने अपहृत राज्यकी प्राप्तिकी थी ।७५। इसी महाव्रत के प्रभावसे महामनीषी ध्रुवसन्धिके पुत्र अयोद्धाके अधीश्वर राजासुदर्शन ने छिने हुए राज्यको पुनः प्राप्त कर लिया था। ।७६। इसी व्रत को करके समाधि नामक वैश्य महेश्वरी भगवती की कृपा से उसकी आराधना के द्वारा संसार के बन्धनों से छूटकर मुक्त हो गया था ।७७।

तृतीयायां च पञ्चम्यां प्रसम्यामष्टमीतिथौ ।
नवम्यां वा चतुर्दश्यां यो देवीं पूजयेन्नरः ॥७८
आश्विनस्य सिते पक्षे व्रतं कृत्वा विधानतः ।
तस्य सर्वमनोभीष्ट पूरयत्यनिश शिवा ॥७९
यः कार्त्तिकस्य मार्गस्य पौषस्य तपसस्तथा ।
तपसस्य सिते पक्षे तृतीयायां व्रतं चरेत् । ८०
लोहितैः करवीराद्यैः पुष्पैधूपं सुगन्धितैः ।
पूजयेन्मङ्गलां देवीं स सर्वमङ्गल लभेत् ॥८१
सौभाग्याय सदा स्त्रीभिः कार्यमेतन्महाव्रतम् ।
विद्याधनसुताप्त्यर्थ विधेयं पुरुषापि ॥८२
उमामहेश्वरादीनि व्रतान्यानि यान्यपि ।
देवीप्रियाणि कार्याणि स्वभक्त्यैवं मुमुक्षुभि ॥८३

जो मनुष्य तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी और चतुर्दशी को भगवती महामायाका अर्चनकरताहै और आश्विनके शुक्लपक्षमें पूर्ण विधि-विधान के साथ व्रत किया करता है उसके सब मनोरथों की पूर्ति भगवती जगदम्बा सर्वदा पूर्ण कियाकरती है ।७८-७९। जो कार्तिक मार्गशीर्ष पौश और माघ मासोंकी कृष्णपक्षकी तृतीयाको व्रत करता है और रक्तकरवीर आदिके पुष्पोंसे तथा सुगन्धित धूपादिसे मङ्गलादेवीका यजन कियाकरता है,उसे समस्त मङ्गलोंका लाभ अवश्य ही हो जाताहै ।८०-८१। यह महान् व्रत सौभाग्य सुखके पानेके उद्देश्यसे सर्वदा स्त्रियोंको करना चाहिए और विद्या, धन एव सन्तान पाने के लिए पुरुषों को करना चाहिए ।८२। इसी तरह इनके अतिरिक्त सभी मुक्ति की इच्छा रखने वालों को भक्ति-भावके साथ ही करना चाहिए । इनसे बड़ा लोकोत्तर कल्याण होता है ।८३।

संहितेयं महापुण्या शिवभक्ति विवर्द्धिनी ।
नानाख्यान समायुक्ताभुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ॥८४
य एनां शृणुयाद् भक्त्या श्रात्रयेद्वा समाहितः ।
पठेद्वा पाठयेद्वापि स याति परमां गतिम् ॥८५
यस्य गेहे स्थिता चेय लिखितालिताक्षरैः ।
संपूजिता च विधिवत्सर्वान्कामान्स आप्नुयात् ।८६
भूतप्रेतपिशाचादिदुष्टेभ्यो न भयं क्वचित् ।
पुत्रपौत्रादिसम्पत्तिलंभेदेव न संशयः ॥८७
तस्मादियं महापुण्या रम्योमासंहिता सदा ।
श्रोतव्वा पठतव्या च शिवभक्तिमभीप्सुभि ॥८८

इस शिवकी भक्तिको बढ़ाने वाली और बहुतसे ऐतिहासिक बातों से परिपूर्ण तथा भोग एवं मोक्ष दोनों दुर्लभ वस्तुके प्रदान करने वाली महान् पुण्यदायक संहिताका जो श्रवणकिया करता है या सुनता है पढ़ता है या पढ़ाता है वह परम गतिकी प्राप्ति किया करता है ।८४-८५। जिसके घर में अत्यन्त सुन्दर अक्षरोंसे लिखीहुई यह सहिता विराजमानहो और नित्य ही विधि के साथ इसकी पूजा की जाती हो उस घर का स्वामी अपनी समस्त अभीष्ट मनोकामनाओं की प्राप्ति किया करता है ।८६। उस गृह स्वामीको कभी भी भूत-प्रेन, पिशाच आदि दुष्टों से तनिक भी भय नहीं हुआ करता है और पुत्र-पौत्र, धन-धान्य आदि को सम्पत्ति का विस्तार अधिक हो जाता है– इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।८७। इसलिए शिव-भक्ति के इच्छुक पुरुषों को इस महान् पुण्य वाली उमा-संहिता को नित्य ही नियम पूर्वक सुननी तथा पढ़नी चाहिए ।८८।



कैलास-संहिता

मुनियों को व्यास के प्रति ओंकार जिज्ञासा

साधु साधु महाभागा मुनयः क्षीणकल्मषाः ।
मतिर्दृढतरा जाता दुर्लभा साऽपि दुष्कृताम् ॥१
पाराशर्येण गुरुणा नैमिषारण्यवासिनाम् ।
मुनीनामुपदिष्टं यद्वक्ष्ये तन्मुनिपुंगवाः ॥२
यस्य श्रवणमात्रेण शिवभक्तिर्भवेन्नृणाम् ।
सावधानां भव तेऽद्य शृण्वन्तु परयामुदा ॥३
स्वारोचिषेऽन्तरे पूर्वं तपस्यन्तो दृढव्रताः ।
ऋषयो नैमिषारण्ये सर्वसिद्धनिषेविते ॥४
दीर्घं सत्रं वितन्वन्तो रुद्रमध्वरनायकम् ।
प्रीणन्तः परं भावमैश्वर्यंज्ञातुमिच्छव ॥५
निवसन्ति समस्ते सर्वे व्यासदर्शनकांक्षिणः ।
शिवभक्तिरता नित्यं भस्मरुद्राक्षधारिणाः ।
तेषां भावं समालोक्य भगवान्बादरायणा ।
प्रादुर्बभूव सर्वात्मा पाराशरतपः फलम् ॥८

श्री सूतजी ने कहा—हे निष्पाप मुनिवृन्द ? आप लोग भी परमधन्य एव महान् भाग्यशाली हो इसमें कुछ भी संदेह नहीं है । तुम्हारी ऐसी दृढ़ मति कभी भी दुष्कर्म करने वालोंकी नहीं हुआ करती है ।१। हमारे पास गुरुवर्य व्यासजीने नैमिशारण्यके निवासीमुनियोंको जो उपदेश दिया था वही उपदेश मैं आप लोगों को श्रवणकराता हूँ ।२। यह ऐसा अद्भुत उपदेश है कि इसके श्रवणकरने मात्रसे ही मनुष्यों के हृदयोंमें भगवान् शिवकी भक्ति का संचार हो जाया है । आपलोग्र सावधानचित्तहोकर सुनें और प्रसन्नता के साथ मनमें धारण करें ।३। स्वारोचिष मन्वन्तरके अन्तसमय में समस्त सिद्धियों के प्रदान करने वाले नैमिषारण्य में दृढ़व्रत धारण कर तपश्चर्या

भी यही कहती है और यह एक परम निश्चित बात है ।३। मैंने यह खूब देख व समझ लिया है कि आप लोगोंने यहाँ एक दीर्घ याग भगवान् शिव की, जो अम्बिका के स्वामी हैं, उपासना आरम्भ करदी है ।४। इसलिये मैं आप लोगों को एक परम प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ हे आस्तिको ! यह परम पवित्र उस महेश का ही लन्दर सम्वाद है ।५। पुरातन समयमें प्रजापति दक्ष की पुत्री जगन्माता सती ने शिव की निन्दा सुनकर पिता यज्ञ में ही अपने शरीर का त्याग कर दिया था ।६। इसके अनन्तर अपनी तपस्या के प्रभाव से हिमाचलके यहाँ दूसरा जन्म ग्रहण किया और देवर्षि नारद के उपदेश से शिव की प्राप्ति के लिए अति उग्र निश्चल तपस्या की थी ।७। उस हिमाचल गिरिराज ने गिरिजा का स्वयंम्बर विधान की पद्धति से शिव के साथ विवाह कर दिया ।८।

उपदितस्त्वया देव मन्त्राः सप्रणवा मताः ।
तत्रादौ श्रोतुमिच्छामि प्रणवार्थ विनिश्चतम ।।६
कथ प्रणव उत्पन्नः कथं प्रणाव उच्यते ।
मात्राः कति समाख्याताः कथं वेदादिरुच्यते ।।१०
देवता कति च प्रोक्ता कथं वेदादि भावना ।
क्रिया कतिविधाः प्रोक्ता व्याप्यव्यापकता कथम् ।।११
ब्रह्माणि पञ्च मत्रेऽस्मिन्कथ तिष्ठन्त्यनुक्रमात् ।
कला कवि समाख्याताः प्रपचात्मकता कथम् ।।१२
वाच्यावाचकसम्बन्धस्थानानि च कथं शिव ।
कोऽत्राधिकारी विज्ञेयो विषय कः उदाहृतः ।।१३
सम्बन्धः क्रोऽत्र विज्ञेय किं प्रयोजप्रमुच्यये ।
उपासकस्तु किं रूपः किंवा स्यानमुपासनम् ।।१४

पार्वती ने कहा—हे देव ! आपने ओंकारके सहित मन्त्रों का उपदेश किया है ।६। इस कारण से मैं सूर्य प्रथम प्रणव के अर्थ के ज्ञान को प्राप्त करने की इच्छा रखती हूँ ।३। प्रणव की उत्पत्ति किस प्रकार में हुई ? वह प्रणव' इस नाम से क्यों विख्यात हुआ ? प्रणव में वस्तुतः कितनी मात्रायें

वाणीसे गम्भीरतापूर्वक उन ऋषियों से कहा व्यासजी बोले—हे ऋषियो ! आपके इस यज्ञमें सबतरहसे कुशलता तो हैं न ! क्या आप लोगोने यज्ञ-पति का भली भांति सविधि पूजन कर लिया है ।६-१०। जो महेश्वर अपनी प्रिया पार्वती के सहित इस संसार के भय से मुक्त कर देने वाले हैं उनका इस यज्ञ में आप लोगों ने किस इच्छा से प्रेरित होकर भक्ति-भावके साथ पूजन किया है ! ।११। मैं ऐसा जानता हूँ कि यह आपलोगों की प्रवृत्ति तथा सेवा पहिले ही से हैं जिससे कि अब मुक्ति की भावना से आपने शिवकी आराधना की है ।१२। महा तेजके धारण करनेवाले महर्षि व्यासजी ने जब इस तरह कहा तो नैमिषारण्य के निवासी-महापराक्रमी ऋषि अत्यन्त तेज पूर्ण पाराशर से पुत्र तथा शिव के प्रेम से परायण महात्मा व्यासजी को प्रणाम करके कहने लगे ।१३-१४।

भगवन्मुनिशार्दूल साक्षान्नारायणांशज ।
कृपानिधे महाप्राज्ञ सर्वविद्याधिप प्रभो ॥१५
त्व हि सर्वजगद्भर्तुर्महादेवस्य वेधसः ।
साम्बस्य सगणस्यास्य प्रसादानां निधि स्वयम् ॥१६
त्वत्पादाब्जरसास्वादमधुपायितमानसाः ।
कृतार्था वयमद्यैव भवत्पादाब्जदर्शनात् ॥१७
त्वदीयचरणाम्भोजदर्शनं खलु पापिनाम् ।
दुर्लभ लब्धमस्माभिस्तस्मात्सुकृतिनो वयम् ॥१८
अस्मिन्देशे महाभाग नैमिषारण्यसज्ञके ।
दीर्घसत्रान्विताः सर्वे प्रणवार्थप्रकाशकाः ॥१९
श्रोतव्यः मरमेशान इति कृत्वा विनिश्चिता ।
परस्परं चिन्तयन्तः परं भावं महेशितुः ॥२०
अज्ञातवन्त एवैते वयं तस्माद् भवान्प्रभो ।
खेतुमर्हसि तान्सर्वान्संशयानल्पचेतसाम् ॥२१

ऋषियों ने कहा-हे भगवान् ! हे मुनि शार्दूल ! हे कृपासागर ! हे साक्षात् नारायणके अंशसे समुत्पन्न ! हे महाप्राज्ञ ! हे समस्त विद्याओंके

अधिपति ! हे प्रभो ! आपतो सबजगत्के स्वामी, सृष्टिके करनेवाले महादेव की माया शक्ति तथा गणोंके प्रसाद के पूर्णसमुद्र हैं।१५-१६। आपके चरण कमलों के मधुर मकरन्द के अनुपम आस्वादन के लोलुप भ्रमर के स्वरूप वाले हम सब अब आपके चरण कमल के दर्शन पाकर आनन्दमत्त एवं कृतकृत्य हो गये हैं।१७। आपके चरणों के दर्शन पापियों के लिए बहुत ही दुर्लभ हैं। आज हम लोग उसे प्राप्त कर अत्यन्त ही कृतकृत्य हो गये।१८। हे महाभाग ! हमलोग इस समय इस नैमिषारण्यमें ओंकार के अर्थ का प्रकाशक दीर्घ यज्ञ का अनुष्ठान कर रहे हैं।१९। परमेश्वर को सुनना तथा जानना चाहिए ऐसा विचारकर परस्पर में महेश्वर का परम-भाव बिचार करते हैं।२०। हे प्रभों ! हम उसको भलीभाँति नहीं जानते हैं इसलिए अब आपकी शरणगति में प्रस्तुत हुए हैं। आप समर्थ हैं कृपा करके हमारे अल्प बुद्धि वाले मनके सन्देह का निवारण कर दीजिए।२१

त्वदन्य संशयस्याच्छेता न हि जगत्त्रये।
तस्मादपारगंभीरध्यामोहाब्धो निमज्जतः ॥२२
तारयस्व शिवज्ञानपोतेनास्मान्दयानिधे।
शिवसद्भक्तितत्वार्थं ज्ञातुं श्रद्धालवो वयम् ॥२३
एवमभ्यर्थितस्तत्र मुनिभिर्वेदपारगैः।
सर्ववेदार्थविन्मुख्यः शक्रतातो महामुनिः।
वेदान्तसारसर्वस्वं प्रणव परमेश्वरम् ॥२४
ध्यात्वा हृत्मर्णिकामध्ये सांब संसारमोचकम्।
प्रहृष्टमानसो भूत्वा व्यावहार महामुनिः ॥२५

इस त्रिभुवनमें आपके अतिरिक्त अन्य कोई भी इस तरहके सन्देहका निवारण करनेवाला नहीं है अतएव हे दयाके सागर ! आप भ्रमके सागर में डूबते हुए सब को शिव के ज्ञान रूपिणी नौका से तार दीजिए। हम सबके हृदयमें शिवकी भक्तिके तत्व को जाननेकी उत्कंठ अभिलाषाहै और इसमें परम श्रद्धा भी है।२२-२३। उस समय वेद के ज्ञाता ऋषियों ने इस प्रकारसे महर्षि व्यासजी की प्रार्थना की तब तो संपूर्ण वेदों के संपूर्ण

अर्थ के—तत्त्व के ज्ञाता शुकदेवजी के पिता महामुनि व्यासजी ने वेदान्त शास्त्र सार स्वरूप एवं ओंकारके स्वरूप में स्थित तथा संसार से निमुक्त करने वाले उमा के सहित परमेश्वर शिव का अपने हृदय कमल में ध्यान करके परम प्रसन्न मन से उन ऋषियों से कहना आरम्भ किया ।२२-२५।

शिवजी का पार्वती को मन्त्र दीक्षा देना

साधु पृष्टमिदं विप्रा भवद्भिर्भाग्यवत्तमैं ।
दुर्लभं हि शिवज्ञानं प्रणवार्थप्रकाशकम् ।।१
येषां प्रसन्नो भगवान्साक्षाच्छूलवरं युधः ।
तेषामेव शिवज्ञानं प्रणवार्थप्रकाशकम् ।।२
जायते न हि सन्देहो नेतरेषामिति श्रुतिः ।
शिदभक्तिविहीनानाममितितत्वार्दनिश्चय ।।३
दीर्घसत्रेण युष्माभिर्भगवानम्बिापतिः ।
उपासित इतीद मे इष्टमद्य विनिश्चतम् ।।४
तस्म द्वक्ष्यामि युष्माकमितिहास पुरातनम् ।
उमामहेशसंवादरूपपद्भुतमास्तिका: ।।५
पुराऽखिलजगन्माता सती दाक्षायणी तनुम् ।
शिवदिन्दाअसगेन त्यक्त्वा च जनकध्वरे ।।६
तपः प्रभावात्सा देवी सुताऽभृद्धिमक्द्गिरेः ।
शिवार्थमतपत्सा वै नारदस्योपदेशत. ।।७
तस्मिन्भुधरवर्ये तु स्वयंवरविधानतः ।
देवेश च कृतोद्वाहे पार्वती सुखमाप सा ।।८

महर्षि व्यासजी ने कहा—हे महान् भाग्य वाले ब्राह्मणा ! आपलोगों ने इस समय बहुतही अच्छाप्रश्न पूछा है । प्रणवके अर्थका प्रकाशक शिव का ज्ञान संसारमें अत्यन्त दुर्लभ है ।१। जिनके ऊपर त्रिशूल धारण करने वाले भगवान् शिवकी कृपाहोती है उन्हींको प्रणव के अर्थकाप्रकाश करने वाला शिवका ज्ञान प्राप्तहोता है ।२। इसमें कुछभी सन्देह नहींहै कि शिव के ज्ञानका प्रकाश शिवकी भक्तिसेरहितजीवोंकोकभीनहीं होता है । श्रुति

करने वाले ऋषिगण यज्ञों के स्वामी रुद्रदेव का एक सहस्र वर्ष में पूर्ण होने वाला यज्ञ करने में प्रवृत्त हो गये और ऐश्वर्य के जानने की इच्छा से भावना पूर्वक प्रणाम किया ।४-५। महर्षि व्यासजी के दर्शन पाने की इच्छा से वे वहां निवास करने लगे और शिव-भक्ति में परायण होकर भस्म तथा रुद्राक्ष की माला धारण करने लग गये। ६। उन समस्त ऋषियों की प्रीति भावना को समझकर भगवान् व्यासजी जोकि नारायण के अंश से उत्पन्न समस्त जगत् के गुरु, पाराशर ऋषि के तपस्या के फल स्वरूप और सर्वात्मा हैं, वहां साक्षात् प्रकट हो गये ।७।

त दृष्ट्वा मुनयः सर्दें प्रहृष्टवदनेक्षणाः ।
अभ्युत्थानादिभिः सर्वेरुपचाररुपाचरन् ।।८
स्त्कृत्य प्रददुस्तस्मै सौवर्णं विष्टरं शुभम् ।
सुखोपदिष्ठः स तदा तस्मिन्सौवर्णविष्टरे ।
प्राह गम्भीरया वाचा पाराशर्य्यो महामुनि ।।९
कुशल किं नु युस्माकं प्रब्रूतास्मिन्महामखे ।
अर्जितः किं नु युष्माभिः सम्यंगध्वरनायक ।।१०
किमर्थमत्र युष्माभिरध्वरे परमेश्वरः ।
त्वर्चितो भक्तिभावेन साम्बः संसारमोचकः ।।११
युष्मत्प्रवृत्तिर्मे भात्ति शश्रूषाऽपूर्वमेव हि ।
परभावे महेशस्य मुक्तिहेतोः शिवस्य च ।।१२
एवमुक्ता मुनीन्द्रेण व्यसेनामिततेजसा ।
मुनया नेमिषारण्यवासिनः परमौजसः ।।१३
प्राणिपत्य महात्मानं पराशर्यं महामुनिम् ।
शिवानुरागसहृष्टमानसं च त ब्रुवन् ।।१४

उनका दर्शनकर मुनियों के मन में और नेत्रोंमें अत्यन्त आनन्द हुआ और उनका आगे बढ़कर स्वागत सत्कार करते हुए सबने पूजन किया ।७। वहां सब मुनिगण ने महर्षि व्यासजी को विराजमान करने के लिए सुवर्ण निर्मित्तआसनदिया। उसहेमासनपरबैठकरमहामुनिव्यासजीनेअपनीपरममधुर

होती हैं ? यह फिरसे वेद के आदिमें कहा जाता है ।१०। प्रणव के कितने देवता होते हैं । किस रीतिसे वेद आदि की भावना की जाया करती है । कियायें कितने प्रकार की होती हैं और इसकी व्याप्त-व्यापकता किस प्रकार से होती है ।११। इन आपके उपदिष्ट मन्त्रों में अनुक्रम से किस तरह पाँच ब्रह्म स्थित रहा करते हैं । कलायें कितनी होती हैं और प्रपन्चात्मकता का क्या स्वरूप है ।१२। हे शिव ! वाच्य-वाचक का सम्बन्ध और स्थान किस रीति से होता है । आप यह बताने की कृपा करें कि इसका अधिकारी कौन है और विषय क्या है ।१२। हे महेश्वर ! कृपाकर यह समझाइये कि इसका सम्बन्ध और प्रयोजन क्या है । यह भी बताइये कि इसका उपासक कैसा व्यक्ति होता है और उपासना करने का स्थान कौन-सा उचित होता है ।१४।

उपास्यं वस्तु किंरूपं किंवा फलमुपासितः ।
अनुष्ठनविधिः कोवा पूजास्थान च किं प्रभो ॥१५

पूजायां मण्डल किंवा किंवा ऋष्यदिकं हर ।
न्यासजापविधिः का वा को वा पूजाविधिक्रम ॥१६

एतत्सर्व महेशान समाचक्ष्य विशेषतः ।
श्रोतुमिच्छामि तत्वेन यद्यस्ति मयि ते कृपा ॥१७

इतिदेव्या समापृष्ट्रो भगवानिन्दुभुषणः ।
तां प्रशस्य महेशानीं वक्तुं समुपचक्रमे ॥१८

इसकी उपास्य वस्तु किस प्रकार की होती है और इसकी उपासना करनेवालेको क्या फल मिलाकरता है । इसके अनुष्ठान करनेकी विधि क्या होती है और पूजाका कौन-सा उपयुक्त स्थल हुआ करता है ।१५। इसकी पूजाकेमण्डल और उनके ऋषिआदि कोंन होते हैं उसके न्यास आदि करने की विधि किस प्रकार की होती है और उसका क्रम क्यों होता है ।१६। हे शिव ! यदि आप मुझपर पूर्णकृपा रखते हैं तो मेरेसामने यह सबवर्णन कीजिए । मेरी तत्वोंके विषयोंमें श्रवण करने की बहुतही तीव्र अभिलाषा

है।१७। जगदम्बा पार्वती ने महेश्वर से इसतरह बहुत-सी बातें पूछी तो महादेवजी पार्वतीके प्रश्नोंको सुनकर उनकी प्रशंसा करते हुए कहनेलगे।१८।

ओंकार का स्वरूप तथा विरजा होम विधि

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि यन्मां त्व परिपृच्छसि ।
तस्य श्रवणमात्रेण जीवः साक्षाच्छिवो भवेत् ॥१
प्राणपार्थपरिज्ञा मेव ज्ञान मदात्मकम् ।
बोजं तत्सर्वविद्यानाँ मत्र प्रणवनामकम् ।.२
अतिसूक्ष्मं महार्थं च ज्ञेय तद् वटबीजवत् ।
वेदादि वेदसारं च मद्रूपं च विशेषतः ॥३
देवो गुणत्रयातीत सर्वज्ञः सर्वकृत्प्रभुः ।
अामित्येकाक्षरे मंत्रे स्थितोऽहं सवगःशिवः ॥४
यदस्ति वस्तु तत्सर्वं गुणप्राधान्ययोगतः ।
समस्तं व्यस्ततपि च प्रणवार्थ प्रचक्षते ॥५
सर्वार्थसाधक तस्मादेकं ब्रह्मैतदक्षरम् ।
तेनौमिति जगत्कृस्नं कुरुते प्रथमं शिवः ॥६
शिवा वा प्रणवौ ह्येष प्रणवो वा शिवःस्मृत ।
वाच्यवाचकयोर्भेदो नात्यत वित्तते यतः ॥७

शिवजी ने कहा—हे देवि ! तुमने जितनी भी बातें पूछीं हैं वह तुमसे सब कहता हूं । इसके श्रवणकरने भरसे ही यह जीवात्मा साक्षात् शिव के स्वरूप को प्राप्त कर लेता ।१। प्रणव का अर्थ जान लेना ही मेरा ज्ञान प्राप्त करा देता है, वहमंत्र समस्त विद्याओंका बीज होता है।२। वह प्रणव वटका वृक्ष और उसके बीज के तुल्य महान् सूक्ष्म तथा बहुत ही स्थूल होता है । वही प्रणव वेदकाआदि सारतया मेरा रूप होता है ।३। वहीदेव तीनों गुणों से परे-सर्वज्ञ और सबका सृजन करनेवाला है ॐ' इस अक्षर वाले मन्त्रमें सर्वगत शिवजी विद्यमान रहते हैं ।४। यह जो कुछभी वस्तु है वह सबगुण और प्रधानके संयोगसे सतस्तयमष्टि रूप विराट् और व्यष्टि स्वरूप स्थावर जङ्गमात्मक प्रणव का अर्थ ही होता है ।५। इस कारणसे वह एक

अक्षर वाला ब्रह्म ही सम्पूर्ण अर्थ का साधक है इसी सर्वार्थ साधकता से ॐ ऐसे आकार वाले प्रणव से भगवान् महेश्वर सर्वप्रथम इस समस्त जगत् का निर्माण किया करते हैं। ६। भगवान् शिव प्रणव स्वरूप हैं और प्रणव साक्षात् शिव स्वरूप हैं। बाच्यार्थ और उसके वाचक में कुछ भी भेद नहीं होता है।७।

तस्मादेकाक्षरं देवं मां च ब्रह्मर्वेयो विदुः।
व च्यवाचः कयोरेक्य मन्यमाना विपश्चितः॥८
अतस्तदेव जानीयात्प्रणव सर्वकारणम्।
निर्विकारी मुमुक्षुर्मां निर्गुंण परमेश्वरम्॥९
एनमेव हि देवेशि सर्वमशि रोमणिम्।
काश्यामहं प्रदास्यामि जीवानां मुक्तिहेतवे॥१०
तत्रादौ सम्प्रवक्ष्यामि प्रणवोद्धारमम्बिके।
यस्य विज्ञानमात्रेण सिद्धिश्च परमा भवेत्॥११
निवृत्तिमुद्धरेत्पूर्वमिन्थन च ततः परम्।
काल समुद्धरेत्पश्चाद्दण्डमीश्वरमेव च॥१२
वर्णपञ्चकरूपोऽयमेवं प्रणवद्धृतः।
त्रितात्रबिन्दुनादात्मा प्रक्तिदा जपतां सदा॥१३
ब्रह्मादिस्थावरान्तानां सर्वेषां प्राणिना खलु।
प्राणः प्रणव प्रवाय तस्मात्प्रणव ईरितः॥१४

इसी कारण से ब्रह्म ऋषि गुरु को एकाक्षर स्वरूप कहा करते हैं। वाच्य और वाचक की एकता को मानते हुए जो विद्या होते हैं, मैं भी उन्हीके द्वारा प्राप्त होने वाला होता हूँ।८। हे परमेश्वरि। इसलिये प्रणव को सबका कर्त्ता माननाचाहिये। जो मुमुक्षु या मुक्तहोते हैं वे निर्गुणपरइवरको निर्विकार अर्थात् समस्त विकृतियों से रहित जानतेहैं।९। हे देवि काशीमें अपना प्राणत्याग करनेवाले प्राणियोंको अन्यसमयमें मैं इस समस्त मन्त्रोंके शिरोमणि ओंकारक ही उपदेश कियाकरता हूँ।१०। हे अम्बिके! मैं अब तुम्हारे सामने सबसे पहले प्रणवके उद्धारकोवर्णन करताहूं जिनके

विज्ञान मात्र से ही परमसिद्धि प्राप्त हुआकरती है।११। सर्वप्रथम ओङ्कार में आकारके आश्रित निवृत्त कलाका उद्धार करना चाहिए। उकार में ईधन कलाका-मकार में कालका नाद में दण्ड कलाका और बिन्दु में ईश्वर कलाका उद्धार करना चाहिए।१२। इस रीतिसे उक्त पाँच वर्णो के रूप वाले प्रणव का उद्धार होता है। यह प्रणव तीन मात्रा और बिन्दु नाद स्वरूप जपने वालों को महामुक्ति प्रदान करने वाला होता है।१३। ब्रह्मा से लेकर स्थावर पर्यन्त यह सम्पूर्ण प्राणियों का प्राण होता है, इपी से इसका नाम 'प्रणव'— यह होता है। १४।

आद्यं वर्णमकारं च उकारमुत्तरे तनः।
मकार मध्यतश्चैव नादतं तस्य चोमति ॥१५
जलयद्वर्णमाद्यं तु दक्षिणे चोत्तरे तथा।
मध्ये मकारं शुचिवदोंकारे मुनिसत्तम ॥१६
अकारश्चाप्युकारोऽयं मकारश्च त्रयं क्रमात्।
तिस्रो मात्राः समाख्याता अर्द्धमात्रा ततः परम् ॥१७
अर्द्धमात्रा महेशानि बिन्दुनास्वरूपिणी।
वर्णनिया न व चाद्ध ज्ञेया ज्ञानभिरेव सा ॥१८
ईशानः सर्वविधानामित्याद्याः श्रुतयः प्रिये।
मत्त एव भवन्तीनि वेदाः सत्यं वदति हि ॥१९
तस्माद् वेदादिरेवाहं प्रणवो मम वाचकः।
वाचकत्वान्ममैषाऽपि वेदादिरिति कथ्यते ॥२०
अकारस्तु दहद् वीजं रजः स्रष्टा चतुर्मुख।
उकारः प्रकृतिर्योनिः सत्वं पालचिता हारः ॥२१

अकार, उकार और मकार के क्रम से तीन मात्रा और पीछे आधी मात्रा होती है। इस तरह से 'ओम' होता है।१५। हे पार्वति। यह जल के तुल्य दक्षिण-उत्तरमें स्थिर है। हे मुनिश्रेष्ठ ! इसकेमध्यमें मकारहोता है। इस तरह से इस ओकार की स्थिति होती है।१६। हे महेशानि ! अकार,उकार और मकार ये तीनमात्रायें हैं इसके पीछे आधी मात्रा होती

हे ।.७। हे परमेश्वरि ! वह आधी मात्राही नाद बिन्दु स्वरूप वाली है। यहाँपरईशान:सर्व विद्यानां ईश्वर:सर्वभूतानाम्' और' यो वै ब्राह्मण विदधाति पूर्वम्' इत्यादि श्रुतिवचन प्रमाणहोते हैं ।१८। ये सब मुझसेही होते हैं वेदोंने यह बात बिल्कुल सत्य प्रतिपादित की है ।१९। इस कारणसे वेद के आदिमें ओंकरात्मक भी मैं ही विद्यमान रहा करता हूँ। ओंकार मेरा वाचक होने से वेद के आदिमें कहा जाता है ।२०। अकार इसका महान् बीज है। इसी के रजोगुण सेब्रह्मा हुआ करते हैं। उकार उसकी प्रकृति योनि है सत्व गुण के पालन करने वाले हरि होते हैं ।२१।

मकार: पुरुषो वीजो तम: संहार कोहर: ।
बिन्दुर्महेश्वरो देवस्तिरोभाव उदाहृत: ॥२२
नाद: सदा शिव प्रोक्त: सर्वानुग्रहकारक: ।
नादमूर्द्धनि सचिन्त्य परात्परतर शिव: ॥२३
स सर्वज्ञ सर्वशो निर्मलोऽव्यय: ।
अनिर्देश्य: परब्रह्म साक्षात्सदसत: पर: ॥२४
अकारादिषु वर्णेषु व्यापक चोत्तरोत्तरम् ।
व्याप्यं त्वधस्तनं वर्णमेवं सर्वत्र भावयेत् ॥२५
सद्यादीशानपर्यंतान्यकारादिषु पञ्चसु ।
स्थितानि पञ्च ब्रह्माणि तानि मन्मूर्द्धय: क्रमात् ॥२६
अष्टौ कला: समाख्याता अकारे सद्यजा: शिवे ।
उकारे वामरूपिण्यस्त्रयोदश समीरिता: ॥२७
अष्टावघोररूपिण्यो मकार संस्थिता कला: ।
बिन्दौ चतस्र संभूता कला पुरुषगोचरा: ॥२८

इसमें मकार पुरुष बीज होता है। इसके तमोगुणसेयुक्त सृष्टिकेसंसार करनेवालेशिव हैं। बिन्दुस्वरूप साक्षात्महेश्वरदेव हैं, उससे पितरोभावहोता है ।२२। नाद स्वरूप सबके अनुग्रह करने वाले साक्षात् शिव हैं। नाद का मस्तकमें विचारकरके ही वहाँ विध्यान करनेसे योग्यहोते हैं। वे परात्पर मंगल स्वरूप वाले हैं ।२३। वे सर्वज्ञ हैं, सबके कर्ता—सबके स्वामी—

निर्मल अविनाशी और अद्वैत है। निशोशनकरनेमें अयोग्य सत्‌आसनसे भी परे साक्षात् परब्रह्म है।२४। आकार जिनके आदिमें है उन सब अक्षरों में क्रमसे व्यापक हैं, अकारकी अपेक्षा ओंकार व्यापक हैं, उकारसे अकारवर्ण नीचेके भागमें व्याप्त है। इसी तरहसे इनवर्णोंमें भी भावना करनीचाहिए।२५।अकारादि पाँचवर्णोंमें ब्रह्मके स्वरूप वाले सद्यःवाम देव घोर-पुरुष ईशान हैं वे सब क्रमसे से मेरी ही मूर्तियाँ है।२६। सद्या इससे होने वाले आकारके स्वरूप शिवमें आठकलाओं का वर्णन कियागया है और उकार सें वामदेव रूप तेरह कलायें हैं।२७। मकार में अघोर रूपिणी आठ कलायें विद्यमान है और बिन्दुमें पुरुष गोचर चार कलाये होती हैं।२८।

नादे पञ्च समाख्याताः कला ईशानसंभवाः।
षड्पिधैक्यानुसंधानात्प्रपचात्मकतोच्यते ॥२९
मन्त्रो यन्त्रं देवता च प्रपंचो गुरुदेव च।
शिष्यश्च षट्पदार्थानामेषामर्थं शृणु प्रिये ॥३०
पञ्चवर्णसमष्टि स्यान्मन्त्रः पूर्वमुदाहृतः।
स एवं यंत्रतां प्राप्तो वक्षते तन्मण्डलक्रमम् ॥३१
यन्त्रं तु देवमारूप देवता विश्वरूपिणी।
विश्वरूपो गुरुः प्रोक्त शिष्यो गुरुवपु स्मृत ॥३२
ओमितीद सर्वमिति सर्वं ब्रह्मेति चक्षुते।
वाच्यवाचकसम्बन्धोऽप्ययमेवार्थईरितः ॥३३
आधरो मणितूरुश्च हृदयं तु ततः परम्।
विशुद्धिराज्ञा च ततः शक्तिः शान्तिरिति क्रमात् ॥३४
स्थानान्येतानि देवेशि शान्यितीम परात्परम्।
अधिकारी भवेद्यस्त वैराग्य जायते दृढम् ॥३५

नादमें ईशान स्वरूपवाली पाँचकलायें स्थित हैं। आगे बताये जाने वाले छः पदार्थों की एकताके अनुसन्धानसे प्रणवकी प्रपञ्चात्मकता होती है।२९। मंत्र-यंत्र-देवता विश्व और गुरु तथा शिष्य ये छै पदार्थ होते हैं हे प्रिये ! अब मैं इनका अर्थ बतलाता हूँ उसको तुम श्रवण करो।३०।

पूर्वोक्त यह प्रणवमात्र पाँचवर्णोंकी सदष्टिस्वरूप है । वही मंत्रकीस्वरूपता को प्राप्तकर लिया करता है अब उसके मण्डलका क्रम बतलाया जाता है ।३१। यन्त्र देवता रूप हैं, देवता विश्व रूप हैं और विश्वरूप गुरु है तथा शिष्य गुरु का ही एक शरीर है ।३२। 'ओपितीद सर्वम्' इसका अर्थ यह होता है कि यह सब ओंकारस्वरूपी हैं-ऐसा श्रुति कहती है वाच्य-वाचक के सम्बन्धका यही अर्थ होता है । ३३ । अब स्थान बतलाते हैं आधार-मणिपुर-हृदय-विशुद्धि चक्र आज्ञा चक्र-शक्ति और शान्त कला ये क्रम से स्थान बतलाये गये हैं ।३४। देवि ! शान्त्यतीत को ही परात्पर कहा जाता है । जिसको दृढ़ वैराग्य हो जाता है वही इसका योग्य अधिकारी होता है ॥६३।

विषयः स्यामह देवि जीवब्रह्मैक्यभावनात् ।
सम्यन्ध शृणु देवेशि विषयः सम्यगीरितः ॥३६
जीवात्मनोर्मया सार्द्धमैक्यस्य प्रणवस्य च ।
वाच्यवाचकभावोऽत्र सम्बन्धः समुदीरितः ॥२७
व्रतादिनिरतः शान्तस्रपस्वी विजितेन्द्रिय ।
शौचाचारसमायुक्तो भूदेवो वेदनिष्ठतः ॥३८
विषयेषु विरक्तः सन्नैहिकामुष्मिकेषु च ।
देवानां ब्राह्मणोऽपीह लोकजेषु शिवव्रती ॥३९
सर्वशास्त्रार्थतत्वज्ञ वेदान्तज्ञानपारगम् ।
आचार्यमुपसंगम्य यतिं मतिमतां वरम् ॥४०
दीर्घदण्डप्रणामाद्यैस्तोषयेद्यत्ययः सुधीः ।
शांतादिगुणसंयुक्तः शिष्यः सौसील्यवान्वर ॥४१
यो गुरु स शिवः प्रोक्तो य शिव स गुरु स्मृतः ।
इति निश्चय मनसा स्वविचारं निवेदयेत् ॥४२

हे देवि ! मैं ही इसका विषय हूँ । जीव ब्रह्म की एक भावना करनी चाहिए । हे देवि ! विषयको बतलादियागया अब सम्बन्धको श्रवणकरो ! ३६। मेरे समेत जीवात्मा की प्रणव की एकता होती है । यहाँ बोध्य

बोधक भावहोता हैं अर्थात् जीवात्मा और ब्रह्मकी एकताका बोधकप्रणव होता है यही सम्बन्ध है।३७। व्रत आदिसे तत्पर, शान्त, तपस्वी जितेन्द्रिय पवित्र आचरण वाला, ब्राह्मण,वेदमें निष्ठा रखने वाला, विषयोंसे विरक्त, लोक एव परलोककी इच्छासे दीन देवता और ब्राह्मज में भक्तिरखनेवाला, शिव व्रतको धारण करने वाला, सम्पूर्ण शास्त्रार्थके तत्व का ज्ञाता, वेदान्त ज्ञानके पारगामी यति,श्रेष्ट बुद्धि वाला पुरुष आचार्य के पास जाकर दीर्घ दण्डके समान प्रणाम करे ओर यत्नपूर्वक आचार्यको पूर्ण रूपसे सन्तुष्ट करे और शान्ति प्रभृति गुणोंके युक्त शीलवान तथा शक्ति आदिगुणों से युक्त, बुद्धिमान् शष्यको ऐसा जानना चाहिए कि जो गुरुदेव हैं सो साक्षात्शिव ही हैं और साक्षात्शिव हैं वहीगुरुदेव है ऐसा अपनेमनमें सुदृढ़निश्चकरके ही पीछे उनसे अपना विचार निवेदित करे ।।३८—४२।।

लब्धानुज्ञस्तु गरुणा द्वादशाहं पयोव्रती ।
समुद्रतीरे नद्यां च पर्वते वा शिवालये ।।४३
शुक्लपक्षे तु पचम्यामेकादश्यां तथारि वा ।

प्रातः स्नात्वा तु शुद्धात्मा कृतनित्यक्रिय सुधीः ।।४४
गुरुमाहुय विधिना नान्दीश्राद्धं विधाय च ।
क्षौर च कारियत्याऽथ कक्षोपस्थविवर्जितम् ।।४५
केशश्मश्रुतखानां वै स्नात्वा नियतमानस ।
सक्तुं प्राश्याथ सायाह्ने स्नात्वा स ध्यामुपास्य च ।।४६
सायमौपासनं कृत्वा गरुणा संहितो द्विजः ।
शास्त्रोक्तदक्षिणा दत्या शिवाय गुरुरूपिणेः ।।४७
होमद्रव्याणि सपाद्य स्वसूत्रोक्तविधानतः ।
अग्निमाधाय विधियल्लौकिकादिथिभेदतः ।।४८

अपने गुरुदेवकी आज्ञा प्राप्तकर बारह दिन पर्यन्त पयोव्रत करे अर्थात् केवलजल का पान करके रहे । समुद्र तट पर अथवा पर्वत की चोटी या गुफा में किम्बा शिला पर निवास करे।४३। बुद्धिमान शिष्य को चाहिए

मासके शुक्ल पक्षका पञ्चमी अथवा एकादशी के दिन परमपवित्र मनसे प्रातः कालमें नित्य क्रिया के उपरान्त स्नान करे ।४४। फिर अपने गुरुदेव को बुलाकर विधि-विधानके सहित नान्दीमुख श्राद्ध करने वगल तथा उपस्थ को छोड़कर और कर्म करावे ।४५। माथेके केश दाढ़ी-मूँछ और नाखूनों को दूर कराके जितेन्द्रिय रहने हुए स्थान करके सायंकालीन सन्ध्योपासनाकरे ।४६।सत्तू का आहार करे और फिर स्नानकर सन्ध्याकर्म करे । उसतरह गुरुके सहित ब्राह्मण सन्ध्याकाल की उपासना करके शिव स्वरूप अपने गुरुदेव की सेवा में वस्त्र और दक्षिणादेनी चाहिए ।४८। जो भी अपना सूत्र ही उसकी विधिके अनुसार होम द्रव्य लेकर विधि पूर्वक लौकिक आदिके साथ अग्न्या धान करना चाहिए ।४८।

आहाताग्निस्तु यः कुर्यात्प्राजापत्येष्टिनाहिते ।
श्रौते वैश्वानरे सन्यक् सर्व वेद सदक्षिणम ।।४९
अथाग्निमात्मन्यारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद् गृहात् ।
श्रपयित्वः चरुं तस्मिन्सामदन्नाज्यभेदयः ।।५०
पौरुषेणैव सूक्तेन हुत्वा प्रत्यृचमात्मवात् ।
हुत्वा च सौविष्टकृतीं स्वसूत्रोक्तविधानतः ।।५१
हुत्वोपरिसाद्यन्त्रं च तेनाग्नेरुत्तरे बुधः ।
स्थित्वासने जपेन्मौनी चैलाजिनकुशोत्तरे ।
यावद् ब्राह्ममुहुर्तं गायत्रीं दृढमानसः ५२
ततः स्नात्वा यथापूर्वं श्रपयित्वा चरुं ततः ।
पौरुषं सूक्तमारभ्य विराजात हुनेत् बुधः ।।५३
वामदेवमतेनापि शौनकादिमतेन वा ।
तत्रं मुख्य वामदेव्य गर्भयुक्तो यतो मुनिः ।।५४
होमशेष समाप्याथ प्रातपौपासनं हुनेत् ।
ततोऽग्निमात्मन्यारोप्य प्रातः सन्ध्यामपास्य च ।।५५
सवितर्युदिते पश्चात्सावित्रीं द्राविमेत्क्रमात् ।
एषणानां त्रयं त्यक्त्ता प्रैषमुच्चार्य च क्रमात् ।।५६

जो कोई अहिताग्नि प्राजापत्य यज्ञ के अनुसार हवन कर चुकता है उसको चाहिए अपने सर्वस्वधन की दक्षिणादेकर इसवेदोक्त वैश्वानर अग्नि को आत्मा में धारण कर ब्राह्मण को घरसे निकलकर संन्यासी हो जाना चाहिए। समिधा-अन्न और घृतयुक्त चरुलेकर पुरुषसूक्तके एकमात्रसे हवन करना चाहिए। इसके पश्चात् अपने सूक्तके वियानसे स्विष्टकृत सम्बन्धित आहुतियों से हवन करे।४६-५०-५१। तन्त्र के आगे उत्तर दिशाकी तरफ आसन पर बैठकर जोकि कुशा का आसन होना चाहिए, स्वयं मृग चर्म धारण करे, जब तक ब्राह्म मुहूर्त रहे तब तक मनकी पूर्ण दृढ़ता के साथ गायत्री का जाप करना चाहिये।५२। इसके अनन्तर पुनः स्नान करके चरुका निर्माण करे और पुरुष सूक्तसे आरम्भ कर विरजा होम पर्यन्त आहुतियाँ देवे।५३। वामदेव या शौनक मन्त्रसे हवन करे। इनमें वामदेव का मतश्रेष्ठ है क्योंकि इसका कारण यही है कि यह महापुरुष गर्भ में स्थितही मुक्त होकर फिर जीवन्मुक्त रहते हुए विचरण करते रहे हैं।५४। इसके पश्चात् शेषहवन को पूरा करे और फिर प्रातः कालीन उपासनाका हवन करना चाहिए। इसके पश्चात् पुनः अग्निको अपनी आत्मामें आरोपित कर प्रातः कालकी सन्ध्योपासना करनी चाहिए।५५। लोकेषणा अर्थात् लोकमें मानादि की इच्छा रखना वित्तेषणा और पुत्रेषणा इन तोनों का त्याग करके सूर्यके समुदित हो जानेपर क्रमपूर्वक गायत्री का जप करना चाहिए फिर क्रमसे प्रेमका उच्चारण करे।५६।

शिखोपवीते संत्यज्य कटिसूत्रादिक ततः।
विसृत्य प्राङ्मुखो गच्छेदुत्तराशामुखोऽपि वा ॥५७
गृह्णाय दण्ड कौपीनाद्युचिवृत लोकवर्तने।
विरक्तश्चेन्न गृह्णीयाल्लोकवृत्तिविचारिणे ॥५८
गुरोः समीपं गत्वाऽथ दण्डवत्प्रणमेत्त्रयम्।
समुत्थाय ततस्तिष्ठेद् हपादसमीपतः ॥५९
ततो गुरुः समादाय विराजनलज सितम्।
भस्म तेन त शिष्य समुद्धूल्यं यथाविधि ॥६०

अग्निरित्यादिभिर्मन्त्रैस्त्रिपुण्ड धारयेत्ततः ।
हृत्पङ्कजे समासीनं मां त्वया सह चिंतयेत् ॥६१
हस्त निधाय शिरसि शिष्यस्य प्रीतमानसः ।
ऋष्यादिसहित तस्य दक्षकर्णे समुच्चरेत् ॥६२
प्रणवं त्रिप्रकारं तु ततस्तस्यार्थमादिशेत् ।
षड विद्यार्थ परिज्ञानसहितं गुरुसत्तमः ॥६३

इसके पश्चात् अपनी शिखा (चोटी), उपवीत, (जनेऊ) और कटिसूत्र आदि सबको छोड़कर पूर्व या उत्तर दिशाकर गमनकर चले जाना चाहिये ।५०। लोककी वृत्ति (व्यवहार) के निभानेकेलिये केवल एक कोपीन और एकदण्डका ग्रहणकरे और यदि पूर्ण विरक्ति में लोक वृत्तिकी कठनाईप्रतीत होती होतो इनका विचारकर त्यागकर देना चाहिए ।५८। अपने गुरुदेव के निकट पहुँचकर भूमिमें पतित दण्डके तुल्यगिरकर प्रणामकरे और उठकर श्री गुरुदेवके चरणोंमें स्थित होजावे ।५९। उससमय गुरुदेव विरजा अग्नि से समुत्पन्न श्वेत भस्म उस समय शिष्य के शरीर में मलकर अग्निरिति भस्म'-'वायु रिति भस्म' इत्यादि मन्त्रोसे भस्मसे तिलक करावे और फिर आपके सहित मेरा अर्थात् शिव और पार्वती का ध्यान करना चाहिए । ।६०-६१। इसके पश्चात् गुरुदेव प्रसन्न चित्तसे शिष्यके मास्तक पर अपना हाथ रखकर ऋषि आदि का स्मरण कर उसके दाहिने कान में मन्त्र को उच्चारण करें ।६२। सूक्ष्म स्थूल आदि प्रणव, जो पहले तीन प्रकार के बताये जा चुके हैं, उसका और प्रणवके अर्थका उपदेश करना चाहिए । शिष्य को उस समय छैः प्रकार के प्रणव का ज्ञान प्राप्त करने के लिये दण्डवत् करनी चाहिए ॥ ५३ ॥

द्विषट्प्रकार स गुरुं प्रणम्य भुवि दण्डवत् ।
तदधानो भवेन्नित्य वेदान्त सम्यगभ्यसेत् ॥६४
मामेव चिंतयेन्चित्यं परमात्मानमात्मनि ।
विशुद्धं निर्विकार वैं ब्रह्मासाक्षिणमव्ययम् ॥६५
शमादिधर्मैनिरतो वेदान्तज्ञानपारगः ।
अत्राधिकाही स प्रोक्तो यतिर्विगतमत्सर ॥६६

हृत्पुण्डरीकं विरज विशोक विशद परम् ।
अष्टपत्रं केमराढ्यं कर्णिकोपरि शोभितम् ।।६७
आधारशक्तिमारभ्य त्रितत्वान्तमय पदम् ।
विचिन्त्य मध्यतस्तस्य दहरं व्योमभावयेत् ।।६८
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मां त्वया सह ।
चिंतयेन्मध्यतस्तस्य नित्यमुद्युक्तमानसः ।।६९
एवं विधोपासकस्य मल्लोकगतिमेव च ।
मत्तो विज्ञानमासाद्य मत्सायुज्यफल प्रिये ।।७०

इस तरह बारह प्रकारसे गुरुदेवको प्रणाम करे औरफिर सदा गुरुदेव की अधीनता में रहकर नित्य प्रति वेदान्तका अभ्यास करना चाहिये ।६४। सदा अपनी आत्मा में मुझ परम.त्माका ध्यान करते रहना चाहिये जो कि विशुद्ध विना विकारोंवाला शुद्ध अविनाशी है ।६५। शम-दम आदिकेधर्म में विशेष रूपसे रति रखताहुआ वेदान्त दर्शनशास्त्रका पारगामी होकर अभि-मानसे एकदमरहित रहतेहुए जो रहता है वही यतिकहलाता है और ऐसा यति पुरुषही इसका अधिकारी भी होता है।६६।हृदय पुण्डीरीकमें विराज-मान,परम स्वच्छ शोकसहित अति उज्वल अष्टदल कमलके तुल्य, मकरन्द से युक्त कर्णिका से शोभित हृदय-कमल के मध्य में आधार शक्तिसे आरम्भ करके मणिपूरक हृदयके तत्वान्तमय आधारका विचारकर उससमय दहर प्रकाश को भावना करनी चाहिए ।६७। 'ॐ' इस एकाक्षर मन्त्र का उच्चारण आपकेसहित मेराअत्यन्त उत्कण्ठाकेसाथ स्मरणकरता हुआ उस दहरा प्रकाशक मध्यमें नित्यही मेरा स्मरणकरता रहे।६९।हे पम प्रिये ! इस विधिसे मेरी उपासना करते रहनेवाले पुरुषकोमेरे लोककी प्राप्ति हुआ करती है और वह मुझसे ज्ञान प्राप्तकर अन्त में मेरे ही सायुज्य मोक्ष पद की प्राप्ति किया करता है ।७०।

पूजा स्थान में मण्डल रचना विधि

परीक्ष्य विधिवद्भूमि गंधवर्णरसादिभिः ।
मनोऽभिलषिते तत्र वितारवितताम्बरे ।।१

सुप्रलिपे महीपृष्ठ दर्पणोदरसन्निभे ।
अरत्नियुग्ममानेन चतुरस्त्रं प्रकल्पयेत् ।।२
तालपत्रं समादाव तत्समायामामविस्तरम् ।
तस्मिन्भायान्प्रकुर्वीतं त्रयोदशसमां कलाम् ।।३
तत्पत्रं तत्र निःक्षिप्य पश्चिमाभिमुखः स्थित ।
तत्पूर्वभागे सुदृढ़ सूतमादाय रंजितम् ।।४
प्राक प्रात्यग्दक्षिणोदक् च चतुर्दिशि निपातयेत् ।
सूत्राणि देवदेवेश नवशष्ट्युत्तर शतम् ।।५
काष्ठानि स्युस्ततस्तस्य मध्य कोष्ठं तु कर्णिका ।
कोष्ठाष्ठक बहिस्तस्य दलाष्टकमिहोच्यते ।।६
दलानि श्वेतवर्णानि समग्राणि प्रकल्पयेत् ।
पीतरूपां कर्णिका च कृत्वा रक्तं च वृत्ताकम् ।।७

श्रीभगवान् शिवने कहा-गन्ध, वर्ण, रस आदि से पृथ्वीकी भली-भाँति परीक्षाकरके फिर अपने मतकी अभिलाषा के अनुसार जोभी परम अभीष्ट एवं सुन्दर हो वैसा एक वितान (चन्दोवा) वहाँ तानना चाहिये ।१। वहाँ भूमिको लीपकर दर्पणके समान एकदम चिकनी बनादेवे दो हाथके बराबर चार अस्र चौकोर स्थानके मण्डपकी रचना वहाँ करे ।२। फिर ताल पत्रोंसे उसीकेसमान लम्बेतणा चौड़ेस्थान में बराबर तेरहभाग करनेचाहिए ।३। उस चतुरस्र मण्डलमें उस पत्रको रखकर फिर स्वयं पश्चिम दिशा की ओर मुख करके स्थित होवे और उसके पूर्व भागमें कलाये से पूर्वसे दक्षिणा उत्तरके क्रमसे चौदह डोरे वहाँ रखने चाहिए। हे देवि ! ऐसा करने पर उस कोष्ठमें एक सौ उनहत्तर कोटे बन जाँयगे ।४-५। कोष्ठोंके मध्य मेंजो कर्णिका है उससे आठ कोष्ठक के बाहर उस मध्य कोष्ठक का दलाष्टक होता है ।६। श्वेत वर्ण के दल और श्याम अग्र भाग की कल्पना करे, उसकी पीली कर्णिका बनाकर लाल-पीली रङ्ग दे ।७।

वर्नभिद्दलदक्ष तु समारभ्य सुरेश्वरि ।
रक्त कृष्णाः क्रमेणा दलसन्त्रिचिन्तयेत् । ८

कर्णिकायां लिखेद्यत्र प्रणवार्थप्रकाशकम् ।
अधः पीठ समालिख्य श्रीकण्ठ च तदूर्ध्वत ॥९
तदुपर्यमरेशं च महाकाल च मध्यतः ।
तन्मस्तकस्थ दन्ड च तत ईश्वरमालिखेत् ॥१०
श्यामेन पीठ पीतेन श्रीकन्ठ च विचित्रयेत् ।
क्षमरेश महाकाल रक्तं कृष्णं च तौ क्रमात् ॥११
कुर्यात्सुधम्रं दन्डं च धवल चेश्वरं बुधः ।
एवं यन्त्रं समालिख्य रक्त सद्येन वेष्टयेत् ॥१२
तदुत्थेनैव नादेन विद्यादीशानमीश्वरि ।
तगासपक्तीर्गृ ह्वीयादाग्नेयादिक्रमेण वै ॥१३
काष्टानि कोणभागेषु चत्वार्येतादि सुन्दरि ।
शुक्लेनापयं वर्णादि चतुष्कं रक्तधातुभिः ॥१४

हे सरेश्वर ! इस तरह कमल के दलों को लाल तथा पीला बनाकर क्रमके दलसन्धिको लाल तथा काली बनावे ।८। उसकी कर्णिका में प्रणव अर्थका प्रकाशयन्त्र लिखनाचाहिए । उसके नीचे पीठ और उसकेऊपर श्रीकण्ठ लिखे ।९। इसके ऊपर अमरेश, मध्य में महाकाल और महाकाल के मस्तकके समीप में दण्ड लिखकर फिर ईश्वरको लिखना चाहिये ।१०। श्माम रंऊग सिंहासन को चित्रित करे तथा पीले रंगसे श्रीकण्ठको रंगे । अमरेशको रक्त वर्णसे तथा महाकाल को कृष्ण वर्णसे रंगे ।११। दण्ड का वर्ण धूम्र बनावे और ईश्वर का वर्ण धवल बनाना चाहिए । इस रीति से लालयन्त्रलिख कर सद्योजात मन्त्रसे अच्छादन करना चाहिये ।१२। हे ईश्वरि ! उसके उस्थित नादसे ईशानको भेद करे तथा अग्नेय क्रमसे उसकी वाह्य पंतिको ग्रहणकरे ।१३। हे सुन्दरि ! उसके कोणों में चार कोष्टों को श्वेत और लाल धातु से रंगे और फिर चार द्वारों की कल्पना करनी चाहिये और उसके इधर-उधरके कोष्ठपीले रंगसे परिपूर्ण करे।१४

आपूर्य तानि चत्वारि द्वाराणि परिकल्पेत् ।
ततस्तत्पार्श्वयोर्द्वं द्व पीतेनैव प्रपूरयेत् ॥१५

आग्नेयकोष्ठमध्ये तु पीताभे चतुरस्त्रके ।
अष्टपत्र जिखेत्पद्मं पक्तभि पीतकर्णिकम् ॥१६
हकार विलिखेन्मध्ये विन्दुयुक्त समाहित ।
पद्मस्य नर्ऋते काष्ठे चतुस्स्त्र तदा लिखेत् ॥१७
पद्ममष्टदलं रक्तं पीर्तकिजल्ककर्णिकम् ।
शवर्गस्य तृतीया तु षष्टस्वरसमन्वितम् ॥१८
चतुर्दशस्तरोपेत बिन्दुनादविभूषितम ।
एतद्बीजवरं भद्रे पद्मम्ध्ये समालिखेत् ॥१९
पद्मस्येशानकोष्ठे तु यथा पद्मं समालिखेत् ।
कवर्गस्य तृतीयं तु पञ्मस्वरसयुतम् ॥२०
विलिखेन्मध्यतस्तस्य बिन्दुकण्ठे स्वल कृतम् ।
तद्बाह्यपक्तित्रियते पूर्वादिपरितः क्रमान् ॥२१

अग्नेय दिशाके कोष्ठके मध्य चार अस्त्र प्रमाणवाला आठ दलका एक कमल बनावे। इसकी पंखड़ी लालवर्ण की बनाने और कार्णिकाको पीत वर्णकी बनानी चाहिये ।१५-१६। इसके मध्यमें बिन्दुयुक्त दकारलिखे और भिर कमलकी नैॠष्यकीओरके कोष्ठमें चारअस्त्र मध्यवाला अष्टदल कमल बनावे। उसका रङ्ग लाल बनावे और कणिका का रंग पीला बनावे। स्वर्ग का तीसरा अक्षर (स) छठवें स्वर में संयुक्त (सू) लिखे ।१७-१८। चौदहवाँ स्वर (औ बिन्दु नाद से युक्त (औ) यह बीज है। भद्रे ! इस को पद्म।मध्यमें लिखना चाहिए ।१९। इसी तरह से कमल के ईशान को कोष्ठ में लिखे। कवर्ग का तृतीया अक्षर (ग) पंचम स्वर उकार के सहित (गु) लिखे ।२०। उस ईसान दिशा के कमल के कन्ठ भाग में विन्दु लिखे, इसकी बाहिर तीन पक्तियाँ हैं उनमें पूर्व दिशा क्रमसे लिखना चाहिये ॥ २१ ॥

कोष्ठानि पञ्च गृह्णीयाद गिरिराजसुत शिवे ।
मध्ये तु कर्णिकां कुर्यात्पीतां रक्तं च वृत्तकम् ॥२२
दलान रक्तवर्णा न कल्पयेत्कल्पवित्तमः ।
दलबाह्ये तु कृष्णेन रन्ध्राणि परिपूरयेत् ॥२३

आग्नेयादीनि चत्वारि शुक्लेनैव प्रपूरयेत् ।
पूर्वे षड्बिन्दुसहित षटकोण कृष्णमालिखेत् ।।२४
रक्तवर्ण दक्षिणतस्त्रिकोणं चोत्तरे ततः ।
श्वेताभमर्द्धचन्द्र च पीतवर्ण च पश्चिमे ।।२५
चतुरस्र क्रमातेषलिखेत् बीज चतुष्टयम् ।
पूर्व बिन्दु समालिख्य शुभ्रं कृष्णं तु दक्षिणे ।।२६
उकारमुत्तरे रक्तं मकारं पश्चिमे ततः ।
अकारं पीतमेवं तु कृत्वा वर्णचतुष्टयम् ।।२७
सर्वोर्ध्वपक्त्यधः पक्तौ समारभ्य च सुन्दरि ।
पीत श्वेतं च कृष्ण चेति चतुष्टयम् ।।२८
तदधो धवल श्यामं पीत रक्तं चतुष्टम् ।
अधस्त्रिकाणके रक्तं शुक्लं पीतं वरानने ।।२९

हे पार्वति ! पाच कोष्ठ बनाकर उसमें मध्यकष्ठका पीतवर्णका बनावे और शेष वृत्त को रक्तवर्णका बनाना चाहिये ।२२।विधि के ज्ञाता पुरुषको चाहिएकि कमल दलोंको लालवर्ण का बनावे और दलके बाहिर के छिद्रोंको कृष्णवर्णसे रङ्ग से रङ्गना चाहिये ।२३। अग्नि दिया की ओर वाले चार कोष्ठोंको शुक्ल रङ्गसे चित्रित करे और पूर्व दिशाके छै बिन्दुओं के सहित षट्कोणों को कृष्णवर्ण से लिखे ।२४। दक्षिण दिशासे उत्तर दिशाकी ओर तीनकोणों में लालरङ्ग यथा श्वेत कान्तिसेयुक्त अर्द्धचन्द्र के आकार का पीतवर्ण पश्चिम कोण में रङ्गना चाहिए ।२५। चारों बीजों को क्रम से चौकोर के प्राण से क्रमशः लिखना चाहिये । पूर्वकी ओर तो शुभ बिन्दु तथा दक्षिण में कृष्ण वर्णके लिखे ।२६। उत्तर की ओर रक्त वर्ण उकार मकार पश्चिमीकी ओर लिखे हुए आकारको पीलेवर्णका करे । इस प्रकार से चारों वर्णों में लिखना चाहिये ।२७। हे सुन्दरि ! नीचे की पंक्त से आरम्भ करके ऊपर वाली चारों पक्तियाँ पीत,श्वेत, रक्त और कृष्ण-वर्ण की बनाने ।२८। उसके नीचे श्वेत, श्याम पीत और रक्त रङ्ग से रंगे हुये नीचेके त्रिकोण में लाल, शुक्ल और पीत रङ्ग करना चाहिये ।२९।

एवं दक्षिणमारभ्य कुर्यात्सोमान्तमीश्वरि ।
तद्वाह्यपंक्तौ पूर्वादिमध्यमान्तं विचित्रयेत् ॥३०
पीतं च कृष्णं च श्याम श्वेतं च पीतकम् ।
आग्नेयादि समारभ्य रक्तं श्याम सितं प्रिये ॥३१
रक्तं कृष्णं च रक्तं च षट्क्रमेवं प्रकीर्तितम् ।
दक्षिणाद्य महेशानि पूर्वावधि समीरितम् ॥३२
नैर्ऋताद्य तु विज्ञेयमाग्नेयावधि चेश्वरि ।
वारुणं तु समारभ्य दक्षिणावधि चेतिरम् ॥३३
वायव्याध महादेवि नैर्ऋतावधि चेतिरम् ।
इशानाद्यं तु विज्ञेयं वायव्यविधि चाम्बिके ।
इत्युक्तो मन्डलविधिर्मया तुभ्य च पार्वति ॥३५
एवं मण्डलमालिख्य नियतात्मा यतिः स्वत ।
सौरपूजां प्रकुर्वीत स हि तद्वस्तुतत्पर ॥३६

हे ईश्वरि ! इस प्रकार दक्षिण से आरम्भ करके सोमान्त तक करे और उसकी बाह्य पंक्ति पूर्वादि मध्यमान्त में चित्रित करे । ३० । पीत, रक्त, श्वेत श्याम, कृष्ण रङ्ग आग्नेय दिशा से आरम्भ करे, रवत श्याम और श्वेत और लाल कृष्ण तथा लाल यैछे रङ्गभरे, हे महेशानी ! यह दक्षिण के आदि से लेकर पूर्वतक करना चाहिए ।३१-३२। हे ईश्वरि ! नैर्ऋत्य दिशासे आग्नेय दिशा पर्यन्त और वरुण दिशा से लेकर दक्षिण दिशा पर्यन्त, हे महादेवि ! वायव्य से लेकर नैर्ऋत्य दिशातक, हे परमेश्वरि । पूर्व आदिसे पश्चिम तक और ईशान से लेकर वायव्य दिशा पर्यन्त यही करे हे पार्वति ! यह समस्प मण्डल की रचना करके पश्चात् ब्रह्म में परायण होकर भगवान् भुवनभास्कर सूर्यदेव की पूजा करनी चाहिए ।३३से ३६।

आसन प्राणायाम विधान

दक्षिण मण्डलस्याथ वैयाघ्र चर्मशोभनम् ।
आस्तीर्य शुद्धतोयेने प्रोक्षयेदस्त्रमंत्रत ॥१

प्रणवं पर्वमुद्धृत्य पश्चादाधारमुद्धरेत् ।
पश्चाच्छक्तिकमल चतुर्थ्यंतं नमोऽतकम् ॥२
मनुमेव समुच्चार्य स्थित्वा तस्मिन्नुदङ्मुख ।
प्राणानायम्य विधिवत्प्रणवोच्चारपूर्वकम् ॥३
अग्निपित्यादिभिर्मंत्रैर्भस्म सधारयेत्ततः ।
शिरसि श्रीगुरुं नत्वा मण्डल रचेयेत्पुनः ॥४
त्रिकोणवृत बाह्येतु चतुरस्रात्मक क्रमात् ।
अभ्यर्च्यौमिति साधारं स्वाप्य शख समर्चनेत् ॥५
आपूर्या शुद्धतोयेने प्रणवेन सुगन्धिना ।
अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यै प्रणवेन च सप्तधा ॥६
अभिमंत्र्य ततस्तस्मिन्धेनुमुद्रां प्रदर्शयेत् ।
शङ्खमुद्रा च तेनैव प्रोक्षयेदस्त्रमंत्रतः ॥७

शिव्जी ने कहा-वक्षिण मण्डल सुन्दर बाघम्बर बिछाकर अस्त्र मंत्र से शुद्ध चलके द्वारा प्रोक्षण करना चाहिए ।१। प्रथम प्रणव फिर आधार का उद्धार करे । इसके पश्चात् शक्ति कमल का उद्धार करे। इन सबके साथ चतुर्थी विभक्ति और अन्त में नमः' लगाकर तुच्चारण करन। चाहिए ।२। 'शक्ति कमलाय नमः' इत्यादि रीतिसे इसका उच्चारण करना चाहिये ।३। 'अग्निरीति भस्म' इप्यादि मन्त्रोंसे भस्मधारण करे। श्री गुरुदेव को मस्तक झुकाकर नमस्का करके फिर मन्डल की रचना आरम्भ करना चाहिए ।४। बाहर की ओर त्रिकोण वृत्त क्रमसे चार स्त्र (चौकोन) प्रणाम करे 'ओम अर्चन' इस मन्त्रसे पीठको धारणकर शंखका अर्चतकरे ।४। प्रणव से शुद्ध एवं सुगन्धित जल को अभिमन्त्रित करके गन्ध पुष्पादि से सात बार ओंकार से पूजन करना चाहिए । ५-६ । इस रीति से मन्त्र से अभिमन्त्रित करके धेनु मुद्राबनाकर दिखानी चाहिए और इसी तरह अस्त्रमन्त्र से शंख मुद्रा भी दिखानी चाहिए ।७।

आत्मानं गंधपुष्पादिपूजोपकरणानि च ।
प्राणायामत्रय कृत्वा ऋष्यादिकमथाचरेत् ॥८

अस्य श्रीसौरमन्त्रस्य देवभाग ऋषिस्ततः ।
छन्दो गायत्रसित्युक्तं देवः सूर्यो महेश्वरः ॥९
देवता स्यात्षडङ्गानि ह्रामित्यादीनि विन्यसेत् ।
ततः सम्प्रोक्षयेत्पद्ममस्त्रेणाग्नेरगोचरम् ॥१०
तस्मिन्संमर्चयेद्विद्वान् प्रभूतां विमलामपिः ।
सारां चाथ समाराध्य पूर्वादिपरतः क्रमातः ॥११
अथ कालाग्निरुद्रं च शक्ति माधारसंज्ञिताम् ।
अनन्तं पृथिवीं चेय रत्नद्वीप तथैव च ॥१२
सङ्कल्पवृक्षोद्यानं च गृहं मणिमय ततः ।
रक्तपीठ च प्रपूज्य पादेषु प्रागुपक्रमात् ॥१३
धर्म ज्ञानं वैरोग्यमैश्वर्यं च चतुष्टयम् ।
अर्धर्माग्निकोणादिकाणेष च समर्चयेन् ॥१४

इसके अनन्तर स्वयं अपनी आत्माकोगन्ध क्षत पुष्पादि समस्त अर्चना की सामग्रीसे शुद्धकर तीनवार प्राणायाम करे और ऋषि आदि का स्परण करना चाहिये।८।इससौरमन्त्रका वेवभागऋषि गायत्रीछन्द और सूर्यमहेश्वर देवता है ।९। ह्रां, ह्रीं, 'ह्रू' इत्यादि बीज मन्त्रों में छै अङ्गों में सविधि न्यास करे फिर अस्त्रमन्त्र से अग्नि कोणके कमल का प्रोक्षण करनाचाहिए ।१०। साधक विद्वान्को उस आग्नेय दिशाके कमल का महा उज्ज्वलता के साथ सारवस्तुसे आराधन कर पूर्वादि दिशामें अर्चन करना चाहिए ।११। कालाग्नि, रुद्र,आधार शक्ति,अनन्त पृथ्वी,रत्नद्वीप, संकल्प वृक्ष का बगीचा मणिमय गृह और चरणोंमें मनको संलग्न करके रक्त पीठका पूजन करना चाहिये ।१२-१८। धर्म,ज्ञान,वैराग्य और ऐश्वर्य इन चारों का तथा अधर्म तथा अज्ञानादि का अग्निकोण के कोने में पूजन करना चाहिए ।१३।

मायाधश्छदन पश्चाद्विद्योर्ध्वैच्छदन ततः ।
सत्वं रजस्तमश्चैव सभ्यर्त्य यथाक्रम् ॥१५
सम्पूज्त पश्वात्सौराख्य योगपाठ कमर्चयेत् ।
पीष्ठोपरि समाकल्प्य मूर्ति मूलेन मूलवित् ॥१६

निरुद्धप्राण आसीनो मूलेनैव स्वमूलतः ।
शक्तिमुत्थाप्य तत्तेजः प्रभावात्पिंगलाध्वना ॥१७
पुष्पांजलौ निर्गमय्यं मण्डलस्थस्य भास्वतः ।
सिन्दूरारुणदेहस्य वामार्द्ध दयितस्त च ॥१८
अक्षस्रक्पाशखट्वाङ्गकपालांकुशपङ्कजम् ।
शङ्कं चक्रं दधानस्य चतुर्वक्त्रस्य लोचनैः ॥१६
राजितस्य द्वादशभिस्तस्य हृत्पङ्कजोदरे ।
प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य ह्लांह्लींसस्तदनन्तरम् ॥२०
प्रकाशशक्तिसहितं मातण्डं च ततः परम् ।
आवाहयामि नम इत्यावाह्यावाहनाख्यया ॥२१
मुद्रया स्थापनाद्याश्च मुद्राः संदर्शयेत्ततः ।
विन्यस्याँगानि ह्नांह्लौं ह्नू मेतेन मनुना तत ॥२२

माया से नीचे के भाग का आच्छादन और विद्या से ऊर्ध्व भाग का आच्छादन करके फिर रज-तम इनका विधि के साथ पूजन करे ।१५। इस प्रकार से पूजन करके सौर नामक योग पीठ की पूजा करनी चाहिये । सिंहासन पर मूलमन्त्र से प्रतिमा की स्थापना करे ।१६। इसके अनन्तर मूलमन्त्र से ही मूलाधार में प्राण वायु को रोककर आसन पर बैठकर पिंगला नाड़ी के प्रभाव से आधार शक्ति को उठाना चाहिये ।१७। वहाँ मण्डल में विराजमान, प्रकाशयुक्त, सिंदूर के तुल्य अरुण देह के धारण करने वाले भगवान् को पार्वती के सहित पुष्पांजलि समर्पित करे ।१८। जो देव वहाँ रुद्राक्ष मालाधारी पाश खट्वाङ्ग कपाल-अकुश-कमल-शङ्ख धारण करते हुए चार मुख और बारह नेत्र वाले हैं ।१६। उनके हृदय कमल के मध्य में प्रथम प्रणव का उद्धार करे इसके पश्चात् 'ह्लां ह्नीं सः' इस मन्त्र से प्रकाश शक्तिधारी सूर्य का आवाहन करता हूँ—यह कह-कर पीछे 'नमः' लगा कर उनका आवाहन करना चाहिये ।२०।२१। मुद्रादिक की स्थापना करके फिर मुद्रा बनाकर दिखावें और समस्त अङ्गों में 'ह्नां ह्रीं ह्व' इन बीज मन्त्रों से अन्त के मन्त्र से न्यास करना चाहिये ।२२।

पञ्चोपचारांसंकल्प्य मूलेनाभ्यर्चयेत्त्रिधा ।
केशरेषु च पद्मस्य षडङ्गानि महेश्वरि ॥२३
वह्नीशरक्षोवायूनां परितः क्रमतः सुधीः ।
द्वितीयावणे पूज्याश्चतस्रो मूर्तय क्रमात् ।।२४
पूर्वाद्यु त्तरषर्यंतं दशसूलेषु पार्वति ।
आदित्यो भास्करो भानू रविश्चेत्यनुपूर्वश ॥२५
अर्को ब्रह्मा तथा रुद्रो विष्णुश्चेति पुनःप्रिये ।
ईशानादिष सपूज्यास्तृतीयावरणे पुनः ॥२६
सोमं कुजं बुधं जीव कविं मंद तमस्तमः ।
समंततौ यजेदेतान्पूर्वादिदलमध्यतः ॥२७
अथवा द्वादशादित्यान् द्वितीयावरणे यजेत् ।
तृतीयावरणे चैव राशीन्द्वादश पूजयेत् ॥२८

पञ्च उपचार करके संकल्प करे और तीनबार पूजन करना चाहिये । हे महेश्वर ! पद्म के केशरों में तथा छै अङ्गों में यजन करे ।२३। अग्नि, ईश्वर राक्षस और वायु आदि की चारों प्रतिमाओं का दूसरे आवरण में क्रम से यजन करना चाहिए ।२४। हे पार्वति ! पूर्वसे आदि लेकर उत्तर पर्यन्त कमल दल के मूल में आदित्य, भानु, रवि और भास्कर की क्रम के अनुसार अर्चना करे ।२५। सूर्य, ब्रह्मा, रुद्र और विष्णु तथा ईशानादि का तीसरे आवरण में यजन करना चाहिये ।२६। सोम, मङ्गल, बुध और महाबुद्धिमान् देवगुरु वृहस्पति तेजस्वी शुक्र, शनैश्चर और महा भीषण राहु तथा केतु का पूर्वादि दलके मध्य से चारों ओर पूजन करे ।२७। अथवा द्वितीय आवरण में बारह आदित्यों का ही यजन करे और तृतीय आवरण में बारह राशियों का पूजन करे ।२८।

सप्तसागरगङ्गाश्च बहिरस्य समततः ।
ऋषीन्देवांश्च गंधर्वान्पन्नगानप्सरोगणान् ॥२९
ग्रामण्यश्च तथा यक्षां ातुधानांस्तथत्हयान् ।
सप्त छन्दोमयांश्चैव वालखिल्यांश्च पूजयेत् ॥३०

एवं त्र्यावरणं देवं समभ्यर्च्य दिवाकरम् ।
विरच्य मंडलं पश्चाच्चतुरस्रं समाहितः ॥३१
स्थाप्य साधारकं ताम्रपात्रं प्रस्थोदविस्तृतम् ।
पूरयित्वा जलैः शुद्धैर्वासितैः कुसुमादिभिः ॥३२
अभ्यर्च्य गंधपुष्पाद्यैर्जानुभ्यामवनीं गतः ।
अर्घ्यपात्रं समादाय भूमध्यांतं समुद्धरेत् ॥३३
ततो ब्रूयादिमं मंत्रं सावित्रं सर्वसिद्धिदम् ।
शृणु तच्च महादेवि भुक्तिमुक्तिप्रदं सदा ॥३४
सिंदूरवर्णाय सुमण्डलाय नमोस्तु वज्राभरणाय तुभ्यम् ।
पद्माभनेत्राय सुपंकजाय ब्रह्मेन्द्रनारायणकारणाय ॥३५
सरक्तचूर्णं ससुवर्णतोयं स्रक्कुंकुमाढ्यं सकुशं सपुष्पम् ।
प्रदत्तमादाय सहेमपात्रं प्रशस्तमर्घ्यं भगवन्प्रसीद ॥३६

सातों समुद्र, भागीरथी गङ्गा, इसके बारह देवता तथा ऋषि, गंधर्व, पन्नग, अप्सराओं के गण, ग्रामीण यक्ष यातुधान ससछन्द में बालखिल्य ऋषियों को लिखकर सब का यजन करे ।३०। इस रीति से तीन आवरण वाले दिवाकर देव का यजन करके पीछे अत्यन्त सावधानी से चतुरस्र (चौकोर) मण्डल की रचना करनी चाहिए ।३१। एक सेर जल आ जाने वाले एक ताम्र पात्र की स्थापना करके कुंकुम आदि वस्तुओं से सुगन्धित किये हुए जल को उसमें भर देवे ।३२। इसके उपरान्त गन्धाक्षत पुष्पादि से यजन करके जांघों के बल पर पृथ्वी पर बैठकर अर्घ्यपात्र को बाहों के मध्य तक लेजाकर भुक्तिमुक्ति प्रदान करने वाले सूर्यके मन्त्रका उच्चारण करते हुए अर्घ्य देवे ।३३-३४। सिंदूर के तुल्यवर्ण वाले सुन्दर मण्डलपर सुशोभित, हीरे आदिके आभूषणों से भूषित आपको मेरा नमस्कार है। कमल के समान नेत्रवाले पङ्कज भू ब्रह्मा इन्द्र और नारायणके भी कारण आपको नमस्कार है ।३५। लाल रङ्गके चूर्ण के समान अति सुन्दर रङ्गका जल, माला, कुंकुम, कुश, पुष्प ये सब हेम पात्र में रखकर मैं आपको अर्घ्य देता हूं । हे भगवन् ! आप मुझ पर प्रसन्न होवें ।३६।

एवमुक्त्वा ततो दत्वा तदर्घ्यं सूर्यमूर्तवे ।
नमस्कुर्यादिमं मंत्रं पठित्वा सुसमाहितः ।।३७
नमः शिवाय साम्बाय सगणायादिहेतवे ।
रुद्राय विष्णवे तुभ्य ब्रह्मणे च त्रिमूर्तये ।।३८
एवमुक्त्वा नमस्कृत्य स्वासने समवस्थितः ।
ऋष्यादिकं पुन कृत्वाकर संशोध्य वारिणा ।।३९
पुनश्च भस्म संमार्य पूर्वोक्त नैव वर्त्मना ।
न्यासजात प्रकुर्वीत शिवभावविवृद्धये ।।४०
पञ्चोपचारै सपूज्य शिरसा श्रीगुरुं बुधः ।
प्रणवं श्रीवतुर्थ्यंतं नमोऽन्तं प्रणमेत्ततः ।।४१
पञ्चात्मक बिन्दुयुतं पञ्चमस्वरसंयुतम् ।
तदेव बिन्दुसहितं पञ्चमस्वरवर्जितम् ।।४२
पञ्चमस्वरसयुक्त मत्रीशं च सबिबिन्दुकम् ।
उद्धस्य बिन्दुसंहितं संवर्तकमथोद्धरेत् ।।४३

यह करते हुए सूर्य मूर्ति भगवान्को अर्घ्य देवे और इस अगले मन्त्रको पढ़कर सावधानीके साथ नमस्कार करे।३७।जगदम्बा भवानी तथा गणोंके समेत इस समस्त विश्वके आदि कारणभूत भगवान् शिवको नमस्कार है। रुद्र, ब्रह्मा, विष्णु और सूर्य स्वरूप आपको सादर नमस्कार है।३८। इस तरहसे कहकर प्रणाम करे और अपने आसन पर संस्थित होकर ऋषि आदि का स्मरण कर जलसे हाथोंको शुद्ध करे।३९। उपर्युक्त विधिसे पुनः भीम को धारण करना चाहिए और भगवान् शिव की भक्ति के लिए अङ्गन्यास करन्यासादि करनेचाहिए।४०।मतिमान् साधकका कर्त्तव्य है कि नतमस्तक होकर विनम्र भावसे पञ्चापचार द्वारा श्रीगुरुदेव का पूजन करे और 'श्री' पूर्वमें-चतुर्थी विभक्ति लगाकर अन्त में 'नमः' योजितकर 'ॐगुरवेनमः' इस तरह अर्चन में उच्चारण करता हुआ ही पूजन करे।४१। पचवर्षात्मक बिन्दुयुक्त पंचमस्वर उकारसहित और वहीं बिन्दुसमेत पंचमस्वरसे रहित पंचम स्वरके सहित बिन्दु सहित मन्त्रीश का उद्धार करके बिन्दु सहित अकारका उच्चारण करे।४२।

एतैरेवं क्रमाद् बीजैरुद्धृतैः ग्रणमेद बुधः ।
भुजयोरूरुयुग्मे च गुरुं गणपतिं तथा ।।४४
दुर्गां च क्षेत्रपाल च बद्धाञ्जलिपुटः स्थितिः ।
ओमस्त्राय फडित्युक्त्वा करौ संशोध्य षट् क्रमात् ।।४५
अपसर्पन्त्विवत्ति प्रोच्यं प्रणव तदनंतरम् ।
अस्त्राय फडिति प्रोच्य पार्ष्णिघातत्रयेण तु ।।४६
उद्धत्य विघ्ना भूयिष्टान् करतालत्रयेण तु ।
अन्तरिक्षगतान्दृष्ट्वा विलोक्य दिवि संस्थितान् ।।४७
निरुद्धप्राण आसीनो हंसमत्रमनुस्मरन् ।
हृदिस्थं जोवचैत यं ब्रह्मनाडया समानयेत् ।।४८
द्वादशांतः स्थविशदे सहस्रारमहाम्बुजे ।
चिच्चन्द्रमण्डलान्तःस्थं चिद्रूपं परमेश्वरम् ।

इस प्रकार से क्रमशः इन बीजों का उद्धार करके क्रम से भुजा और दोनों जघाओं में देवों का प्रणाम ध्यान करे-भुजा में गुरु और गणपति को और दोनों ऊरुओं में दुर्गा देवी और क्षेत्रपाल का प्रणाम करे और दोनों हाथ जोड़कर 'ॐअस्त्राय फट्' यह उच्चारणकर षडङ्ग न्यास करके अपने हाथों को छैबार शुद्ध करे ।४४-४५। इसके अनन्तर 'अपसर्पन्तु' इत्यादि मन्त्र को पढ़कर फिर प्रणव का उच्चारण कर और 'अस्त्राय फट् कहकर भूमि में तीन बार पार्णिघात करे ।४६। भूमि में से विघ्नों का निवारण करके तीनताली बजाकर अन्तरिक्ष में विघ्नों को देखकर तथा स्वर्ग के विघ्नों को देखकर उन्हें भी दूरकरे ।४७। प्राण वायु को रोकते हुए स्थित रहकर हंस मन्त्र का उच्चारण करता हुआ हृदय में स्थित जीव चैतन्य को सुषुम्ना नाड़ी के द्वारा परमेश्वर से मिला देवे ।४८। इसके उपरान्त द्वादश कमल हृदय में स्थित परमोज्ज्वल सहस्त्र दलों से युक्त महापद्म में चिदात्मक चन्द्रमण्डल में विराजमान चित्स्वरूप पमेश्वर का ध्यान करना चाहिए ।४९।

शीषदाहप्लवान् कुर्याद्रेचकादिक्रमेण तु ।
सषोडशचतुष्षष्टिद्वात्रिंद्गणनायुतैः ।। ०

वाय्वग्निसलिलाद्यैस्तैः स्ववेदाद्यै रनुक्रमात् ।
प्राणानायम्य मूलस्थां कुण्डलींब्रह्मरन्ध्रगाम् ।।५१
आनीय द्वादशांतःस्थसहस्राराम्बुजोमरे ।
चिच्चाद्रमण्डलोद्भूतपरमामृतधारया ।।५२
ससिक्तायां यनौ भूयः शुद्धदेहुः सुभावनः ।
सोऽहमित्यवतीर्याथ स्वात्मान हृदयाम्बुजे ।।५३
आत्मन्यावेश्य चात्मानममृत सृतिधारयाः ।
प्राणप्रतिष्ठां विधिवत्कुर्यादत्र यमासितः ।।५४
एकाग्रमानसो योगी विमृश्यातां च भातृकाम् ।
तुष्टितां प्रणवेनाथ न्यसेद् ब्राह्ये च मातृकाम् ।।५५
पुनश्च संयतप्राणः कुर्याद्दृष्टयादिकं बुधः ।
शङ्करं संस्मरश्चिते संन्यसेच्च विमत्सरः ।।५६

अब भूत शुद्धि का प्रकार बतलाया जाता है रेचक आदि के क्रम से शोध और दाह दूरकरके सोलह चौंसठ अथवा बत्तीस अपरादि वर्णोंसेवायु अग्नि,जलके क्रमसे अकारादि वर्णवाले अपने वेदके मंत्रोंसे सावधान होकर सविधि प्राणायाम करे और ब्रह्म रन्ध्रतक जाने वाली कुण्डलीको जगावे ।५०-५१। फिर जहाँसे चन्द्रमण्डलकी धारानिकलती है वहाँ द्वादश कमल और सहस्त्रकमलमें उसको लेजावे ।५२। उसमें शरीरका स्नानकराकर देह की शुद्धिकरे और अपने हृदयकमलमें वह मैं हूँ-ऐसीभव्य भावनाकरे ।५३। आत्माके द्वाराही आत्माका अमृतीकरण करके ससृमि धारसे विधि के साथ प्राण प्रतिष्ठाकरे और बहुतही सावधान रहे ।५४। इस रीतिसे योगी एकाग्र मनसे अन्तकी मात्राको प्रणवसे सपुटितकर उस पूर्व कथित मात्रा को बहिर्भागमें स्थित करे ।५५। इसके पश्चात् प्राण और दृष्टि आदि को रोककर अपने चित्तमें भगवान् शङ्कर का ध्यान करते हुए मात्मर्यका सर्वथा त्याग करके न्यास करना चाहिये ।५६।

प्रणवस्य ऋष्टिर्ब्रह्मा देवि गायत्रीमीरितम् ।
छन्दोऽत्र देवताहं वै परमात्मा सदाशिव ।।५७

अकारो बीजमाख्यातमुकारः शक्तिरुच्यते ।
मकारः कीलक प्रोक्त मोक्षार्थे विनियुज्यते ॥५८

अंगुष्ठद्वयमारम्भ तलातं परिमार्जयेत् ।
ओमित्युक्त्वाथ देवेशि करन्यास समारभेत् ।५९

दक्षहस्तस्थितांगुष्ठ समारभ्य यथाक्रमम् ।
वामहस्तकनिष्ठांतं विन्यत्सेपूर्ववत्क्रमात् ॥६०

अकारमप्युकारं च मकारं बिन्दुसंयुतम् ।
नमोऽन्तं प्रोच्य सर्वत्र हृदयादौ न्यसेदथ ॥६१

अकारं पूर्वमुद्धृत्य ब्रह्मात्मानमथाचरेत् ।
ङेंतं नमोंतं हृदये विनियुज्यात्तथा पुनः ॥६२

उकारं विष्णुसहित शिरोदेशे प्रविन्यसेत् ।
मकारं रुद्रसहितं शिखायां नु प्रविन्यसेत् ॥६३

इसके पश्चात् ऋषि आदिका स्मरण कर उन्हें प्रणामकरे । प्रणव का ब्रह्माऋषि, देवी गायत्री छन्द, सदाशिव परमात्मा देवता हैं ।५७। अकार बीज है उकार शक्ति है मकार कीलक है और मोक्ष के लिये इसका प्रयोग किया जाता है ।५८। हे देवि ! दोनों अंगूठेलेकर हथेली तक शुद्धकर फिर 'ओम्' ऐसा उच्चारण करके करन्यास करना चाहिए ।५९। दाहिने हाथके अंगूठेसे प्रारम्भकरके बाँयेहाथकी कनिष्ठिका पर्यन्त दक्षिण हस्तकी तर्जनी आदिका क्रमसे न्यासकरे ।६०। ओंकार-उकार और बिन्दुके सहित मकार सबके अन्तमें 'नमः'यह योजित हस्तमें करके हृदयमें न्यासकरना चाहिए ।६१। सर्वप्रथम अकारका उद्धारकर ब्रह्म आत्मा उच्चारण करे । यथा-अ ब्रह्मात्मने नमः'-इस रीतिसे चतुर्थी विभक्ति के एक बचनके अन्त में 'नमः' लगाकर हृदयमें न्यासकरे अर्थात् स्पर्शकरे ।६२। उकार वा विष्णुके सहित ध्यानकरके शिरोदेशमें विनियोग करे और रुद्रके सहित मकारको शिखा के स्थानमें विनियोग करना चाहिए ।६३।

एवमुक्त्वा मुनिर्मंत्री कवचं नेत्रमस्तके ।
विन्यसेद्देववेशि सावधानेन चेतसा ॥६४

अङ्गवक्त्रकलाभदात्पञ्च ब्रह्माणि विन्यसेत् ।
शिरोवदनहृद्गुह्यापादेष्वेतानि विन्यसेत् ॥६५
ईशानस्य कलाः पञ्च पञ्चस्वेतेषु च क्रमात् ।
ततश्चतुर्षु वक्त्रेषु पुरुषस्य कला अपि ॥६६
चतस्रः प्रणिधातव्याः पूर्वादिक्रमयोगतः ।
हृत्कंठांसेषु नाभो च कुक्षौ पृष्ठे च वक्षसि ॥६७
अगोरस्य कलाश्चाष्टौ पूजनीया यथ क्रमम् ।
पश्चात्त्रयोदशकलाः पायुमेढ्रोरुजानुषु ॥६८
जङ्घास्फिक्कटिपाश्वेषु वामदेवस्य भावयेत् ।
सद्यस्यापि कलाश्चाष्टो नेत्रेषु च यथाक्रमम् ॥६९
कीर्तितास्ता कलाश्चैवं पादयोरपि हस्तयो ।
प्राणे शिरसि बाह्वोश्च कल्पयेत्कल्पवित्तमः ॥७०

इस तरह 'अ ब्रह्मात्मने नमः' इत्यादि के क्रमसे कहकर कवच आदि का विधानकर । हे देवि! अस्त्र मन्त्रसे नेत्रोंमें सावधानहोकर चित्तलगाकर अङ्ग,मुख,कलाके भेदसे पाँचईशानदिका न्यास करे । पूर्वोक्त ईशानादि का शिर,वदन हृदय, गुह्य और चरणोंमें न्यासकरना चाहिए ।६४-६५। ईशान की पांच कलाकोक्रमपूर्वक शरीरके पाँचोंस्थानोंमें न्तासकरना चाहिए फिर पूर्व आदि दिवाके योगसे चारोंमुखोंमें पूर्व आदि क्रमसे पुरुषकी चारोंकला थिस्तकरे हृदय,कण्ठ,स्कंध,नाभिकोष पीठ,छाती इन स्थानोंसे अघोरकी आठ कला स्थित करे पीछे वायु जानुस्फिक्.कूला, कमर,पार्श्व भागों में वामदेव की तेरहकलकी भावना करनी चाहिए । सद्योजातकी आठ कला यथाक्रम नेत्रों में कल्पित करे ।६४-६५-६६-६७। इन कलाओं की कल्पना, हाथ चरण, प्राण, शिर और बाहु में कल्पना करे ।६८ से ७०।

अष्टत्रिंशत्कलान्यासमेवं कृत्वा तु सर्वशः ।
पश्चात्प्रणवविद्धीमान्प्रणवन्यासमाचरेत् ॥७१
बाहुद्वये कूर्परयोस्तथा च मणिबन्धयो ।
पार्श्वतोदरजङ्घेष पादयो पृष्टतस्तथा ॥७२

इत्थं प्रणयविन्यासं कृत्वा न्यासविचक्षणः ।
हंसन्यासं प्रकुर्वीत परमात्मविवोधिनि ॥७३

दोनों बाहु कुर्पर (कुहनी) तथा मणिबन्ध, पार्श्व, उदर, जंघा, पाद और पीठ में न्यास करे। इस तरह बुद्धिमार साधक ओ अठ्ठाईस कलाओं का न्यास करने के पश्चात् प्रणव का ध्यान करना चाहिए। बुद्धिमान् पुरुष को इस रीति से प्रणव न्यास पहिले करके पीछे परमात्मा के बोध कराने वाले इस न्यास को करना चाहिए।७१-७३।

॥ ध्यान, आवाहन अर्घ्य विधान पूर्वक शिवपूजा ॥

स्ववामे चतुरस्त्रं तु मण्डलं परिकल्पयेत् ।
औमित्यभ्यर्च्य तस्मिस्तु शंखमस्त्रोपशोधितम् ॥१
स्थाप्य साधारक त तु प्रणवेनार्चयेत्ततः ।
आपूर्य शुद्धतोयेन चन्दनादिसुगंधिना ॥२
अभ्यश्यं गन्धपुष्पाद्यः प्रणवेन च सप्तवा ।
अभिमंत्र्य ततस्तस्मिन्धेनुमुद्रां प्रदर्शयेत् ॥३
शखमुद्राँ च पुरतश्चतुरस्त्र प्रकल्पयेत् ।
तदन्तरेऽर्द्धचन्द्रं च त्रिकोणं च तदन्तरे ॥४
षट्कोणं वृत्तमेवेदं मण्डलं परिकल्पयेत् ।
शभ्यर्त्य गंधपुष्पाद्यैः प्रणवेनाथ मध्यतः ॥५
साधारमर्घ्यपात्रं च स्थात्य गधादिनार्चयेत् ।
आपूर्य शुद्धतोयेने तस्मिन्पात्रे विनी क्षिपेत् ॥६
कुशाग्रण्यक्षतांश्चैव यवव्रीहितिलानपि ।
आज्यसिद्धार्थपुष्पाणि भसितं च वरानने ॥७

श्री ईश्वर ने कहा—अपने बांई तरफ चतुरस्त्र (चौकोर) मण्डल की रचना करे और ॐ का इस प्रकार से अर्चन करके शंख अस्त्र से अर्थात् अस्त्रमन्त्र से शोधित करना चाहिए।१। उसको आधार पर स्थित करके प्रणव से यजन करे और चन्दनादिकी सुगन्ध वाले जल से पूर्ण कर देवे।२। प्रणवके द्वारा सातबार गन्धाक्षत पुष्पादिसे पूजन करना चाहिए इस प्रकार

से अभिमन्त्रित करके उसमें धेनु-मुद्रा बनाकर दिखानी चाहिए ।३। इसके आगे चौकोर शंख मुद्रा की कल्पना करनी चाहिए । उसके अन्तर में अर्ध चन्द्र और उसके अन्तर में त्रिकोण की कल्पना करे ।४। इस रीतिसे षट्-कोण मण्डलकी रचना करनी चाहिए। और उसके मध्यमेंही केवल ओंकार से गन्धाक्षत पुष्पादि के द्वारा अर्चना करे ।५। इसके पश्चात् उस आधार वाले अर्घ्य पात्र को स्थापित करके गन्धाक्षतादि यजन करे और पवित्र जल से उसे परिपूर्ण कर देवे ।६। हे वरावने ! कुश का अग्रभाग, अक्षत, यव, व्रीहि, तिल, घृत, श्वेत सरसों के पुष्पों और भस्म उसमें डाले ।७।

सद्योजातादिभिर्मन्त्रः षडंगैः प्रणवेन च ।
अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैरमिमंत्र्य च वर्मणा ।।८
अवगुंठयास्त्रमन्त्रेण सरक्षार्थं प्रदर्शयेत् ।
धेनुमुद्रां च तेनैव प्रोक्षयेदस्त्रमन्त्रतः ।।९
स्वात्मानं गन्धपुष्यादिपजोपकरणान्यपि ।
पद्मस्येशानदिक्पद्मं प्रणवोच्चारपूर्वकम् ।।१०
गुर्वासिनाय नम इत्यासनं परिकल्पयेत् ।
गुरोर्मूर्ति च तत्रैव कल्पयेदुपदेशतः ।।११
प्रणवंगुं गुरुभ्योऽन्ते नमःप्रोच्यापि देशिकम् ।
समावाह्य ततो ध्यातेद्दक्षिणाभिमुखं स्थितम् ।।१२
सुप्रसन्नमुखं सौम्यं शुद्धस्फटिकनिर्मलम् ।।१३
एवं ध्यात्वा यजेद् गन्धपुष्पादिभिरणुक्रमात् ।
पद्यप्य नैर्ऋते पद्मे गणपत्यापनोपरिः ।।१४
मूर्ति प्रकल्प्य तत्रैव गणानां त्वेति मंत्रतः ।
समावाह्य ततो देवं ध्यायेदेकाग्रमावसः ।।१५

सद्योजातदि मन्त्र षडङ्ग और प्रणवसे गन्धाक्षत पुष्पादि उपचारों के द्वारा अभिमन्त्रित करके फिर कवच मन्त्रसे अभिमंत्रित करना चाहिए ।८। अस्त्र मन्त्रसे संयुक्त कर रक्षाके लिए धेनुमुद्रा को उसे दिखाना चाहिए ।

अस्त्र-मन्त्रके द्वाराही धेनुमुद्राका प्रोक्षण करे ।९। अपने आत्मामें गन्धाक्षत पुष्पादिकी पूजा सामग्री से अस्त्र-मन्त्र के द्वारा प्रोक्षण करे और कमल के ईशान के तरफ की दिशा में कमल में ओंकार के उच्चारण के साथ 'गुरु आसनाय नमः' इस तरह कहते हुए आसनकी कल्पना करे और गुरुदेव के उपदेश के अनुसार वहाँ पर श्री गुरुदेव की प्रतिना की कल्पना भी करती चाहिए ।१०। 'प्रणवगुं गुरुभ्यो नमः' इस रीति से श्री गुरुदेव के प्रति कहकर दक्षिण दिशा के सामने स्थित होकर उनका आवाहन करके ध्यान करना चाहिए ।१२। ध्यान करने का प्रकार बतलाते हैं— सुन्दर एवं प्रसन्न मुख है— स्फटिक मणि के तुल्य अति निर्मल वरदान करने वाले दोनों हाथ हैं जो अभयका दान भी साथमें किया करते हैं। दो नेत्रों से युक्त ऐसे शिवके शरीर वाले गुरुदेव हैं ।१३। इसउक्त प्रकारसे गुरुदेवका ध्यान करके क्रमशः गन्धाक्षत पुष्पादि उपचारों से उनका अर्चन करें और उस पद्म के नैऋत्य दिशा की ओर वाले पद्म पर स्थित गरोशके आसन पर 'गणानां त्वा' इत्यादि मन्त्र से गणपति की मूर्ति की कल्पना कर देवता का वहाँ आवाहन करे तथा उनका ध्यान भी करना चाहिए ।१५-१५।

रक्तवर्णं महाकायं सर्वाभरणभूषितम् ।
पाशांकुष्टदशनन्दधानङ्करपङ्कजः ।।१६
गजानन प्रभुं सर्वविघ्नौघ्नमुपासितुः ।
एव ध्यात्वा यजेद् गन्धपुष्पाद्यैरुपचारकै ।।१७
कदलीनारिकेलाम्रललड्डुकपूर्वकम् ।
नैवेद्यं च समर्प्याय नमस्कुर्याद् गजाननम् ।।१८
पद्मस्य वायुदिक्पद्म सकल्प्य स्कान्दमासनम् ।
स्कन्दमूर्ति प्रकल्प्याथ स्कन्दमावाहयेद् बुध ।।१९
उच्चार्य्य स्कन्दगायत्रीं ध्यायेदथ कुमःरकम् ।
उद्यदादित्यसंकाशं मयूरवरवाहनम् ।।२०
चतुर्भुजमुदारांगं मुकुटादिविभूषितम् ।
वरदाभयहस्तं च शक्तिकुक्कुटधारिणम् ।।२१

गणपति का लाल वर्ण है, महान् विशाल शरीर है जो कि समस्त आभरणों से युक्त है। पाश अंकुश इष्ट दर्शन कर कमलों में धारण किये हुएहैं। इसतरह सब विघ्नोंकेनाश करनेवाले अस्त्ररूपप्रभु गणपतिकाध्यान करके फिर उनको षोड़श उपचारोंसे विधिवत्पूजनकरनाचाहिए।१६-१७। कदलीफल नूतन वस्तु, नारियल, आम, लड्डू आदि नैवेद्य सादर समर्पित करके श्रीगणेशजीको नमस्कार करे।१८। कमल के वायुकोण के पद्म में स्कन्दका आसन कल्पित करे उस पर भगवान् स्कन्दकी प्रतिमाकी कल्पना करे, फिर स्कन्दका आवाहन करना चाहिए।१९। स्कन्द गायत्रीका उच्चारणकर कुमारका आवाहन करे। भगवान् स्कन्दका ध्यान करे जो सूर्य के तुल्य कान्ति वालेहैं मयूर ऊपर समारुढ़ हैं चार भुजा वाले, उदार शरीर, मुकुटआदि से विभूषितहैं, वर तथा अभयके दान करने वाले हैं और शक्ति मुकुटके धारण करनेवालेहैं ऐसाध्यानकरे और गन्धाक्षत पुष्पादिसे सविधि अर्चनकरे। इसके पश्चात् पूर्वद्वारमेंस्थित अन्तपुरके अधिप साक्षात् नंदीश्वरकीपूजाकरें जोकि सुवर्णतुल्य समस्त आभूषणोंसेविभूपित हैं।२०-२१।

एवं ध्यात्वाऽथ गधाद्यै रुपचारैरनुक्रमात् ।
संपूज्य पूर्वद्वारस्य दक्षशाखासुपाश्रितम् ॥२२
अन्तःपुराधिपं साक्षान्नन्दिनं सम्यगर्चयेत् ।
चामीकराचलप्रख्य सर्वाभरणभूषितम् ॥२३
बालेन्दुमुकुट सोम्यं त्रिनेत्रं च चतुर्भुजम् ।
दीप्तमूलमृजीटंकहेमवेत्रधरं विभुम् ॥२४
चद्रबिम्बाभवदन हरिवक्त्रमथापि वा ।
उत्तरस्यां तथातस्य भार्या च मरुतां सुताम् ॥२५
सुयशां सुव्रतामम्बपादपण्डनतत्पराम् ।
सपूज्य विधिवद् गन्धपुष्पाद्यै रुपचारकः ॥२६
ततः संप्रोक्षयेत्पद्मं सास्त्रशंखादविद्भिः ।
कल्पयेदासन पश्चादाधारादि यथाक्रमम् ॥२७
आधारशक्ति कल्ताणीं श्यामध्यायेदधोभुवि ।
तस्याः पुरस्तादुत्कठमनन्तं कुण्डलाकृतिम् ॥२८

नंदीश्वर वाचचन्द्र का मुकुट धारण करने वाले, सौम्य मूर्ति, तीन नेत्र और चार भुजायें धारण करने वाले अतिशय दीप्तिसे युक्त हैं। शूल, मृगी, टंक और सुवर्णके नेत्र धारण करनेवाले हैं तथा सर्वज्ञ हैं। नदीश्वर चन्द्रमण्डल एवं सिंहकेसमान मुखवालेहैं। ऐसे नन्दीश्वरका पूजनकरे।२४। ।२५। उत्तर की ओर मरुतों की कन्या उनकी भार्या सुयशा नाम की है जो शोभन व्रत वाली पार्वती के चरण कमलों में तत्पर हो चन्दन पुष्पादि अनेक उपचारों से यजन करे।२६। इसके उपरान्त उस कमल को अस्त्र मन्त्र के सहित शंखके जलकी विन्दुओं से प्रोक्षण करे और इसके पश्चात् आधारादि आसन की कल्पना करनी चाहिए।२७। आधार शक्ति श्याम स्वरूप कल्याण रूपकी नीचे भूमि में ध्यान करना चाहिए उसके आगे ऊर्ध्व कण्ठ में कुण्डलाकार सुशोभित भगवान् अनन्त का ध्यान करे।२८।

धवल पंचफणिन लेलिहातमिवाम्बरम्।
तस्योपर्यासनं भद्रं कंठीरवचतुष्पदम्॥२९
धर्मो ज्ञान च वैराग्यश्चर्य च पदानि व।
आग्नेयादिश्वेतपीतरक्तश्यामानि वर्णतः॥३०
अधर्मादीनि पूर्वादीन्युत्तरांतान्यनुक्रमात्।
राजादर्तमणिप्रस्यान्यस्य गात्राणि भावयेत्॥३१
अधोर्ध्वच्छदनं पश्चात्कंदं नाल च कण्ठवान्।
दलादिकं कर्णिकाञ्च विभाव्य क्रमशोऽर्चयेत्॥३२
दलेषु सिद्धयश्चाष्टौ केसरेषु च शक्तिकाः।
रुद्रां वामादयस्त्वष्टौ पूर्वादिपरितः क्रमात्॥३३
कर्णिकायां च वैराग्य बीजेषु नव शक्तया।
वामाद्या एव पूर्वादि तदन्ते च मनोन्मदी॥३४

अनन्तदेव का श्वेत बर्ण वाला शरीर है जो कि पाँच फण-मण्डल से युक्त है और आकाशको चाटते हुए हैं। उनके निकट ही में सिंह के समान आकार वाले, चार चरणोंसे युक्त धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्यकेचरणों को आसन पर कल्पित करें। आग्नेयी आदि दिशा श्वेत, पीत, रक्त श्याम वर्णऔरअधर्मादिकों को पूर्व आदि दिशा के अनुक्रमसे पधारनेओरराजावर्त

नामकी मणि (एक तरह के उपरान्त का नाम है) आदि की इनके कलेवर में भावना करे ।२६। से ३१। इसके पश्चात्‌नीचे तथाऊँचेमें इन अनन्त का इसी रत्नसे आच्छादन की कल्पना करे फिर स्कन्ददेवका नीलकटक कमल के दल और कर्णिका की भावना करके क्रमशः यजन करना चाहिए ।३२। दलोंमें तो सिद्धिकी कल्पना करनी चाहिए, केशरों में शक्तिकी कल्पना करे और पूर्वादि दिशाओंमें रुद्र तथा नामादि आठ शक्तियों की कल्पना करनी चाहिए ।३३। कर्णिकामें वैराग्य और बीजों में नवशक्ति की कल्पना करें वामादि शक्तियों की पूर्वादि दिशा में कल्पना करे ।३४।

कन्दे शिवात्मको धर्मो नाले ज्ञानं शिवाश्रयम् ।
कर्णिकोपरि वाह्नेय मण्डलं सौरमेन्दवम् ॥३५
आत्मविद्या शिवाख्य चततवत्रयमतः मरम् ।
सर्वासनोपरि सुखं विचित्रकुसुमोज्ज्वलम् ॥३६
परव्योमावकाशाख्यवित्तयाऽतीव भास्करम् ।
परिकल्प्यासनं मूर्त्तं पुष्पविन्यासपूर्वकम् ॥३७
आधारशक्तिमारभ्य शुद्धविद्यासनावधि ।
ऊँथारादिचतुर्थ्यंत नाममंत्रं नमोन्तकम् ॥३८
उच्चार्य पूजयेद्विद्वन्सर्वत्रेवं विधिवभः ।
अङ्गवक्त्रकलाभेदात्पच ब्रह्माणि पूर्ववत् ॥३९
यिन्यसेत्क्रमशौ मूर्त्तौ तत्तन्मुद्राविचक्षणः ।
आवाहयेततो देवं पुष्पाञ्जलिपुटः स्थितः ॥४०
सद्योजात प्रपद्यामीष्यारभ्यौसन्तमुज्चरम् ।
आधारोत्थितनादं तु द्वादशग्रन्थिभेदतः ॥४१
ब्रह्मरध्रातमुच्चार्यं ध्यायेदीकारगाचरम् ।
शुद्धस्फटिकसंकाश देव निष्कलमक्षरम् ॥४२

इसके पश्चात् मनोन्मनी शक्ति को कन्द में शिवात्मक धर्म नाल में, शिवाश्रय ज्ञानकर्णिकाके ऊपर आग्नेय मण्डल चन्द्र-सूर्य सम्बन्धिका ध्यान करना चाहिए ।५। आत्मविद्याज्ञान शिवब्रह्मादिक तीन तत्व इससे परे

हैं। समस्त आसनों पर मुखके साथ विचित्र उज्ज्वलपुष्प स्थिर करे।३६। और दहर विद्या से महा उज्ज्वल आसन मूर्ति की कल्पना कर पुष्प रखे।२७। आधार शक्ति से आरम्भ करके शुद्धविद्या से आसन पर्यन्त ओंकार सहित चतुर्थी विभक्ति से अन्त में "नमः"—यह लगाकर ही सर्वत्र यजन करे।३८। विद्वान् साधकको उचित है कि सब स्थानोंमें विधि विधान के साथ पूजन करना चाहिए अङ्ग, मुख तथा कला के भेद से उन ईशान प्रभृति पञ्च ब्रह्मको पूर्वकी भाँति उनकी मूर्तिमें संस्थित कर मुद्रा दिखावे इसके पश्चात् पुष्पोंको अजलि ग्रहण कराकर देवीका आवाहन करे।३६-।४०। 'सद्याजत प्रपमुामि' यहाँ से आरम्भ करके शिवों में वस्तु सदा शिवाम्' यहाँ पर्यत उच्चारण करे, मूलाधर से उठे हुए नाद वारह चक्र की ग्रन्थि तोड़कर ब्रह्मरघ्र से उच्चारण कर ओंकार गोचर परमेश्वर का ध्याँन ऐसा करना चाहिए कि शुद्ध स्फटिक मणि के तुल्य हैं, कला से रहित हैं और अक्षर उनका स्वरूप हैं।४१-४२।

कारणं रर्वलोकानां सर्वलोकमय परम्।
अन्तर्बहिः स्थितं व्याप्य ह्यणोरल्प महत्तमम्।।४३
भक्तनामप्रयत्नेन दृश्यमीश्वरमव्ययम्।
ब्रह्मेन्द्रविष्णुरुद्राद्यैरपि देवैरगोचरम्।।४४
वेदसारं च विद्वद्भिरगीचरमिति श्रुतम्।
आदिमध्यान्तरहित भेषज भवरीगिणाम्।।४५
समाहितेन मनसा ध्यात्वैवं परमेश्वरम्।
आवाहनं स्थापनं च सन्निरोध निरीक्षणम्।।४६
नमस्कारं च कुर्वीत बद्ध्वा मुद्राःपृथक्पृथक्।
ध्यायेत्सदाशिव साक्षाद्देव सकलनिष्कलम्।।४७
शुद्धस्फटिककसंकाशं प्रसन्नं शीतलद्युतिम्।
विद्युद्वलयसंकाशं जटामुकटभूषितम्।।४८
शार्दूलचर्मवसन किंचित्स्मितमुखाम्बुम्।
रक्तपद्मदलप्रख्यपाणिपादतलाधरम्।।४९

सर्वलक्षणसम्पन्न सर्वाभरणभूषितम् ।
दिव्यायुधकरैर्युक्त दिव्यगन्धानुलेपनम् ।।५०

परमेश्वरका स्वरूप परम दिव्य है और इन समस्त लोकों के कारण भूत है । समस्त देवोंसे परिपूर्ण रूपवाले हैं । पर अन्तरबाहर सर्वत्रव्याप्त रहनेवाले और अणु स्वरूप तथा परममहान्भी हैं । भक्तों को बिना प्रयत्न कियेही दिखाई देनेवाले ईश्वर हैं । उनका स्वरूप विनाश रहित है और ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु, रुद्र आदि बड़े-बड़े देवताओंको भी अगोचर अर्थात् न दिखलाई देनेवाले हैं ।४३-४४। परमात्मा का स्वरूप वेदों का सारमय है और पूर्ण विद्वानोंके द्वारा प्राप्त होनेके योग्य होताहै । उनकास्वरूप ऐसा अद्भुत् है जिसमें आदि और अन्त कुछ भी नहीं होता है । परमेश्वर का स्वरूप संसारके रोगियोंके रोग निवारण करनेके लिये भेपज के समान होता है ।४५। ऐसे उक्त विलक्षण गुणों से युक्त परमात्माका ध्यान अत्यंत सावधान मनसे करना चाहिए और फिर उनका आवाहन स्थापन,सन्निरोध दर्शन कर हाथों को जोड़कर नमस्कार करना चाहिए । पृथक् २ मुद्रायें बाँधे और निष्फल साक्षात् देव शिवका ध्यान करे ।४६-४७। अब भगवान् शिवके ध्यान कग्नेके लिए उनके अड़तीस कलामय स्वरूपक। वर्णन किया जाताहै जिससे उसी प्रकारका ध्यान किया जा सके । विशुद्ध स्फाटकमणि के तुल्य स्वच्छ स्वरूप वाले, परम प्रसन्न रहने वाले, शीतलकाँतिसे युक्त बिजली के बल (कड़ा) के तुल्य और मस्तक पर जटा-जूटोंके मुकुट जैसा धारण करने वाले शिवका स्वरूप होता है ।४८। शार्दूलके चर्म का वस्त्र ओढ़े हुए हास्यसे युक्त मुख कमलवाले, रक्त कमलके तुल्य हस्तएवं चरण वाले तथा अधरों वाले, समस्त सुलक्षणों से युक्त तथा सम्पूर्ण सुन्दर आभूषणोंको धारण करनेवाले, श्रेष्ठ और परमदिव्य अनेक आयुधों से युक्त और दिव्य गन्धलेपको लगानेवाला भगवान् शिवका स्वरूप है ।४९-५०।

पञ्चवक्त्रं दशभुजञ्च प्रखण्डशिखामणिम् ।
अस्य पूर्वमुख सौम्यं बाल केसदृशप्रभम् ।।५१
त्रिलोचनारविन्दाढ्यं बालेन्दुकृतशेखरम् ।
दक्षिर्णनोलजीमूतसमानरुचिरप्रभम् ।।५२

भ्रु कुटीकुटिलं घोरं रक्तवृत्तत्रिलोचनम् ।
दंष्ट्राकराल दुष्प्रेक्ष्य स्फूरिताधारपल्लवम् ।।५३
उत्तरं विद्रु मप्रख्यं नीलालकविभूषितभ् ।
सद्विलास्रं त्रिनयन चन्द्रार्द्धकृतशेखरम् ।।५४
पश्चिमं पूर्णचन्द्राभ लोचनत्रितयोज्ज्वलम् ।
चन्द्रलेखाधरं सौम्य मदस्मितमनोहरम् ।।५५
अतीवसौम्यमुत्फुल्ललोचनत्रितयोज्ज्वलम् ।।५६

भगवान् शिवका स्वरूप पाँच मुख वाला, दश भुजाओं वाला, शिखा-मणिमे चन्द्रग्लाको धारण करने और पूर्व दिशाकी ओर रहने वाला मुख परम सौम्य तथा सूर्य की कान्तिके तुल्यकांति वाला है ।५१। भगवान् शिव तीन नेत्र धारण करने वाले हैं और कमल के तुल्य शोभा से युक्त हैं जिनके मस्तक पर सर्वदा बाल चन्द्रमा विराजमान रहता है और दक्षिण दिशा की ओर रहने वाला मुख नील मेघ के तुल्यकांति वाला होता है ।५२। भगवान् शिव के स्वरूप का ध्यान ऐसा ही करना चाहिए कि उनकी भृकुटियाँ टेढ़ी रहती हैं, अतिघोर रक्त नेत्र है, बहुत ही भीषण कराल दाढ़े हैं और सर्वदा सृष्टि का संहार करने की मुद्रा में ओठों को फड़काते रहते हैं ।५३। उत्तर की ओर वाला मुख मूँगाके तुल्य हैं, नीले वर्णवाली अलकें उस मुखके ऊपर शोभायमान हैं, परम सुन्दर विलाससे परिपूर्ण तीन नेत्र धारण करने वाले और मस्तकपर चन्द्रमाका अर्द्ध भाग शोभित हो रहा है ।५४। भगवान् शिवके पाँच मुख बतलाये गये है उनमें जो मुख पश्चिम दिशा की ओर है पूर्ण वह चन्द्र के समान कान्ति से युक्त होता है, वहाँ भी उस मुख में तीन नेत्र विराजमान हैं और अर्ध चन्द्र शोभा दे रहा है तथा सौम्य एवं मन्द हास्य से परम मनोहर हैं ।५५। अब शिवके पश्चम मुखका वर्णन किया जाता है जिसका ध्यान ऐसा करना चाहिये कि वह स्फटिक के समान उज्ज्वल, चन्द्र रेखा से युक्त, अत्यन्त समुज्ज्वल एवं मनोहर, तीन नेत्र से युक्त है ।५६।

दक्षिणं शूलपरशुवज्रखङ्गानलोज्ज्वलम् ।।५७

सर्वे पिनाकनाराचघण्टापाशांकुशोज्ज्वलम् ।
निवृत्या ज नुपर्यन्तमानाभि च प्रविष्ठयः ॥५८
आकण्ठ विद्यया तद्वदाललाट तु शान्तया ।
तदूर्ध्वं शान्त्यपीताख्यकलया परयो तथा ॥५९
पञ्चाध्वव्यापिनं तस्मात्कलाञ्चकविग्रहम् ।
ईषानमुकुटं देवं पुरुषाख्यं पुरातनम् ॥६०
अघोरहृदयं तद्वद्वामगुह्य महेश्वरम् ।
सद्योजातं च तन्मूतिमष्टविंशत्कलामयम् ॥६१
मातृकामयमीशान पञ्चब्रह्ममयं तथा ।
ॐकाराख्यमगं चैव हंसन्यासमयं नथा ॥६२
पंचाक्षरमय देवं षडक्षरमयं तथा ।
अगषट्कमयञ्चैव जातिषट्कसमन्वितम् ॥६३

दक्षिण भाग में शूल, परशु, वज्र और खग अग्नि के तुल्य उज्ज्वल है और वांई ओर नाराच, घण्टा पाश और अंकुश से अग्नि के समान उज्ज्वल हैं जो जानुतक निवृत्या नामकला और नाभि में प्रतिष्ठित नाम की कला से कण्ठ पर्यन्त विद्या तथा ललाट पर्यन्त शान्ता नामवाली कला और इससे भी ऊपर शान्त्यतीत पराकला से युक्त तथा पाँच स्थान में व्यापक होने के कारण निवृत्ति आदि पंच कलामय शरीर है। ईशान देव मुकुट पुरुष पुरातन मुख है ।५७-५८-६०। अघोर हृदय है, वामदेव गुह्य है, सद्योजात चरण है, इस तरह अडतीस कलाओं से पूर्ण उसकी मूर्ति है ।५१। ईशान मातृका पूर्ण है तथा पंच ब्रह्ममय है, ओंकारमय तथा हसन्या समय है ।६२। यह देव पञ्चाक्षरमय है तथा षडक्षर है, छै अंकमय और जाति से युक्त है ।६३।

एवं ध्यात्वाथ मद्वामभागे च मनोन्मनीम् ।
गौरीमिमाय मन्त्रेण प्रणवा द्येन भक्तितः ॥६४
आवाह्य पूर्ववत्कुर्यान्नमस्कारान्तमीश्वरी ॅ
ध्यायेत्ततस्त्वां देवेशि समाहितमना मुनिः ॥६५
प्रफुल्लोत्पलपत्राभां विस्तीर्णायतलोचनाम ।

पूर्णाचन्द्राभवदनां नीलकुंचितमूर्द्धजाम् ॥६६

नीलोत्पलदलप्रख्यां चन्द्रार्धकृतशेखराम् ।

अतिवृत्तघनोत्तुंगास्निग्धीनपयोधराम् ॥६७

मनुष्यां पृथुश्रोणी पीतसूक्ष्मतराम्बराम् ।

सर्वाभरणसम्पन्नां ललाट तलकोज्ज्वलाम् ॥६८

विचित्रपुष्पसंकीर्णकेशपाशोपशोभिताम् ।

सर्वतोऽनुगुणाकारां किञ्चिल्लज्जानताननाम् ॥६९

हेमारबिन्दं विलसद्दधानां दक्षणे करे ।

दण्डवच्चामरं हस्त न्यस्यासीनां सुखासने ।

दण्डवच्चामर हस्तं न्यस्यासीनां सुखासने ।७०

मेरे बाम भाग में आप मनोन्मनी रूप गौरी को लेकर स्थित है, ऐसा ध्यान करना चाहिए और 'गौरीमिमाय'-इस मन्त्र तथा ओंकार के सहिता ध्यान करे ।६४। हे ईश्वरि ! आवाहन करके पूर्व की भाँति नमस्कार करना चाहिए ।६५। अब ध्यान करने का स्वरूप बतलाया जाता है, विकसित कमल के तुल्य कांति से पूर्ण विशाल नेत्रों वाली हैं, पूर्ण चन्द्रमा के समान मुखबाली है, नीच वर्ण वाले कुंचित केशों से शोभित हैं ।६६। नील वर्ण के कमल के दल के समान अर्ध चन्द्र को मस्तक पर धारण करने वाली हैं निस्तीर्ण, घने, ऊँचे और स्निग्धपयोधरों से सुशोभित हैं ।६७। सूक्ष्म कटि तट वाली तथा परिपुष्ट श्रोणिभाग वाली, पीत तथा बारीक वस्त्र धारण करने वाली है, समस्त आभूषणों को धारण करने वाली हैं तथा मस्तक पर उज्ज्वल तिलक धारण किये हुए हैं ।६८। अद्भुत पुष्पों से सुशोभित केश पाश वाली हैं समस्त सद्गुणों से परिपूर्ण हैं, लज्जा के कारण अपना मुख नीचे की ओर करने वाली हैं ।६९। अपने दाहिने हाथ में क्रीड़ा के लिये सुवर्ण का कमल लिये हुए है और दूसरा हाथ सिंहासन पर रक्खे हुए हैं ।७०।

एवं मां त्वां च देवेशि ध्यात्वा नियतमानसः ।

स्नापयेच्छुखतोयेन प्रणवप्रोक्षणक्रमात् ॥७१

भवे त्त्वेनातिभव इति पाधं प्रकल्पयेत् ।

वामाय नम इत्युक्त्वा दद्यादाचमनीयकम् ॥७२
ज्येष्टाय नम इत्युक्त्वा शुभ्रवस्त्र प्रकल्पयेत् ।
श्रेष्टाय नम इत्युक्त्वा दद्याद्यज्ञोपवीतकम् ॥७३
रुद्राय नम इत्युक्त्वा पुनराचमनीयकम् ।
कालाय नम इत्युक्त्वा गन्ध दद्यःत्सुसंस्कृतम् ॥७४
कलविकरणाय नमोऽक्षतं च परिकल्पयेत् ।
वलविकरणाय नम इति पुष्पाणि दीपयेत् ॥७५
बलाय नम इत्युक्त्वा धूप दद्यात्प्रयत्नतः ।
बलप्रथमनायेति सुदीपं चैव दापयेत् ॥७६
ब्रह्मभिश्चषडंगैश्च ततो मातृकया सह ।
प्रणवेन शिवेनैव शक्तियुक्तेन च क्रमात् ॥७७
मुद्रा प्रदर्शयेन्मह्यं तुभ्यञ्च वरवर्णिनि ।
मयि प्रकल्पयेत्पूर्वमुपचारांस्ततस्त्वयि ॥७८
यदा त्वयि प्रकुर्वीत स्त्रीजिंगं योजयेत्तदा ।
इयानेव हि भेदोऽस्ति नान्यः पार्वति कश्चन ॥७९
एवं ध्यानं पूजन च कृत्वा सस्यग्विधानतः ।
मम वरणपूजां च प्रारभेत विचक्षणः ॥८०

हे देवि ! इस तरहसे अपना मन लगाकर हमारा और आपका ध्यान किया करताहै तथा शंख के जल से स्नान कराकर ओंकार सेप्रोक्षणकिया करता है वह सिद्ध होता है ।७१। 'भवे भवेनाति भवे' इस मन्त्र से पाद्य तथा 'वामदेवाय नमः'—यह उच्चारण करके आचमन देना चाहिये ।७२ 'ज्येष्ठाय नमः' इसको पढ़कर शुभ्र वस्त्र समर्पित करे । 'श्रेष्ठायनमः-यह पढ़कर यज्ञोपवीत का समर्पण करना चाहिये ।७३। 'रुद्राय नमः-इसको पढ़कर आचमन करावे और 'कालात नमः' इसको बोलकर सुन्दर गन्ध को देवे ।७४। 'कक्ष विकरणाय नमः'-यह मन्त्र पढ़कर अक्षत तथा बल-विकरणाय नमा'-यह बोलकर पुष्पों का समर्पणः करना चाहिये ।७५। 'बलाय वमः'-यह उच्चारण करधूपका आघ्रापन करावे । बलप्रमथन्याय

नमः'-यह पढ़कर दीप दर्शनकरावे ।७६। ब्रह्म षडङ्ग और मात्रा के सहित प्रणव शिव और शक्तिकेसहित क्रमसे मुझे और तुमको मुद्रादिखावे सर्व-प्रथम मेरा पूजनकरे इसकेअनन्तर तुम्हारे पूजनके लिए समस्तवस्तु अर्पितु करे ।७७-७८। जिस समय तुम्हारी पूजा करे तब स्त्री-लिंग लगा देना चाहिए। केवल इतना ही भेद होता है अन्य कुछ नहीं है ।७९। हे देवि ! इसी विधि से पूर्ण विधान के साथ ध्यान तथा पूजन करके फिर बुद्धिमान् साधक भक्तको मेरी आवरण पूजाका विधान करना चाहिये ।८०।

शिव के आठ नामों का अर्थ और लिंग-पूजा विधि

शिवो महेश्वरश्चैव रुद्रो विष्णुः पितामहः ।
संसारवैद्यः सर्वज्ञः परमात्मेति मुख्यतः ।।१
नामाष्टकमिदं नित्य शिवस्य प्रतिपादकम् ।
आद्याग्तपञ्चकं तत्र शांत्यतीताद्यमुक्रमात् ।।२
सज्ञा सदाशिवादीनां पञ्चोपाधिपरिग्रहात् ।
उपाधनिवृत्तौ तु यथास्व विनिवर्तते ।।३
पदमेव हितं नित्यमनित्याः पदिनः स्मृताः ।
पदानां परिवृत्तिः स्यांमुच्यते पदिनो यतः ।।४
परिवृत्यन्तरे त्वेवं भृयस्तस्याप्युपाधिना ।
आत्मांतराभिधानं स्यात्पदाद्यनामपञ्चकम् ।।५
अन्यतु त्रितयं नाम्नामुपादानादिभेदतः ।
त्रिविधोपाधिरचनाच्छिव एव तु वर्तते ।।६
अनादिमलसश्लेषप्रागभावात्स्वभावतः ।
अत्यन्तपरिशुद्धा मेत्यतोऽयं शिव उच्यते ।।७

ईश्वरने कहा—शिव, महेश्वर, रुद्र, विष्णु, पितामह, संसार वैद्य, सर्वज्ञ, परमात्मा ये मुख्य आठ परमात्मा शिव के नाम हैं, जो शिव के नित्य प्रतिपादक हैं। इसमें पितामह तक प्रथम पाँच नामोंमें शांत्यतीत के क्रमसे पाँच उपाधितों के ग्रहण करने से शिवादि की संज्ञा ग्रहण की है। उपाधि के निवृत्त होने यह संज्ञा भी निवृत्त हो जाती है ।१-२-३। पद

सत्य है और सदाशिवादि मूर्ति अनित्य है पदों का ही विनिमय होता है इससे मूर्ति आदि छूटजाती है ।४। पदान्तर की प्राप्ति में फिर उपाधि से उस पद की प्राप्ति होती है । जो यह आदि का पञ्चक अन्य आत्मा के जानने वाला होती दूसरे तीन नामों का इस जगत् के उपादन कारण स्वरूप प्रकृति आदि के योग से तीन तरह की उपाधि कहने के कारण ये तीन नाम भी शिव रूप ही होते हैं ।५-६। अनादि मल के सङ्ग के स्वभाव से जिस तरह जल स्वच्छ होता है तथा स्वादिष्ट होता है परन्तु वही जल अन्य देश में प्राप्त हो जाने पर खारी तथा गदला हो जाता है परन्तु जल का स्वभावती निर्मजता युक्त ही होता है । इसी तरह उपाधि रहित होने से वह एक ही निर्मल शिव है जो उपाधि से युक्त होने पर अनेक धारण कर लेते हैं । अब उन नामों का अर्थ बतलाया जाता है अत्यन्त परिशुद्ध आत्मा होने से महादेव को शिव कहा करते हैं ।

अथवा शेषकल्याणगुणकघन ईश्वरः ।
शिव इत्युच्यते सद्भिः शेवतप्व र्थवेदिभि ।८
त्रयाविंशतितत्वेभ्यः पराः प्रकृतिरुच्यते ।
प्रकृतेस्तु परं प्राहुः प्रारुषं पञ्चविंशकम् ।।६
यद्वेदादो स्वरं प्राहुर्वाच्यवाचकभादतः ।
वेदैकवेद्यं याथात्म्य द्वेदान्ते च प्रतिष्ठितम् ।१०
स एव प्रकृतो लीना भोक्ता यः प्रकृतेर्यतः ।
तस्य प्रकृतिलीतस्य यः परः स महेश्वरः ११
तदधानप्रवृत्तित्वात्वक्रते पुरुषस्य च ।
अथवा त्रिगुणं तत्व माये यमिदमव्ययम् ।।१२
म यां प्रकृतै दित्तान्मायिनं तु महेश्वरम् ।
मायाविमाचकाऽनन्तो महेश्वरसमन्वयात् ।।१३
रुद्दुख दुःखहेतुर्वा तद्रावयति यः प्रभुः ।
रुद्र इत्युच्यते तस्माच्छिवः परमकारणम् ।।१४

अथवा समस्त कल्याणकारी गुणों के एक ही आधार होने के कारण

उन ईश्वर को शिव तत्व के ज्ञाता महात्मा लोग उन्हें शिव कहा करते हैं ।८। महेश्वर शब्द का अर्थ है तेईस तत्वों से परे प्रकृति है उस प्रकृति से भी परे पच्चीसवां पुरुष होता है ।६। वाच्य तथा वाचक भाव से जिसको वेद के आदि में ॐकार कहते हैं, वह वेद के द्वारा ही जानने के योग्य है और आत्म स्वरूप में वेदान्त में प्रतिष्ठित है ।१०। वह प्रकृति में उसके भोग के लिये लीन रहता है । उस लीन होने वाले पुरुष से भी जो परे हैं वही महेश्वर कहा जाता है ।११। प्रकृति और पुरुष की प्रकृति उसके ही आधीन है अथवा त्रिगुण तत्व की कभी विनाशको प्राप्त न होने वाली यह माया है ।१२। माया जो हो प्रकृति और मायी को ही महेश्वर जानना चाहिये । महेश्वर को प्राप्ति से ही नारायण माया से मोक्षपद प्रदान किया करते हैं ।१३। रुद्र यह नाम रुद्र अर्थात् दुःखको अथवा दुःख के कारण को दूरकर देने से ही इनको नाम 'रुद्र' यह पड़ गया है और इसीलिये ही इन्हे रुद्र कहा करते हैं, वही परम कारण शिव हैं ।१४।

यस्माज्जगदिदं सर्वं विधिविष्णिवन्द्र पूर्वकट् ।
शिवतत्वादिभूम्यन्तं शरीरादि घटादि च ।
व्याव्याधितिष्ठति शिवस्तस्माद्विष्णुरुदाहृत ॥१५
जगतः पितृभूतानां शिवो मूर्त्यात्मनामपि ।
पितृभावेन सर्वेषां पितामह उदीरितः ॥१६
निदानज्ञो तथा वैद्यो रोगस्य विनिवर्तकः ।
उपायैर्भेषजैस्तद्वल्लयभोगाधिकारक ॥१७
संसारस्येश्वरो नित्यं स्थूलस्य विनिवर्त्तक ।
संसारवैद्य इत्युक्तः सर्वतत्वार्थवेदिभिः ॥१८
सर्वात्मा परमरेभिगुर्णैर्नित्यसमन्वयात् ।
स्वस्मात्परात्मविरहात्परमात्मा शिवः स्वयम् ।
इति स्तुत्वा महादेवं प्रणवात्मानमव्ययम् ।
दत्वा पराङ्मुखाद्यञ्च पश्चादीशानमस्यके ॥२०
पुनरभ्यचर्य देवेशं प्रणवेन समाहित ।
हस्तेन बद्धाञ्जजिना पूजापुष्पं प्रग्रह्य च ।२१

शिव के तत्वादि पर्यन्त शरीर घटादि सबमें व्याप्त होकर स्थित होने के कारण शिवको विष्णु कहते हैं ।५। इस समस्त जगत् के पितृस्वरूप ब्रह्मादिक और मूर्ति आत्मा वाले होने से सबके पितामह वह पिता मह कहलाते हैं ।१६। जिस प्रकार निदानका ज्ञाता वैद्य रोगको निवारण कर देने में समर्थ हुआ करता है और उसका उपाय तथा औषधिका ज्ञान रख ता है इसी प्रकार से भोग मोक्ष के पूर्ण अधिकार रखनेसे सम्पूर्ण संसार के ईश्वर स्थूल कारण की निवृत्ति करने वाले शिवतत्व के ज्ञाताओं के द्वारा यह संसार वैद्य-इस नामसे कहे जाया करते हैं ।१७-१८। वे सर्वज्ञ प्रभृति समस्त गुण गुणसे युक्त होकर सबके आत्मा परे से भी परे अपने ने और परमात्मा से भी परे होने से स्वयं शिव परमात्मा कहे जाते हैं ।१९। इस तरह प्रणवात्म अविनाशी महादेव के लिये प्रणाम करके अपने सन्मुख अर्घ्य देना चाहिए ॥२०॥ फिर ईशान के मस्तक में प्रणव से युक्त देवेश का पूजन करे और अन्चलि बाँधकर अर्चना के पुण्यों को करना चाहिये ॥२१॥

उन्मनांतं शिव नीत्वावामनासापुटाध्वना ।
दैवीमुद्वास्य च ततो दक्षनासापुटाध्वना ॥२२
शिव एवाहमस्मीमि तदैक्यमनुभूय च
सर्वावरणदेवांश्च पुनरुद्वासयेत् धृदि ।।२३
विद्यापूजां गुराः पूजां कृत्वा पश्चाद्यथाक्रमम् ।
शङ्ख धपात्रमत्रांश्च हृदये वियसेत्कपात् ।।२४
निर्माल्यञ्च समाप्याथ चण्डेशापेशगोचरे ।
पुनश्च सयतप्राण ऋष्यादिकथोच्चरेत् ॥२५
एतछ्रुत्वा महादेवी महादेवेन भाषितम् ।
स्तुत्वा विविधैः स्तोत्रैर्देव वेदार्थगर्भितै ॥२६
श्रीमत्पादाब्जयोः पत्युः प्रणामं परमेश्वरी ।
अतिप्रहृदया मुमोद मुनिसत्तमाः ।।२७
अतिगुह्यमिदं विप्राः प्रचवार्थप्रकाशकम् ।
शिवज्ञानपरं ह्येतद् भवतामार्तिनाशनम् ।।२८

फिर वाम नाभ पुटके मार्ग में उन्मनी नाड़ी के अन्त तक ले जाकर अर्थात् शिवको लेजाकर और दक्षिण नासा पुट के मार्ग से जगदम्बा देवी को लेजाकर 'मैं स्वयं शिव हूँ' ऐसा अनुभव करे इसके पश्चात् हृदय में समस्त आवरण के देवताओं का ध्यान करना चाहिए।२२-२३। इसके अनन्तर क्रम से विद्या और गुरुदेव का अर्चन करे फिर शङ्ख, अर्घ्यपात्र तथा अन्य मंत्रों को क्रम सेहृदय में धारण करना चाहिये।२४। इसकेपश्चात् निर्माल्यकों शिवके अर्थात् चण्डेशके आगे समर्पण करे और इसके पश्चात् प्राणायाम करे तथा समस्त ऋषि आदि का स्मरण करना चाहिए।२५। व्यासजी ने कहा हे देवेशि! इस प्रकार शिवके वचनोंको सुनकर शिवजीके वेदार्थसे भरे हुए अनेक तरह के स्तोत्रोंसे स्तुति करतीं हुई परमेश्वरी श्रीमच्चरण कमलमें बारम्बार प्रणाम करने लगीं। हे मुनिगण ! परमा ह्लाद से मनमें पार्वती महाहर्षित हुई।२६-२७। हे ब्राह्मणो ! प्रणव के अर्थ का प्रकाश करने वाला यह परम गुप्त विधान है। यह भगवान् शिव का परम ज्ञान समस्त दुःखों का विनाश करने वाला होता है।२८।

नान्दी श्राद्ध, ब्रह्मयज्ञादि विधि

साधु साधु महाभाग वामदेव मुनीश्वर।
त्वमतीव शिवे भक्तः शिवज्ञानवतां वरः ॥१
त्वया त्वविदितं किंचिन्नास्ति लोकेषु कुत्रचित्।
तथापि तव वक्ष्यामि लोकानुग्रहकारिणः ॥२
लोकेस्मिन्पशव सर्वे नानाशास्त्रविमाहिताः।
वञ्चिताः परमेशस्य माययाऽतिविचित्रया ॥३
न जानन्ति परं साक्षात्प्रणवार्थं महेश्वरम्।
सगुणं निर्गुणं ब्रह्म त्रिदेवजनकं परम् ॥४
दक्षिणं बाहुमुद्धृत्य शपथं प्रब्रवीमि ते।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यं पुनः पुनः ॥५
प्रणवार्थः शिवः साक्षात्प्राधान्येन प्रकीर्तितः।
श्रुतिषु स्मृतिशास्त्रेषु पुराणेष्वागमेषु च ॥६

यतो वाचो निवर्त्तन्ते प्रप्राप्य मनसा सह ।
आनन्द यस्य वै विद्वन्न बिभेति कुतश्चन ।।७

स्कन्दजीने कहा हे वामदेव मुने ! हे महाभाग ! आप धन्य हैं, आप धन्य है, आप परम शिवभक्त और शिवज्ञान के ज्ञाताओं में सर्वश्रेष्ठ हैं ।१। त्रैलोक्य कुछ भी ऐसा वहीं, जिसे आप जानते हों, फिर मी लोक कल्याण की दृष्टि से मैं आपके प्रति कहता हूं ।२।इस लोक में मनुष्य अनेक भाँतिके शास्त्रों के कारण भ्रमित हो गये हैं तथा वे परमेश्वरी की अद्‌भुत माया से वंचित हैं ।३। वे साक्षात् प्रणवरूप शिवको नहीं जानते, जो शिव सगुण निगुण ब्रह्म हैं तथा त्रिदेव जिनके द्वारा प्रकट हुए हैं ।४। मैं अपनी दक्षिणभुजा उठाकर सौगन्ध पूर्वक कहता हूँ कि यह नितान्त सत्य है, इसमें सन्देह नहीं है ।५। स्वयं भगवान् शङ्कर ने ही प्रणव के अर्थों का वर्णन किया है ।६। जहां पहुंच कर मन युक्त वाणी की भी निवृति हो जाती है, जिनके द्वारा आनन्द को प्राप्द विद्वान् किसी प्रकार भी भयभीत नहीं होता है ।७।

यस्माज्जगदिद सर्वं विधिविष्णिवन्द्र पूर्वकम् ।
सहभूतेन्प्रियग्रामः प्रथमं संप्रसूयते ।८
न सम्प्रसूयते यो वै कुतश्चन कदाचन ।
यस्मिन्न भासने विद्यु न्न च सूर्य्यो न चन्द्रमाः ।।९
यस्य भासा विभातीदञ्जगत्सर्व समन्ततः ।
सर्वेश्वर्येण सम्पन्नो नाम्ना सर्वेश्वरः स्वयम् ।।१०
यो वै मुमुक्षुभिर्ध्येयः शम्भुराकाशमध्यगः ।
सर्व्वव्यापी प्रकाशात्मा भासरूपी हि चिन्तयः ।।११
यस्य पुंसां परा शक्तिर्भावगम्या मनोहरा ।
निर्गुणा स्वगुणैरेव निगूढा निष्कला शिवा ।।१२
तदोयं त्रिविधं रूप स्थूलं सूक्ष्मं परं ततः ।
ध्येयं मुमुक्षुभिर्नित्यं क्रमतो योगिभिर्मुने ।।१३
निष्कलः सर्व देवानामादिदेवः सनातनः ।
ज्ञानक्रियास्वभावो यः परमात्मेति गीयते ।।१४

जिससे ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र आदि यह सम्पूर्ण विश्व प्रकट होता है, भूतेन्द्रिय सहित ये ही इस विश्व के उत्पत्तिकर्त्ता हैं ।८। वह कहीं भी उत्पत्ति को प्राप्त नहीं होते, जिनमें विद्युत भास्कर तथा चन्द्रमा भी प्रकाश करने योग्य नहीं है ।६। जिसके आभा से ही यह सम्पूर्ण विश्व प्रकाशवान् होता है, सम्पूर्ण ऐश्वर्य उनसे प्राप्त होने से ही वे परमेश्वर कहे जाते हैं ।१०। जो आकाश के मध्य निवास करने वाले शिव मुमुक्षुओं द्वारा ध्यान किये जाते हैं, जो सब में व्याप्त प्रकाश रूप आत्मस्वरूप एव चिन्मय हैं ।११। जिसकी पराशक्ति का ज्ञान से होता वह निर्गुण निष्कल, सगुण एवं साक्षात् शिव हैं ।१२। जिनके स्थूल सूक्ष्म और परे यह तीन भेद हैं, हे मुनीश्वर ! मुमुक्षुजनों को उसी का ध्यान करना श्रेयकर है ।१३। यह सभी देवों के अधीश्वर, सनातन, कला-रहित तथा ज्ञान क्रिया के स्वभाव वाले होने से परमात्मा कहे जाते हैं ।१४।

तस्य देवाधिदेवस्य मूर्तिः साक्षात्सदाशिव ।
पञ्चमन्त्रतनुदेवः कल पञ्चकविग्रहः ॥१५
शुद्धस्फटिकसंकाश प्रसन्नः शीतलद्युतिः ।
पञ्चवक्त्रो दशभु स्त्रिपञ्चनयनः प्रभु ॥१६
ईशानमुकुटोपेतः पुरुषास्यः पुरातनः ।
अघोरहृदयो वामदेवगुह्यप्रदेशवान् ॥१७
सद्यपादश्च तन्मूर्तिः साक्षात्सकजनिष्कलः ।
सर्वज्ञत्वादिषट्शक्तिषडङ्गीकृतविग्रहः ॥१८
शब्दादिशक्तिस्फुरितहृत्पङ्कजविराजितः ॥१९
मन्त्रादिषड्विधार्थानामर्थोपन्यासमार्गतः ।
समष्टिव्यष्टिभावार्थं वक्ष्यामि प्रणवात्मकम् ॥२०
श्रुतिस्मृत्युदितं कर्म कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यति ।
इत्युक्तं परमेशेन वेदमार्गप्रदर्शिना ॥२१

उनकी मूर्ति सदाशिवस्वरूप हैं, वे पञ्च मन्त्रात्मक देह वाले और पंचक

विग्रह वाले देवता है। १५। स्वच्छ स्फटिक मणि जैसे प्रसन्न और शीतल कान्ति से सम्पन्न, पञ्चमुखपञ्चदश नय तथा दस भुजा वाले हैं।१६। वे मुक्तिसे सुशोभित ईशान देव, पुरातन पुरुष अघोर हृदय वामदेव गुह्य भूत तथा मूर्त्त-स्वरूप हैं।१७। सद्यपाद तन्मूर्ति सम्पूर्ण निष्फल मूर्ति सर्वज्ञत्व आदि छः शक्ति और छः प्रकार से देहको अङ्गीकृत करने वाले ।१८। शब्द आदि से स्फुरित, हृदय पद्ममें प्रतिष्ठित तथा अपनी शक्ति से वामभाग में सुशोभित हैं।१९। अब मैं मन्त्र आदि के छ:प्रकार, उपन्यास के ढङ्ग तथा समष्टि-व्यष्टि के प्रणवात्मक अर्थ को कहता हूँ, ध्यान से सुनो।२०। श्रुति, स्मृति द्वारा बताये गये धर्म के द्वारा ही सिद्धि प्राप्त होती है, मार्ग दर्शक ईश्वर का यही कथन है।२१।

वर्णाश्रमाचारपुण्यैरभ्यर्च्य परमेश्वरम्।
तत्सायुज्यं गताः सर्वे बहवो मुनिसत्तमाः ॥२२
ब्रह्मचर्येण मुनयो देवा यज्ञक्रियाऽध्वना।
पितरः प्रजया तृप्ता इति हि श्रूतिब्रवीत् ॥२३
एवं ऋणत्रयान्मुक्तो वानप्रस्थाश्रमं गतः।
शीतोष्णसुखदु:खादिसहिष्णुर्विजितेन्द्रियः ॥२४
तपस्वी विजिताहारो यमाद्यं योगमभ्यसेत्।
यथा दृढ़तरा बुद्धिरविचाल्या भवेत्तथा ॥२५
एवं क्रमेण शुद्धात्मा सवकर्माणि विन्यसेत्।
संन्यस्य सर्वकर्माणि ज्ञानपूजापरो भवेत् ॥२६
सा हि साक्षाच्छिवैक्येन जीवन्मुक्तिफलप्रदा।
सर्वोत्तम हि विज्ञेया निर्विकारा यतात्मनाम् ॥२७
तत्प्रकारमह वक्ष्ये लोकानुग्रहकाम्यया।
तव स्नेहहान्महाप्राज्ञ सावधानतया शृणु ॥२८

वर्णाश्रम के आचार रूप पुण्य के द्वारा प्रभु-पूजन करने से अनेकों मुनिजन उनके सायुज्य पदको प्राप्त हो चुके हैं।२२। श्रुतियों का कथन है कि ब्रह्मचर्य के द्वारा ऋषि, यज्ञ क्रिया के द्वारा देवता और

स्वधाके द्वारा पितर तृप्ति को प्राप्त हो गये हैं ।२३। इस प्रकार प्रथम तीनों ऋणसे उऋण होकर वान प्रस्थ आश्रम ग्रहण करे और शीत,उष्णता, सुख दुःख आदि सहन करे तथा जितेन्द्रिय रहे ।२३। तपस्वी, आहार पर संशय रखने वाला यमनियम पालन पूर्वक योगाभ्यास करने वाला तथा बुद्धि को दृढ़ और निश्चल रखने वाला बने ।२५। शुद्धिपूर्वक सभी कर्म करे और सम्पूर्ण काम्य कर्मों का त्याग कर दे और ज्ञानमय पूजन में तत्पर हो जाय ।२६। यह ज्ञानमय पूजन शिवजी से सङ्गति तथा जीवन से मुक्तिप्रदान करने वाला है, यह सर्वोत्तम विकार रहित यतियों के लिए ज्ञातव्य है ।२७। हे महाप्राज्ञ ! आपके स्नेहवश तथा लोक कल्याणार्थ ही उसका वर्णन करता हूँ उसे सावधानी से श्रवण करो ।२८।

सर्वश स्त्रार्थतत्वज्ञं वेदान्तज्ञानपारगम् ।
आचार्यमुपगच्छेत्स यतिर्मतिमतां वरम् ।।२६
तत्समीपमुब्रज्य यथाविधि विचक्षणः ।
दीघदण्डप्रणामाद्यस्तोषयेद्यत्नतः सुधी ।।३०
योगुरुः स शिवः प्रोक्तो यः शिवः स गुरु स्मृतः ।
इति निश्चत्य मनसा स्वविचार निवेद्यत् ।।३१
लब्धानुज्ञस्तु गुरुणा द्वादशाह पयोव्रती ।
शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां वा दशम्यां वा विधानतः ।।३२
प्रातः स्नात्वाः विशुद्धात्मा कृतनित्यक्रियः सुधीः ।
गुरुमाहूय विधिना नांदीश्राद्धं समारभेत् ।।३३
विश्वेदेवाः सत्यवसुसंज्ञावन्तः प्रकीर्तिताः ।
देवश्राद्धे ब्रह्मविष्णुमहेशाः कथितास्त्रयः ।।३४
ऋषिधाद्धे तु सम्प्रोक्ता देवक्षेत्रमनुष्यजाः ।
देवश्राद्धे वसुरुद्रादित्यास्तु सम्प्रकीर्त्तिताः ।।३५

सभी शास्त्रों के तत्यार्थ ज्ञाता, वेदान्त के पारगामी मेधावी आचार्यके निकट बुद्धिमान् यतीजाय ।२६। और उन्हें दण्डवत् प्रणामों में भले प्रकार सन्तुष्ट करे ।३०। जो गुरु है, वह शिव है और जो है वह गुरु है इस

प्रकार मनमें विचारे उस विचार को गुरु के प्रति निवेदन करे ।३१। फिर गुरु की आज्ञा से बारह दिन तक तथा शुक्ल पक्ष की चतुर्थी या दशमीको विधिवत् पयोव्रतकरे ।३२। स्नान करके प्रात कृत्यकरे ओर शुद्ध होने पर विधिसे गुरु को बुलाकर नान्दी श्राद्ध करना चाहिए ।३३। हे ऋषि ! उस में विश्वदेवा सष्यवमु संज्ञक हैं । श्राद्धमें ब्रह्मा विष्णु महेश वर्णन किये हैं।३४। श्राद्धमें देवक्षेत्र मनुष्य तथा द्रव्य श्राद्धमें वसु रुद्रा और आदित्य कहे हैं।३५

चत्वारो मानुषश्राद्धे सनकाद्या मुनीश्वराः ।
भुतश्राद्धे पञ्च महाभूतानि च ततः परम् ।।३६
चक्षुरादीन्द्रियग्रामो भूतग्रामश्चतुर्विधः ।
पितृश्राद्धे पिता तस्य पिता तस्य पिता त्रयः ।।३७
पितृश्राद्धे मातृपितामह्यौ च प्रपितामही ।
णात्मश्राद्धं तु चत्वार आत्मा पितृपितामहौ ।।३८
प्रपितामहनामा च सपत्नीकाः प्रकीर्त्तिताः ।
मातामहात्मकश्राद्धे त्रयो मातामहादयः ।।३९
प्रतिश्राद्धं ब्राह्मणानां युग्मं कृत्वापकल्पितान् ।
आहूय पादौ प्रक्षाल्य स्वयमाचम्य यत्नतः ।।४०
समस्तसपत्समवाप्तिहेतवः समुत्यितापत्कुलधूमकेतव ।
अपारसंसारसमुद्रसेतवः पुनन्तु मां ब्राह्मणपादरेणव ।।४१
अपाद्धनध्वान्तसहस्रभानव समीहितार्थर्पणकामधेनवः ।
सभस्ततीर्थाबुपवित्रमूर्त्तयो रक्षा मां ब्राह्मणपादपांसवः ।।४२

मनुष्य श्राद्धमें चार सनकादि तथा भूताश्राद्ध में पंच महाभूत कैसे हैं। ।३६। चक्षु आदि इन्द्रियां ओर जरायुज अण्डज स्वेदज, उद्भिज्ज यह चार प्रकार के प्राणी कहे हैं, पितर श्राद्धमें पिता, पितामह और प्रपितामह कहे हैं ।३७। मातृ श्राद्धमें माता, पितामही तथा प्रपितामही और आत्म श्राद्ध में पिता और पितामह कहे हैं ।३८। प्रपितामह सपत्नी के तथा मातामह (नाना) के श्राद्ध में मातामह, तथा उनके पिता (परनाना) कहे हैं ।३९। प्रत्येक श्राद्ध में दो ब्राह्मणों को भोजन करावे, उनको बुला

कर स्वयं आचमनकर पवित्र हो और उनके चरण धोवे ।४०। और कहे कि सम्पूर्ण सम्पत्ति की प्राप्ति के कारणरूप, विपत्ति-नाशके लिए अग्नि रूप तथा अपार भवसागर से पार होने के लिये सेतुस्वरूप ब्राह्मणों की चरणरज मुझे पवित्र बनावे ।४१। विपत्ति रूप अन्धकार को नष्ट करने के लिए सूर्य, काम्य पदार्थ प्राप्त कराने को कामधेनु तथा सम्पूर्ण तीर्थो के जल की पवित्र मूर्ति ब्राह्मणों की पग रज मेरी रक्षक बने ।४२।

इति जप्त्वा नमस्कृत्य साष्टांगं भुवि दण्डवत् ।
थित्स्वा तु प्राङ्मुखः शम्भोः पादाब्जयुगलं स्मरन् ॥४३
सपवित्रकरः शुद्ध उपवीती दृढासनः ।
प्राणायामत्रयं कुर्याच्छ्रुत्वा तिथ्यादिक पुनः ॥४४
मत्सन्यत्सांगभूत यद्विश्वेदेवादिकं तथा ।
श्राद्धमष्टविधं मातामह न्तं पागणेन वै ॥४५
विधानेन करिष्यामि युष्नदाज्ञापुरः सरम् ।
एवं त्रिधाय संकल्पं दर्भानुत्तपतस्त्यजेत् ॥४६
उपस्पृश्याप उत्थाय वरणक्रममारभेत् ।
पवित्रपाणिः संस्पृश्य वाणीं ब्राह्सणयोर्वदेत् ॥४७
पिश्वेदेवार्थ इत्यादि भयद्भूयां क्षण इत्यपि ॥४८
प्रसादनीय इत्यन्त सर्वत्रैवं विधिक्रमः ।
एवं समाप्य वरणं मण्डलानि प्रकल्पयेत् ॥४९

इस प्रकार जपकर, पृथ्वीमें दण्डवत् होकर प्रणाम करे और शिवजी के सम्मुख पूर्वाभिमुख खड़ा होकर उनके चरणों का ध्यान करे ।४३। और पवित्र हाथकर शुद्ध होकर नवीन यज्ञोपवीत धारण करे,दृढ़ चित्तसे आसन ग्रहण करे और तीनबार प्राणायामकर,तिथ्यादि सुने ।४४। मेरेसंन्यास का अङ्गभूत वैश्वदेवादि कर्म क्रम पूर्वक पूर्वोक्त विधिसे देव श्राद्धादि भेद के क्रम से नानातक पार्वणश्राद्ध ।४५। विधिवत् आपके आदेशानुसार करूँगा, इस प्रकार सङ्कल्पकर उत्तरकी ओर कुशों को छोड़दे ।४६। फिर ब्राह्मणों का हाथ स्पर्श करता हुआ वरणका क्रम आरम्भ करे तथा पवित्रीको स्पर्श

कर ब्राह्मणों से कहे ।४७। मैंने विश्वदेवा के हेतु आपका वरण किया है, इसे आप क्षण भरको स्वीकार करें ।४८। सबको इस प्रकार प्रसन्न करें वरण का क्रम सर्वत्र यही है, इसे समाप्त करके मण्डल बनावे ।४९।

उदगारभ्य दश च कृत्वाऽभ्यचनमक्षतैः ।
तेषु क्रमेण संस्थाप्य ब्राह्मणान्पादयोः पुनः ॥५०
विश्वेदेवादिनामानि स सम्बोधनमुच्चरेत् ।
इदं वः पाद्यमिति सकुशपुष्पाक्षतोदकैः ॥५१
पाद्यं दत्वा स्वयमपि क्षालितांघ्रिरुदङ्मुखः ।
आचम्य युग्मक्लप्तांस्तानासनेषूपवेश्य च ॥५२
विश्वेदेवस्वरूपम्य ब्राह्मणस्येदमासनम् ।
इति दर्भासन दत्वा दर्भपाणिः स्वयं स्थितः ॥५३
अस्मिन्नान्दीमुखश्राद्धे विश्वेदेवार्थ इत्यपि ।
भवद्भयां क्षण इत्युक्त्वा क्रियतामिति संवदेत् ॥५४
प्राप्नुतामिति सम्प्रोच्य भवन्ताविति संवदेत् ।
वदेतां प्राप्नुयावेति तौ च ब्राह्मणपुंगवौ ॥५५
सम्पूर्णमस्तु संकल्पसिद्धिरस्त्विति तान्प्रति ।
भवन्तोऽनुगृह्ण्त्विति प्रार्थयेद् द्विजपुंगवान् ॥५६

उत्तर से प्रारम्भ कर दशों मण्डलों का पूजन अक्षत से करे, ब्राह्मणों को उन मण्डलों पर बैठाकर अक्षत से उनके चरण पूजे ।५०। विश्वदेवा रूप ब्राह्मणों से कहे कि आपके लिये यह पाद्य है इस प्रकार कर, कुश कुष्प अक्षत और जलदे ।५१। फिर पाद्य देकर मुख धुलावे और उत्तराभिमुख बैठाकर आचमन करावे तथा बैठने के लिए श्रेष्ठ आसन दे ।५२। विश्वेदेवा स्वरूप ब्राह्मणों के लिये यह आसन है, यह कहकर कुशका आसन दें और स्वयं भी हाथ में कुश लेकर बैठे ।५३। और कहें कि इस नान्दी मुख श्राद्ध में आप विश्वेदेवों के निमित्त क्षणमात्र स्थित हों ।५४। आप दोनों स्वीकार करें और दोनों ब्राह्मण भी कहें कि हम दोनों स्वीकार करते हैं ।५५। तुम्हारे सङ्कल्प की पूर्ण रूपेण सिद्धि हो, तब ब्राह्मणों से निवेदन करे कि आप अनुग्रह करें ।५६।

तत्र: शुद्धकदल्यादिपात्रेषु क्षालितेषु च।
अन्नादिभोज्यद्रव्याणि दत्वा दर्भैः पृथकपृथक्॥५७
परिस्तीर्य स्वय तत्र पाषिच्योदकेन च।
हस्ताभ्यामवलम्ब्याथ पात्र प्रत्येकमादरात् ॥५८
पृथिवी ते पात्रमित्यादि कृत्वा सत्र व्यवस्थितान्।
देवादींश्च चतुर्थ्यन्तानन्द्याक्षतसंयुतान् ॥५९
उदग्गृहीत्वा स्वाहेति देवार्थेऽन्न यजेत्हनः।
न ममेति वदेदन्ते सवत्राय विधिक्रमः ॥६०
यत्पादपद्मस्मणाद्यस्य नामजपादि।
न्यून कम भवेत्पूर्ण तं वन्दे साम्वमीश्वरम् ॥६१
ज्ञात जप्त्वा ब्रूयान्मया कृतमिदं पुनः।
नान्दीमुखश्राद्धमिति यथोक्तं व वदेत्ततः ॥६२
अस्त्विति ब्रूतेति च तान्प्रसाद्य द्विज पुङ्गवान्।
विसृज्य स्वकरस्थोदं प्रणम्य भुवि दण्डवत् ॥६३

फिर केलेके स्वच्छ पत्तों को धोकर बनाये हुए अन्नादि परोसे और अलग२ कुछ बिछाकर ।५७। तथा जलसे छिड़ककर प्रत्येक पात्रको हाथ में उठावे ।५८। और सादर उन पात्रों को पृथिवी पर रखकर 'पृथिवीतेपात्रम्' का उच्चारण कर देवता आदि की चतुर्थी विभक्ति का उच्चारण करे ॥५९॥ फिर अक्षत सहित जल लेकर 'देवाय स्वहा' कह कर उस अन्न को छोड़दे और अन्त में 'इदं न मम' कहे, ऐसा सर्वत्र करना चाहिए ।६०। जिन महेश्वर के पादपद्म के स्मरण मात्र से और जिनके नाम जपके द्वारा न्यून कर्मभी अपूर्ण नहीं रहता, उन्हें पार्वतीजीसहितनमस्कार करता हूँ ।६१। ऐसा कहकर उनसे कहेकि मैं जो कुछ कर सका हूँ, उसे इस नांदी मुख श्राद्ध के द्वारा आप यथा-योग्य कहें ।६२। ब्राह्मण 'ऐसा ही हो कहें तब उन विप्रवरों को प्रसन्न कर अपने हाथसे जल छोड़े और पृथिवी में लेटकर दण्डवत् करे ।६३।

उत्थात्य च ततो ब्रूयादमृतं भवतु द्विजान्।
प्रार्थयेच्च परं प्रीत्या कृतांजलिरुदोरधीः ॥६४

श्रीरुद्र चमकं सूक्तं पौरुष च यथाविधि ।
चित्ते भद्राशिव ध्यात्वा ज द्ब्रह्माणि पंच च ।:६५
भोजनान्ते रुद्रसूक्तं क्षमापप्य द्विजात्पुनः ।
तन्त्रमन्त्रे च ततो दद्यादुक्तरापोशनं पुर ।।६६
प्रक्षालितांघ्रिराचम्य पिण्डस्थान व्रजेततः ।
आसीनः प्राङ्‌मुखो मौनी प्राणायामत्रय चरेत् ।।६६
नान्दीमुखोक्तश्रांद्धांगं करिष्ये पिंडदानकम् ।
इयि संकल्प्य दक्षाणि समारभ्यादकान्तिकम् ।।६८
नव रेखाः समालिख्य प्रागग्रान्ष्टादशः क्रमात् ।
सस्तीर्य दर्भान्दक्षादिस्थिानपंचकम् ।।६९
तूष्णी दद्यात्साक्षतींदं त्रिषु च क्रमात् ।
स्थानेष्वन्येषु साघृषु मार्ज्जं यंस्तास्ततः परन् ।।७०

और फिरउठकरकहे कि ब्राह्मणोंको तह अमृत स्वरूप हो और उदार बुद्धिपूर्वक अत्तन्त प्रीति सहित हाथ जोड़ता हुआ प्रार्थना करे।६४।ग्यारह अनुवाक 'सहस्त्रशीर्षा' इत्यादि पुरुषसूक्त को था ईशान आदि ब्रह्मा के पाँच नामों को लेता हुआ शिवजी का ध्यानकरे।६५। भोज के अन्त में रुद्र को समाप्त करे और 'अमृतापिधानमसीति' मन्त्रसे उनब्राह्मणोंको जलदे ।६६। फिर चरण धोकर आचमन करे और पिंड-स्थान में स्वयंजाकर पूर्वाभिमुख होकर मौन बैठे तथा तीन प्राणायाम करे ।६७। और कहेकि अब मैं नांदी मुख श्रादका अङ्गरूप पिंडदान करूँगा, इस प्रकार सङ्कल्प पूर्वक दक्षिणादि से आरम्भकर उत्तर पर्यन्त ।६८। नौ रेखा खीचे और उनके आगेक्रमसे देवादि के पाँच स्थानमें दो २ कुशबिछावे ।६९। फिर मौन होकर क्रम से तीन स्थानों में अक्षर सहित जलदे, दूसरे स्थान में माताओं का मार्जन करे ।७०।

आपेति पितरः पश्चात्साक्षतोदं समर्च्य च ।
दद्यात्तः क्रमेणैव देवादिस्थानपंचके ।।७१
तत्तद्देव विनामानि चतुर्थ्यन्तान्यु दीर्य्य च ।

स्वगृह्योक्तेन मार्गेण दद्यात्पिण्डान्पृथक् प्रथक् ।
दद्यादिद साक्षत च पितृसांदगुण्यहेतवे ॥७३
ध्यायेत्सदाशिव देवं हृदयाम्भोजमध्यत ।
तत्पादतपद्मस्सणादिति श्लोकं पठन् पुन ॥७४
नमस्कृत्य ब्राह्मणेभ्यो दक्षिणां च स्वशक्तिः ।
दत्वा क्षमापय्य च तान्विसृज्य च तत क्रमात्॥७५
पिण्डानुत्सृज्य गोग्रास दद्यान्नोचेज्जले क्षिपेत् ।
पुण्याहवाचन कृत्वा भुंजीत स्वजनैः सह ॥७६
अन्येद्यु प्रातरुत्थाय कृतनित्यक्रियः सुधीः ।
उपोष्य क्षौरकर्मादि कक्षोपस्थविविर्जितम् ॥७७

'यहाँ पितर स्थित हों' इस प्रकार कहकर अक्षत और जल दे, इसी प्रकार देवताओं के पांच स्थानों में करे ।७१। फिर उन-उन देवताओं के चतुर्थ्यन्त नाम लेकर उन पाँच स्थानों में प्रत्येक को पिंडदे।७२।पितरादि पंचक स्थानमें मौनपूर्वकके जल अक्षत अर्पणकरे औरअपन गृह्य-सूत्रकेअनुसार पिंडदान करे और श्रेष्ठ गुणार्थ जलअक्षत दे।७३।फिर हृदयकमलके मध्यमें शिवजी का ध्यानकरे और यत्पादपद्म स्मरणात्, इत्यादि श्लोकका उच्चारण करे।७४। और ब्राह्मणों को नमस्कार पूर्वक शक्ति के अनुसार दक्षिणा दे जौर क्षमाकराकर उनकी बिदाकरे।७५। फिर पिंडको छोड़कर गोग्रास दे या जलमें छोड़दे फिर पुण्याहवाचन कर इष्टजनों के साथ स्वयं भी भोजन करे।७६।दूसरे दिन प्रातःकाल नित्यकर्म करके बगलऔर उपस्थ के बालों को छोड़कर-क्षौर कर्म करावे ।७७।

केशश्नश्रुनखानेव कर्मादधि विसृज्य च ।
समष्टिकेशान्विधिवत्कारयित्वा विधानतः ॥७८
स्नात्वा धोतपटः शुद्धो द्विराचम्याथ वाग्यत ।
भस्म सधार्य विधिना कृत्वा पुण्याहवाचनम् ॥७९
तेन संप्रोक्ष्य संप्प शुद्धदेहस्वभावतः ।
होमद्रव्यार्थमाचार्य दक्षिणार्थं विहाय च ॥८०

द्रव्यजात महेशाय द्विजेभ्यश्च तिजेभ्यश्च तिशेषतः ।
भक्तेभ्यश्च प्रदायाथ शिवाय गुरुरूपिणे ॥८१
वस्त्रादिदक्षिणां दत्वा प्रणम्य भुवि दण्डवत् ।
धौतकौपीनवसनं दण्डाद्यं क्षालितं भुवि ॥८२
क्षादाय होमद्रव्याणि समिधादीनि च क्रमात् ।
समुद्रतीरे नद्यां वा पर्वते वा शिवालये ॥८३
अरण्ये चापि गोष्ठे वा विचार्य स्थानसुत्तमम् ।
अरण्ये चापि गोष्ठे वा विचार्य स्थानसुत्तमम् ।
स्णित्वाचम्य ततः पूर्वं कृत्वा मानसमञ्जरीम् ॥८४

और कर्ममें उपस्थ के बालों को छोड़कर केश,दाढ़ी,मूँछ नाखूनआदि को कटवावे,यह कर्म विधि से करे ।७८। स्नानकर, धोती धारण करे और दो आचमन कर विधि सहित भस्म धारण करे और पुण्यावाचन करावे ।७९। फिर प्रोक्षण करे, शुद्ध देह से होम द्रव्य तथा आचार्य दक्षिणा के निमित्त द्रव्य को छोड़े ।८०। तथा शिवजी,ब्राह्मणों और भक्तोंकेहेतुसम्पूर्ण द्रव्य देकर गुरुरूप शंकर के लिए ।८१। वस्त्र दक्षिणा आदि दे और प्रमाण पूर्वक पृथिवीमें दण्डवत्करे तथा धोयेहुए धागा,कौपीन,वस्त्र, दण्डादिलेकर ।८२। होम द्रव्य और समिधा आदि को लेकर समुद्र तट पर,नदी तट पर अथवा पर्वत या शिवालय में ।८३। अथवा वन, गोष्ठ आदि श्रेष्ठ स्थानका विचार कर आचमन करे और मानस जप रूपी मंजरी करे ।८४।

ब्राह्मोंकारसहित नमो ब्राह्मणा इत्यापि ।
जपित्वा त्रिस्ततो ब्रूयादग्निमीले पुरोहितम् ॥८५
अथ महाव्रतमिति अग्निर्वै देवनामतः ।
तथैतस्य समाम्नायमिषे त्वोर्ज्जेत्वा वेति तत् ॥८६
अग्न आयाहि वीयते शन्नो देवीरभीष्टये ।
पश्चात्प्रौच्य मयरसतजभनलगैः सह ॥८७
संमित च ततः पञ्चसवत्सरमयं ततः ।
समाम्नायः समाम्नातः अथ शिक्षां वदेत्पुन ॥८८
अथातो धर्मजिज्ञातेत्युच्चार्य पुनरंजसाः ।

अथातो ब्रह्मजिज्ञासा देवादीनपि संजपेत् ।।८९
ब्रह्माणमिद्रं सूर्यञ्च सोमं चैव प्रजापतिम् ।
आत्मानमन्तरात्मनं ज्ञानात्मान मतः परम् ।।९०
परमात्मानमपि च प्रणवादयं नमोंतकम् ।
चतुर्थ्यन्तं जपित्वा सक्तुमुष्टिं प्रगुह्य च ।।९१

फिर ओंकार सहित ब्रह्ममन्त्र का और 'नमो ब्रह्मणे' कों तीनबारजप करे 'अग्निमीडेपुरोहितम्' कहे ।८५। फिर 'महाव्रतमिति' और 'अग्निर्देवा-नामवम: तथा इसका समाम्नाय 'इषेत्वोर्जेत्वा' ।८६। 'अग्नआयाहिवीतये' और 'शन्तोदेवी०' इत्यादि कहकर म य र स त ज भ न ल ग का उच्चारण करे ।८७। इनका समाम्नाय पाँच संगत्सरमय कहा है 'मैं फिर कहूँगा' यह कहकर वृद्धिरादैव्' सूत्रका उच्चारणकरे ।८८। फिर 'अथातो धर्म जिज्ञासा' इस दर्शन सूत्रका उच्चारणकर पुनः ब्रह्मजिज्ञासा' यत्र का उच्चारण करे अथा केवल वेदमन्त्रों का उच्चारण करे ।८९।ब्रह्मा-इन्द्र-सोम-सूर्य-प्रजापति आत्मा-अन्तरात्मा और ज्ञानात्मा ।९०। तथा परमत्माका उच्चारण आदि में प्रणब और अन्त में नमः संयुक्तकर चतुर्थी विभक्तियुक्त उच्चारण करके एक मुट्ठी सत्तू ग्रहण करे ।९१।

प्राश्याथ प्रणवेनैव द्विराचम्याथ संस्पृशेत ।
माभिमन्त्रं क्ष्वयमाण प्रणवाद्यान्नमोन्तकान् ।।९२
आत्मानमन्तरात्मानं ज्ञानात्मान पर पुनः ।
आत्मानं च समुच्चार्य प्रजापतिमतः परम् ।।९३
स्वाहांतान्प्रजपेत्पश्चात्पयोदधिघृतं पृथक् ।
त्रिवारं प्रणवेनैव प्राश्याचम्य द्विधाः पुनः ।।९४
प्रागास्य उपविश्या थद्दचितः स्थिरासन ।
यथोक्तविधिना सम्यक् प्राणायामत्रयंयरेत् ।।९५

भक्षण करके प्रणव सहित दो बार सत्तू का आचमन करे और वक्ष्यमाण मन्त्रों से नाभि स्पर्श करे, उन मन्त्रों के आदि में प्रणव अन्त में नमः संयुक्त करे ।९२। फिर अन्तात्मा, अन्तरामा, ज्ञानात्मा,

निज आत्मा और प्रजापतिका उच्चारणकरे।६३। अन्त में स्वाहा लगाकर जप करे,फिर दूध, दही और घृतको पृथक्-पृथक् तीनबार प्रणव उच्चारण पूर्वक चाटकर दोबारा आचमन करे।६४। फिर पूर्वाभिमुख होकर दृढ़चित से स्थित होकर आसन पर बैठे और विधिवत् तीन प्राणायाम् करे।६५।

।प्रणव जप के अधिकार में विरजा होम, गायत्री जप।

अथ मध्याह्नसमये स्नात्वा नियतमानसः।
गन्धपुष्पापाक्षतादीनि पूजाद्रव्याण्युपाहरेत् ।।१
नैऋत्ये पूजयेद्देव विघ्नेश देवपूजितम्।
गणानां त्वेति मन्त्रेणावाहयेत्सुधिचानतः ।।२
रक्तवर्णं महाकार्यं सर्वाभरणभूषितम्।
पाशांकुशांक्षामीष्टञ्च दधानं करपङ्कजं ।।३
एवमावाह्य सन्ध्यातां शम्भुपुत्र गजाननम्।
अभ्यर्च्य पायसापूपवालिकेरगुडादिभिः ।।४
नैवेद्यमुत्तमं दद्यात्ताम्बूलादिमथापरम्।
परितोष्य नमस्कृत्य निर्विघ्नं प्रार्थयेतत् ।।५
औपत्समाग्नौ कर्त्तव्यं स्वगृह्योक्तविधानत।
आज्यभागान्तमाग्नेयं मखतन्त्रम परम् ।।६
भूः स्वाहेति त्रयृचा पूर्णाहुतिं हुत्वा समाप्य च।
गायत्रीं प्रजपेद यावदपराह्णाम तन्द्रितः ।।७

स्कन्दजी ने कहा-फिर मध्याह्न के समय प्रसन्न मनसे स्नानकरे तथा गधं,पुष्प अक्षत आदि पूजन-सामग्री को।१। विधिवत् नैऋत्यकी ओर देव पूजित विघ्नेश की पूजाकर 'गणानात्वा' मन्त्र से आह्वानकरे।२। लालवर्ण वाले, महाकाल,सभी आभूषणों को धारण किए हुए,हाथों में पाश अंकुश, अक्ष लिये हुए।।इस प्रकार शङ्कर सुवन गणेशजी का ध्यानपूर्वक क्रमसे गधादि के द्वारा पूजन करे और खीर,पुआ,नारियल, मिष्ठान्न इत्यादि।४। तथा नैवेद्यमें सन्तुष्टकर ताम्बूल भेंट करे तथा विघ्नेशकी प्रार्थनाकर उन्हें प्रसन्न करके नमस्कार करे।५। अपने गृह्य-सूत्र की विधिसे आज्य के श्रेष्ठ

भागका सोमकरे, उसमें जो अग्नि मुख तन्त्र है ।६। उस करके 'भूःस्वाहा' उच्चारणकर श्रुत्वासे पूर्णाहुति दे और हवन समाप्त करके अपराह्नसमाप्त होने तक गायत्री का जप करता रहे ।७।

अथ सायन्तनीं सन्ध्यामुपास्य स्नानपूर्वकम् ।
सायमौपासन हुत्वा मौनी विज्ञापयेद् गुरुम् ॥८
श्रपयित्वा चरुं तस्मिन्सधिदन्नाज्यभेदत्तः ।
जुहुयाद्रौद्रसूक्तेन सद्योजातादिपञ्चभिः ॥९
ब्रह्माभिश्च महादेवं सांबं वह्नौ विभावयेत् ।
गौरीर्भिमाय मन्त्रेण हुत्वा गौरीमनुस्मरन् ॥१०
ततोऽग्नये विवष्टकृते स्वाहेति जुहुयात्सकृत् ।
हुत्वोपरिष्टाद्यन्त्रं तु ततौऽनेरुत्तरे बुधः ॥११
स्थित्वासने जपेन्मौनी चैलाजिनकुशोत्तरे ।
आवाह्यं च मूहुर्त्तं गायत्रीं दृढमानसः ॥१२
ततः स्नात्वात्वशक्तश्चेद्भस्मना वा विधानताः ।
श्रपयित्वा चरुं तस्मिन्नग्नावेवाभिघारितम् ॥१३
उदगुद्धास्य वर्हिष्यासाद्याज्येन चरुं ततः ।
अभिधार्य्य व्याहृतीश्व रौद्रसूक्तश्च पंच च ॥१४

फिर स्नान करके सन्ध्याकाल की सन्ध्यापूर्ण करके और सांयकालीन हवनकरके,मौनरहता हुआ गुरुकी आज्ञा प्राप्त करे ।८। समिधा,अन्नआगुज्य के चरु को एकत्रकर रुद्र सूक्त अथवा सद्योजात आदि पाँचमंत्रोंसे होमकरे ।९। ईशाद्रि पाँच ब्रह्म मन्त्रो से पार्वती सहित शिवजी का अग्नि में ध्यान करें तथा 'गौरीर्भिमाय' मन्त्रसे हवन कर पार्वतीजी का स्मरण करे ।१० फिर 'अग्नेय स्विष्ट कृते स्वाहा' मन्त्र से एक बार आहुति देकर हवनयुक्त तन्त्रको समाप्तकर अग्निके उत्तर और ।११।मौन होकर कुश वा मृगचर्म के आसन पर बैठकर ब्रह्ममूहूर्त्त' होने तक दृढ़ मनसे गायत्री का जप करे ।१२। फिर स्नान करे, यदि जल स्नान न कर सके तो भस्म स्नान करे, फिर उस जप की संयुक्तकर अग्नि पर रखे ।१३।उसके जलको अलगकरके

कुश पर बैठकर उरु को घी में मिलावें और व्याहृती का उच्चारणकर रुद्र सूक्त का जप करे ।१४।

जपेद् ब्रह्माणि सन्धार्यं चित्तं शिवपदांबुजे ।
प्रजापतिमथेन्द्रपश्च विश्वेदेवास्यतः परम् ॥१५
ब्राह्मणं सचतुर्थ्यन्तं स्वाहातान् प्रणवादिकान् ।
सजप्य वाचयित्वाऽथ पुण्याऽहं क्ष ततः परम् ॥१६
परस्तात्तं त्रमग्नये स्वाहे यग्निमुखावधि ।
निर्वत्य पश्चात्प्राणाय स्वाहेत्यारभ्य पंचभि ॥१७
साज्येन चरुणा पश्चादग्निं स्विष्टकतं हनेत् ।
पुनश्च प्रजपेत्सूक्तं रौद्रं ब्रह्माणि पञ्च च ॥१८
महेशादि चतुर्व्यूहमन्त्रांश्च प्रजपेत्पुनः
हुत्वोपरिष्टात्तन्त्रं तु स्वशाखोक्तेन वर्त्मना ॥१९
तत्तद्देवान्समुद्दिश्य सांग कुर्याद्विचक्षणः ।
एवमग्निमुखाद्य यत्कर्मतन्त्र प्रवर्तितम् ॥२०
अतः परं प्रजुहयाद्विरजाहोममात्मनः ।
षड्विंशत्तत्वरूपेऽस्मिन्देहे लीनस्य शुद्धये ॥२१

फिर ईशानादि पंचब्रह्म का उच्चारण कर शिवजी के चरण कमल में मन लगावे, फिर प्रजापति इन्द्र, विश्वेदेवा ।१५। तथा ब्रह्मा के नाम के अन्त में नमः जोड़े तथा आदि में प्रणव लगाकर चतुर्थी विभक्ति सहित उच्चारण करे । इस प्रकार जप और पुण्याहवाचन करके ।१६। तत्र के समक्ष 'अग्नये स्वाहा' कहे और अग्नि के मुख की ओर से निवृत्त होकर प्राणाय स्वाहा, अपनाय स्वाहा आदि मन्त्रों से पंचाहुति दे ।१७। फिर समिधा अन्न,घृत के भेद से हवन करे और चरुतता घृतसे अग्नेये स्विष्टकृत स्वहा' उच्चारण पूर्वक होम करे,फिर रुद्रसूक्त और पञ्चब्रह्म के मन्त्रोंका जप करे ।१८। फिर महेशादि चतुर्व्यूह के मन्त्रों को जपकर अपनी शाखा कीविधिसे महेशादि मन्त्रोंसे होम करे ।१९। उन-उन देवताओं के लिए तत्र के ऊपर आहुति दे,इस प्रकार अग्नि मुख से कर्मतंत्र को प्रवृत्त करे ।२०। फिर अपनी शुद्धि के लिए विरजा होम करे । प्रकृति आदि जो छब्बीस तत्व इस देह में हैं ।२१।

तत्वान्येतानि मद्देहे शुध्यन्तामित्यतुस्मरन् ।
तत्रात्मतत्वशुद्ध यर्थं मन्त्रै रारुणकेतुकैः ॥२२
पठ्यमानैः पृथिव्यादिगुरुषांतं क्रमान्मुने ।
साज्येन चरुणा मोनी शिवपादाम्बज स्मरन् ॥२३
पृथिव्यादि च शब्दादि वागाद्यं पचकं पुनः ।
श्रोत्राद्यं च शिरःपार्श्व पृष्ठोदरचतुष्टयम् ॥२४
जँघा च योजयेत्पश्चात्वगाद्य धातुसप्तकम् ।
प्राणाद्यं पचकं पश्चादन्नाद्यं कोशपंचकम् ॥२५
मनश्चित्तं च बुद्धिश्चाहङ्कृति ख्यातिरेव च ।
सङ्कल्पस्तृगुणाः पश्चात्प्रकृतिः पुश्चात्प्रतिः पुरुषस्ततः ॥२६
पुरुषस्य तु भोक्तृत्व प्रतिपन्नस्य भोजने ।
अन्तरङ्गतया तत्वपंचक परिकीर्तितम् ॥२७
नियतिः कालरागश्च विद्या च तदन्तरम् ।
काला च पचकमिद मायोत्पन्नं मुनिवर ॥२८

उनकी शुद्धि केलिए विरजा हवन करके कहे मेरे शरीर के यह सब तत्व शुद्ध हो जाँय फिर आत्मशुद्धि के लिए तैत्तिरीय आरण्य के भद्र प्रपाटकमें अरुण केतुक मन्त्र ।२२। अष्टयोनिमिष्ट से सप्त पुरुषा तक उच्चारण कर घृत लेकर मौन होकर शिवजी के चरणकमलका स्मरण करे ।२३। पृथिवी आदि शब्द आदि और वर्ग आदि पाँच तथा श्रोत्र आदि पाँच इन्द्रिय, शिर, पेठ, उदर,पाद यह चार ।२४। तथा जाँघ को युक्त कर फिर त्वक् आदि सप्त धातु फिर प्राणादि पाँच और अन्नादि पाँच कोष ।२५। मन, बुद्धि अहंकार, ख्याति, संकल्प, गुण और प्रकृति पुरुष ।२६। पुरुष का भोक्तापन पाँच तत्व कहे हैं नियति, कल सहित, राग, विद्या, कला पंचक यह सब माया से ही उत्पन्न हैं ।२७।२८।

मायां तु प्रकृतिं विद्यादिति माया श्रुतीरिता ।
तज्जान्येतानि तत्त्वानि श्रुत्युक्तानि न संशयः ॥२९
कालस्वभावो प्रियतिरिति च श्रुति व्रवोत् ।
एतत्पचकमवास्य पचक्रकचक्रमुच्यते ॥३०

अजानन्पश्च तत्वानि विद्वानपि च मूढधीः ।
निपत्याधस्तात्प्रकृतेरुपरिष्टात्पुमानयम् ॥३१
काकाक्षिन्यायमाश्रित्य वर्त्तते पार्श्वताऽन्वहम् ।
विद्यातत्वमिदं प्रोक्तं शुद्धविद्यामहेश्वरो ॥३२
सदाशिवश्च शक्तिश्च शितश्चेदं तु पञ्चकम् ।
शिवतत्वमिद प्रह्मन्प्रज्ञानब्रह्मवाग्यतः ॥३३
पृथिव्यादिशिवांत यत्तत्वजात मुनिश्वर ।
स्वकारणलय द्वारा शद्धिरस्य विधीयताम् ॥३४
एकादशानां मन्त्राणां परस्मैपदपूर्वकम् ।
शिवज्योतिश्चतुर्थ्यंतमिदं पदमथोच्चरेत् ॥३५

श्रुति में प्रकृति को माया ही कहा गया हैं यह तत्व उसी से उत्पन्न हुए बताते है ।२९। श्रुति कहतीहै कि स्थिति कालस्वभावको ही कहतेहैं । इसी पचक का नाम पंचक चुक है ।३०। इन पाँच तत्वों को जाने बिना विद्वान भी मूर्ख हो जाता हैं,प्रकृति के नीचे नियत तथा ऊपर पुरुष है ३१ काकाक्षि न्याय से यह पुरुप नियत प्रकृति में स्थित होता हैं,इसीको विद्या तत्व कहा है शुद्ध विद्या महेश्वर ।३२। सदाशिव शक्ति और शिवयही पंच कहे । 'प्रजान ब्रह्म' वाक्य से शिवपत्व ही कहा है ।३३। जो पृथिवी सेशिव तकतत्व हैं अपने कारण प्रकृतिमें लीन होनेके द्वारा इसकी शुद्धि करे ।३४। परस्मैपद पूर्वक ग्यारह मन्त्रों को शिव ज्योति तक उच्चारण करे ।३५।

न ममेति वदेत्पश्च उद्देशत्याग ईरितः ।
अतः पर विविद्यौति कष्टपोनेति मन्त्रयोः ॥३६
व्यापकाय पदस्यान्ते परमात्मन इत्यपि ।
शिवज्योतिश्चतुर्थ्यन्त भिश्वभत पद पुनः ॥३७
धसनोत्सुकशब्दश्च चथुर्थ्यंतमथो वदेत् ।
परस्मैपदमुच्चार्य देवाय पदमुच्चरेत् ॥३८
उत्तिष्टग्वेति मन्त्रस्य विश्वरूपाय शद्वतः ।
पुरुषाय पद ब्रूय दोंस्वाहेत्यस्य सवेदत् ॥३९
लोकेत्रयपदस्यान्ते व्यापिने परात्मने ।
शिवावेदन मम पदं ब्रूयादतः परम् ॥४०

स्वशाखोक्तप्रकारेण पुरस्तात्तन्त्रकर्म च ।
निर्वर्त्य सर्पिषा मिश्रं चरुं प्राश्य परोधसे ॥४१
प्रदद्याद्दक्षिणां तस्मै हेमादिपरिबृंहिताम् ।
ब्रह्माणमुद्रास्य ततः प्रातरोपासनं हुनेत ॥४२
समांसश्चन्तु मरुत इति मन्त्रञ्जपेन्नर !

फिर 'इद न मम' कहे प्रकृति देवता के लिए इसी को त्याग करते हैं। ।३६। फिर विविद्यै त्वहा, कपोतकाय स्वाहा, व्यापकाल परमात्मने इदंन मम, इस प्रकार कहकर शिवा ज्योति चतुर्थी संयुक्त कर तथा ।३७। यसनोत्सुकायेदं इस प्रकार चतुर्थी विभक्ति से कहे तथा त्रैलोक्व व्यापि ने परमात्मने देवाय इद न मम कहे ।३८। 'उत्तिष्ठ' मन्त्र से ॐ विश्वरूपाय पुरुषाय स्वहा इस प्रकार उच्चारण करे ।३८। फिर त्रैलोक्य व्यापि ने परमात्मने इत्यादि मन्त्र से भाग दे ।४०। अपनी शाखा के विधान से तन्त्र कर्म करके गुरु के लिए धृतयुक्त चरुको किंचित् भक्षण करावे ।४१। और उन्हें सुवर्णादि की दक्षिणा दे फिर ब्रह्मा को विदा करे और प्रातःकालीन उपासना करता हुआ हवन करे ।४२।

याते अग्न अत्यनेन मन्त्रणाग्नौ प्रताप्य च ॥४३
तस्तमग्नौ समारोप्य स्व त्वात्मन्यद्वैतधामनि ।
प्रभातिकी ततः सत्ध्यामुपास्यादित्यमग्यथ ॥४४
उपस्थाय प्रयिश्याप्ह नाभिदघ्न प्रवेशयन् ।
तन्मन्त्रान्प्रजपेत्प्रीत्या निश्चलात्मा समुत्सुकः । ४५
आहिताग्निस्तु यः कुर्यात्प्र जापत्येष्टिमाहिते ।
श्रोते वैश्वानरे सम्यक् सर्ववेकसदक्षिणाम् ॥४६
अथाग्निमात्मन्यारोप्य ब्राह्मण प्रब्रजेत् गृहात् ।
सावित्री प्रथमं पादं सावित्रीमित्युदीर्य च ॥४७
प्रवेशयामि शब्दान्ते भूरोमिति च संवदेत् ।
द्वितीयं पादमुच्चार्य साधित्रोमिति पूर्ववत् ॥४८
प्रवेशयामि शब्दान्ते भुवरोमिती सवदेत् ।

फिर समां सिचन्तु मरुतः मन्त्र जो और 'याये अग्न' इसमन्त्रसे अग्नि को प्रज्वलित् करे ।४३। अद्वैत तेज वाले अग्नि को हाथसे अपने आत्मा में

आरोपित करे और प्रातःकालीनसन्ध्योपासन करके सूर्य को नमस्कारकरे। ।४४। फिर नाभि तक जल में प्रविष्ट होकर प्रीतिपूर्वक उन मन्त्रों का जप करे ।४५। तथा अहिताग्नि प्राजापत्येष्टि करे, वह भले प्रकार से श्रौत वश्वानर में होम करके सब वेद और दणिणा सहित दान कर ।४२। अग्नि को आत्मा में आरोपित घरसे निकलकर सन्यासी होजाय तथा गायत्री के प्रथम पाद का उच्चारण करके ।४७। सावित्री प्रवेशयामि ऐसा कहे और भूरोम् उच्चारण कर फिर गायत्री का द्वितीय पाद कहे ।४८। फिर सावित्री प्रवेयामिकहकर भूवरोम् कहे और तृतीयापादका उच्चारणकरे४६

प्रवेशयामिशद्धान्ते सबरोमित्युदोरयेत्ः।
त्रिपादमुच्चरेत्पूर्वं सार्वित्रीमित्यतः परम् ॥५०
प्रवेशयामि शद्धान्ते भूर्भूव सब्रोमिति।
उदीरयेत्परं प्रीत्थः निश्चलात्मा मुनीश्व ॥५१
इयम्भगवती साक्षाच्चकर्छंरार्द्ध शरीरिणी।
पञ्चवक्त्रा दशभुजा त्रिपञ्चनयनोज्वला ॥५२
नवरत्नकिरीटोद्यच्चन्द्रखेखावतसिनी।
शुद्धस्फटिकसकाशा दशाधयुधरा शुभा ॥५३
हारकेथूरकटककिंकिणीनपुरादिभिः।
भूषितावयवा दिव्यवसना रत्नभूषणा ॥५४
विष्णुना देवऋृषिगन्धर्वनायकैः।
मानवैश्च सदा सेव्या सर्वात्मयापिनी शिवा ॥५५
सदा शिवस्य परमा धर्मपत्नी मनोहरा।
जगदम्बात्रिजननी त्रिगुणा निर्गुणाप्यजा ॥५६

फिर सावित्री प्रवेश्यामि कहता हुआ सुवरोम् कहे और गायत्री के तीन पादों का उच्चारण करे ।५०। फिर सावित्री प्रवेशयामिकहकर भूर्भवः सुवरोम् इस प्रकार उच्चारण करे ।५१। यह भगवती साक्षात् भावन् शिव के आधे अङ्ग वाली है पाँच दस भुजा पन्द्रह नेत्र तथा उज्ज्वल देह है। ५२। नवरत्न किरीट से जगमगाती, उदय हुए चन्द्र जैसी कान्ति वाली स्वच्छस्फटिक मणि के समान दस आयुधधारिणी ।५३। हार केयूरखडरा

कौंधनी तथा नुपूर आदि से विभूषित देह वाली दिव्य वस्त्र तथा रत्नों के आभूषण धारण किए हुए ।५४। विष्णु, ब्रह्मा, देव, ऋषि, गन्धर्व, दानव और मनुष्यों के द्वारा सेवा के योग्य तथा सबकी आत्मा में सदैव व्याप्त ।५५। शिवा भगवान् शिवकी मनोहारिणी पत्नी हैं । जो संसार की माता त्रैलोक्य को उत्पन्न करने वाली त्रिगुणात्मिका तथा गुणों से परे हैं ।५६।

इत्येव संविचार्याथ गायत्रीं प्रजपेत्सुधीः ।
आदिदेवी च त्रिपदां ब्राह्मणत्वादिदामजाम् ॥५७
यो ह्यन्यथा जपेत्पापो गायत्रीं शिवरूपपिणाम् ।
स पच्यते महाघोरे नरके कल्पसख्यया ॥५८
सो व्याहृतिभ्यः सजाता तास्वेव विलय गता ।
ताश्च प्रणवसम्भूताः प्रणवे विलय गता ॥५९
प्रणवः सर्ववेदादि प्रणवः शिववाचकः ।
मन्त्राधिराजश्च महाबीजं मनुः परः ॥६०
शिवो वा प्रणवो ह्येष वा शिवः स्मृतः ।
वाच्यबावाचकयोभेदो नात्यन्तं विद्यते यतः ॥६१
मनमेव महामन्त्रश्चीवानाञ्च तनुत्यजाम् ।
काश्यां सश्रात्य मराणे दत्तो मुक्ति परां शिवः ॥६२
तस्मदेकाक्षर देव शिव परमकारणम् ।
उपासते ययिश्रेष्ठो हृदयांभोजनमध्यगम् ॥६३

इस प्रकार ध्यान कर गायत्री का जप करना चाहिए क्योंकि यही आदि देवी त्रिपदा ब्रह्मणत्व के देने वाली तथा स्वयं अजन्मा है ५७ जो पापकर्मी मनुष्य शिव स्वरूप गायत्री को इसके विपरीत समझता है, वह घोरनरकगामी होता है ।५८।वहगायत्री व्याहृतियोंसे उत्पन्न हुई तथाउन्हीं में लीन होती हैं और वह व्याहृतियां प्रणवसेउत्पन्न होतीं तथा प्रणवमेंलय होती हैं ।५९। वेदों का आदि प्रणव ही है यही शिव का वाचक है तथा मन्त्रों का अधीश्वर और बीज मन्त्र है ।७०। प्रणव ही शिव है तथा शिव ही प्रणव है,वाचकमें किंचित् भेदनहीं हैं।६१। काशी में शरीर त्याग करने वालों को इसी मन्त्र का उपदेश देकर शिवजी मुक्त कर देते हैं ।६२।

इस कारण इस एकाक्षर श्रेष्ट परमदेव का जो यति अपने हृदय कमल में पूजन करते हैं।६३।

मुमुक्षवोऽपरे धीरां विरक्ता लौकिका नराः।
विषयान्मनसा ज्ञात्वोपासते परम शिवम् ॥६४
एव विलाप्यगायत्रीं प्रणवे शिववाचके।
अह वृक्षस्य रेरिवेत्यनुवाकं जपेत्पुनः ॥६५
यश्छन्दसामामृषभ इत्यानुवाकमुपक्रमात्।
गोपायांतं जपन्पश्चादुत्थितोऽहमितीरयेत् ॥६६
वदेज्जतेत्रिधा मदन्मध्योच्छ्रायक्रमान्मुने।
प्रणवं पूर्वमद्धृस्य सृष्टिस्थितिलयक्रमात् ॥६७
तेषामथ क्रमाद् भूयाद् भुःसंन्यस्तं भुवस्तथा।
सन्यस्तं सुचरित्युक्त्वा संन्यस्तं पदमुच्चरन्।
सर्वमंत्राद्यः प्रदेशे मयेति च पदं वदेत्।
प्रणवं पूर्वसुदवृत्य समष्टिव्याहृतीर्वदेत् ॥६९
समस्तमित्यतो बूयान्मयति च समब्रवीत्।
सदाशिवं हृदि ध्यात्वा मन्दादीति ततो मुने ॥७०

तथा जो अन्यधोर, मुमुक्ष, विरक्त अथवा लौकिक जन अपने मन को विषयों से हटाकर शिवजी की उपासना करते हैं।६४। तथा जो गायत्री को शिव वाचक प्रणव में लीनकर अह वृक्षस्यरेरिव इस अनुवाच को जप करे।६५। तथा यश्छदसाम ऋनभः इस अनुवाक का जप करते तथा श्रूत में गोपाये इन तैत्तरीथ शाखा के अनुवाकों को जपकर उत्थितोहम्कहे।६६ और तीनों ईच्छाओंका त्यागकरता हुआ कहे कि मैं पुत्रीकी इच्छासे पृथक हुआ हूँ,धन की इच्छासे पृथक हुआ हूँ लोकेषणासे पृथक हुआ हूँ इस प्रकार क्रम से कहे। प्रथम मद,फिर मध्यम, फिर अधिक शब्दसे जप करे, प्रणव का उद्धार कर मृष्टि,स्थिति और लयके क्रमसे करे।६७। उनका क्रमसे-भू संन्यसाँ,भव:सन्यस्तं,सुवसंन्यस्तं, ऐसाक्रम सेकहें६८इन सब मन्त्रोंके अन्तमें 'मायालगावेऔरआदिमें प्रणवसंयुक्तकरे औरभूर्भुवःस्वःइससमष्टिव्याहृतिका

उच्चारण करे ।६९।संन्यस्तं मया कहकर हृदय में शिवजी का ध्यान करे तथा मन्द मध्यम और उच्च स्वर से जप करे ।७०।

प्रैषमन्त्रांस्त जप्त्वैवं सावधानेन चेतसा ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहेति संजपन् ॥७१
प्राच्याँ दिश्यप उद्धृत्य प्रक्षिपेदंजलिं ततः ।
शिखां यज्ञोपवीतं च यत्रोत्पाटय च पाणिना ॥७२
गृहीत्वा प्रणवं भूश्च समुद्रं गच्छ संवदेत् ।
वह्निजायाँ समुच्चार्य सोदकांजलिना ततः ॥७३
अप्सु हुयादथ प्रैवेरभिमन्त्र्य त्रिधा त्वपः ।
प्राश्य तीरे समागत्य भूमौ वस्त्रादिकं त्यजेत् ॥७४
उदङ्मुख प्राङ्मुखो वा गच्छेत्सप्तपदाधिकम् ।
किञ्चिद् दूरमथाचार्यस्तिष्ठ तिष्ठेति संवदेत् ॥७५
लोकस्य व्यवहारार्थं कौपीनं दण्डमेव च ।
भगवन्स्वीकुरुष्वेति दद्यात्स्वेनैव पाणिना ॥७६
दत्वा सदोरं कौपीनं काषायवसनं ततः ।
आच्छाद्याचम्य च द्वोधा तं शिष्यमिति संवदेत् ॥७७

सावधानी से इस प्रकार प्रेषमन्त्र को जपकरके कहे अभय सर्वभूतेध्यो मत्तास्वहा अर्थात् मुझसे सब जीवों को अभय हो,इसका जप करे।७१।पूर्व दिशा में अन्जलीमें जल लेकर छोड़े तथा शिखा,यज्ञोपवीत को गायत्रीमन्त्र पूर्वकहाथ से उखाड़कर ।७२। ग्रहण करे तथाप्रणवसहित वह्निजायास्वाहा तथाॐभूःसमुद्रं गच्छ स्वाहा कहकर हाथमें जलावे ।७३। तथा प्रेष मन्त्रों से शिखा और यज्ञोपवीत कोजलमैं छोड़देऔर जलसे आचमन कर वस्त्रादि भी पृथ्वी में त्याग दे ।७४। उत्तराभिमुख या पूर्वाभिमुख होकर सात पग चले । कुछ दूर चलने पर आचार्य ठहरो कहे ।७५। और आचार्य कहे कि लोक व्यवहारार्थ कौपीन स्वीकार करिये यह कहकर आचार्य अपने हाथ से कौपीन दे ।७६। आचार्य की बात सुनकर धागे सहित कौपीन काषायवस्त्र से देहको ढक करदो चार आचमन करे तबआचार्य उससेकहें।७७

इन्द्रस्य वज्रोऽसि तत इति मन्त्रमुदाहरेत् ।
सम्प्रार्थ्य दण्डगृह्णीयात्सखाय इति स जपन् ॥७८
अथ गत्वा गुरो पार्श्वं शिवपादाम्बुज स्मरन् ।
प्रणमेद्दंडवद् भूमौ त्रिवारं संयतात्मवान् ॥७९
पुनरुत्थाय च शनैः प्रेम्णा पश्यन्गुरुं नजम् ।
कृतांजलि पुटस्तिष्ठेद्गुरुपादसमापितः ॥८०
कर्मारम्भात्पूर्वमेव गृहीत्वा गामयं शुभम् ।
स्थलामलकमात्रेण कृत्वा पिण्डान्विशोषयेत् ॥८१
सौरैस्तु किरणैरेव होमारम्भाग्निमध्यगान् ।
निक्षिप्त होमसम्पूतौ भस्म सगृह्यगोपयेत् ॥८२
ततो गुरुः समादाय विरजानलज सितम् ।
भस्म तेनैवत णिष्यमग्निरित्यादिभिः क्रमात् ॥८३
मत्रै रगानि सस्पृश्य मूर्द्धादिचरणान्ततः ।
ईशानाद्यैः पंवमत्रैः शिर आरभ्य सर्वतः ॥८४
समधत्य विधानेन त्रिपुण्ड्रं धारयेत्ततः ।
त्रियायुषैस्त्र्यम्बकैश्च मूर्ध्न आरभ्य च क्रमात् ॥८५
ततः सद्भक्तयुक्तेन चेतसा शित्यसत्तमः ।

इन्द्रस्य तज्रोसि तत् इन मन्त्रों को जपता वुआ सखाय मां' कहता दण्ड ग्रहण करे ।७८। फिर शिवजी के चरण कमलों के ध्यान पूर्वक गुरु के समीप जाकर पृथ्वीमें लेटकर तीन बार प्रणाम करे ।७९। फिर उठकर प्रेमपूर्वक गुरुको देखे और उसके चरण के पास हाथ जोड़कर खड़ाहो ।८०। कर्मका आरम्भ करने से पहले ही गोबर लेकर बड़े २ आमलों के समान उसके गोले बनाकर सुखाले ।८१।जब वे धूपसे सुखजांय तब उन्हेंहोमाग्नि के बीच में रख दे होमके सम्पूर्ण होवेके लिए उस भाग को रखक ले।८२। तब गुरु विरजाग्नि के बने श्वेतपिण्डोंकी भस्मको अग्निरिति भस्म'इत्यादि मन्त्रों से ।८३। सब अङ्गों में लगातार सिर से चरणों तक ईशानादि' पाँच मन्त्रों से आरम्भ करे ।८४।

हृत्पङ्कजे समासीनं ध्यायेच्छिवमुमासखम् ॥८६
हस्त निधाय शिरसि शिष्यस्य स गुरुर्वदेत् ।
त्रिवार प्रणव दक्षकर्णे ऋष्यादिसंयुतात् ॥८७
ततः कृत्वा च करुणां प्रणवस्यार्थमादिशेत् ।
षड्विधार्तपरिज्ञान सहितं गुरुसत्तम ॥८८
दिष्टद्वप्रकारं स गुरु प्रणमेद भुवि दण्डवत् ।
तदधीनो भवेन्नित्य नान्यत्कर्म समाचरेत् ॥८९
तदाज्ञया ततः शिष्यो वेदान्तार्थानुसारतः ।
शिवज्ञानपरो भूय त्सुगुणागुणभेदतः ॥९०
ततस्तत्नैव शिष्येण श्रयणाद्यङ्गपर्वकम् ।
प्राभातिकाद्यनुष्ठान जपान्त कारयेद्द गुरुः ॥९१

तथा सब प्रकार देह में भस्म मल कर त्रिपुण्ड धारण करे। त्रियायुषैः तथा त्र्यम्बकं यजांमहे मन्त्रों से आरम्भ करें ।८५। और उत्तम भक्ति से सम्पन्न श्रेष्ठ शिष्य अपने हृदय कमल में पार्वती सहिता शिवजी का ध्यान करे ।८६। फिर प्रसन्न होकर गुरु शिष्य के शिर पर हाथ रखे और ऋषि आदि का उच्चारण कर उसके दक्षिण कान में मन्त्र कहे और प्रणव का तीन प्रकार से उच्चारण करे ।८७। फिर उसके अर्थ को कृपा पूर्वक कहे। गुरु को अध्याय में वर्णित छःप्रकार के अर्थ का ज्ञान कराना चाहिये ।८८। फिर शिष्य बारह प्रकार से गुरु को पृथिवी में प्रणाम कर उनके अधीन रहे तथा उनकी आज्ञा के बिना अन्य कार्यों का आरम्भ न करे ।८९। तथा गुरु आज्ञा से शिष्य सदैव वेदान्त ज्ञान में तत्पर रहे और सगुण-अगुण भेद से शिव ज्ञान प्राप्त करे ।९०। वेदान्त मार्ग के अनुसार नित्य प्रति गुरु की आज्ञा में रहे तथा श्रवणादि युक्त शिव ज्ञान में तत्पर हो। प्रातः कालीन अनुष्ठान को गुरु जप के अन्त जप करावे ।९१।

पूजां च मण्डले तस्मिन्कैलासप्रस्तराह्वये ।
शिवोदितेन मार्गेण शिष्यस्तत्रैव पूजयेत् ॥९२
देवं नित्यमशश्वेत्पूजितु गुरुणा शुभम् ।

स्फटिकं पीठिकोपेतं गृह्णीयाल्लिगमैश्वरम् ॥६३
वरं प्राणपरित्यागश्छेदनं शिरसोऽपि मे ।
नं त्वनभ्यर्च्य भजीयां भगवन्तं तिलोचनम् ॥६४
एवं त्रिवारमुच्चोर्यं शपथं गुरुसन्निधौ ।
कुर्याद दृढमना: शिष्य: शिवभक्ति समुद्वहन् ॥६५
तत एवं महादेवं नित्यमुद्युक्तमानसः ।
पूजयेत्परया भक्तया पञ्चावरणमार्गतः ॥६६

तथा शिष्य कैलाश प्रस्तर नामक मंडल में शिव वर्णित मार्ग से पूजन करे ।६२। गुरु पूजित देवता के पूजन करने में नित्यप्रति समर्थ न हो तो स्फुटिक सिंहासन सहित एक शिवलिंग ग्रहण करे तथा नित्यप्रति देव-पूजन और गुरु पूजन न कर सके तो शिवलिंगका ही पूजन करे ।६३ चाहे प्राण चला जाय शिर कटजाय, परन्तु त्रिनेत्र भगवान् शंकर का पूजन किये बिना भोजन न करे ।६४। इस प्रकार गुरुके निकट तीन बार सौगन्ध कर दृढ़ मनसे शिष्य शिवकी भक्तिकरे ।६५। तथा उत्कण्ठित मन से परम भक्ति पूर्वक नित्य उसी लिंग में प्रसन्न होकर शिवजी का पाँच आवरण के मार्ग से पूजन करे ।६६।

॥ षट् प्रकार कथन पूर्वक ओंकार स्वरूप वर्णन ॥

भगवन्षण्मुखाशेषविज्ञानमृतवारिधे ।
विश्वामरेश्वरसुत प्रणतार्त्तिप्रभंजन ॥१
षड्विधार्थपरिज्ञानमिष्टदं किमुदाहृतम् ।
के तत्र षड्विधा अर्था परिज्ञान च किं प्रभो ॥२
प्रतिपादश्च कस्तस्य परिज्ञाने च किं फलम् ।
एतत्सर्वं समाचक्ष्व यद्यत्पृष्टं महागुह ॥३
एतमर्थमविज्ञाय पशुशास्त्रविमोहितः ।
अद्याप्यहं महासेन भ्रान्त श्चशिवमायया ॥४
अह शिवपदद्वंनाज्ञानामृतरसायनम् ।
पीत्वा विगतसम्मोहो भविष्यामि यथा तथा ॥५

कृपामृतार्द्रया दृष्ट्या विलोक्य सुचिरं मयि ।
कर्त्तव्योऽनुग्रहः श्रीमत्पाञ्जशरणागते ॥६

इति श्रुत्वामुनीन्द्रोक्तं ज्ञानशक्तिधरो विभुः ।
प्राहान्यदर्शनमहासंत्रासजनकं वचः ॥७

वामदेव ने कहा हे षडानन ! हे विज्ञानमृत्त के सिन्धो ! हे सर्वेश्वर हेदीन दुःखहर्ता शिवपुत्र ! ।१। छः प्रकार के अर्थका ज्ञान कौन-सा है?वह किस प्रकार के इष्ट का दाता है ? छः प्रकारके अर्थ कौन सेहै तथा उनका ज्ञान क्या है?।२। इसका प्रतिपाद्य कौन है ? उससे ज्ञानका फल क्या है ! हे स्कन्दजी ! आप इस अर्थ को हमारे प्रति कहें ।३। मैं इसअर्थ के ज्ञान बिना जीवशास्त्र से भ्रमा हुआ शिवजी की मायासे मोहित हो रहा हूँ ।४। मैं शिवपद के ज्ञानमृत रसायनको पीनेका इच्छुक हूं जिससे मैं मोह रहित होजाऊँ ।५। इस प्रकार कृपामृत मयी दृष्टि से मुझे देख कर मुझ पर अनुग्रह करे, मैं आपकी शरण में आया हूँ । मुनिकी यह बातसुन करज्ञान शक्ति से सम्पन्न स्कन्धजी ने शिवशास्त्रोंसे विरुद्ध शास्त्रों को मानने वालेके प्रति त्रास देने वाले वचन कहे ।७।

श्रूयतां मुनिशार्दूल त्वया यत्पृष्टमादरात् ।
समष्टिव्यष्टिभावेन परिज्ञानं महेशितुः ॥८

प्रणवार्थपरिज्ञानरूपं तद्विस्तरादहम् ।
वदामि षड्विधार्थक्यपरिज्ञानेन सुव्रत ॥६
प्रथमो मन्त्ररूपः स्याद् द्वितीयो मन्त्रभावितः ।
प्रथमो मन्त्ररूपः स्याद् द्वितीयो मन्त्रभावितः ।
देवतार्थस्तृतीयोऽर्थो प्रपञ्चार्थस्ततः परम् ॥१०
चतुर्थः पञ्चमार्थः स्याद् गुरूरूपप्रदर्शकः ।
षष्टः शिष्यात्मरूपोऽर्थः षड्विधार्था प्रकीर्तिताः ॥११
येन विज्ञातमात्रेण महाज्ञानी भवेन्नरः ॥१२
अद्याः स्वरः पंचमश्च पञ्चमान्तस्ततः परः ।
बिन्दुनादौ पञ्चार्णाः प्रोक्ता च वेदैर्न चान्यथा ॥१३

एवत्वमाष्ठिरूपो हि वेदादिः गमुदाहृतः ।
नादः सर्वसमष्टिः स्याद्विद्वाढयं यच्चतुष्टयम् ।।१४

स्कन्द जी ने कहा-हे मुने ! तुमने जो प्रश्न किया है वह आदर सहित समष्टि व्यष्टि भाव से शिवजी का ।८। प्रणवार्थ परिज्ञान विस्तार सहित तुम्हारे प्रति कहता हूँ । उस एक के ही परिज्ञान में छः प्रकार का अर्थ हैं ।९। प्रथम मन्त्र रूप, द्वितीय यन्त्ररूप, तृतीय देवार्थं और चतुर्थ प्रपचार्थ है ।१०। पंचम अर्थ दिखाया गया तथा छटवाँ शिष्य के आत्मानुरूप, इस प्रकार छः अर्ण कहे हैं ।११। हे मुनिवर ! जिस यन्त्र के विज्ञानमात्र से पुरुष ज्ञानी होजाता है उस मन्त्रका श्रवण कीजिए ।१२। प्रथम स्वर अकार, पंचम उकार तथा पवर्ग के अन्तका मकार बिन्दु और नाद इन पाँच वर्णों को वेद में ओंकार माना गया है ।१३। वेद में यह समष्टि रूप ही ओंकार कहा है, नाद सबकी समष्टि है, उकार और मकार बिन्दु के आदि हैं ।१४।

व्याष्टिरूपेण संसिद्धं प्रणवे शिववाचके ।
यन्त्ररूप श्रृणु प्राज्ञ शिवलिंगं तदेव हि ।।१५
सर्वाधस्ताल्लिखेत्पीठं तदूर्ध्वं प्रथम स्वरम् ।
उवणं च तदूर्ध्वस्थं पवर्गान्त तदूर्वगम ।।१६
तन्मस्तकस्य विंदुं च तदूर्ध्वं वादमालिखेत् ।
यत्रे सम्पूर्णतां याते सर्वकामः प्रसिध्द्धयति ।।१७
एवं यन्त्रं समालिख्य प्रणनैनेव्र वेष्टयेन ।
तदुत्थेनैव नादेन विद्यान्नादावसानकम् ।।१८
देननाथं प्रवक्ष्यामि गुंढ सर्वत्र यन्मुने ।
तव स्नेहाद्वामदेव यथा शङ्करभाषितम् ।।१९
सद्योजातंप्र पद्यामीत्युपक्रम्य सदाशिवम् ।
इति प्राह श्रुतिस्तारं ब्रह्मपञ्चकवाच कम् ।।२०
विज्ञेया ब्रह्मरूपिण्यः सूक्ष्माः पचैव देवताः ।
एता एव शिवस्यापि मूर्तित्वेनोपवृंहिता ।।२१

व्यष्टि रूप से सिद्ध ओंकार शिव की वचाकता में सिद्ध है, अब यन्त्र स्वरूप सुनो, वह लिंग स्वरूप है ।१५। सबसे नीचे पीठ बनावे उसके ऊपर अकार फिर उकार फिर मकार बनावे ।१६। उसके मस्तक पर बिन्दु और अर्द्ध चन्द्राकार नाद बनावे, यन्त्र में पूर्ण सभी कार्यों की सिद्धि होती है ।१७। इस प्रकार यन्त्र खींचकर ओंकर से वेष्टि कर, उससे उठे हुये नाद से, नाद की समाप्ति तक भेद करे ।१८। हे वामदेव ! अब शिवजी द्वारा कहा हुआ अत्यन्त गूढ़ देवार्थ तुम्हारे स्नेहके कारण तुमसे कहता हूँ ।१९। साक्षात् श्रुति ने ही ब्रह्म पञ्चक ओंकार बताया है ।२०। प्रणव ब्रह्म रूप वाले पाँच देवता भी शिवजी की मूर्ति समझो, उन्हें शिवजी से पृथक् मत जानो ।२१।

शिवस्य वाचको मन्त्रः शिवमूर्त्तेश्च वाचकः ।
मूर्त्तिमुर्त्तिमतोर्भेदो नात्यन्तं विद्यते यतः ।।२२
ईशानमुकुटोपेत इत्यारभ्य पुरोदितः ।
शिवस्य विग्रहः पंचवक्त्राणि श्रृणु सांप्रतम् ।।२३
पंचमादि समारभ्य सद्योजाताद्यनुक्रमात् ।
उर्ध्वातमीशानांतं च सुखपञ्चकमोरितम् ।।२४
चशानस्यैव देवस्य चतुर्व्यूहपदे स्थितम् ।
पुरुषाधं च सद्यांतं ब्रह्मरूप चतुष्टयभ् ।।२५
पंचब्रह्मसमष्टिः स्यादीशानं ब्रह्मविश्रुतम् ।
पुरुपाद्यं तु तद्वयष्टिः सधोजातान्तिकमुने ।।२६
अनुग्रहमयं चक्रमिदं पंचार्थकारणम् ।
परब्रह्मात्मकसूक्ष्मं निर्विकारमनाभयम् ।।२७
लनुग्रहोऽपि द्विविधस्तिरीभावादिगोचरः ।
प्रभुश्चान्यस्तु जीवानां पशवरविमुक्तिदः ।।२८

शिवजी पंचक मन्त्र शिव स्वरूप का भी वाचक है, मूर्त्ति और मूर्त्तियान् से विशेष भेद नहीं होता ।२२। ईशानो मुकुटोपेतः से आरम्भकर पाँच ही शिवजी से देह बताये हैं अब पाँचों मुखों का वर्णन सुनो ।२३। शिवजीके

पाँच मुख पन्चमादिसे आरम्भकर सद्योजातिके अनुकमसे ऊर्ध्व और ईशान तक बताये हैं।२४। यही ईशान उनके चतुर्व्यूह पद में स्थितहैं, पुरुष सो सद्योजात तक चतुष्टय ब्रह्मस्वरूप हैं।२५। तथाईशाननामक ब्रह्म की संगति से पञ्च ब्रह्म समष्टि कही जाती है, पुरुष के आदिकी व्यष्टि सद्योजात के अन्त तक।२६। अनुग्रहमय चक्र कहा है, पचार्थ का कारण यही है तथा पर ब्रह्मात्मक, सूक्ष्म एवं निर्विकार भी इसी को समझो।२। तिरोभाव और प्रकट भाव के भेद से अनुग्रह के भी दो प्रकार कहे हैं, यह प्राणियों को पर और अार मुक्ति का दायक है।२८।

एतत्सदा शिवस्थैव कृत्यद्वयमुदाहृतम्।
अनुग्रेहऽप सृष्ट्यादिकृत्यानां पंचक विभोः ॥२९
मुने तत्रापि साद्याद्या देवताः परिकीर्त्तिताः।
परब्रह्मस्वरूपास्ताः पंचकल्याणदाः सदा ॥३०
अनुग्रहमय चक्रं शांत्यतीतकलामयम्।
सदाशिवाधिष्ठितं च परम सदमुच्यते ॥३१
एतदेवं पदं प्राप्यं यतीनां भावितात्मन म्।
सदाशिववोपासकानां प्रणवाभक्तचेतमम् ॥३२
एतदेव पदं प्राप्य तेन साक मुनीश्वराः।
भुक्त्वा सुविपुलान्भोगेन्देवेन ब्रह्मरूपिणा ॥३३
महाप्रलयसभूतौ शिवसाम्यं भजति हि।
न पतति पुनः क्वायि संसाराब्धौ जनाश्चते ॥३४
वे ब्रह्मलोश इति च श्रुतिराह सनातनी।
तेश्चर्य्यं तु शिवस्यापि समष्टिरिदमेत्र हि ॥३५

शिवजी के दो कृत्यहैं, अनुग्रह सृष्टि आदि कृत्योंका पंचक कहा गया है।२९। वह सृष्टि आदि कृत पंचककेसद्योदिदेवता कहे हैं, पाँचों परब्रह्म स्वरूप हैं तथा कल्याण के दाता हैं।३०। अनुग्रहमय चक्र शान्ति से परे एवं कतापय है सदाशिवमें उसका अधिष्ठान होने से वह परमपद कहा जाता है।३१। जोशिवजीके उपासकहैं और जिनका चित्त ओंकार में रमा हुआ है,

उन भावितात्मा यतियों को इस पदकी प्राप्ति होता है।३२। हे मुनि-वर ! भगवान्‌शिवकी कृपासे वे इस पदको प्राप्त होकर ब्रह्मस्वरूप परमात्माके साथ अनेकप्रकार के भागों का उपभोग करके।३३।महाप्रलयकेशंकर की साम्यताको प्राप्त होते और पुनः संसाररूपी समुद्रमें नहींगिरते हैं।३४। ते ब्रह्मलोकेषु० इत्यादि श्रुति इसी अर्थ का प्रतिपादन करती है, भगवान् शिवका ऐश्वर्य समष्टि रूप यही है।३५।

सर्वेश्वर्येण सम्पन्न इत्याहाथर्वणी शिखा ।
सर्वैश्चर्यप्रदातृत्वमस्यैव प्रवदन्ति हि ॥३६
चमकस्य पदान्नान्यदधिकं विद्यते पदम् ।
ब्रह्मपंचकविस्तार प्रपञ्चखलु दृश्सते ॥३७
ब्रह्मभ्य एवं संजाताः निवृत्याद्याः कला मताः ।
सूक्ष्मभूतस्वरूपपिण्यः कारणत्वेन विश्रुता ॥३८
स्थूलरूपस्वरूपस्य प्रपञ्चस्याय सुव्रत् ।
पञ्चधाऽवस्थितं यत्तद् ब्रह्मपञ्चकमिष्यते ॥३९
पुरुषः श्रोत्रवाण्यौ च शब्दाकाशौ च पंचकम् ।
व्याप्तमीशानरूपेण ब्रह्मणा मुनिसत्तम् ॥४०
पुरुषः श्रोत्रवाण्यौ च शब्दाकाशौ च पंचकम् ।
व्याप्तं पुरुषरुपेण ब्रह्तणव मुनीश्वर ॥४१
अहंकारस्तथा चक्षुः पादो रुपं च पावकः ।
अघोरब्रह्मणा व्याप्तमेतत्पंचकर्मचितम् ॥४२

अथर्वशीर्षा की श्रुतिका भी का यही कहना है किवही सम्पूर्ण ऐश्वर्यों से सम्पन्न है तथा वही सम्पूर्ण ऐश्वर्योंको प्रदान करता है।३६।चमकाध्याय में उसके स्थान से श्रेष्ठ अन्यकोई नहीं बताया, ब्रह्म रंचककेविस्तारकानाम ही प्रपंच कहा गया है।३७। निवृत्ति आदि कलायें ब्रह्मसे ही हुई हैं, यही सूक्ष्मभूत स्वरूपहोकर कारण में स्थित रहती हैं।३८। इसस्थूल शरीरवाले प्रपंच के पांच प्रकारसे स्थित होनेके कारणही इसे ब्रह्मपंचक कहा है।३९ पुरुष,श्रोत्र,वाली,शब्द और आकाश ईशानरूप ब्रह्म से ही व्याप्त है।४०

प्रकृति, त्वक्, हाथ स्पर्श और वायु यह पाँचों पुरुषरूपब्रह्ममेंव्याप्त हैं ।४१। अहंकार, चक्षु, चरण, रूप तथा पावक अघोर ब्रह्म से व्याप्त हैं ।४२।

बुद्धिश्च रसना पायू रस आपश्च पंचकम् ।
ब्रह्मणा यामदेवेन व्याप्त भवति नित्यशः ॥४३
मनो नासा तथोपस्थो गन्धो भूमिश्च पंचकम् ।
सद्येन ब्राह्मण व्याप्तं पञ्चब्रह्ममयं जगत् ॥४४
यत्र रूपेणोपदिष्टः प्रणव शिवः वाचकः ।
समष्टिः पञ्चवर्णानां विद्वाधं यच्चतुष्टयम् ॥४५
शिवोपदिष्ठमार्गेण यन्त्ररूप विभावयेत् ।
प्रणावं परम मन्त्राधिराज शिवरूपिणम् ॥४६

बुद्धि, रसना, पायु, रस, जल यह पाँचों ब्रह्म वामदेव से व्याप्त हैं ।४३। मन, नासिका, उपस्थ,गध और भूमिसद्य ब्रह्मसे व्याप्त हैं, इस प्रकार पंचब्रह्मात्पक जगत् कहा है ।४४। जो शिववाचक प्रणव यन्त्र रूपसे कहा गया है,वह पाँचों वर्णों की समष्टि तथा बिन्दु आदि समष्टि एवं कला प्रणव शिव वाचकहै ।४५। शिवजी द्वारा उपदिष्ट मार्ग से उसका विचार करना चाहिए यही प्रणव मन्त्रराज तथा साक्षात् शिव स्वरूप है ।४६।

॥ ओंकार को समस्त सृष्टि का कारण कथन ॥

प्रतिलोमाष्मकं हंसे वक्ष्यामि प्रणवोद्भवम् ।
तव स्नेहाद्वामदेव्र सावधानतया शृणु ॥१
व्यंजनस्य सकारस्य हकारस्य च वर्जनान् ।
आमित्येव भवेत्स्थूलो वाचकः परमात्मनः ॥२
महामन्त्रः स विज्ञयो मुनिभिस्तत्वदर्शिभिः ।
तत्र सूक्ष्मो महामन्त्रस्तदुद्धारं वदामि ते ॥३
आधे त्रिपञ्चरूपे च स्वरे षोडशके त्रिषु ।
महामण्त्रो भवेदादौ ससकारो भवेधदा ॥४
हंसस्य प्रतिलोमः स्यात्सकारार्थः शिवः स्मृतः ।
शक्त्यात्मको महामन्त्रवाच्यः स्यादिति निर्णतः ॥५

गुरुपदेशकाले तु सोहं शक्त्यात्मकः शिवः ।
इति जीवपरो भूयान्महामन्त्रस्तदा पशुः ॥६
शक्त्यात्मकः शिवांशश्च शिवैक्याच्छिवसाम्यभाक् ।
प्रज्ञानं ब्रह्मवाक्ये तु प्रज्ञानार्थं प्रदृश्यते ॥७

हे वामदेव ! अबमैं प्रतिलोम अर्थात् सोलह प्रकार के एकार वाले हंस में प्रणवकी प्राप्ति कहता हूँ तुम सावधानी से सुनो ।१। व्यंजन सकार का हकारके वर्जनसेॐरूपस्थूल परमात्मवाचक सूक्ष्म ।२। महामन्त्र होता है, तत्वदर्शी मुनियोंको ऐसा कथन है, मैं उसका उद्धार करता हूँ अ अं अः इन तीनोंके आदिस्वर अकारके पन्द्रहवें स्वरूपको प्राप्त होनेपर आदि हकार व्यंजन में हकी स्थिति होनेपर तथा सोलहवेंअ रूपका आदिसकार होनेपर वह हंस होताहै । इसका उल्टा अर्थात्आदिमें सकार होनेपर सोहं रूप महा मन्त्र ही है, यह उद्धार सूक्ष्म होनेके कारणमहा सूक्ष्म है ।४। इसका उल्टा हँस ही होता है तथा संकार अर्थ शिवही है क्योंकि वह सर्वनाम विशुद्ध स्वभाव शिव के ही बुद्धि का विषय है, इस शक्त्यात्मक महामन्त्र कोशिव का वाचक समझो ।५। गुरु के उपदेश काल में शक्त्यात्मक शिवसोहं ही है, शिवोऽस्मीति इस महामन्त्र के होने पर ।६। शक्त्यात्मक तथा शिवांश पशु शिवके एकीकार से साम्यभाग होता है, शक्त्यात्मक और शिवांश होने के कारण शिव की समानता का भागी होता है यह वाक्य प्रज्ञान का अर्थ दर्शाता है ।७।

प्रज्ञानशब्दश्चैतन्यपर्यायः स्यान्न संशय ।
चैतन्यमात्मेति मुने शिवसूत्रं प्रवत्तितम् ॥८
चेयन्यमिति विश्वस्य सर्वज्ञानकियात्मकम् ।
स्वातन्त्र्य तत्सव भावो यः स आग्मा परिकीर्तित ॥९
इत्यादिशिवसूत्राणां वार्त्तिकं कथितं मया ।
ज्ञानं वंध इतीदंतु द्वितीय सूत्रमीशितुः ॥१०
ज्ञानमित्यात्मनस्तस्य किंचिज्ज्ञानक्रियात्मकम् ।
इत्याहायपदेनेशः पशुवर्गस्य लक्षणम् ॥११

एतद्द्वयं पराशक्तेः प्रथमं स्पन्दता गतम् ।
एतामेव परां शक्ति श्वेताश्वेतरशाखिनः ।।१२
स्वाभाविकी ज्ञानवलक्रिया चेत्यस्नुवन्मदा ।
ज्ञानक्रियेच्चरूप हि शंभोर्द्दष्ठित्रयं विदुः ।।१३
एतन्मनोमध्यगं सदिप्रियज्ञानगोचरम् ।
अनुप्रविश्य जानाति नरोति च पशुः सदा ।।१४

निः स्सन्देह प्रज्ञान शब्द चेतना का पर्यायही है । आत्मा चेतनहै, शिव सूत्रों में ऐसा कहा है ।८। जो चेतन है तथा जिसमें विश्व का सम्पूर्ण ज्ञान और क्रिया भरी पड़ी है, ऐसे स्वतन्त्र स्वभाववाला वह परमात्माहीबताया है ।९। शिवसूत्र और वार्तिकोंके अनुसारजीव-स्वरूपमें दो लक्षणज्ञान और बन्ध रहते हैं ।१०। उस विश्व प्रपंच में आत्माको ज्ञान क्रियात्मक स्वतन्त्रता है आदि भेद से जीवका लक्षण वही है ।११। यही चैतन्य ज्ञान वाली स्वतन्त्र माया शक्ति प्रथम सृष्टि प्रयोजन तथा चेतना स्वरूप को पाप्त हुई है, इसी को पराशक्ति कहा है जानताहुँ, करताहूं, आदि व्यवहार शरीर तथा इन्द्रियादि का है या आत्माका । इसका समाधान करते हैं कि शिवजीकी दृष्टि के तीन भेद हैं, ज्ञान क्रिया और इच्छा ।१३। शिव की यह तीन प्रकार की दृष्टि ही कर्त्ता के मन में इन्द्रिय के द्वारा दृश्यमान देह में प्रविष्ट स्वरूप बनकर, जानने करने वाली होती है ।१४।

तस्मादात्मन रूपवेद रूएमित्येव निश्चितम् ।
प्रपञ्चार्थ प्रवक्ष्यामि प्रणवैक्यप्रदर्शनम् ।।१५
तस्याः श्रुतेस्तु तात्पर्यं वक्ष्यामि श्रुयतामिदम् ।
तव स्नेहाद्वामदेव विवेकार्थविजृम्भितम् ।।१६
शिवशक्तिसमायोगः पपमात्मेति निश्चतम् ।
पराशक्ते तु संजाता चिच्छक्तिस्तु तदुद्भवा ।।१७
आनन्दशक्तिस्तज्जा स्यादिच्छाशक्तिस्तुबुद्भुवा ।
ज्ञानशक्तिस्ततो जाता क्रियाशक्तिस्तु पंचमी ।
एताभ्य एवं संजाता विवृत्याद्याः कला मुने ।।१८

चिदानन्दसमुत्पन्नौ नादबिन्दु प्रकीर्तितौ ।
इच्छाशक्तेर्मकारस्तु ज्ञानाशक्तेस्तु पंचमम् ॥१९
स्वरः क्रियाशक्तिजातो ह्यकारस्तु मुनीश्वर ।
इत्युक्ता प्रणवोत्पत्तिः पञ्चब्रह्मोद्भवं शृणु ॥२०
शिवादीशान उत्पन्नस्ततस्तपुरुषोद्भवः ।
ततोऽघोरस्ततो वामः सद्योमाताद् भवस्ततः ॥२१

इसलिए अवश्य ही यह आत्मा का रूप है, अब प्रपच के साथ प्रणव की एकता का वर्णन करता हूँ ।१५। हे वामदेव ! तुम्हारे स्नेहसे मैं उसका तात्पर्य कहता हूँ जिससे तुम्हे ज्ञानकी प्राप्ति हो ।१६। शिव और शक्ति के योग को ही परमात्मा कहा है,वह परमात्मा ही आकाश आदि रूप में होता है, जैसे उपादान कारण मिट्टी अपने से अभिन्न घड़े का रूप रखती है दूधरूप उत्पादन दही रूप होजाता है, रस्सी अज्ञान से सर्प रूप हो जाती है, पूरा शक्ति से चित् शक्ति ।१७। और उससे आनन्दशक्ति तथा उससे इच्छा शक्ति की उत्पत्ति हुई है उससे ज्ञान शक्ति और ज्ञान शक्ति से क्रिया शक्ति हुई । इन्हीं शक्तियों से निवृत्ति आदि कलायें उत्पन्न हुईं ।१८। चिदानन्द शक्तियों से नाद और बिन्दुकी उत्पत्ति हुई, इच्छा शक्तिसे मकार तथा ज्ञान शक्ति से पंचम स्वर उकार हुआ ।१९। क्रिया शक्तिसे अकार हुआ । इस प्रकार प्रणवकी उत्पत्ति हुई, अब पंच ब्रह्मकी उत्पत्ति सुनो ।२०। शिव से ईशान हुई,ईशानसे पुरुष, पुरुष से अघोर से वाम सद्योजात की उत्पत्ति हुई ।२१।

एतस्मान्मातृकादष्टत्रिंशन्मातृसमुद्भवः ।
ईशानांच्छान्त्यतीताख्या कला जाताऽथ पुरूषात् ।
उत्पद्यते शान्तिकला विद्याऽघोरसमुद्भवा ॥२२
प्रतिष्टा च निवृद्यिश्च वामसद्योद्भवे मते ।
ईशाच्चिच्छक्तिमुखतो विभोर्मिथुनपंचकम् ॥२३
अनुग्रहादिकृत्यानांहेतुः पञ्चकमिष्यते ।
तद्विद्भिर्मुनिभिः प्रज्ञैर्वरतत्वप्रदर्शिभिः ॥२४
वांच्यवाचकसम्बन्धान्मिथुनत्वमुपेयुषि ।

कलावर्णस्वरूपेऽस्मिन्पञ्चके भूतपञ्चकम् ॥२५
वियदादिक्रमादासीदुत्पन्न मुनिपुङ्गव ।
आद्यं मिथुनमारभ्य पंचम यन्मयं विदुः ॥२६
शब्दैकगुण आकाशः शब्दस्पर्शगुणो मरुत् ।
शब्दस्पर्शरूपगुणप्रधानो वह्निरुच्यते ॥२७
शब्दस्पर्शरूपरसगुणकं सलिल स्मृतम् ।
शब्दस्पर्षरूपसगन्धाढ्या पृथिवी स्मृता ॥२८

इन्कीं अकारादि की मात्रासे अड़तीस कला हुई, ईशानसे शान्त्यतीत कला, पुरुष से शान्ति कला और अघोर से विद्या की उत्पत्ति हुई ।२२। प्रतिष्ठा और निवृत्ति की उत्पत्ति वामदेव और सद्योजात से हुई ईश और चित्शक्ति मुख से शिव के मिथुन पंचक हुए ।२३। अनुग्रह, तिरोभाव, संहार स्थिति, सृष्टि आदि रूपोंका कारण हेतु पचक है, यह उसके ज्ञाता ज्ञानी मुनियों का कहना है ।२४। वाच्य-वाचक सम्बन्ध से मिथुनत्वको पाने कला, वर्ण स्वरूप वाले इस पञ्चक में भूत पञ्चक ।२५। आकाशादि के क्रम से उत्पन्न हुआ । आद्यामैथुन ईशचित् शक्त्यात्मक से आरम्भकर भूतपञ्चकको चित् शक्त्यामक ही कहा है ।२६। आकाश में शब्द गुण और वायुका शब्द स्पर्श गुण है तथा शब्द स्पर्श रूपगुण वाला अग्नि है ।२७। शब्द, स्पर्शरूप रस गुणयुक्त जल कहा गया है तथा शब्द, स्पर्श, रूप, गन्ध वाली पृथिवी कही गयी है ।२८।

व्यापकत्वञ्च भूतानामिदमेव प्रकीर्तितम् ।
व्याप्यत्व वैपरात्येन गन्ध दिकमतो भवेत् ॥२९
भूतपचकरूपोऽयं प्रपञ्च परिकीर्त्यते ।
विराट सर्वसमष्ट्यात्मा ब्रह्माण्डमिति च स्फुटम् ॥३०
पृथिवीतत्त्वमारभ्य शिवतत्त्वावधि क्रमाता ।
निलीय तत्वस दोहे जीव एव विलीयते ॥३१
स शक्तिकः पुनः सृष्टौ शक्तिद्वारा विनिर्गतः ।
स्थूलप्रपंचरूपेण तिष्ठत्याप्रलय सुखम् ॥३२

निजेच्छया जगत्सृष्टमुद्युक्तस्य महेशितुः ।
प्रथमो यः परिस्पन्दः शिव तत्वं तदुच्यते ॥३३
एषैवेच्छाशक्तितत्वं सर्वकृत्यानुवर्तनात् ।
ज्ञानक्रियाशक्तियुग्मु ज्ञानाधिक्ये सदाशिवः ॥३४
महेश्वर क्रियोद्रे के तत्वं विधि मुनिश्वर ।
ज्ञानक्रियाशक्तिसाम्य शुद्धविद्यात्मक मतम् ॥३५

यह सभी गुण क्रम-क्रम से अपने-अपने भूतों में व्याप्त हैं और गंधादि क्रम से विपरीतता से व्याप्त हो रहे हैं ।२९। भूत पंचक यही रूपप्रपंचक कहा गया है तथा यही प्रपंच सम्पूर्ण समष्टि आत्मा विराट् में ब्रह्माण्ड कहा गया है ।३०। पृथिवी तत्व से शिव तक तत्व समुदाय शक्ति सहित परश्मेवर में लीन होकर, जीव रूप विराट् में लय होता है ।३१। तथा सृष्टि काल में पुनः शक्ति से निर्गत होकर स्थूल प्रपंच के रूप में प्रलय होने तक स्थित रहता है ।३२। स्वेच्छा पूर्वक विश्व रचना में उद्यत होना तथा उनके पूर्व कार्य को ही, जो क्रियात्मक होता है शिव तत्व कहा गया है ।३२। सम्पूर्ण कृत्य के अनुवर्तन से इसी को इच्छा शक्ति तत्व कहा गया है । ज्ञान और क्रिया शक्ति में ज्ञान का आधिक्य होने से शिवत्व है तथा ज्ञान की अपेक्षा क्रिया की अधिकता होने पर ।३४। महेश्वर तत्व की अधिकता समझो । ज्ञान तथा क्रिया शक्ति की समानता होने पर विशुद्ध ज्ञान रूप शिव तत्व समझना चाहिए ।३५।

स्वाङ्गरूपेषु भावेषु मायातत्वविभेदधी ।
शिवो यदा निज रूप परमैश्वर्य पूर्वकम् ॥३६
निगृह्य माययाऽशेषपदार्थग्राहको भवेत् ।
तदा पुरुष इत्याख्या तत्सृष्ट् वेत्यभवच्छ्रुतिः ॥३७
अयमेवं हि ससारी मायया मोहितः पशः ।
शिवज्ञानविहीनो हि नानाकर्मविमूढधीः ॥३८
शिवादभिन्नं न जगदात्मानं भिन्नमित्यपि ।
जानतोऽस्य पशोरेव मोहो भवति न प्रभोः ॥३९
यथैन्द्रजालिकस्यापि योगिनो न भवेद् भ्रमः ।

गुरुणा ज्ञापितैश्चर्यः शिवो भवति चिद्घनः ॥४०
सर्वकर्तृत्वरूपा च सर्वज्ञत्वस्वरूपिणी ।
पूर्णत्वरूपा नित्यत्वव्यापकत्वस्वरूपिणी ॥४१
शिवस्य शक्तयः पञ्च संकुचन्द्र प्रभास्वराः ।
अपि संकोचरूपेण विभवय इति नित्यशः ॥४२

अपने अङ्ग रूप अवयवों से भेद रूप बुद्धि होने पर मायातत्व कहा जाता है, जब शिव अपनी माया से अपने परमैश्वर्य स्वरूपको ।३६। छिपा कर सम्पूर्ण पदार्थ ग्रहण कर लेतेहैं तब उसे पुरुष नाम सृष्टि कहते हैं ।३७। यह शिव माया से मोहित होकर जीवरूप होकर आज्ञानवश अपनेकोअनेक कर्मकर्त्ता तथा सबसे भिन्न समझता है ।३८। तथा विश्वको शिवसे अभिन्न नहीं समझता, इस प्रकार मोहित होजाता है ।३९। जैसे इन्द्रजालके ज्ञान को भ्रम नहीं होता, वैसेही गुरु के ज्ञानरूप ऐश्वर्य से सम्पन्न शिष्य शिव रूपको प्राप्तहोताहै।४०। सम्पूर्ण कर्त्तव्य स्वरूपा,सर्वज्ञा, पूर्णत्व वाली होने से नित्यत्व और व्यापकत्व स्वरूप वाली ।४१। शिवजी की संकोच युक्त, सूर्य रूपिणी तथा नित्य प्रकाश करने वाली पाँच शक्तियां है ।४२।

पशोः कलाख्यश्चेति रागकालौ नियत्यपि ।
तत्वपन्चकरूपेण भवत्यत्र कलेति सा ॥४३
सा विद्या तु भवेद्रागो विषयेष्वनुरञ्जकः ॥४४
कालो हि भावभान भासाना भासनात्मकः
क्रमावच्छेदको भूत्वा भूतादिरित कथ्यते ॥४५
इदं तु मम कर्तव्यमिद नेति नियामिका ।
नियतिः स्याद्विभोः शक्तिस्तदाक्षेपात्पतेत्पशुः ॥४६
एतत्पचकमेवास्य स्वरूपावारकत्वतः ।
पञ्चकं चुकमाख्यातमन्मरगं च साधनम् ॥४७

जीव की कला नाम वाली विद्या राग, काल नियति पंच तत्व रूप से कला में होती हैं ।४३। जिसमें कर्त्तापन का कुछ कारण तत्व को साधन

हो वह विद्या और विषयोंमें प्रीति उत्पन्न कराने वालाराग कहा गया है। ।४४। भाव तथा अभावों के क्रमसे परिच्छेदक होकर वह भूतों का आदि होता है ।४५। यह मुझे करने योग्य नही, उसी को नियामक कहा हैं, विभुकी शक्ति को नियति कहते हैं, उसके त्यागसे यह प्राणी पतित हो जाता है ।४६। उस जीव स्वरूप के यह पाँच आवरण माने गये हैं यह अन्तरङ्ग साधन वाले तथा पाँच कचुक कहे जाते हैं ।४७।

।। शिव के अद्वैत ज्ञान के निमित्त सृष्टि तत्व कथन ।।

नियत्यधग्तात्प्रकृतेरु।रिस्थः पुम।निति। ।
पूर्वत्र भवता प्रोक्तमिदानीं कथमन्यथा ।।१
मायया संकुचद्रूपस्तदाधस्तादिति प्रमो ।
इति मे संशयं नाथ छेत्तुमर्हसि तत्वत ।।२
अद्वैतशैववादोऽय द्वैत न सहते क्वचित् ।
द्वैतं च नश्वरं ब्रह्माद्वैतं परमनश्वरम् ।।३
सर्वत्रा: सवकर्ता च शिवः सर्वेशेश्वऽगुणः ।
त्रिदेवजनकों ब्रह्मा सच्चिदानन्दविग्रहः ।।४
स एव शङ्करो देव स्वेच्छया च स्वमावया ।
संकुकद्रूप इव सत्पुरुषः सत्रभूव ह ।।५
कलादिपिञ्चकेनेव भोक्तृत्वेन प्रकल्पितः ।
प्रकृतिस्यः पुमानेषभुंक्ते प्रकृतिजान्गुणान् ।।६
इति स्थानद्वयांतः स्थः पुरुषो न विरोधकः ।
सङ्कुचन्निजरूपाणां ज्ञानादीमां समष्टिमान् ।।७

वामदेव ने कहा-हे प्रभो ! आपने प्रकृति के नीचे नियति तथा ऊपर पुरुष कहा था, अब उसके विपरीत कैसे कहते हो !।१। तथा आपने माया से संकुचित रूप को उससे नीचे कहा है, आप मेरे इस सन्देहको मिटानेकी कृपा करें ।२। स्कन्दजीनेकहा-यह अद्वैत शैव्यवाद द्वैतको कभी सहन नहीं करता,क्योंकि द्वैत नाशवान्और अद्वैत अविनाशी है ।३। सबकेकर्तातीनों देवोंकों उत्पन्न करने वाले सर्वज्ञ एक शिव ही सच्चिदानन्द स्वरूपब्रह्म है

।४। वही शिव अपनी माया एवं स्वेच्छा से संकुचित रूपके समान पुरुष बनगये हैं ।५। पाँचकला आदि होनेकेकारण भोक्ताभी यही है, क्योंकि यह पुरुष प्रकृति में जन्म गुणों का भोगने वाला है ।६। इस प्रकार दोनों स्थानों में स्थित होने वाला पुरुष किसी प्रकार विरोधी नहीं होता तथा अपने रूप, ज्ञान आदि का संकोच करता हुआ समष्टि युक्त होता है ।७।

सत्वादिगुणसाध्यै च बुध्यादित्रियात्मकम् ।
चितम्प्रकृतितत्व उदासीतसत्वादिकारणात् ।।८
सात्विकादिविभेदेन गुणाः प्रकृतिसम्भः ।
गुणभ्यो बुद्धिरुत्पन्ना वस्तुनिश्चयकारिणो ।।९
ततो महानङ्कारस्तो बुद्धीन्द्रियाणि च ।
जातानि मनसारूपं स्मातसङ्कल्पविकल्पकम् ।।१०
बुद्धीन्द्रियाणि श्रोत्रत्वक्चक्षुजिह्वा च नासिका ।
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च गोचरः ।।११
बुद्धीन्द्रियाणां कथितः श्रोत्रादिकमतस्ततः ।
वैकारिकादहकारान्मात्राण्यभवन्क्रमात् ।।१२
तानि प्रोक्तानिसूक्ष्माणि मुनिभिस्तत्वदर्शिभि ।
कर्मेन्द्रियाणि ज्ञयानि स्वकार्यसहितानि च ।।१३
विप्रर्पे वाक्करौ पादौ पायूप्रस्थौ च तत्क्रिया ।
वचना दानगमनविसर्गानन्दसंज्ञिताः ।।१४

सत्वादि गुणसे साध्य बुद्धि आदि त्रयात्मक चित्तही उन गुणों के कारण प्रकृति तत्व हैं ।८। सात्विक आदि के भेदसे प्रकृतिकेगुणों की उत्पत्ति होती है तथा गुणोंसे ही वस्तुके निरूपण करने वाली बुद्धि की उत्पत्ति हैं ।९।तीन प्रकारके अहङ्कारकी उत्पत्ति बुद्धिसे हुई, उसकाजीवन साधनात्मकअभिमान हैं यह तीनप्रकारके देहवाला है, सत्यादि तथा तैजसादिके भेदसे भी उसके तीन प्रकारहै, अहङ्कार और तेजसे मन बुद्धि इन्द्रियकी उत्पत्ति हुई तथा मनका स्वरूप सङ्कल्प विकल्प वाला है ।१०। बुद्धि, इन्द्रियां श्रोत्र त्वक्, चक्षु,जिह्वा नासिका, स्पर्श, रसतथागन्धवृत्ति और वृद्धि इन्द्रियोंमेंश्रोत्रसे क्रम

से कही गयी है, अहंकार से कर्मेन्द्रिय की उत्पत्ति हुई है । ११-१२ ।
तत्वदर्शियों ने उन्हें सूक्ष्म कहा है तथा कर्मेन्द्रिय अपने कार्य के सहित हैं। १३।
वक्, पाणि, पाद, वायु उपस्थ तथा उनकी सम्पूर्ण क्रियायें हैं । १४।

भूतादिकादहकारात्तन्मात्राण्यभवन् क्रमात् ।
तानि सूक्ष्माणि रूपाणि शब्दादीनामिति स्थितिः १५
तेभ्य्श्चाकाशवाय्यग्निजलभूमिजनिः क्रमात् ।
विज्ञेयामुनिशार्दूल पंचभूतमितीष्यते ।१६
अवकाशप्रदानं च वाहकत्वं के पावनम्ः ।
सरम्भो धारणं तेषां व्यापाराः परिकीर्तिताः ।१७
भतसृष्टिः पुरा प्रोक्ता कलादिभ्यः कथ पुनः ।
अन्यथा प्रोच्यते स्कन्द संदेहोऽत्र महान्मम ।१८
आत्मतत्वमकारः स्याद्विद्या स्यादुस्ततः परम् ।
शिवतत्वं मकारः स्याद्वामदेवेत्ति चिन्त्यताम् ।१९
बिंदुनादी तु विज्ञेयो सर्वतत्वार्थकावुभो ।
तत्रत्या देवत्ता याश्च ता मुने श्रृणु सांप्रतम् ।२०

भूतादिकों से तथा अहंकार के क्रम से तन्मा त्रायें हुई, उन्हीं से शब्दादि रूप प्रकट हुए । १५ । हे मुने ! उन्हीं से आकाश, वायु, अग्नि जल और पृथ्वी की उत्पत्ति हुई, इन्हीं को पंचभूत कहते हैं । १६ । उनके व्यापार अवकाश देना, वहन करना पचाना वेग तथा धारण क्रम पूर्वक हैं । १७ । वामदेव ने कहा आपने प्रथम भूत-सृष्टि का वर्णन किया है, फिर कला आदि किस प्रकार कहते हैं ? । १८ । आत्म तत्व अकार और विद्यात्तत्व उपकार यह अत्यन्त सन्देह जनक है, शिवत्तत्व मकार है यह समझो । १९ । बिन्दु और नाद तत्व के ही अर्थ है, अब इनके देवताओं को सुनो । २० ।

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च महेश्वरसदाशिवौ ।
ते हि साक्षाच्छिवस्यैव मूर्तयःश्रुतिविश्रुता ।२१
इत्युक्तं भवता पूर्वमिदानीमुच्यतेऽन्यथा ।
तन्मात्रेभ्यो भवन्तीति सन्देहोऽत्र महान्मम ।२२

कृत्वा तत्करुणां स्कन्द संशयं छेत्तुमर्हसि ।
इत्याकर्ण्य मुनेर्वाक्य कुमारः प्रत्यभाषत: ।२३
तस्माद्वृत्ति समारभ्य भूतसृद्धिक्रमे मुने ।
तान्छणुष्व महाप्राज्ञ सावधानतयाऽदरात् ।२४
जातानि पंचभूतानि कलाभ्य इति निश्चितम् ।
स्थूलप्रपंचरूपाणि तानि भूतपतेर्वपुः ।२५
शिवतत्वादिपृथव्यन्तं तत्वानामुदयक्रमे ।
तन्मात्रेभ्यो भवन्तीति वक्तव्यानि क्रमान्युने ।२६
तन्मात्राणां कलानामप्यैक्य स्यादभूतकारणम् ।
अविरुद्धत्वमेवात्र विद्धि ब्रह्मविदां वर ।२७

ब्रह्म, विष्णु, रुद्र, महेश्वर, सदाशिव यह सभी श्रुतियों द्वारा प्रसिद्ध भगवान् शंकरकेही स्वरूप हैं ।२१। आपने पहिले ऐसा कह था, अब कहते हैं कि यह तन्मात्रा से उत्पन्न होता है मुझे इसमें अत्यन्त सन्देह है ।२२। हे स्कन्दजी ! आप कृपया मेरे इस सन्देह को मिटाइये, महसुनकरस्कन्दजी कहने लगे ।२३। स्कन्दजी ने कहा हे मुने ! तस्माद्वा से आरम्भ कर भूत सृष्टि के क्रम से मैं सब कहता हूँ, तुम उसे सावधान होकर सुनो । २४ । कलाओं से पंचभूतों की उत्पत्ति हुई इसमें सन्देह नहीं है, स्थूल प्रपंच रूप पञ्चभूत भगवान् शिव के शरीर ही हैं । २५ । शिव तत्व से पृथ्वी तत्व तक,तत्वों के क्रम से तन्मात्राओं से उत्पत्ति है,उस क्रम को कहता हूँ।२६। भूतोत्पति वाले धर्म से तन्मात्रा और कला उन्हीं भूतों का कारण है, इसमें कुछ विरोध न समझे ।२७।

स्थूलसूक्ष्मात्मके विश्वे चन्द्रसूर्यदियो ग्रहाः ।
सनक्षत्राश्च सजातास्तथान्ये ज्योतिषाँ गणः ।२८
ब्रह्मविष्णुमहेशादिदेवता भूतजातयः ।
इन्द्रादयोऽपि दिक्पाला देयाश्च पितरोऽसुरा ।२९
राक्षसा मनुषाश्चान्ये जंगमत्वविभागिनः ।
पशवः पीक्षणः कीटा पन्नागादिः प्रभेदिनः ।३०

तरुगुल्मलतौषध्यः पर्वताश्चाष्ट विश्रुताः ।
गगाद्याः सरितः सप्त सागराश्च महर्द्धयः ।३१
यत्किंचिद्वस्तु जात्तं तत्सर्वमत्र प्रतिष्ठितम् ।
विचारणीय सद्बुध्या न बहिर्मुनिनिसत्तमः ।३२
स्त्रीपुंरूपमिदं विश्वं विवशथक्त्यत्मक्र बुधैः ।
भवाद्दशैरुपांस्यं स्याच्छिवज्ञानविशादै ।३३
सर्वं ब्रह्मोत्युपासीत सर्वं वै रुद्र इत्यपिः ।
श्रुतिराह मुने तस्मात्प्रपंचात्मा सदाशिवः ।३४
अष्टत्रिंशत्कलान्याससागर्थ्याद्द्वैतभावना ।
सदा शिवोऽहमेवेति भवितात्मा गुरुः शिवः ।३५

चन्द्र, सूर्य आदिकी ग्रह-नक्षत्रों सहित उत्पति इस स्थूल-सूक्ष्मात्मक विश्व में जैसे हुई है, वैसे ही ।१८। ब्रह्मा, बिष्णु महेश आदि देवता, भूत, जाति इद्रादि दिक्पाल, देवता पितर दैत्य । २९ । राक्षस, मनुष्य तथा विभिन्न प्रकार के जगत जीव, पशु पक्षी, कीट तथा पतंगरूपी ।३०। वृक्ष, गुल्म, लता औषधि, पर्वत नदी, सागर, महर्षिगण । ३१ । जो कुछ भी हैं, सो सब इसीमें स्थित (, इसे बुद्धि से समझना चाहिए।३२। यह स्त्री-पुरुष रूप जगत् शिव शक्ति से युक्त है, शिव ज्ञान के ज्ञाता पण्डितों के लिए उप सनीय है ।३३। यह जो कुछ है, वह सभी शिव है ऐसा जानकर उपासना करे शिव ही प्रपञ्चात्मा है ऐसा श्रुतियाँ कहती हैं । ३४ । अड़तीस कलाओं का त्याग करसे से शिवजी की अद्वैत भावना करने वाला गुरु शिव ही समझो ।३५

एवविचारी सच्छिष्यो गुरुः स्यात्सशिवःस्वयम् ।
प्रपंचदेवतार्थंत्रमत्रात्मा न हि संशयः ।३६
आचार्यरूपया विप्रः संच्छिन्नाखिलबन्धनः ।
शिशुः शिवपादसक्तो गुर्वात्मा भवति ध्रुवम् ।३७
यदस्ति वस्तु तत्सर्वं गुणाप्राधान्ययोगतः ।
संमस्तव्यस्तमपि च प्रणवार्थं प्रचक्षते ।३८

रागादिदोषरहितं वेदपारः शिवो दिश ।
तभ्य मे कथित प्रीत्याद्वैतज्ञानं शिवप्रियम् ।३९
यो ह्यन्यथैतन्मनुते मद्वचो मदगर्वितः ।
देवो वा मानवः सिद्धो गन्धर्वो मनुजोऽपिवा ।४०
दुरात्मनस्तस्य शिरः छिद्यां समतया ध्रुवम् ।
सच्छक्त्यां रिपुकालाग्निकल्पया न हि संशयः ।४१
भवानेव मुने मोक्षाच्छिव द्वैतविदां वरः ।
शिवज्ञानेपदेशे हि शिवाचारप्रदर्शकः ।४२

इस प्रकार विचार करने वाले श्रेष्ठ शिष्य से युक्त गुरु शिवहीहै तथा प्रपंच देवता यन्त्र मन्त्रात्मा गुरुभी शंकर ही है,इसमें संशय नहीं है ।३६। इस प्रकार गुरु की कृपासे सभी बन्धनों से मुक्त होकर शिवपद में आसक्ति वाला शिष्य अवश्य ही पूज्यात्मा बनजाता है ।३७। सम्पूर्ण वस्तुगुण प्रधान योगकेकारण समस्त एवं पृथक् प्रणवके अर्थ को ही प्रकाशित करती हैं।३८ रागादि दोषों से रहित तथा वेदों का साररूप यही शिवजी का उपदेश है, जो अद्वैत ज्ञान शिवजी का प्रिय है वह मैंने तुम्हारे प्रति कहाहै ।३९। जो इससे विपरीत करे अथवा अहङ्कारसे मेरे इस उपदेश को मिथ्या माने वह देवता मनुष्य, सिद्ध अथवा गन्धर्व कोई भी क्यों न हो ।४०। उस दुरात्मा शत्रुका शिर में अपनी कालाग्नि के समान शक्ति से काट डालूँगा, इसमें शंका नहीं है ।४१। हे मुने ! तुम शिवजीके अद्वैत ज्ञानके ज्ञाता तथा शिव ज्ञान के उपदेशक और शिवाचार के प्रदर्शित करने वाले हो ।४२।

यद्देहभस्मसम्पर्कात्संच्छिन्नाघव्रजोऽशुचिः ।
महापिशाचःसम्प्राप त्वत्कृपातः सतां गतिम् ।४३
शिवयोगीतिसख्यातस्त्रिलोकविभवोभवान् ।
भवत्कटाक्षसम्पर्कात्पशुः पशुपतिर्भवेत् ।४४
तव तस्य मयि प्रेक्षा लोकशिक्षार्थमादरात् ।
लोकोपकारकरण विचरन्तीह साधवः ।४५
इदं रहस्य परमं प्रतिष्ठितमतस्त्वयि ।

त्वमपि श्रद्धया प्रथवव्ष्वेन सादरम् ।४६
उपविश्य च तान्सर्वान्संयोज्य परमेश्वरे ।
शिवाचारं ग्राहयस्व भूतिरुद्राक्षमिश्रितम् ।४७
त्वं शिवो हि शिवाचारी सम्प्राप्ताद्वैतभावतः ।
विचरंल्लोकरक्षायै सुखमक्षयमाप्नुहि ।४८

श्रुत्वेदमद्भुतमतं हि षडाननोक्तंवेदान्तनिष्टितमृषिस्तु विनम्रमूर्ति। भूत्वा प्रणम्बहुशो भुविदण्डवत्तत्पादारविंदविरन्मधुपत्वमाप ।४९

जिसके शरीर की भस्मके स्पर्श से ही पिशाचत्व को प्राप्त हुए महापापी भी पापोंसे मुक्त हो जाते हैं और आपकी कृपासे उन्हें सद्गति प्राप्ति होती है ।४३। आप त्रैलोक्यमें महान् ऐश्वर्यशाली शिवयोगी कहे जाते हैं आपके कटाक्षमात्र से प्राणी शिव स्वरूप होजाता है।४४। आपलोकोपकार के लिये ही विचार करते हैं और आपने जो प्रश्न किया, वह सबभी लोक शिक्षार्थ ही है ।५। यह परम रहस्य आपमें सदाही प्रतिष्ठित रहता हैऔर श्रद्धा और भक्ति सहित सदाप्रणव में आदरसे ।४६। अपने मन को शिवमें लगाकर विभूति और रुद्राक्ष युक्त शिवाचार को ग्रहण कराओ ।४७। तथा आप शिव के आचार को ग्रहण करते हुए अद्वैत भावमेंरहकरलोक रक्षार्थ विचार करते हुए अक्षय सुखको प्राप्त होओ ।४८।सूतजी ने कहा-स्कन्दजी के इन वेदांत वचनों को सुनकर वामदेव विनम्र भाग से बारम्बार पृथ्वी में प्रणाम कर उनके चरण कमलों में विहार करते हुए मकरन्द रूपी रस को प्राप्त हो गये ।४९।

॥ यातिलों का गुरुत्व और शिष्यकरण विधि ॥

श्रुत्वा वेदान्तसारं तद्रहस्य परमाद्भुतम् ।
कि पृष्टवान्वामदेवो महेश्वरसुतं तदा ।१
धन्योगी वामदेवः शिवज्ञानरतः सदा ।
यत्सम्बन्धात्कथोत्पन्ना दिव्या परमपावनी ।२
इति श्रुवा मुनीनां तद्वचन प्रेमगर्भितम् ।
सूतः प्राह प्रसन्नस्ताञ्छिवासक्तमना बुधः ।३

धान्या यूयं महादेवभक्ता लोकोपकारका: ।
शृणुध्वं मुनय: सर्वे संवाद च तयो: पुन: ।४
श्रुत्वा महेशतनयवचनं द्वैतनाशकम् ।
अद्वैतज्ञानजनकं सन्तुष्टोऽभून्माहमुनि: ।५
नत्वा स्तुत्वा च विविध कार्तिकेय शिवात्मजम् ।
पुना प्रपच्छ तत्वं हि विनयेन महामुनि: ।६
भगवन्सर्वत वज्ञ षण्मुखामृतवारिधे ।
गुरुत्व कथमेतेषां यातिना भावितात्मनाम् ।७

शौनकजी ने कहा-वेदान्त के सार और परम रहस्य को इस प्रकार सुनकर वामदेव ने स्कन्दजी ने कहा । १ । सदा शिव ज्ञान में रत योगी वामदेव अत्यन्त धन्य हैं,जिनके कारण यह दिव्य ज्ञानदायिनी परम पवित्र कथा प्रकट हुई ।२। उन मुनियों के इस प्रकार प्रेम गर्भितवचनों से प्रसन्न हो महाज्ञानी सूतजी उनसे कहने लगे ।३। सूतजीने कहा-आप शिव भक्त धन्य हैं, आपलोकोपकारक हैं हे मुनियों ! उन दोनों का संवाद पुन:श्रवण करो ।४। स्कन्दजी के इस प्रकार द्वैतनाशक वचन श्रवण कर महा मुनि अत्यन्त प्रसन्न हुए ।५। शिवजी के पुत्र कार्तिकेयजीको बारम्बार प्रमाण एव स्तुति करके वामदेवने विनयपूर्वक प्रश्न किया ।६। वामदेवने कहा— हे प्रभो ! आप सम्पूर्ण तत्वों के ज्ञाता हैं । हे षडानन ? इन पूर्वक कथित आत्मज्ञानियों का गुरुत्व ।७।

जीवानां भोगमोक्षादिसिद्धि सिध्यति यद्वशात ।
पारम्पर्य्यं विनार्नषामुपदेशाधिकारिका ।८
एवं च क्षौरकर्मांगं स्नानञ्च कथमीदृशम् ।
इति विज्ञापयस्वामिन्संशयं छेत्तुमर्हसि ।९
इति श्रुत्वा कर्तिकेयो वामदेववच: स्मरन् ।
शिवं शिवां च मनसा व्याचष्टुमुपचक्रमे ।१०
योगपट्ट प्रवक्ष्यामि गुरुत्व येन जायत ।
तव स्नेहाद्वामदेव महद्गोप्य विमुक्तिदम् ।११

वैशाखे श्रावणे मासी तथ श्वयुजि कार्तिके ।
मार्गशीर्षे च माघेवा शुक्लपक्षे शुभे दिने ।१२
पञ्चम्यां पौर्णमास्यां कृतपाभातिकक्रियः ।
लब्धानुज्ञसुतु गुरुणास्नात्वा नियतमानसः ।१३
पर्यंकशौचं कृत्वा तद्वासमाग प्रमृज्य च ।
तिगुणं ढोरमाबध्य वाससी परिधाय च ।१४

और प्राणियों की भोग, मोक्ष आदि की सिद्धि जिसके द्वारा होती है उनके उपदेश का अधिकार सम्प्रदाय के ज्ञान बिना नहीं होती ।८। इनके क्षौरकर्म और स्नानादि यह प्रकार किस कारण है, यह समाधान करके मेरे सन्देह मिटा ये ।९। वामदेव जी का प्रश्नसुनकरस्कन्दजीने शिवाशिव को प्रणाम किया और कहना आरम्भ किया ।१०। स्कन्दजी ने कहा अब मैं योग-पद को कहता हूँ, उससे गुरुत्व प्राप्त होता है । यह अत्यन्त गुप्त वार्ता है, तुम्हारी प्रीतिक कारण ही कहताहूँ ।११। वैशाख,श्रावण,आश्विन कातिक, मार्गशीर्ष तथा माघ के शुक्लपक्ष एवं शुभ दिवस में । १२ । पंचमी अथवा पूर्णमासी को प्रातःकालीन कर्म से विवृत होकर गुरु आज्ञा प्राप्त कर नियम पूवक स्नानकरे ।१३।पर्यंक शौचकर वस्त्रों से शरीर को पोंछकर दुगुने धागे बाँध कपड़े पहिनें ।१४।

क्षालितांघ्रिर्द्विराचम्य भस्म सद्यादिमन्त्रतः ।
धारयेद्धि समादाय समुद्धुलनमार्गतः ।१५
गृहितहस्तो गुरुणा सानुकूलेन वै मुने ।
साक्षिष्यः सांजलिः स्वाभ्यां हस्याभ्यां प्राङ्मुखोयथा ।१६
तथोपवेष्टितस्तिष्ठेन्मण्डले सकलकृते ।
गुर्वासदवरे शुद्धे चलाजिनकुशीत्तरे ।१७
अथ देशिक आदाय शंख साधारमस्त्रतः ।
दिशोध्यतस्य पुरतः स्थापयेष्सानुकूलतः ।१८
साधार शंखमपि च सम्ज्य कुसुमादिभिः ।
निःक्षिपेदस्त्रवमभ्यां शोधिय तत्र सज्जलम् ।१९

आपूर्य पूर्ववत्पूज्ये षडंगोक्तक्रमेण च ।
प्रणवेन पुनस्तद्वै सप्तधैवाभिमन्त्रयेत् ।२०
अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यै धूं दीपौ प्रदर्श्य च ।
संरक्षास्त्रेण तं शंखं वमणाऽयाबगुण्टयेत् ।२१

फिर चरण धोकर दो बार आचमन करे और सद्योजातादि मन्त्रोंसे मस्तक में भस्म लगाकर, फिर पूरे देह में लगावे ।१५। हे मुने ! पूर्वाभिमुख होकर योग्य गुरु के हाथ में देकर फिर हाथ जोड़कर । १६ । सुन्दर अलंकारयुक्त मन्दिर में गुरुप्रदत्तमृगचर्मके आसनपर बैठ ।१७। फिर आचार्य आधार सहित शखको अस्त्र मन्त्र से लावे और उसे शुद्धकर आगे स्थापित करे । १८ । और पुष्पों द्वारा पूजन करे तथा कवच मन्त्रों से शुद्ध जल में आधारसहित शंख को ।१९।भरकर षडङ्ग विधि से उसका पूजन करेऔर प्रणव से उसे सात वार अभिमन्त्रित करे ।२०। फिर गन्धपुष्पादि से पूजन कर धूप-दीप दिखावे और मुद्रा रक्षा कर कवच मन्त्र से ढके ।२१।

धेनुशंखाख्यमुद्रे च दर्शयेदथ देशिकः ।
पुनः स्वपुरतः शंखदक्षिणे देश उत्तमे ।२२
पूजाध्योक्तविधानेन सुन्दरं मण्डलं शुभम् ।
कुर्यात्सम्पूजयेत्तं च सुगन्धकुसुमादिभिः ।२३
साधारं शोत्तितं शुद्धं घटं तन्तुपरिष्कृतम् ।
धूपितं स्थापिता शुद्धवासितोदप्रपूरितम् ।२४
पञ्चत्वक्पञ्चपत्तैश्च मृत्तिकाभिश्च पञ्चमिः ।
मिलितं च सुगन्धेन लेपयत्तं मुनीश्वर ।२५
वस्त्राम्रदलदूर्वाग्रनारिकेलसुमैस्ततः ।
तं घटं वस्तुभिश्चान्यैः संस्कृतिममलंकृतम् ।२६
नृम्लस्कमिति सम्प्रोच्य ग्लूमित्यन्तेऽथ देशिकः ।
सम्यग्विधानतः प्रीतया सानुकूलः समर्चयेत् ।२७
आधारशक्तिमारम्य यजनोक्तविधानतः ।
पञ्चावरणमार्गेण देवमावाह्य पूजयेत् ।२८

आचार्य धेनु और शंखमुद्रादिखाकर अपने समक्ष शंख के दक्षिण और पूजनऔर अर्घ्यक विधानसे श्रेष्ठमंडल करके, उसका सुगन्धित पुष्पोंसे पूजन करे ।२२-२३। आधार को शुद्ध कर उसपर शुद्ध घटरखकर सूतलपेटे तथा धूप देकर शुद्ध सुगन्धित जलसे परिपूर्ण करे ।२४। पीतल, पिलखन, आम जामुन और बड़ ये पंचछाल तथा पंचपल्लव हाथी, घोड़े रथ, बाँबी तथा नदीके सङ्गमकी मिट्टी इनमें सुगन्धित द्रव्य मिलाकर कलशपरलेपे।२५। वस्त्र, आम्रपत्र, कुशाग्र, नारियल और पुष्पादि से उसे अलंकृत करे ।२६। नृम्लस्क उच्चारण कर अन्त में ग्लूम कहे और विधिवत तूजन करे ।२७। आधार शक्तिसे आरम्भ करके यज्ञविधि से देवाहानकर पंचावरण विधि से पूजन करे ।२८।

निवेद्य पायसान्नज तांबूलादि यथा तुरा।
नामाष्टकार्चनान्त च कृत्वा तमभिमन्त्रयेद् ।२९
प्रणवाष्ठोत्तरशतं ब्रह्माभि पचभिः क्रमात् ।
सद्यदीशान्तमप्यस्त्र रक्षितं वर्मणा पुनः ।३०
अवगुण्ठय प्रदश्याथ धूपदीपो च भक्तियः ।
धेनुयान्याख्यमुद्रे च सम्यक्तत्र प्रदर्शयेत् ।३१
ततश्च देशिकस्तस्य दर्भैराच्छाद्य मस्तके ।
मण्डलस्थेशदिग्भागे चतुरस्त्रं प्रकल्पयेन् ।३२
तदुपर्य्यासन रम्यं कल्पयित्वा विधानतः ।
तत्र संस्थापयेच्छिष्यं त शिशुं सानुकूलतः ।३३
नतः कुम्भं समुत्थाप्य स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ।
शभिषिकेद्द गुरुः शिष्य प्रादक्षिण्येन मस्तके ।३४
प्रणवं पूर्वमुच्चार्य्य सप्तधा ब्रह्माभिस्ततः ।
पंचभिश्चाभिषेकांते शंखोदेनाभिवेष्टयेद् ।३५

पूर्वोक्त प्रकार से खीर, ताम्बूलआदि भेंट कर आठ नामोंसे पूजनकरने तक उसकी अभिमंत्रित करे ।२९। एक सौआठ ओंकार औरईशानादि पव-

ब्रह्मसद्योजातादि से ईशानतक मन्त्रोंसे कलशका पूजनकरे ।३०। अस्त्रऔर कवचके मन्त्रोंसे ढ़ककर वस्त्र और धूप-दीप दिखावे तथा धेनु और योनि मुद्रादिखावे ।३१। मस्तकको कुशोंसे ढककर उसके शिरोभाग ईशान की ओर चौकोर मण्डल बनावे ।३२। उस पर मनोहर आसन बिछा कर उसपर योग्य शिष्य को बिटावे ।३३। स्वस्तिवाचन कर कुम्भ को उठाकर दक्षिण हाथ से शिष्य के मस्तक पर अभिषेक करे ।३४। प्रथम प्रणव का उच्चारणकर शंखके जल से पंच ब्रह्म और सप्त ब्रह्म से सम्पन्न करे।३५।

चारुदीप प्रदर्श्याथ वापसां परिमृज्य च ।
नूतनं दोरकौपीनं वाससी परिधापयेत् ।३६
क्षालितांघ्रिर्द्विराचम्य धृतभस्मगुरुः शिशुम् ।
सस्ताभ्यामवलब्याथ हस्तौ मंडपमध्यतः ।३७
तदगेषु समालिप्य तद्भस्म विधिना गुरुः ।
आसने सप्रवेश्याथ कल्पिते स्थापयेत्सुखम् ।३८
पूर्वाभिमुखमात्मीयतत्वज्ञानाभिलाषिम् ।
स्वासनस्थो गुरुर्ब्रूयादमलात्मा भवेति तम् ।३९
गुरुश्च परिपूर्णोऽस्मि शिव इत्यचलस्थितिः ।
समाधिमाचरेत्सम्यङ्मूहर्त गूढमानसः ।४०
पश्चादुन्मील्य नयने सानुकलेन चेतसा ।
सांजलिं संस्थितं शुद्धं पश्येच्छिष्यमनाकुलः ।४१
स्वसस्य भासितालिप्तं विन्यस्यशिशुमस्तके ।
दक्षश्रु तावुपदिशेद्धंसः सोऽहमति स्फुटम् ।४२
तत्राद्याहंपदस्यर्थः शक्त्यात्मा स शिवः स्वयम् ।
स एवाहं शिवोस्मीति स्वात्मानं सम्विभावय ।४३
य इत्यणोरर्थं तत्वमुपदिश्य ततोदेत् ।
अवांतराणाँ वाक्यानामर्थं तात्पर्यमादरात् ।४४
वाक्यानि वच्मि ते ब्रह्मन्सावधानमतिः शृणु ।
तानि धारय चित्ते हि स बूयादिति सस्फुटम् ।४५

दीपक दिखाकर नवीन डोरे वस्त्र और कोपीन धारण करावे । ३६ ।

चरण धोकर दोबार आचमन करे और भस्म लगाकर गुरु अपने हाथ से शिष्य का हाथ पकड़कर मण्डप के बीच में ।३७। आसन पर बैठावे वह आसन शिष्य के लिए ही बनाया जाता है, उस पर सुख पूर्वक उसे बैठाना चाहिए, फिर उसके शरीर में भस्म लगाकर ।३८। पूर्वाभिमुख किये तत्व ज्ञान के आकांक्षी अपने बन्धु के समान शिष्य से, अपने आसन पर स्थित हुआ गुरु कहे कि तू निर्मल आत्मा है।३६।फिर मैं परिपूर्णशिवहूँ इसभाव से गुरु दो घड़ी पर्यन्त अचल भाव से समाधिस्थ हो ।४०। फिर नेत्र खोल कर सावधान चित्त से हाथ जोड़कर बैठे हुए शिष्यकी ओर प्रेमपूर्वक देखे ।४१।और शिष्य के मस्तक पर अपने भस्म लगे हुए हाथको रखकर उसके दक्षिण श्रोत्रमें हंस:सोऽहं मन का उपदेश करे ।४२। उसमें आदि इससे अर्थ शक्ति आत्मा स्वयं शिवही है, मैं वही शिव हूँ अपने को ऐसा माने ।४३। तत्व का उपदेश करे ब्रह्म के परोक्ष ज्ञान के प्रदर्शक महावाक्यों तात्पर्य को आदर सहित बतावे ।४। हे ब्रह्मान् ! अब उन महावाक्यों को कहता हूँ, ऐसा कहे कि तू चित्त में धारण कर ।४५।

।। महावाक्यों का अर्थ और योगपद वर्णन ।।

अथ महावाक्यानि (१) प्रज्ञान ब्रह्म (२) अह ब्रह्मास्मि (३) तत्वमसि (४) अयमात्मा ब्रह्म (५) ईशावस्यमिद सर्वम् (६) प्राणोऽस्मि (७) प्रज्ञानात्मा (८) यवेह तदमुत्र यद्मुत्र तदन्विह (९) अन्यदेव तद्विदितादयो अविदितादपि (१०) एष त आत्मान्त-र्म्यमृत (११) स यश्चायं पुरुषो यश्चामावादित्ये स एक: (१२) अहमस्मि परं ब्रह्म परपरात्परम् (१३) वेदशास्त्रगुरुत्वातु स्वपमानन्दलक्षणम् (१४) सर्वभूतस्थित ब्रह्मतदेहाहं न सशय । (१५) तत्वस्य प्राणोऽहमस्मि (१६) अपां च प्राणोऽहमस्मि (१७) वायोश्च प्राणोऽहमस्मि आकाशस्य प्राणोऽहमस्मि(१८) त्रिझुणस्य प्राणोऽहमस्मि (१९) सर्वोऽह सर्वात्मकोऽह ससारी यद्भूत यच्च भव्यं यद्वर्तमानं सर्वात्मकत्वदद्वितीयोऽहम (२०) सर्वं खल्विद ब्रह्म (२१) सर्वोऽह विमुक्तोऽहम्(२२)तोऽसौ सोऽहँ हन्स: साऽहमस्मि । इत्येव सर्वत्र सदा ध्यायेदिति ।।

स्कन्दजी ने कहा— अब महावाक्य कहता हूँ—(प्रज्ञान ही ब्रह्म हैं, (२) में ब्रह्म हूँ, वह तू है, (यह आत्मा ब्रह्म है, (५) यह सम्पूर्ण विश्व ईश्वर से अधिष्ठित है, (६) मैंही प्राण हूँ (७) आत्मा ज्ञान है(८) जो वहाँ है सो यहाँ है, जो यहाँ है सो वहाँ है, (९) वह विदित अविदित से परे हैं, (१०) वह तुम्हारा आत्मा ही अन्तर्यामी एवं अमृत है, (११)इस पुरुष में और आदित्यमेजो है, यह एक है, (१२) मैंहीपरब्रह्म हूँ (१३) वेदशास्त्र का ज्ञाता गुरु,परेम परे एव आनन्दस्वरूपमैं ही हूँ (१४) सर्वभूतोमैं स्थित ब्रह्ममैंहीहूँ,इसमें शकनहीं है ।(१५) मैंहीतत्वकाप्राण तथा पृथ्वी का प्राण हूँ(१६)मैंहीजलोंका प्राणहूँऔरमैंहीतेज काप्राणहूँ (१७)मैंही वायु का प्राण तथा आकाश का प्राण हूँ, (१८) तीनो गुणों का प्राण मैं ही हूं, (१९) मैंहीसर्वात्मक हूँ, भूत, भविष्यत, वर्तमान सर्वात्मक होने से मैं एक अद्वितीय हूँ, (२०) यह सभी ब्रह्म रूप है, (२१) मैं सर्व रूप एवं मुक्त स्वरूप हूँ, (२२) जो यह है सो मैं हूँ, मैं हंस हूँ ।

प्रज्ञानं ब्रह्मवाक्यार्थः पूर्वमेव प्रबोधितः ।
अहंपदस्यार्थभूतः शक्त्यात्मा परमेश्वरः ।१
अकारः सर्ववर्णाग्र्यः प्रकाशः परमः शिवः ।
हकारो व्योमरूपः स्याच्छक्त्यात्मा संप्रकीर्त्तितः ।२
शिवशक्त्योस्तु संयोगादानन्दः सततोदिता ।
ब्रह्मेति शिवशक्तियोस्तु सर्वात्मत्वमिति स्फुटम् ।३
पूर्वमेवोपदिष्टं तत्सोऽहमस्मीत भावयेत् ।
तत्वमित्यत्र तदिति तच्छब्दार्थः प्रबोधितः ।४
अन्यथा सो हमित्यत्र विपरीतार्थभावना ।
अहंशब्दस्तु पुरुषस्तदिति स्यान्नपुंसकम् ।
एवमन्योन्यवैरुध्यादन्वयो न भवेत्तयोः ।५
स्त्री पुरुषस्य जगतः कारण चान्यथा भवेत् ।

स तत्वमसि इत्येवमुपदेशार्थभावना ।६
अयमात्मेति वाक्ये च पुरूप पदयुग्मकम् ।

ईशेन रक्षणीयत्वादीशावास्यामिद जगत् ।७

इस प्रकार सर्वत्र सदैव ध्यान करना चाहिए। इसका अर्थप्रधान ब्रह्म है। ऐतरेय उपनिषद् के अनुसार प्रज्ञान शब्द चैतन्यकावाची है यह प्रज्ञानरूपआत्मा ब्रह्महो यही इन्द्रहै, प्रज्ञानरूप ब्रह्म में सृष्टि स्थित औरलय भी स्थिति है, प्रज्ञारूप नेत्रवाला लोकहोने से प्रजा (ब्रह्म,सम्पूर्ण विश्व का आश्रयहै अब अहब्रह्मास्मिका अर्थ कहताहूं—अहं पदका अर्थ है शक्त्यात्मा ईश्वर (१) अकार सब वर्णों में अग्र प्रकाशित परम शिव स्वरूप है हकार व्योम रूप शक्तत्यात्मक कहाहै ।२। शिव शक्ति के संयोग से आनन्द स्थित रहता है, ब्रह्मेति से शिव और शक्ति की सर्वात्मकता स्पष्ट होती है। फिर पूर्व उपदिष्ट 'सोहमस्मि अर्थात् वह मैंहूँकी भावना करे, 'तत्वमसि'में तत्पद का अर्थ शक्तत्यात्मक समझो इसी प्रकार ब्रह्मास्मिका अर्थ भी ब्रह्म शब्दसे ग्रहण करे ।४। अन्यथा अह ब्रह्मास्मितिमें शुद्धब्रह्मका अभेद प्रतीत होता है उसके विवरण वाक्य में शक्त्यात्मक अभेद की भावना का उपदेश है। यदि कहेंकि शुद्धब्रह्मकी अभेदभावना के निमित्त अहमस्मिका तात्पर्य हो परन्तुशक्त्यात्मक अभेदनहीं है, उसका समाधान है कि अहपद का अर्थ भूत शक्त्यात्मक ईश्वरहै ऐसा पहले कहा होनेसे अलिंग भेदके विरोधीमत होनेसे अह पदार्थका अभेदान्वयनही हो सकता: क्योंकि 'अह' पुल्लिग और 'तत्' नपुन्सकहैं इस प्रकार परस्पर विरोधी होनेसे दोनोंका अन्वय नहीं हो सकता ।५। नहीं तो स्त्री पुरुषरूप विश्वका कारण भी अन्यथा होजायगा। इसलिए यहाँ तत्पद से शक्त्यात्मक का ही ग्रहण होगा। 'तत्वमसि' से और स 'आत्मा' से 'स' की अनुवृत्तिकर सशक्त्यात्मा यह ब्रह्म ही है, इस प्रकार 'त ब्रह्मरूप त्वमसि श्वेतकेतो' श्रुतिका अर्थ है। उद्दकलकऋषि ने छन्दोग्यके छठे अध्याय में श्वेतकेतुके प्रति यह कहा है।६। अथमात्मा ब्रह्म' में दोनों पद पुल्लिग है। आत्मा ओंकार ही है, शिवजीसे रक्षित होने के कारण सम्पूर्ण 'ईशावास्यम' कहा गया है ।७।

प्रज्ञानात्मा यदेवेह तदमुत्रे ति चिन्तयेत् ।
यः स एवेति विद्वद्भिः सिद्धान्तिभिरिहोच्यते ।८
उपरिस्थितवाक्ये च योऽमुत्र स इह स्थितः ।
इति पूर्ववदेवार्थः पुरुषो विदुषां मतः ।६
अन्यदेन तद्विदितादथो अविदितादपि ।
अस्मिन्वाक्ये फलस्यापि वैपरीत्यविभावना ।१०
यथा स्यात्तद्वदेवात्र वक्षामि श्रूयता मुने ।
अयथाविदिताच्छब्दो पूर्वगद्विदितादिति ।११
प्रवृत्तः स्यात्तद्विदितात्तथैवाविदितात्परम् ।
अन्यदेव हि सांसिद्धयै न भवेदिति निश्चितम् ।१२
एष त अत्मांतर्यामी योऽमृयश्च शिवः स्वयम् ।
यश्चायं पुरुष शभुर्यश्चादित्ये व्यवस्थितः ।१३
स चासो सेति पार्थक्य नैक सर्व स ईरितः ।
सोपाधिद्वयमस्याथ उसचारात्तथोच्यते ।१४

'प्राणोस्मि प्रज्ञानात्मा' का तात्पर्यप्रजानात्मकस्वरूप और प्राणपदार्थ हैं ही हूं। कोषीतकी ब्राह्मण के उपनिषद का वाक्यहैजो प्रतदननेदिवोदास के पुत्र से कहा था। यहाँ 'प्राण शब्दपरब्रह्मका वाचक ही है, कार्य कारण उपाधिसे मुक्त चैतन्य जगत्धर्मके समान आसमान है, अज्ञानियों को वही अपने आत्मा में स्थित तथा अन्यलोकमें जगत् के कारणतत्वमात्र से प्राप्त है।८। कारणोपाधि ईश्वर है वही कार्योपाधि जीव है सिद्धान्तवेत्ताओ का यही मत है। 'यदमुत्र तदन्विह में कारणोपाधि युक्त है वही कार्योपाधि में जीवरूप से स्थितहै,विद्वान् का यहीमत है। जोकार्यकारणारूप उपाधिसंयुक्त संसारधर्म के समान दिखाईदेता है ज्ञानीजनों को अपनी आतम ामें वहीइष्ट है तथा जो परलोक में है वह नित्य, विज्ञानघनस्वभाव तथा विश्वधर्म न रहित ब्रह्म है। जोवहाँ इसआत्मामेंहै, वहीनामरूप,कार्य कारणयुक्तसमझो ।६। 'अन्यदेवेति' इस वाक्य में मोक्षफलकी जैसे विपरीत भावना होती है, उसे कहता हूँ सुनो ।१०। अन्यदेवेति इसवाक्य इति शब्द अर्थ में अथवा-

र्थता से कारण ।११। ज्ञातादित' अर्थ में प्रयुक्त होती है ।इसी प्रकार वाक्यान्तर में अविदितादिति शब्द अपूर्व विदितादिति अर्थमें पूर्वमविज्ञाता-दिति अर्थ में प्रवृत्त होती है । इसी प्रकार भेद बुद्धिकी निवृत्ति से विपरीत फलकी भावना हो सकती है तथा जो विदित और अविदित से परे कोई अन्य सिद्धि हो तो उसकी सिद्धि में सम्यक् फल की प्राप्ति सम्भव नहीं है। इस कारण वस्तु में कार्य-कारणात्मक ब्रह्म ही है । उपाधिसे भेद व्यवहृत होता है परन्तु बुद्धि के न होने से फलकी प्राप्ति नहीं हो सकती ।१२।एष ते आत्मेति'यह बृहदारण्यकका वाक्य है इसका अर्थ है—यह तेरा अन्तर्यामी आत्मा नित्य एवस्वय शिवस्वरूप है, जो पृथिवी में स्थित एवं पृथिवी के अन्तर में हैं परन्तु पृथिवी उसे नहीं जानती, वही तेरा वन्तरात्मा अमृत रूप है अमृत और अन्तर्यामीसे परमात्मा ही है । तैतरीय ब्रह्म वल्लो के अनुसार जो आनन्दमय शिवआदित्य के देह में स्थित हैं ।१३। जो प्रत्यक्ष होकर भी परोक्ष है वह एक ही है, उनमें अनेकत्व या पृथक्तव नहीं । यदि कहे कि सबके अधिष्ठान शिव पुरुषादिका अधिष्ठान नहीं हो सकती तो पुरुष से अधिष्ठित और आदित्य से अधिष्ठितरूप दोउपाधि वाला होने से इस वाक्य का अर्थ आरोप से कहा है ।१४।

त शम्भुनाथ श्रुतयो वदन्ति हि हिरण्ययम् ।
हिरण्यबाहव इति सर्वाङ्गस्योपलक्षणम् ।१५
अन्यथा तत्पतित्वं तु न भवेदिति यत्नतः ।
य एषोन्तरिति शंभुश्छन्दोग्ये श्रुयते शिवः ।१६
हिरण्यश्मश्रु वांस्तद्वद्धिरण्यमयकेशवान् ।
नखमारभ्य केशान्त सर्वत्रापि हिरण्मयः ।१७
अहमस्मि ररं ब्रह्म परापरपरात्परम् ।
इति वाक्यस्य तात्पर्य वदादि श्रुयतामिदम् ।१८
अहपदस्यार्थभूतः शक्त्यात्मा शिव ईरितः ।
स एवास्मीति वाक्यार्थयोजना भवतिध्रुवम् ।१९
सर्वोत्कृष्टश्च सर्वात्मा परब्रह्म स ईरितः ।
यरश्चाथापरश्चति परात्परमिति त्रिधा ।२०

रुद्रो ब्रह्मा च विष्णुश्च प्रोक्ता श्रुत्यैव नान्यथा।
तेभ्यश्च परमो देवः परशब्दन बोधितः ।२१

श्रुति उन शिवको हिरण्यमय कहती है यथार्थ में निर्गुण शिव हरिण्यमय नहीं हो सकता। यदि कहें कि 'हिरण्यवाहवे' से वाहमात्र के लिए हिरण्य कहा है यह सर्वाङ्ग का उपलक्षण है।१५। फिर हिरण्यपति किस प्रकार होगया ? तो सुनो,यदि सर्वांगका लक्षण न होता तो पतित्व उपचारादि से भी न गनता, गनता इससे हिरण्यवणय ही छान्दोग्य सम्मत यही है।१६।ईश्वर में सुवर्णरूप विकार नहीं हो सकता,सुवर्ण प्रचेतन है,अचेतन पाप रहित होता है, फिर निषेध कैसा ? चक्षुक ग्रहणन होने से उसका अर्थ ज्योतिमय हो सकता है। सबके देह में शयन करने अथवा अपने से सम्पूर्ण शिवको परिपूर्ण करनेसे उसे सावधान चित्त वालों को ही दिखाई पड़ने वाला समझे ।१७। नखसे केशके अग्र भाग तक ज्योति स्वरूप,तुरीय ब्रह्म एवं परात्पर मैं हूँ। इसका तात्पय कहता हूँ। १८। अह पदका अर्थ शक्ति सम्पन्न शिव है, वही मैं हूँ, इससे वाक्याय होगया। १९। हर ब्रह्म सबसे श्रेष्ठ तथा सबकी आत्मा होने से कहा है, वह पर, अपर और परात्पर इन तीन भेदो वाला है ।२०। श्रुति ने उन्हीं को रुद्र, ब्रह्म और विष्णु कहा है, इन रुद्रादि तुरीय पर शब्द के द्वारा पर ब्रह्म जाता है ।२१।

वेदशास्त्रगुरूण च वाक्याभ्यासवशाच्छशोः।
पूर्णानन्दमयः शंभुः प्रादुर्भूतो भवद्धृदि ।२२
सर्वभूतस्थितः शंभु स एवाह न सशयः।
तत्वजातस्य सर्वस्य प्राणाऽस्म्यह मह शिवः ।२३
इत्युक्त्वा पुनरप्याह शिवस्तत्वत्रयस्य च।
प्राणाऽस्मीत्यत्र पृथ्व्यादिगुणान्तग्रहणान्मुने ।२५
आत्मतत्वानि सर्वाणग्रहीतानीति भावय।
पुनश्च सर्वग्रहणं विद्ययोतत्वे शिवात्मनाः ।२५
तत्वयाश्चास्म्तह प्राणः सवः सर्वात्मको ह्यहम्।
जावस्य चान्तर्यामित्वाज्जीवोऽह तस्य सर्वदा ।६

यद्भुतं यच्च भाव्यं यद्‌ भविष्यत्सर्वमेव च ।
मन्मयत्वादहं सर्वः सर्वो वै रुद्र इत्यपि ॥२७

श्रतिराह मुने सा हि साक्षाच्छिवमखोद्‌गता ।
सर्वात्मा परमैरेभिर्गु णैर्नित्यसमन्वयात्‌ ॥२८

वेद, शास्त्र तथा गुरुवाणी के, अभ्याससे शिष्य के हृदय में पूर्णानन्द वाले शिवजी प्रादुर्भू त होते हैं ।२२। वह सब प्राणियों में स्थित शिव मैं ही हूँ, सम्पूर्ण तत्वों का प्राण एक मैं ही शिव हूँ ।२३। इस प्रकार कहकर आत्मविद शिवाख्य तीन तत्वों का वर्णन करे । 'प्राणोस्मि' इस अर्थ के प्रतिपादन करने वाले वाक्य में ।२४। पृथिवी आदि गुणों के अन्तर्ग्रहण से पृथिवी का प्राण मैं हूँ से आरम्भकर त्रिगुण का मैं हूँ, कहने से सभी आत्मतत्त्वों का ग्रहण हो जाता है, ऐसी भावना करे फिर आत्म विद्या और शिव तत्वका भली प्रकार ग्रहण करके ।२५। भावना करे कि अब तत्वोंरूप प्राण मैं ही हूँ, सर्वात्मक होने से मैं ही सब हूँ, अब ससार का अर्थ कहते हैं—जीव रूप से अन्तर में घुसा हुआ होने से मैं जीव तथा संरक्षण शील हूँ ।२६।'यद्‌भूत'उस जीव का भूत, वर्तमान मैं ही हूँ ।२७। स्वयं शिवके मुखसे उद्‌भूत श्रुतिकहती है कि यह सम्पूर्ण जगत्‌ आदि रुद्र ही है, इस प्रकार मन्मय होने के कारण सब कुछ मेरा ही स्वरूप है । सर्वात्म होने के कारण मैं अद्वितीय हूँ ।२८।

स्वस्मात्परात्मविर्ग्हादद्वितीयोऽहमेव हि ।
सर्वं खल्विदं ब्रह्मेति वाक्यार्थः पूर्वमीरितः ॥२९

पूर्णोऽहं भावरूपत्वान्नित्यमुक्तोहमेव हि ।
पशवोमत्प्रसादेन मुक्तः मदभावमाश्रिताः ॥३०

योसौ सर्वात्मकः शम्भुःसोऽह सन्स शिवोऽस्म्यहम्‌ ।
इति वै सर्ववाक्यार्थो वामदेव शिवोदितः ॥३१

इतीशश्रुतिवाक्यामुपदिष्टाथमादरात्‌ ।
साक्षाच्छिवैक्यदँ पुन्सां शिशोर्गु रुपादिशेत्‌ ॥३२

आदाय शख साधारमस्त्रमन्त्रेण भस्मना ।
शोध्य तत्पुरतः स्थाप्य चतुरस्रे समर्चिते ॥३३

ओमित्यभ्यर्च्य गन्धाधैरस्त्रं वस्त्रोपशोभितम् ।
वासितं जलमापुर्य सम्पूज्योमिति मंत्रतः ॥३४
सप्तधवाभिमन्त्र्यार्थ प्रणवेन पुनश्चतम् ।
यस्त्वन्तरं किंचिदपि कुरुते सोऽतिभीतिभाक् ॥३५

सर्वोकृष्ट तथा अन्तर्यामी आदि गुणों वाला होने से मैं अद्वितीय हूँ 'सर्व खल्विदं ब्रह्म' का अर्थ पहिले ही कहा जा चुका है। उस ब्रह्म मे तेज, जल आदि की उत्पत्ति हुई है, इसीलिये यह तज्ज कहे गये हैं तथा प्रतिलोम से लीन हो जाते हैं।२९। इस प्रकार इस विश्व का ब्रह्मरूप प्रतिपादन किया है तथा सब पदार्थ रूप होने से पूर्ण हैं, मेरी कृपा से पशु भी मोक्ष को प्राप्त होकर मेरे पदको पागये।३०। यह जो कुछ है, सो मैं हूँ, इसका अर्थ सुनो। जो शक्त्यात्मा शिव है वह मैं हूँ, हंस शिव मैं हूँ, यह ईशावास्यकी श्रुति है।३१। इस प्रकार आदर पूर्वक गुरु श्रुति के अर्थों का शिव परत्व उपदेश अपने शिष्य के प्रति करे।३२। तथा आवार सहित शंखको ग्रहण कर अस्त्र मत्रात्मक भस्म से शोधकर उसके समक्ष चौकोर मण्डल में स्थापित करे।३३। प्रणव के उच्चारण पूर्वक गन्धादि से पूजन करे तथा अस्त्रमन्त्र और वस्त्र से मार्जन कर सुगन्धित जल भरकर ॐका उच्चारण करे।३४। फिर प्रणव से ही सात बार अभिमन्त्रित करे, इसमें अन्तर करने वाले को भय उपस्थित होता है।३५।

इत्याह श्रुतिसत्तत्वं दृढ़ात्मा गतभीर्भव ।
इत्याभाष्य स्वयं शिष्यं देवं ध्याय समर्चयेत् ॥३६
शिष्यासन सम्पूज्य षड्ुत्थापनमार्गतः ।
शिवासने च सकल्प्य शिवमूर्ति प्रकल्पयेत् ॥३७
पञ्च ब्रह्माणि विन्यस्य शिरः पादावसानकम् ।
मुण्डवक्त्रकलाभेदै प्रणवस्य कला अपि ॥३८
शष्टत्रिंशन्मंरूपाः शिष्यदेहेऽस्य मस्तके ।
समावाह्य शिवं मुद्राः स्थायनीयाः प्रदर्शयेत् ॥३९
ततश्चाङ्गनि विन्यस्य सर्वज्ञानीत्यनुक्रमात् ।
कल्पयेदुपचारांश्च षोडशासनपूर्वकान् ॥४०

पायसान्नञ्च नैवेद्यं समर्प्योमग्निजायया ।
गंडूपाचमनाध्र्यादि धूपदीपादिक क्रमात् ॥४१
नाभाष्टकेन सम्पूज्य ब्रह्मणैर्वेदपारगैः ।
जपेद्ब्रह्मविदाप्नोति भृगुर्वे वारुणिस्ततः ॥४२

श्रुति के इस आशय के विपरीत न करे, हे शिष्य ! इसलिए तू दृढ़ात्मा और भयविहीन हो इस प्रकार शिष्यसे कहकर शिवजी का ध्यान करता हुआ शिष्यका देवरूप से पूजन करे ।३६। षडध्व विधि से शिष्य के आसन को पूजकर शिवके आसन और स्वरूपकी कल्पनाकरो ।३७। शिर, मुख, हृदय, गुह्य, पाद पर्यन्त पञ्चब्रह्म को स्थिति करे और मुंड तथा मुख विषयक प्रणव की ।३८। अड़तालीस ब्रह्म रूप कलाशिष्य के शरीर में स्थित करे, उसके मस्तक में शिवजी का आहवानकर उन कलाओं को स्थापित करे और मुद्रा दिखाकर ।३९। षषड्ङ्गन्यास पूर्वकषोडश उपचार की कल्पना करे ।४०। खीर अर्पण कर, कुल्ला, आचमन, धूप, दीप आदि क्रम पूर्वक दे ।४१। आठ नामों से पूजन करे, वेदपाठी ब्राह्मणों के सहित जप करे ।४२।

यो देवानामुपक्रम्भ्य यः परः स महेश्वरः ।
इत्येतं तस्य पुरतः कह्लारादिविनिर्मितान् ॥४३
आदाय मालामुत्थाय श्रीविरूपाक्ष निर्मिते ।
शास्त्रे पञ्चाशिकेरूपेसिद्धिस्कन्धं जयेच्छनैः ॥४४
ख्यातिः पूर्णोऽहमित्येतं सानुकुलेक चेतसा ।
देशिकस्तस्य शिष्यस्य कठदेशे समपयेत् ॥४५
तिलक चन्दनेनाथ सर्वाङ्गालेपनं पुनः ।
स्वसम्प्रदायानुगुंण कारयेच्च यथाविधि ॥४६
ततश्च देशिकः प्रीत्या नामश्रीपादस ज्ञितम् ।
छत्रञ्च पादुकां दद्याद् दूर्वाकल्पविकल्पनम् ॥४७
व्याख्यातृत्वञ्च कर्मादि गुर्वासनपरिग्रहम् ।
अनुगृह्लगुरुस्तयै शिष्याय शिवरूपिणे ॥४८
शिवोऽहमस्मीति सदासमाधिस्यो भवेति तम् ।
संप्रोचथ स्वय तस्म नमस्कार समाचरेत् ॥४९

'यो देवानां प्रथमं पुरस्तात्' से आरम्भ कर 'प्रकृतिलीनो यः परः स महेश्वरः' तकजपे और श्वेत कमल आदि से निर्मित ।४३। माला लेकर शिवोक्त पंचमुख स्वरूप प्रतिपादक शास्त्र से स्थित सिद्धाख्य स्कन्ध ।४४। ख्याति पूर्णाहुतिके अन्ततक धीरे-धीरे जपे और मनोहर गंधादि से सम्पन्न जांघ तक लम्बी उस मालाको कण्ठ में धारण करावे ।४५। शिष्य तिलक और सर्वांग में चन्दन लगावे, सम्प्रदाय को विधि के अनुसार ।४६। गुरु श्रीपादादि नाम करण शिष्य का करे छत्र और पादुका देकर तूर्वाचन का प्रकार ।४७। अर्थात् उसका विशेष व्यवस्थापन कर्मारम्भ में गुरु आसन का परिग्रह है, गुरु उसशिवरूप शिष्य से अनुग्रह पूर्वक कहे ।४८। मैं सदा शिव हूँ, इस प्रकार कहकर स्वयं उसे नमस्कार करे ।४९।

शिष्यस्तदा समुत्थाय नमस्कुर्याद् गुरुं तथा ।
गुरोरपि गुरुं तस्य शिष्यांश्च स्वगुरोरपि ॥५०
एवं कृतनमस्कारं शिष्यं दद्याद् गुरु स्वयम् ।
सुशीलं यतवाचं त विनयावनतं स्थितम् ॥५१
अद्यप्रभृति लोकानामनुग्रहपरो भव ।
परीक्ष्यवत्सरं शिष्यमंगीकुरु विधानतः ॥५२
रागादिदोषान्सन्त्यज्य शिवध्यानपरो भव ।
सत्सम्प्रदायससिद्धैः संगं कुरु न चेतरैः ॥५३

नमस्कार अपने सम्प्रदाय के अनुरूपकरे और शिष्यभी उठकर गुरुको नमस्कार करे ।५०। इस प्रकार नमस्कार करने पर, वाणी को रोककर विनम्र हुए सुशील शिष्यको ।५१। गुरु स्वयं जप करावे और कहे कि तुम आजसे प्राणियों पर अनुग्रह करते रहना, इस प्रकार उसकी एक वर्ष तक परीक्षा करे, फिर कहे कि मेरे वाक्यों को स्वीकार करते रहना ।५२। रागादि दोषों का त्याग कर शिव के ध्यान में तत्पर रहना तथा सत्सम्प्रदाय के मनुष्यों की सङ्गति करना ही सर्वोत्तम है ।५३।



वायवीय-संहिता [पूर्व-खण्ड]

।। षटकुल वाले मुनियों का 'पर-तत्व' सम्बन्धी प्रश्न ।।

पुरो कालेन महता कल्पेऽत ते पुन पुनः ।
अस्मिन्नुपस्थिते कल्पे प्रवृत्ते सृष्टिकर्मणि ।।१

प्रतिष्ठितायां वार्तायां प्रबुद्ध सु प्रजासु च ।
मुनीनां षट्कुलीयानां ब्रुवतामितरेतरम् ।।२

इदं परमिदं नेति विवादः सुमहानभूत ।
परस्य दुर्निरूपत्वान्न जातस्तत्र निश्चयः ।।३

तेऽभि जग्मुर्विधातारं द्रष्टुं ब्रह्माणमव्ययम् ।
यत्रास्ते भगवान् ब्रह्मा स्तूयमानः सुरासुरैः ।।४

मेरुश्रृंगे शुभे रम्ये देवदानवसकुले ।
सिद्धचारणसंवाधे यक्षगन्धर्व सेविते ।।५

विहङ्कसंघसंघुष्टे मणिविद्रुमभुषिते ।
निकुंजकन्दरदरीगहानिझरिशोभिते ।।६

तत्र ब्रह्मवनं नाम नानामृगसमाकुलम् ।
दशयोजनविस्तीर्णं शतयोजनमायतम् ।।७

सूतजी ने कहा--बहुत समय और अनेक कल्पों के व्यतीत होने पर श्वेत-वाराह-कल्प उपस्थित, हुआ सब सृष्टि निर्माण-कार्य में ।१। यह विश्व निर्माण को वार्ता तथा ज्ञान प्राप्ति के लिए षटकुलोत्पन्नवेसब मुनि परस्पर कहने लगे ।२। यह परब्रह्महै, यह वही है, इस प्रकार अत्यन्त विवाद होने

लगा परन्तु ब्रह्म निरूपण जैसे कठिन विषय में कोई निश्चय पर नहीं पहुंचे ।३। तब वे सभी अविनाशी ब्रह्माजी के दर्शनार्थ गए वहां सुरासुर से स्तुति प्राप्त ब्रह्माजी विराज रहे थे ।४। मनोहर सुमेरु पर्वत की चोटी पर जहां अनेक देव दानव रहते हैं, सिद्ध चारणों रे सम्पन्न यक्ष गन्धर्वोंसे सेवायमान ।५। अनेक पक्षियों से युक्त, मणिमूंगों से परिपूर्ण, कन्दराओं गुफाओं और झरनों से सुशोभित ।६। अनेक मृगों से परिपूर्ण, दशयोजन चौड़ा और सौ योजन लम्बा ब्रह्मवन है ।७।

सुरसामलपानीयपूर्णरम्यसरोवरम् ।
मतभ्रमरसंछन्नरम्यपुष्पितपादपन् ।।८
नमस्त्रिमूतये तुभ्यं सर्गस्थित्यंतहेतवे ।
पुरुषाय पुरुणाय ब्रह्मणे परमात्मने ।।९
नमः प्रधानदेहाय प्रधानक्षोभकारिणे ।
त्रयोविंशतिभेदेन विकृतायाविकारणे ।।१०
नमो ब्रह्माण्डदेवाय ब्रह्माण्डोदरवर्तिने ।
तत्र संसिद्धकार्याय ससिद्धकरणाय च ।।११
नमोस्तु सर्वलोकाय सर्वलोकविधायिने ।
सर्वात्मदेहसंयोगवियोगविधिहेयवे ।।१२
त्वयैव निखिलं सृष्टं सहृत पालितजगत् ।
तथापि मायय नाथ नविद्मस्त्वांपितामह ।।१३
एवं ब्रह्मा महाभागैर्महर्षिभिर भिष्टुतः ।
प्राह गंभीरया वाचामुनीन्प्रह्लादयन्निव ।।१४

उसमें श्रेष्ठ रसयुक्त जलों से भरे हुए सरोवर हैं तथा प्रफुल्लित वृक्षों पर मदमत्त भ्रँवर गुंजार कर रहे हैं ।८। वहाँ पहूँचकर ऋषियों ने कहाँ हे सृष्टि, स्थिति और सहारकर्त्ता त्रिमूर्त्ति स्वरूप आपको नमस्कार है ।९। प्रकृति को विषम अवस्था के कर्त्ता तथा महदादि विकारों के कर्ता होकर भी विकार हीन ।१०। ब्रह्मांड के प्रवतर्तक होकर भी ब्रह्मांड के मध्य स्थित आपको नमस्कार है, ब्रह्मांड में धूतात्मक सृष्टि

आदि के कर्त्ता आपको नमस्कार है ।११। सर्वलोक स्वरूप तथा सर्वद्रष्टा आपको नमस्कार है, सम्पूर्ण आत्मा देह के संयोग बिधके कारण ।१२। आपने ही यह सम्पूर्ण विश्व प्रकट करके, पालन और यत्न किया है, उन आप पिता मह को हम माया के वशीभूत होकर नहीं जानते ।१३। सूत जी बोले कि इस प्रकार ऋषियों द्वारा ब्रह्माजी की प्रार्थना करने पर ब्रह्मा जी गम्भीर वाणी से कहने लगे ।१४

ऋषयो हे महाभागा महासत्वा महौजसः ।
किमर्थ सहिताः सर्वे यूयमत्र समागता ॥१५

तमेवंवादिनं देवं ब्रह्माणं ब्रह्मवित्तमाः ।
वाग्भिर्विनयगर्भाभिः सर्वे प्रांजलयोऽब्रुवन् ॥१६

भगवन्नंधकारेण महता वयमावृताः ।
खिन्नाविवदमानाश्च न पश्यामोऽत्र यत्परम् ॥१७

त्वं हि सर्वजगद्धाता सर्वकारणकारणम् ।
त्वया ह्यविवितं नाथ नेह किंचन विद्यते ॥१८

कः पुमान् सर्वसत्वेभ्यः पुराणः पर :
विशुद्धः परिपूर्णश्च शाश्वतः परमेश्वरः ॥१९

केनैव चित्रकृत्येन प्रथमं सृज्यते जगत् ।
तत्व वद महाप्राज्ञ स्वसदेहापनुत्तये ॥२०

ब्रह्माजी ने कहा--हे अत्यन्द तेजस्वी ऋषियो ! तुम सब एक होकर किस कारण यहाँ आएहो ? ।१५। ब्रह्माजी के इस प्रकार कहने पर उन ऋषियों ने हाथ जोड़कर विनय पूर्वक उनसे कहा ।१६। मुनियों ने कहा हे प्रभो ! हम घोरअन्धकारमें पड़ेहैं और पारस्परिकविवादसे खिन्न हैं, परन्तु परमतत्व को अभी तक नहीं जान सके ।१७। आप ही सम्पूर्ण विश्व के कर्ता तथा सबके कारण के कारण है, आपको संसार में अविदित कुछ भी नहीं है सब जीवों से पुरातन आपके सिवा अन्य कौन है ? विशुद्ध, परिपूर्ण, शाश्वत नित्य परमेश्वर ।१८। जगत् को किस अद्भुत कर्म से निर्माण करता है, उसे आप तत्व पूर्वक कहें तथा वह अन्त में कहाँ लीन हो जाता है ? यह प्राणी किसके वश में हैं ? इन सबका नियोजक कौन है ! उसे हम किस प्रकार देख सकते हैं ? ।२०।

॥ शिव ही 'परतत्व' है ॥

यतो वाचो निवर्तं ते अप्राप्य मनसा सह ।
आन्नदं यस्य वै विद्वान्न विभेति कुतश्चन ॥१
यस्मात्सर्वमिद ब्रह्मविष्णुरुद्रेन्द्रपूर्वकम् ।
सह भूतेन्द्रियैः सर्वैः प्रथमं सप्रसूयते ॥२
कारणानां च यो धाता ध्याता परमकारणम् ।
न संप्रसयतेऽन्यस्मात्कुतश्चन कदाचनः ॥३
सर्वैश्वर्येण संपन्नो नाम्ना सर्वेश्वरः स्वयम् ।
सर्वेमुं मुक्षभिर्ध्येयः शंभुराकाशमध्यगः ॥४
योऽग्रे मां विदधे पुत्रं ज्ञानं च प्रहिणोति मे ।
तत्प्रसादान्मया लब्धं प्राजापत्यमिद पदम् ॥५
ईशो वृक्ष इव स्तब्धो य एको दिवि तिष्ठति ।
येदेनमखिलं पूर्ण पुरुषेण महात्मान ॥६
एको वह नां जतूनां निष्क्रियणां च सक्रियः ।
य एको बहुधा बीजं करोति स महेश्वरः ॥७

ब्रह्माजी ने कहा—मन के सहित वाणी उसे प्राप्त न करके लौट आती और जिसके आनन्द को पाकर विद्वान् किसी प्रकार भी नहीं डरता ।१। जिसके द्वारा ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र इन्द्र आदि भूतेन्द्रिय के सहित प्रथम उत्पन्न होते हैं ।२। जो सृष्टि आदि कारणों का ध्याता नारायण है, उसके अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु किसी ने भी उत्पन्न नहीं की ।३। वह सभी ऐश्वर्यों से युक्त सर्वेश्वर है सभी के द्वारा ध्यान करने योग्य तथा हृदयाकाश के बीच में स्थित है ।४। जो सबसे पहले मुझ पुत्र को उत्पन्न कर ज्ञान प्रदान करता है, यह प्रजापति का पद मुझे उन्हीं की कृपा से मिला है ।५। वह एक ही ईश्वर आकाश में वृक्ष के समान निश्चल रूप से स्थित है उसी महान् पुरुष से यह ब्रह्माण्ड परिपूर्ण है ।६। जो स्वयं क्रिया हीन रहकर अनेक जीवों से सत्क्रिया कराता है, एक ही अनेक बीज रूपों को कर्म कराता है, वह महेश्वर है ।७।

जीवैरेभिरिमांल्लोकान्सर्वानीशो य ईशते ।
य एको भगवान्रुद्रो न द्वितीयोऽस्ति कश्चन ।।८
सदा जनानां हृदये संनिविष्टोऽपि यः परैः ।
अलक्ष्यो लक्षयन्विश्वमधितिष्टति सर्वदा ।।९
यस्तु कालात्प्रमुक्तानि कारणान्यखिलान्यपि ।
अनन्तशक्तिरेवैको भगवानधितिष्ठति ।।१०
न यस्य दिवसो रात्रिर्न समानो न चाधिकः ।
स्वाभाविकी परा शक्तिर्नित्यज्ञानक्रिये अपि ।।११
यदिदं क्षरमव्यक्तमप्यमृतमक्षरम् ।
तावुभावक्षरात्दानावेको देव स्वयं हरः ।।१२
ईशते तदभिध्यानाद्योजनः सत्वभावन ।
भूयो ह्यस्यपशोरन्ते विश्वमाया विवर्त्तते ।।१३
यस्मिन्नभापते विद्युन्न सूर्यो न च चन्द्र माः ।
यस्य भामा विभातीदमित्येषा शाश्वती श्रुति ।।१४

जो सब लोकों को जीवों से परिपूर्ण कर स्वयं उसका शासक है, वही भगवान् रुद्र हैं, अन्य कोई नहीं है ।८। जो भक्तों के हृदय में सदैव स्थित होकर भी किसी को दिखाई नहीं देता ।९। आत्मा और बुद्धि से युक्त अनेक कारणों में एक ही अनन्त शक्ति वाले वे प्रभुस्थित है ।१०। सृष्टि से पूर्व यह विश्व अन्धकारमय था उस समय दिन, रात, सत् असत् कुछ भी नहीं था, केवल शिव ही थे । उनके समान अथवा अधिक अन्य कोई नही है, उनकी पराशक्ति में नित्य ज्ञान और क्रिया स्थित है ।११। यह सम्पूर्ण भूत अक्षर कूटस्थ ब्रह्म है, वह अव्यक्त हैं, अक्षर और आत्मा यह दोनों एक ही महेश्वर देव है ।१२। जो मनुष्य सद्भावपूर्वक शिव का ध्यान करेगा, उसकी अन्य समय माया निवृत होगी और उसे मोक्ष मिलेगी ।१३ जिसमें विद्युत सूर्य, चन्द्र कोई भी प्रकाश नहीं करते, उसकी कान्ति से ही यह संपूर्ण विश्व प्रकाशित है यह सनातन श्रुति है ।१४।

एको देवो महादेवो विशेयस्तु महेश्वरः ।
न तस्य परमं किंचित्पदं समधिगम्यते ।।१५

अयमादिरनाद्यन्तः स्वभावादेव निर्मलः ।
स्वतन्त्रः परिपूर्णश्च स्वेच्छाधीनश्चराचरः ॥१६
अप्राकृतवपुः श्रीमाल्लक्ष्यलक्षणवर्जितः ।
अयं मुक्तो मोचकश्च ह्यकालः कालचोदकः ॥१७
सर्वोपरिकृतावासः सर्वावासश्च सर्ववित् ।
षडविधाध्वमयस्यास्य सर्वस्य जगतः पतिः ॥१८

एक ही महेश्वर देव जानने के योग्य हैं, उसका परमतत्व किसी के भी जानने में नहीं आपाता ।१५। इनका आदि-अन्त नहीं है, निर्मलस्वभाव स्वतन्त्र तथा परिपूर्ण हैं तथा चराचर जगत को अपनी इच्छा के वशीभूत रखे हुए हैं ।१६। इनका शरीर प्रकृतिजन्य नहीं है, यह लक्ष लक्षण से परे हैं, स्वयं माया से सम्बद्ध होकर भी भक्तों को मोक्ष देने वाले हैं, काल स्वरूप न होकर भी काल को प्रेरणा करने हे ।१७। उसका स्थान सर्वोपरि है, वे सभी में अधिष्ठित हैं सबमें निवास करके भी सबके ज्ञाता हैं छः मार्ग और विश्व के ईश्वर हैं ।१८।

उत्तरोत्तरभूतानामुत्तरश्च निरुत्तरः ।
अनन्तानन्दोहमकरंदमधुव्रत ॥१९
अखडजगदंडानां पिंडीकरणपण्डितः ।
ओदायवीर्यगांभीत्यमाधुर्य मकरालयः ॥२०
नैवास्य सदृश वस्तु नाधिकं चापि किंचन ।
अतुलः सर्वभूतानां राजराश्च तिष्टति ॥२१
अनेन चित्रकृत्येन प्रथमं सृज्यते जगत् ।
अन्तकाले पुनश्चेद तस्मिन्प्रलयमेष्यति ॥२२
अस्य भूतानि वश्यानि अयं सर्वनिजोयक ।
अयं तु परया भक्त्या दृश्यते नान्यथा क्वचित् ॥२३
व्रतानि सर्व दानानि तपांसि नियमास्तथा :
कथितानि पुरा सद्भिधीवार्थं नात्र संशयः ॥२४
हरिश्चाहं च रुदत्त तथान्ये च सुरासुराः ।
तपोभिरुग्रै रद्यापि सस्य दर्शनकांक्षिणः ॥२५

अदृश्यः पतितैर्मूढैर्दुर्जनैरपि कुत्सितैः ।
भक्तैरन्तर्बहिश्चापि पूज्यः संभाष्य एव च ॥२६
तदिदं त्रिविधं रूपं स्थूलं सूक्ष्म ततः परम् ।
अस्मदाद्यमरैर्दृश्यं स्थूल सूक्ष्म ततः परम् ।
अस्मदाद्यमरैर्दृश्यं स्थूल सूक्ष्मं तु योगिभि ॥२७
ततः परं तु यन्नित्यं ज्ञानमानन्दभव्ययम् ।
तन्निष्ठैस्तत्परैभक्तैर्दृश्यं तत्व्रतमाश्रितैः ॥२८

प्राणियों में भी वही सर्वोत्कृष्ट हैं उनसे श्रेष्ठ कोई नहीं है, वह अनन्त महिमा सम्पन्न और अपरिच्छिन्न ऐश्वर्य से युक्त है शब्दादि विषयों में अमोघ और भक्तों का हित करने वाले हैं, ज्ञान से सबमें व्याप्त, आत्म-शक्ति के आनदामृत, प्रमोद के रसिक तथा सदैव तरुणावस्था से सम्पन्न अनन्तानन्द के पात्र तथा मकरन्द पान में मधुवत हैं ।१६। विश्व के दंड देने में सर्व समर्थ उदारता, वीरता, गम्भीरता और मधुरता के सिन्धु हैं ।२०। न कोई इनके समान है, न इनसे कोई अधिक है, इनकी तुलना किसी से भी नही करी जा सकती यह राजाधिराज होकर प्रतिष्ठत हैं ।२१। चित्रकृत्य के समान यह विश्व पहले इन्हीं के द्वारा बताया जाता है तथा अन्त में इन्हीं में लीन हो जाता है ।२२। सब इनके ही वश में है यही सबको नियोजित करते हैं परम भक्ति के द्वारा ही इनके दर्शन सम्भव हैं, अन्य प्रकार से नहीं ।२३। व्रत, दान तप, नियम यह सब प्राचीन ऋषियोंने रुद्र रूप ईश्वर के ध्यान के लिए बताये हैं ।२४। सुर, असुर अत्यन्त घोर तप करके उनके दर्शन की अब तक इच्छा करते हैं ।२५। पतितमूढ, कुत्सित तथा दुर्जनों को उनके दर्शन कभी नहीं होते भक्तजन उनको बाह्यभ्यंतर में पूजकर उनसे वार्ता करते हैं ।२६। वे स्थूल सूक्ष्मतथा सूक्ष्म से भी परे हैं, हम और देवता आदि केवल स्थूल को देख सकते हैं, परन्तु योगियों को उनके सूक्ष्मरूप के दर्शन होते हैं ।२७। जो नित्य ज्ञान आनन्द और अविनाशी रूप वाला है, उसके प्रति निष्ठा वाले उसी के व्रत वाले तथा उसी में तत्पर भक्त उसे प्राप्त करते हैं ।२८।

बहुनाऽत्र किमुक्तेन गुह्याद्गुह्यतरं परम् ।
शिवे भक्तिर्न सन्देहस्तया युक्ता विमुच्यते ॥२६

प्रसादादेव सा भक्ति प्रसादो भक्तिसम्भवः ।
यथा चांकुरतो बीज बीजतो वा यथाकुरः ॥३०
प्रसादपूर्विका एव पशोः सर्वत्र सिद्धयः ।
स एव साधनैरन्ते सर्वैरपि च साध्यते ॥३१
प्रसादसाधनं धर्मः सच वेदेन दर्शितः ।
तदभ्यासवशात्साम्यं पूर्वयाः पुण्यपापयो ॥३२
साम्यत्प्रसादसंपर्को धर्मस्यातिशयस्ततः ।
धर्मातिशयमासाद्य पशोः पापपरिक्षयः ॥३३
एवं प्रक्षीणपापस्य बहुभिर्जन्मभिः क्रमात् ।
सांबे सर्वेश्वरे भक्तिर्ज्ञानपूर्वा प्रजायते ॥३४
भावानुणमीशस्य प्रसादो व्यतिरिच्य ।
प्रसादात्कर्म संत्यागः फलतो न स्वरूपतः ॥३५

गुप्त से भी गुप्त रहस्यशिव के प्रति भक्ति ही है । इसमें संशय नहीं कि भक्ति द्वारा ही मुक्ति प्राप्त होती है ।२९। प्रभु-प्रताप से ही भक्ति का उदय होता है तथा भक्ति से ही शिव की प्रसन्नता प्राप्त होती है जिस प्रकार अंकुर से बीज तथा बीज से अंकुर की उत्पत्ति होती है ।३०। वैसे ही जीवों को ईश्वर की भक्ति प्राप्ति होती है । सर्वसाधनों के द्वारा शिव को साधा जाता है यह निश्चय है ।२१। उनके प्रसन्न करने के साधन वेद ने प्रदर्शित किये हैं उस वेदाभ्यास से पूर्वजन्म के पाप-पुण्य समान होने पर ।३२। प्रसाद की प्राप्ति और धर्म की वृद्धि होती है, धर्माधिक्य से ही प्राणों के पापों का क्षय होता है ।३३। इस प्रकार क्रम पूर्वक अनेक जन्मों के पापों का नाश होने पर सर्वेश्वर शिव में ज्ञानपूर्वक भक्ति का उदय होता है ।३४। उनके गुणों के विचार से उनमें प्रसाद की प्राप्ति और प्रसाद से कर्म का क्षय होता है कर्म क्षय का आशय उसके फल से है, स्वरूप से नहीं है ।३५।

॥ पशुपति शब्दपर ऋषियों का विवाद ॥

तत्रपूर्वं महाभागा नैमिषारण्य वासिनः ।
प्रणिपत्य तया न्वायुंपप्रच्छुावनं भुम ॥१

भवान् कथमनुप्राप्तो ज्ञानमीश्वरगोचरम् ।
कथं च शिवभावस्ते ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥२
पशुपाशपतिज्ञानं यल्लब्धं तु मया पुरा ।
तत्र निष्ठा परा कार्या पुरुषेण सुखार्थिना ॥३
अज्ञानप्रभवं दुःखं ज्ञानेनैव निवर्त्तते ।
ज्ञान वस्तुपरिच्छेदो वस्तु च द्विविधं स्मृतम् ॥४
अजडं च जडं चैव नियंतृ च तयोरपि ।
पशुः पाशः पतिश्चति कथ्यते तत्त्रयं क्रमत् ॥५
अक्षर चे क्षरं चैव क्षराक्षरपरं तथा ।
तदेतत्त्रितयं भूम्ना कथ्यते तत्ववेदिभिः ॥६
अक्षर पशुरित्युक्तः क्षर पाश उदाहृत् ।
क्षराक्षरपर यत्तत्पतिरित्यभिधीयते ॥७

सूतजी ने कहा—वे अत्यन्त भाग्यवान नैमिषारण्य निवासी मुनिजन प्रणाम करके वायुदेव से प्रश्न करने लगे ।१। उन मुनियों ने कहा--आपने ईश्वर गोचर ज्ञान की प्राप्ति किस प्रकार की ? आपअव्वक्त अजन्मा भगवान शिव के शिष्यकिस प्रकारहुए? ।२। वायुने कहा-मैंने पूर्वकालसे ही कुछ शिवविषयक ज्ञानकी प्राप्ति कीथी । सुखकी कामना वाले पुरुष को उसमें परम प्रीति करनी चाहिए ।३। अज्ञान से उत्पन्न दुख ज्ञान के द्वारानष्ट हो जाता है, ज्ञानवस्तु परिच्छेदयुक्त तथा तीन प्रकार की है ।४। अजड़, जीव तथा जड़ प्रकृति का नियन्ता वही है । उसके क्रमशः तीन नाम पशु, पाश और पति हैं ।५। क्षर, अक्षर तथा क्षराक्षर से परे, इन तीन को तत्वज्ञाता बतलाते हैं ।६। अक्षर का नाम पशु है, वही जीव है तथा ब्रह्म ज्ञान से पाश प्रकृति का क्षरण होने से इसे क्षर कहा है, जो क्षरक्षर से परे है, वही पति कहा जाता है ।७।

किं तच्च क्षरमित्यूक्तं किं चाक्षरमुदाहृतम् ।
तयोश्च परमं किं वा तदेतद्ब्रूहि मारुत ॥८
प्रकृति क्षरमित्यूक्त पुरुषोऽक्षर उच्यते ।

ताविमौ प्रेरयत्यन्य: स पर: परमेश्वर ॥९

कैषा प्रकृतिरित्युक्ता क एष पुरुषो मत: ।
अनयो: केन सम्बन्ध: कोऽयं प्रेरक ईश्वर: ॥१०

मायाप्रकृतिरुद्दिष्टा पुरुषो माययाऽऽवृत: ।
सम्बन्धा मूलकर्मभ्यां शिव प्रेरक ईश्वर: ॥११

केयं माला समाख्याता किंरूपो मायया वृत: ।
मूलं कीदृक् कुतो वास्य किं शिवत्वं कुत: शिव: ॥१२

माया माहेश्वरी शक्तिश्चिद्रूपो मायया वृत: ।
मलश्चिच्छादको नैजो विशुद्धि: शिवत्रा स्वत: ॥१३

आवृणोति कथं माया व्यापिन केन हेतुना ।
किमर्थं चावृति: पुंस केन वा विनिवर्तते ॥१४

मुनियों ने पूछा–क्षर किसे कहते हैं ? अक्षर किसे कहते हैं ? क्षर अक्षर से परे क्या है । इसे आप कहने की कृपा करें ।८। वायु ने कहा—प्रकृति 'क्षर' है,पुरुष'अक्षर'है तथा उन दोनों को प्रेरणा करने वाला और उन दोनों से ही परे परमेश्वर शिव हैं ।९। मुनियों ने पूछा प्रकृति क्या है । पुरुष कौन है । इन दोनों का क्या सम्बन्ध है । तथा इन दोनों के प्रेरण करने वाला कौन है ।१०। वायु ने कहा माया का नाम प्रकृति है, उसी माया से पुरुष आवृत है, मल और कर्म के सम्बन्ध से परे शिव ही ही सबकी प्रेरक तथा ईश्वर है ।११। मुनियोंने पूछा-माया क्या वस्तु है । माया से आवृत्त होकर क्या स्वरूप बनता है । मल कैसा तथा कहाँ से प्राप्त हुआ । शिव तत्व, क्या है । तथा शिव कौन है ! ।११। वायु ने कहा माया शिव की शक्ति है माया से ढका हुआ शिव स्वरूप है, मल चित्स्वरूप को आवृत करने वाला है, वह तम स्वकल्पित है और शिव स्वरूप विशुद्धतम-रहित है ।१३। मुनियों ने पूछा—व्यापी को यह माया किस लिए आवृतकर लेती है ? पुरुषको आवरण किस प्रकार होता है । तथा उसकी निवृत्ति किस प्रकार होती है ! ।१४।

आवृत्त्यिापिनोऽपि स्याद्व्यापि यस्मात्कलाद्यपि ।
हेतु: कर्मैव भोगार्थंनिवर्तेत मलक्षयात ॥१५

कलादि कथ्यते किं तत्कर्म वा किमुदाहृतम् ।
तत्किमादि किमन्तं वा किं फलं वा किमाश्रयम् ॥१६
कस्य भोगेन किं भोग्यं किं वा तद्भोगसाधनम् ।
मलक्षयस्य को हेतु कीदृक् क्षीणमलं पुमान् ॥१७
कला विद्या च रागश्च कालो नियतिरेव च ।
कलादयः समाख्याता यद्भोक्ता पुरुषो भवेत् ॥१८
पुण्यपापात्मक कर्म सुख दुःखफलं तु यत् ।
अनादिमल भोगान्तमज्ञानात्मसमाश्रयम् ॥१९
भोगः कर्म विनाशमाय भागमव्यक्तच्यते ।
बाह्यांत करणद्वारं शरीरं भोगसाधनम् ॥२०
भावातिशयलब्धेन प्रसादेन मलक्षयः ।
क्षीणे चात्ममले तस्मिन् पुमांशिवसमो भवेत् ॥२१

वायु ने कहा-व्यापी को कलादि में होने से आवृत्ति होती है इसका कारण कर्म है, जो भोग कराता है तथा मल के क्षीण होने से इसकी निवृत्ति होती है ।१५। मुनियों ने पूछा–कलादि क्या है । कर्म क्या है । आदि अन्त क्या है । उसका फल आश्रय क्या है ! ।१६। भोग किसके लिए है ? भोग क्या है । भोग का साधन क्या है मलके क्षीण होने का कारण क्या है ? क्षीण-मल वाले पुरुष का स्वरूप क्या है ? ।१७। वायु ने कहा-रजोगुण से उत्पन्न होने वाले त्रिषयों की अभिलाषा और विद्या-को राग कहते हैं, काल देव-शक्ति है तथा भोक्ता पुरुष को कलादि कहते हैं ।१८। कर्म पुण्य और पाप से युक्त होता है, उसका फल दुःख सुख है, अविद्याजनित अनादिवल से भोग के अन्ततक अज्ञानवश ही अपनी आत्मा में समझ जाता है ।१९। कर्म का नाश करने के लिए भोग तथा भोग्य वस्तु प्रकृति है नेत्रावि इन्द्रिय, बाह्य अन्तःकरण, मन, इन्द्रियों के द्वार और देह यह सब भोग के साधन हैं ।२०। अत्यन्त प्रीति से प्राप्त शिव प्रसाद के कारण तमोगुण क्षीण होता है तथा मल के क्षीण होजाने पर पुरुष शिव के तुल्य होजाता है ।२१।

कलादिपञ्चतत्वानां कि कर्मं पृणमुच्यते ।

भोक्तेति पुरुषश्चेति येन.त्मा व्यपदिश्यते ॥२२
किमात्मक तदव्यक्यं केनाकारेण भुज्यते ।
किं तस्य शरणं भुक्तो शरीरं च किं मुच्यते ॥२३
दिक्क्रियाऽभ्यंजका विद्या कालो राग प्रवर्तक ।
कालोऽकश्छेदकस्तत्र नियतिस्तु नियामिका ॥२४
अव्यक्त कारणं यत्तत्त्रिगुणं प्रभवाप्ययम् ।
प्रधान प्रकृतिश्चेति यदाहुस्तत्वचिंतका: ॥२५
कलातस्दतदभिव्यक्तभिव्यक्तलक्षणम् ।
सुखदु:खबिमोहात्मा भुज्यते गुणवांस्त्रिधा ॥२६
सत्वं रजस्तम इति गुणा: प्रकृतिसंभवा: ।
प्रकृतौ सूक्ष्मरूपेण तिले तैलमिव स्थिता: ॥२७
सुखं च सुखहेतुश्च समासात्सात्विकं स्मृतम् ।
राजस तद्विपय सत्स्तभमोहो तु तामसौ ॥२८

मुनियों ने कहा—कलादि पंचतत्वों का पृथक् कर्म क्या है? क्या आत्मा को भोक्ता कहते हैं ? क्या पृथक् पुरुष आत्मा है ? ।२२। क्या वह अव्यक्त आत्मा है ? वह भोक्ता किस प्रकार है ? मुक्ति में उसकी शरण क्या है तथा देह क्या है ? ।२३। वायु ने कहा—पुरुष का ज्ञान उत्पन्न करने की शक्ति विद्या है क्रिया की व्यंजक कला है, काल उसका अवच्छेदक तथा देवशक्ति उसकी नियन्ता है ।२४। सत्व, रज, तम इन तीन रूपों से अव्यक्त का कारण प्रकट होता है, तत्वज्ञानी इसी कों प्रधान तथा प्रकृति कहते हैं ।२५। कला ही क्रियात्मक प्रभु शक्ति को प्रकट करने वाली है, सृष्टि के पहिले वह अव्यक्त रूप भी सृष्टिकाल में व्यक्त होता है । विमोहित आत्मा पुरुष तीन को तीन प्रकार से भोगता है, वे तीनों गुणसूक्ष्मरूप से उसी प्रकार प्रकृति में स्थित है, जैसे तिलों में तैल स्थित रहता है ।२६-२७। सुख और सुख के हेतु को सात्विक तथा दु:ख और दु:ख के हेतु को राजस कहा है तथा प्रवृत्ति और निवृत्ति की शून्यता का तामस कहा गया है ।२८।

सात्विग्यूर्ध्वंगति: प्रोक्ता तामसी स्यादधोगति ।

मध्यमा तु गतिर्या सा राजसी परिपठ्यते ।२९
तन्मात्रापञ्चकं चैव भूतपञ्चकमेव च ।
ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्चैक्यं पञ्चकर्मेन्द्रियाणि च ।३०
प्रधानबुद्ध्यहङ्कारमनांसि च चतुष्टयम् ।
समासादेवमव्यक्तं सविकारमुदाहृतम् ।३१
तत्कारणं दशापन्नमव्यक्तमिति कथ्यते ।
व्यक्तं कार्यदशापन्नं शरीरादिघटादिवत् ।३२
यथा घटादिकं कार्यं मृदादेर्नातिभिद्यते ।
शरीरादि तथा व्यक्तिमव्यक्तान्नानातिभिद्यते ।३३
तस्मादव्यक्तनेवैक्यकारणं करणानि च ।
शरीरं च तदाधारं तद्भोग्यं चापि नेतरत् ।३४
बुद्धीन्द्रियशरीरेभ्यो व्यतिरेकस्यकस्यचित् ।
आत्शब्दाभिधेयस्य कस्तुतौपिकृतः स्थिति ।३५

रजोगुण ही अधोपति है तथा मध्यमा गति को राजसी कहा है।२९। तन्मात्रा, शब्द, स्पर्शादि पाँच तथा पंचभूत,ज्ञानेन्द्रिय और पचकर्मेन्द्रिय ।३०। प्रधान बुद्धि अहङ्कार और मन यह चारों समान से अव्यक्त और विकारी कहे जाते हैं ।३१। उसके कारण दशामें प्राप्त होने पर अव्यक्तऔर कार्य दशामें प्राप्त होने पर व्यक्त होता हैं यह देह घट आदि के समान प्रत्यक्ष होता हैं ।३२। जैसे घटादि कार्य का मृत्तिका से भिन्नत्व नहीं वैसे ही इस देहादि का भी अव्यक्त से भिन्नत्व नहीं है ।३३। इसलिए अव्यक्त हीकार्यों का कारण है,देह उसका आधार तथा भोग्य हैं,इसमें सन्देह नहीहैं ।३४। ऋषियों ने कहा बुद्धि इन्द्रिय शरीर से व्यतिरेक दिखाई देकर यथार्थ में अस्म। शब्द का व्यवहार करते हैं उसकी स्थिति कहाँ है ! ।३५।

बुद्धीन्द्रियशरीरेभ्यौ व्यतिरेकोविभोध्रुवम् ।
अस्यत्मेव कश्चिदात्मेति हेतुस्तत्र दुर्गदुमः ।३६
बुद्धीन्द्रियशरीराणां वात्मतासद्भिरिष्यते ।
स्मृतोरवितयज्ञानादयावददेहवेदनात् ।३७

अतः स्मर्तानुभूतानामषज्ञेयगोचरः ।
अन्तर्यामीति वेदेषु वेदांते च गीयते ।३८
सर्व तत्र स सर्वत्र व्याप्य तिष्ठति शाश्वत ।
तथापि क्वापि केनापि व्यक्तमेषनदृश्यते ।३६
नैवाय चक्षुषा ग्राह्यो नापरैरिन्द्रियैरपि ।
मनसैव प्रदीप्तेन महात्माऽवसीयते ।४०
न च स्त्री न पुमानेष नैव चापि नपुंसकः ।
नैवोर्ध्व नापि तिर्यक् च नाधस्तान्न कुतश्चन ।४१
अशरीरं णरीरेषु चलेषु स्थाणुमव्ययम् ।
सदा पश्यति तं धीरो नरः प्रत्यबमर्शनात् ।४२

वायुने कहा बुद्धि इन्द्रिय और देह ने वह अचल, सर्वव्यापक तथा अलग हैं वही आत्मा कहा जाता है,उसका हेतु-ज्ञान अत्यन्त कठिन हैं वह अनेक जन्म की परम्परा से जानने योग्यहै ।३६। बुद्धि इन्द्रिय और देह में सत्पुरुष आत्मानहीं मानते,स्मृतिके विचरण से बुद्धि में स्मरणत्वका आश्रय संभव नहींहै,क्योंकि स्मृतिहीबुद्धिका परिणाम है तथा आश्रय आश्रयी भाव सेभेद है । इन्द्रियकी भिन्नता में अक्षान न रहताही कारणहै,जैसे नेत्ररूपको देखता है,स्पर्श का अनुभव नहीं करता परन्तु आत्मा प्रत्यक्ष योग सभी का ग्रहण करता है अथवा इन्द्रियके द्वारा ग्रहण करताहैं,स्वय ग्रहण नहींकरता जवतक देहहै,तमीतक ज्ञानहै,देह के नष्ट होने पर आत्मा अन्य देह में चला जाता है,ऐसा नहीं तो कर्म का भोग किस प्रकार भोगे? इस कारण आत्मा देहसे भिन्ननहीं हैं।३७। इस प्रकार बुद्धि आदि से भिन्न कर्म फलकाभोगना वालाकोई आत्माहैं,जोसर्व ज्ञाता तथा वेद वेदान्तमें अन्तर्यामी कहा जाता है ।३८। वह सबमें है,तथा सबको व्याप्त करके स्थितहैं, कोई भी उसे प्रत्यक्ष देखनेमें समर्थ नहीं है ।३९। उसे नेत्रादि इन्द्रियोंके द्वारा ग्रहण नहीं किया जासकता महात्माजन मनको शुद्धकरके केवल योगाभ्याससे ही जान सकते हैं ।४०।यह न स्त्री है न पुरुष, नपुंसक भी नहीं हैं,न ऊपर है,न नीचे न तिरछे है ।४१। देहमें रहकर भी देहरहित,चलवस्तु में रह कर भी अचल

और अविनाशी है, इसे रपुरुष श्रवणादि अभ्यास से देख सकते हैं ।४२।

किमत्र बहुनोक्तेन पुरुषो देहतः पृथक् ।
अपृथग्घ्ये तु पश्यति ह्यसभ्यक् तेषु दर्शनम् ।४३
यच्छरीरमिद प्रोक्तपुरुषस्य ततः परम् ।
अशूद्धमवशं दुःखमध्रुवं न च विद्यते ।४४
विपदां बीजभूतेन पुरुषतेन संयुतः ।
सुखी दुःखी च मूढश्च भवति स्वेन कर्मणा ।४५
अद्भिराप्लावित क्षेत्र जनयत्यंकुरं तथा ।
अज्ञानातलावितं कम देहं जनयते तथा ।४६
अत्यंतमसुखःवासाः स्मृताश्चै कांतमृत्यवः ।
अनागदा अतीताश्च तनवाऽस्य सहस्रशः ।४७
आगत्यागत्य शीर्णेन शरीरेषु शरीरिणः ।
अत्यन्तवसति क्वाऽपि केनापि च लभ्यते ।४८
छादितश्च वियुक्तश्च शरीरैषु लक्ष्यते ।
चन्द्रबिबदाकाशे तरलरभ्रसचयः ।४९

वह पुरुष इस शरीर से भिन्न है तथा जो उसे देहसे संयुक्त मानते हैं, उन्हें वास्तविक ज्ञान नहीं है ।४३। जिसे देह कहते हैं,वह पुरुषसे भिन्न हैं, वह देह अशुद्ध, दुःख स्वरूप तथा चल हैं, यदि पुरुष से संयुक्त होता तो इसमें यह दोष नहीं होते ।४४। विपत्तिके बीच स्वरूप इस देहसे पुरुष का संयोग होनेके कारणही यहकर्मानुसार दुःखी-दुःखी तथाअज्ञानी माना जाता है ।४५। जैसे पानी देते से खेत में अंकुर निकलता हैं वैसे ही अज्ञानीरूपी जल से भीगने से अंकुर के समान ही देह से कर्म उत्पन्न होते हैं ।४६।यह देह अत्यन्त दुःख रूप,रोगी और मृत्यु मुखमें गिरने वाला हैं, इसके हजारों शरीर ही चुके और होगे ।४७। एक देह के जीर्ण होने पर यह पुरुष दूसरे देह में जाता है, एक शरीर में कोई भी निरन्तर नहीं रहता ।४८। इसका शरीर के साथ संयोग होता है आकाश में मेघ से ढके हुए चन्द्रमंडल के समान कभी प्रकट और कभी अप्रकट होता है ।४९।

अनेकदेहत्वेदेन भिग्ना वृत्तिहिरात्ममः ।
अष्टापदपरिक्षेते ह्यक्षमुद्र व लक्ष्यते ।५०
नैवास्व भविता कश्चिन्नासौ भवति कस्यचित् ।
पथि संगम एवायं दारैः पुत्रैश्च बन्धुभिः ।५१
यथा काष्टं च काष्टं च सभेयातामहोदधौ ।
सीत्य च व्यपेपातां तद्वद्भूतसमागमः ।५२
स पश्यति शरीरं तच्छरीर तन्न पश्यति ।
तौ पश्यति परःक्रशियत्ताबुभौ त न पश्यतः ।५३
ब्रह्माद्याः स्थावरांताश्च पशवापरिकीर्तित ।
पशूनामेत्र सर्वेषां प्रोक्तामेतान्नदशनम् ।५४
स एष बध्यते पाशैः सुखदु ख शन पश ।
लीलासाधन भूतो य ईश्वरस्यति सुरयः ।५५
अज्ञोजतुरनीशोऽतमात्मनःसुखदुःखयोः ।
ईश्वरप्रेरितो गच्छेत्स्वर्ग वा श्वभ्रमेव वा ।५६
इयाकर्ण्यानिलवच मुनयः प्रीतम नसाः ।
प्रोचु प्रणम्य तं वायु शैवागमविचक्षणम ।५७

अनेक देहों के भेदसे आत्माकी वृत्तिभी भिन्न-भिन्न प्रकार की दिखाई देतीहैं,वह शारिफलके समान एकआकार होकर भी अनेक प्रकारका प्रतीत होता है ।५०। उस पुरुषका न कभी कोई हुआन भविष्यमें होगा स्त्री और बन्धु-बान्धवों का संयोग यात्री के समान है ।५१। जैसे बहते हुए दो काष्ठ लहरों से मिलजाते और मिलकर पृथक होजाते हैं,वैसेही प्राणियोंका समागम हैं ।५२। वह जीव देहको देखता हैं,परन्तु देह जीवको सही देख सकता इस जीव और देह दोनोंको कोई अन्य देखता है परन्तु वह उसे नहीं देख सकते ।५३। ब्रह्मा से स्थावर तक सबकी संज्ञा पशु है और यह दृष्टांत पशुओं के लिए ही कहा हैं ।५४। यह पाशोंसे बधता और सुखदु:खभोगता है,इसीलिए पशु कहा गया हैं विद्वानोंका कहनाहै कि यह ईश्वरके विलास का साधन है ।५५। यह जीव अज्ञानी,अनीश और सुख दु:खकीभूमिहै तथा

प्रभु प्रेरणा से इसे स्वर्ग-नरककी प्राप्ति होती है ।५६। सूतजीने कहा-वायु के वचन सुनकर मुनि अत्यन्त प्रसन्न हुए और शिव-शास्त्र में प्रवीण वायु को प्रणाम कर कहने लगे ।५७।

शिव तत्व वर्णन

योऽयं पशुर ति प्रक्तो यश्च पाक्ष उदाहृतः ।
आभ्यां विलक्षणः काश्चत्कोऽमस्ति तयोःपति ।१
अति कश्चिदपर्यंतरमणोयगुणाश्रयः ।
पतिर्विश्वस्य निर्माता पशुपाशविमोचनः ।२
अभावे तस्य विश्वस्य सृष्टिरेषा कथं भवेत् ।
अचेतनत्वादज्ञानादनयोः पशुपादयोः ।३
प्रधानपरमाण्वादि यावत्किंचिचेतनम् ।
तत्कर्तृकस्वय दृष्टि बुद्धिमत्कारणं बिना ।४
जगच्च कर्तृ सापेक्ष कार्य सावयव यतः ।
तस्मात्क र्यस्य कर्तृत्व पत्युर्न पशुपाशयोः ।५
पशो पि च कर्तृत्वं पत्युः प्रेरणापूर्वकम् ।
अयथाकरणज्ञानमंधस्य गमनं यथा ।६
आत्मनं च पृणङ् मत्वाप्रेरितारं ततः पृथक ।
असौ जुश्ततस्तेन ह्यमृतवया कल्पते ।७

मुनियोंने कहा—आपने जो पशु तथा पाश कहा है, इनसे विलक्षण इनका स्वामी कौन है ! ।१। वायु ने कहा एक अनन्त रमणीय गुणों का आश्रम जगदीश्वर तथा पशु की पास जुड़ाने वाला हीस्वामी है ।२। उसके बिना यह सृष्टि कैसे होसकती है,पशु और पाशके अचेतनतथा ज्ञान रहित होने से ।३। प्रधान परमाणु आदिजो अचेतन हैं, उसका स्वयं कतृत्व चेतन सम्बन्धरूप बीज के बिना किसीनेभी नहीं देखा ।४। यह विश्व कर्मसातेक्ष हैं, कर्ताकेबिना नहीं होता कार्य अवयव रूपहै तथा अवयवयुक्तक यंत्व के कारण घटके समान है,इसलिए कार्यका कर्तृपन ईश्वर में है,पशु पाशजीव तथा कर्ममेंनहीं हैं ।५। ईश्वरकी प्रेरणा से जीवमें भी कर्त्तापन प्रतीतहोता

ह,परन्तु वह कर्तृत्व यथार्थ नहीं होता। जैसे अंधा स्वयं नहीं चलासकता दूसरे के सहारेचलता हैं वैसे ही जीव का कर्तृत्व समझो।६। अपने आत्मा और प्रेरकको पृथक मानकर आत्म उपासना के द्वारा ईश्वर की कृपा पाकर अमृत हो जाता हैं।७।

पशोः पाशस्य पत्युश्च तत्त्वतोऽस्ति पद परम्।
ब्रह्मवित्तद्विदित्वैव योनिमुक्ता भविष्यति।८
सयुक्तमेतद्द्वितय क्षरनमक्षरमेव च।
व्यक्ताव्यक्तं बिभर्तीशो विश्व विश्वमोचकः।९
भोक्ता भोग्यं प्रेरिय‌ता मतव्यं त्रिविध स्मृतम्।
नातः परं विजानद्भिर्वेदितव्य हि किञ्चन।१०
तिलेषु वा यथा तैल दध्नि वा सर्पिरर्पितम्।
यतापः स्रोतसि व्याप्ता यथारण्यां हुताशनः।११
एवमेव महात्मानमात्मन्यात्मलिक्षणम्।
सत्येन तपसा चैव नित्ययुक्तोऽनुपश्यति।१२
य एको जालवानीश ईशानीभिः स्वशक्तिभिः।
सर्वाल्लोकानिमान् कृत्वा एक एव स ईशते।१३
एक एव सदा रुद्रो न द्वितीयोऽस्ति कश्चन।
ससृज्य विश्वभुवनं गोप्ता ते संचुकोच यः।१४

पशु,पाश और पति का जो तत्वपूर्वक अन्तर है, उसे जानकर ब्रह्मज्ञानी पुरुष योनिमुक्त होता है।८। क्षर अक्षर दोनों मिलकर व्यक्तअव्यक्त को धारण करते हैं और ईश्वर संसार के बंधन से मुक्त कराने वाले हैं।९। भोक्ता,भोग्य और प्रेरक यह तीनहैं जानने वालों को इनसे परेकिसी अन्य के जानने की आवश्यकता नहींहैं।१०। जैसे तिलो में तैल,दही में घी,स्त्रोत में जल,अरणिकी स्थिति है।११। वैसे ही अपने आत्मा में आत्मा विलक्षण रूप से स्थित है और वह सत्य तथा तपनिष्ठ होने से दिखाई देता है।१२। इन्द्रजाल के समान मायासेयुक्त ईश्वरवशीभूत करने वाली अपनी शक्तियोंसे इन सबको वश करके एक ही स्थित है।१३। वह रुद्र एक ही हैं,दूसरो कोई नहीं,वही सृष्टि की रचना करके रक्षा और सहार करते हैं।१४।

विश्वतश्चक्षु रेवायमुतायं विश्वतोमुखः ।
तथैव विश्वतोबाहुर्विश्वयः पात्रसयुतः ।१५
द्यावभूमि च जनयन् देव एको महेश्वरः ।
स एव सर्वदेवानां प्रभवश्चोद्भवस्तथा ।१६
हिरण्यगर्भ देवानां प्रथमं जनयेदयम् ।
विश्वस्मादधिको रुद्रो महर्षिरिति हि श्रुतिः ।१७
वेदाहमेतं पुरुष महानममृतं ध्रुवम् ।
आदित्यवर्ण तमाः परस्तात्सतस्थितं प्रभुम् ।१८
अस्मान्नास्ति पर किंचिदपरं परमात्मनः ।
नाणीयोऽस्ति न च ज्यायस्तेन पूर्णमिद जगत् ।१९
सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगहाशयः ।
सर्वव्यापी च भगवांस्तस्मात्सर्वतः शिवः ।२०
सर्वतः पाणिपादोऽयं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः ।
सवतः श्रुतिमाल्लोके सर्वमावृत्व तिष्ठति ।२१

सब जगत् इसके नेत्र तथा मुख हैं जगत् के भुजा और चरण ही, विराट् पुरुष के भुजा और चरण है ।१५। वह एकही देवता स्वर्ग और पृथ्वी का उत्पन्न करने वाला है सब देवताओं को वही उत्पन्न करता तथा पालन भी करता है ।१६। जो प्रथम ब्रह्मा को उत्पन्न करता हैं, वही जगदोत्पादक रुद्र है, श्रुतियां यही कहती हैं ।१७। जिसका आदित्य के समान तेजोमय वर्ण हैं, को अकन्धकार से परे है, उस अमृत स्वरूप अचल पुरुष को मैं जानता हूँ ।१८। इस परमेश्वर से परे अन्य कुछ नहीं है इससे सूक्ष्म अथवा स्थूल भी कोई नहीं इसने सम्पूर्ण विश्व को परिपूर्ण किया हुआ है ।१९। वह एक वृक्ष के समान अचल हुआ स्वर्ग में स्थित है, उसके संकल्प से ही यह चराचर विश्व प्रकट होता है, सबके मुख, शिर, कंठ आदि उसीके अङ्ग हैं, वह सब प्राणियों के हृदय में स्थित, सर्वव्यापी होने से सर्वगत एवं शिव कहा जाता है ।२०। इन्हीं के साथ चरण, नेत्र, शिर, मुख सब ओर हैं इन्हीं के श्रोतृ सब ओर हैं, यह सब को ढक कर स्थित हैं ।२१ ।

सर्वेन्द्रियगुणाभासः सर्वेन्द्रियविवर्जितः ।
सर्वस्य प्रभुरीशानः सर्वस्य शरण सुहृत् ।२२
अचक्षुरपि यः पश्यत्यकर्णोऽपि शृणोति यः ।
सर्वं वेत्ति न वेत्ताऽस्य तमाहुः पुरुष परम् ।२३
अणोरणीयान्महतो महीयानयमव्ययः ।
गुहायां निहितश्चापिजतोरस्य महेश्वरः ।२४
तमक्रतुं क्रतुप्राय महिमातिशयान्वितम् ।
धातुः प्रसादादीशान वीतशोकः प्रपश्यति ।२५
वेदाहमेनमजरं पुराण सर्वग विभुम् ।
निरोध जन्मनो यस्यवदति ब्रह्मवादिनः ।२६
एकोऽपि त्रानिमांल्लोकान् बहुधाशक्तियोगत ।
विदधाति विचेत्यते विश्वमादौ चित्राकृतिः परा ।२७
विश्वधात्रीत्यजाख्या च शैवी चित्राकृति परा ।
मामजां लोहितां शुक्लां कृष्णमेकां त्वजः प्रजाम् ।२८

सम्पूर्ण इन्द्रिय और गुणों के अभ्यासरूप इन्द्रियों से रहित सर्वेश्वर तथा सभीके शरणदाता और मित्र हैं ।२२। बिना नेत्र ही जो देखते बिना कान सुनते जो सबको जानने वालेपरन्तुउन्हें जानने वाला कोई नहीं वही शिव पुराण-पुरुषकहे जातेहैं ।२३। वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म और महान्से भी महान् हैं यही अविनाशी,महेश्वर इस जीव के हृदयाकाश में स्थित हैं ।१४। उस क्रतुहीन,यज्ञ स्वरूप महान्महिमा सम्पन्नहेशान देवकी, उसी परमात्मा की प्रसन्नता से शोकरहित देखते हैं ।२५। इस सर्वव्यापी परमेश्वर को वेद जराहीन,पुराण पुरुष तथा सर्वगामी कहते हैं ब्रह्मवादियो के अनुसार इसी परमेश्बर शिव के ध्यान से जन्म-मरण रुक जाता है ।२६। वह एक ही ईश्वर अपनी शक्ति से तीनों लोकों की रचना करके अन्त में उसका संहार कर देता है ।२७। विश्व को उत्पन्न करने वाली प्रकृति अजा है,वही शैवी है,वह रजोगुण वाली होने से लालवर्णकी,सत्वगुण वाली होने से श्वेत वर्ण की तथा तमोगुण वाली होने से काले वर्ण की है ।२८।

जवित्री-नुशेपऽन्यो-जुषमाण: स्वरूपिणीम् ।
तामेवाजामजोऽन्यस्तुभुक्तभोगां जहाति च ।२६
द्वौ सुवर्णौ च सयुजौ समान वृक्षमास्यितौ ।
एकोऽत्ति पिप्पल स्वादु परऽनश्तन् प्रपश्यति ।३०
वृक्षैऽस्मिन् पुरुषो मग्नो मुह्यमानश्च शोचात ।
दुष्टमन्य यदा पश्येदीश परमकारणम् ।३१
तदास्या महिम न च वोनशोक: सुखी भवेत् ।
छदांसि यज्ञा: क्रतवो यद्मुत भव्यमेव व ।३२
मायी विश्वं सृजत्य स्मन्निविष्ठो मायया पर: ।
मायां तु प्रकृति विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ।३३
तप्यास्त्ववयवैरेव व्याप्तं सवमिद जगत् ।
सूक्ष्मातिसूक्ष्ममीशनं कललायापि मध्यत: ।३४
स्त्रष्ठारमपि विश्वस्य वेष्टितारं च तस्य तु ।
शिवमेवेव्वर ज्ञात्वा शांतिमत्यतमृच्छति ।३५

यह अनेक प्रकार की प्रजा की उत्पति करने वाली है, जीव इसकी भोगता हुआ सोता है तथा वह अज इसे भोगकर त्याग देता है ।२६। दो सुपर्ण समानअवस्था के सखा हैं,देहरूपी वृक्षपर समान रूपसे स्थितहैं,उनमें से एक जीवहै जो वृक्ष के फल खाता अर्थात् कम फल भीगता हैं और दूसरा परमात्मा है जो देखता है ।३०। इस संसार रूपी वृक्ष पर यह पुरुष भोगों को भोगता हुआ मोहवश शोक करता है,परन्तु जब शुद्ध होकरध्यान करताहैतब परम कारण परमेश्वर के ज्ञान से।३१। अपनीपरमेश्वर रूपिणी मायाको देखकर शोक मुक्त होजाता है तब आनन्द प्राप्त होते हैं छन्द, यज्ञ,कर्मभूत,भविष्यत, वर्तमान जो हैं ।३२। इस माया को प्राप्त होकर वह माया का निर्माण करता हैं,क्योंकि माया प्रकृति से और मायापति पमेश्वर है ।३३। इन्हीं के अवयवोंसे सम्पूर्ण विश्वव्याप्त हैं, सूक्ष्माति सूक्ष्म ईशान देव को गर्भ के मध्यमे ।३४। सम्पूर्ण विश्व का निर्माता और सचेष्ठ करने वाला शिव ही हैं ऐसा जानकर मनुष्य शान्ति को पाता है ।३५।

स एवं कालो गोप्ता च विश्वस्याधिपतिः प्रभुः ।
तं विश्वाधिपतिं ज्ञात्वा मृत्युपाशात्प्रमुच्यते ।३६
घृतात्परं मंडमिव सुक्ष्मं ज्ञात्वा स्थितं प्रभुम् ।
सर्वभूतेषु गूढ च सर्वपापैः प्रमुच्यते ।३७
एष क्वं परो देवो विश्वकर्मा महेश्वरः ।
हृदये सनिविष्टं त ज्ञान्वैवामृतमश्नुते ।३८
यदा समस्यं न दिता न रात्रिर्नसदप्यसत् ।
केवलः शिव एवैको यतः प्रज्ञा पुरातनो । ३९
नैनमूर्ध्वं न तिर्यक्व न मध्यं पर्यजिग्रत् ।
न तस्य प्रतिमा चास्ति यस्य नाम महद्यशः ।४०
अजातमिममेवेके बुद्ध्वा जन्मनि भीरवः ।
रुद्रस्यास्य प्रपद्यन्ते रक्षार्थं दक्षिण मुखम् ।४१
द्वे यक्षरे ब्रह्मपरे त्वनते सभुदाहृते ।
विद्याविद्ये समाख्य ते निहिते यत्र गूढवत् ।४२

वही कायरूप है, उसी परमेश्वर को संसार का रक्षक तथा स्वामी जानकर मनुष्यकाल के पाश से मुक्त होता है ।३६। घृत के परमाणु के तुल्य शिव को सूक्ष्म जानकर तथा उसे सब प्राणियों के अन्तर में विद्य-मान समझकर मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता हैं ।३७। यह परदेव विश्वकर्मा शिव हैं,इनको हृवय में विद्यमान जानकर यह जीव अमृत्व को प्राप्त होता है ।३८। जब दिन रात्रि, सत् असत् कुछ भी नहीं था,तब एक मात्र शिव ही थे जिनसे सनातनी प्रज्ञा प्रकट होती हैं ।३९। इनको ऊँचे नीचे, तिरछे कोई भी नहीं पा सकता, उनके समान कोई नहीं है, जिनके नाम का अत्तन्त यश हैं ।४०। अनेक जन्मों से मयभीत मनुष्य इस परमे-श्वर को एक अजन्मा जानकर रक्षा के हेतु रुद्रों को प्राप्त होते है ।४१। रक्षा का उपाय कहा है कि ब्रह्मा में दो अक्षर ही हैं, जो अनन्त हैं, वे विद्या और अविद्या में स्थित रहकर गूढ़ हो गये हैं ।४२।

क्षर त्वविद्या ह्यमृतं विद्येति परिगीयते ।
ते उभे ईशते यस्तु सोऽन्यः खलु महेश्वरः ।४३

एकैक बहुधा जालं विकुर्वन्नेकवच्च यः ।
सर्वाधिपत्य कुरुते सृष्ट्वा सर्वानन् प्रतापवान् ।४४
दिश ऊर्ध्वमधस्तिर्यग्भासयन् भ्राजते स्वयं ।
यो निः स्वभावादप्येको वरेण्यस्त्वधितिष्ठति ।४५
स्वभाववाचकान्सर्वान्वाच्यांश्चप्ररिणामयन् ।
गुणांश्च भोग्यभोक्तृत्वे तद्विश्वमधितिष्ठति ।४६
ते वै गुह्योपनिषदि गूढ ब्रह्म परात्परम् ।
ब्रह्मयोनि जगत्पूर्वं विदुर्देवा महर्षयः ।४७
भावाग्राह्यमनोहाख्यं भावाभावकर शिवम् ।
कलासर्गकरं देव ये विदुस्ते जहुस्तनुम् । ४८
स्वभावमेके मन्यते कलामे के विमोहिता ।
देवस्य महिमा ह्येष येनेदं भ्राम्यते जगत् ।४९

अविद्या से संसार चक्र में पड़ता तथा विद्या से अमृतत्व को प्राप्त होता है,विद्या-अविद्या दोनों का अधीश्वर महेश्वर ।४३। एक ही परमात्मा है जो अनेक प्रपंचों की रचना करता तथा सबको उत्पन्न कर उन पर शासन करता है ।४४। ऊपर नीचे और सम्पूर्ण दिशाओं में सब पर आधिपत्य करके वही विराजमान हैं विश्व का कारण होने से वह एक ही सर्व श्रेष्ठ है ।४५। स्वभाव रूप शब्द और अर्थों का परिणाम न करके गुणों के भोग्यत्व और भोक्तृत्व में वह अधिष्ठित हैं ।४६। उस उपनिषद में गूढ़ परात्पर ब्रह्म तथा संसार का उत्पन्न करने वाला वह प्रथम देव ऋषियों ने जाता था ।४७। संसार का आश्रय तथा सृष्टि और संहार की कला वाला वह परमेश्वर प्रीति से जाना जाता हैं, उसे जो कोई मान लेता है,वह कि शरीर रूपी बन्धा कोपच्ल नही होता ।४८। उसे कोई स्वभाव कहते है, परन्तु जानता कोई नही, सभी मोहित हैं, उस जगत देव की महिमा ने इस संसार को भ्रमा रखा है ।४९ ।

येनेदमावृतं नित्यं कालकालात्मना यतः ।
तेनेरितमिद कर्म भूतै सह विवर्तते ।५०

तत्कर्म भूयशः कृत्वा विनिवृत्य च भूयशः ।
तत्वस्य सह तत्वेन योग चापि समेत्य वै ।५१
अष्टाभिश्च त्रिभिश्चैव द्वाभ्यां चैकेन वां पुन ।
कालेनात्मगुणैश्चापि कृत्स्नमेवजगत् स्वयम् ।५२
गुणैरारम्य कर्माणि स्वभावादीनि योजयेत् ।
तेषामभावे नाश स्यात्कृयस्यापि च कर्मणः ।५३
कर्मक्षये तुनश्चान्यत्तयो याति स तत्वतः ।
स एवादि स्वयं योगनीमित्त भोक्तृभोगयो ।५४
परस्त्रिकालादकलः स एव परमेश्वरः ।
सविर्वत् त्रिगुणाधीशो ब्रह्म साक्षात्पर.त्परः ।५५
तं विश्वरूपमभव भावनीय प्रजापतिम् ।
देवदेवं जगत्पज्यं स्वचिद्यस्यमुपास्महे ।५६

काल के भी काल, जिस परमेश्वर ने नित्य जगत् को आवृत किया हुआ हैं, उनके द्वारा प्रेरितकर्म भूतों के साथ प्रकाशित होते हैं ।५०। वह विभिन्नकर्मोंको करके फिरकलादि तत्व और सत्वगुणके आश्रितहोकर योग को प्राप्त होकर ।५१। आकाशादि आठ मूर्ति, सत्यावादि तीन गुण, विद्या अविद्या अथवा एककालया अपनेगुणों से इस सम्पूर्ण विश्वको ।५२। गुणानुसार कर्मोंका आरम्भ कर,स्वभाव प्राणियोंको प्रेरितकर कार्य करता है, उन कर्मोंके अभावमें किये हुए कर्मभी नष्ट हो जाते है ।५६। कर्मों के क्षीण होने से फिर जन्मनहीं होता,भोक्ता और भोग का यह आदि योग तुम्हारे प्रति कहा हैं ।५४। यहपरमेश्वर निर्गुण एवं सबका ज्ञाता है तीनों गुणोंका स्वामी,परेसे भी परे साक्षात् ब्रह्म है ।५५। जो उस विश्व रूप विश्वकर्ता प्रजापतियों के देव जगत्पूज्य शिवकी स्वस्थ चित्तसेउपासना करते हैं ।५६।

कालादिभिः परो यस्मात्प्रपंचः परिवर्तते ।
धर्मावरं पापनुद भोगेशं विश्वधाम च ।५७
तमीश्चराणां परम महेश्चर त देवतानां परमञ्च दैवतम् ।
पंति पतोनां परम परस्ताद्विदाम देवं भुवनेश्वरेश्वरम् ।५८

न तस्य विद्यते कार्यं कारणं च न विद्यते ।
न तत्समोऽधिकश्चापि क्वचिज्जगति दृश्यते ।५९
परास्य विविधा शक्ति श्रुतौ स्वाभाविकी श्रुता ।
ज्ञान बल क्रिया चैवे याभ्यो विश्वमिद कृतम् ।६०
न तस्यास्ति पतिः कश्चिन्नैव लिंग न चेशिता ।
कारणं कारणानां च स तेषामधिपाधिपः ।६१
न चास्य जनिता कश्चिन्न च जन्म कुतश्चन ।
न जन्म हेतवस्तद्वन्मलमायादिसंज्ञकाः ।६२
स एकः सवभूतेषु गूढा व्याप्तश्च विश्वतः ।
सर्वभूतांतरात्मा च धर्माध्यक्ष कथ्यते ।६३

कालादिसे भी परे जिस परमेश्वरसे यह प्रपंच प्रारम्भ होता हैं उस धर्मकर्मा,पापहारी ऐश्वर्यों के ईश्वर तथा संसार में व्यापक ।५७। ईश्वरों केभी ईश्वर देवादिदेव,स्वामियोंके स्वामी भुवनेश्वर महेश्वर देवका भजन करते है ।५८ उनसे अधिक अथवा इनके समान कोई नहीं हैं,उन्हें किसी कार्यऔरसाधनकी आवश्यकता नहीं है ।५६। उनकी पराशक्तिअनेक प्रकार कीसुनी गयी है उसमें ज्ञान,बल और क्रिया निहित है, उसी से यह सम्पूर्ण विश्व प्रकट हुआ है ।६०। उसका कोई स्वामी नही,कोई उसके साक्षात्रूप को भी नहीं कह सकता कार्य और कारणों का स्वामी है ।६१। उसका कोई उत्पन्नकर्तानहीं,उसका कभी जन्म नही हुआ और न उसके जन्म लेने का कोई कारण हीहै ।६२। वह एक ही सब प्राणियोंमें व्याप्त है, वह सब जीवों का अन्तरात्मा है तथा वही धर्माध्यक्ष कहा जाता है ।६३।

सर्वभूताधिवासश्च साक्षी चेता च निर्गुणः ।
एको वशी निष्क्रियाणां बहनां बिवशात्मनाम् ।६४
नित्यानामप्यसौ नित्यश्चेतनांता च चेतन ।
एको बहुनां चाकामः कामानीशः प्रपच्छति ।६५
सांख्ययोगाधिगम्यं यत्कारणं जगत पतिम् ।
ज्ञात्वा देव पशु पाशं सर्वेरेव विमुच्यते ।६६

विश्वकृद्विश्ववित्स्वात्मयोनिज्ञः कालकृन्गुणी ।
प्रधानः क्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः पाशमोचकः ।६७
ब्रह्माण विदधे पूर्वं वेदाश्चोपादिशत्स्वम् ।
यो देवस्तमहं बुद्ध्वा स्वात्मबुद्धिप्रसादन ।६८
मुमुक्षरस्मात्संसारात्प्रपद्ये शरण शिवम् ।
निष्फल निष्क्रिय शांत निरवद्य निरजनम् ।६९
अमृतस्य परं सेतुं दुग्धेधनमिधानिलम् ।
यदा चर्मवदाकाश वेष्टायिष्यंति मानवाः ।७०

वही सब प्राणियों में निवास करने वाला वही सबका साक्षी वही चेतना तथा निर्गुण है,वह अनेक ही असंक्य योगियो का वशी करने में समर्थ हैं ।६४। अथवा विवशात्मा निष्क्रिय पुरुषों को वश में करने वाला हैं, देहधारियों में समयनुसार प्रजोत्पत्ति के हेतु बीज उत्पन्न करने वाला हैं, उसे जो मुमुक्षुजन आत्मा में देखते हैं, उनको ही सदा सुख की प्राप्ति होती है, यह नित्यो का नित्य चेतना का चेतन कर्त्ता स्वयं कामना रहित रहकर दूसरों की काम्य फल देता हैं।६५। सांख्य योग के द्वारा जानने योग्य कारण रूप विश्व के ईश्वर शिव को इस प्रकार जान लेने पर प्राणी सभी कर्म-बन्धनों से मुक्त होता हैं ।६६। विश्व के कर्त्ता,विद्व के ज्ञाता, प्राणियों के कर्म बीज के ज्ञाता, काल के कर्त्ता, गुणी-प्रधान तथा प्राणियों के स्वामी गुणेश, कर्म बन्धन से मुक्त कराने वाले ।६७। उन शिव ने पहिले ब्रह्मा को बनाया और उसे वेदों का उपदेश किया, उस देवता को अपनी आत्म-बुद्धि और उसके प्रसाद से जानकर ।६८। मैं मोक्ष की कामना वाला इस जगत् से मुक्त होने के लिए शिवजी की शरण को प्राप्त होता हूँ । वह शिवजो कला तथा क्रिया से रहित शान्त तथा अनिद्य हैं ।६९। जो दुःख रूपी ईंधन को अग्नि हैं,उसके बिना दुःख निवृत्ति का कोई उपाय नही । जब मनुष्य अपने देह में चर्म के समान आकाश की लपेट लेगे ।७०

तदा शिवमपिज्ञाय दुःलस्यांतो भविष्यति ।
तपः प्रभावाद्देवस्य प्रसादाच्च महषयः ।७१

आत्म श्रमोचितज्ञानं पवित्रं पापनाशनम् ।७२
वेदांते परमं गुह्यं पुरा कल्पप्रचोदितम् ।
ब्रह्मणो वदनाल्लब्धं मयेद भाग्यगौरवात् ।७३

तब शिव के जाने बिना भले ही दुःख का अन्त संभव होता ।७१। तपके प्रभावसेतथा देव के प्रसादसे ऋषिगण सन्यासाश्रम के पवित्र और पाप नष्ट करने वाले ज्ञानको ।७२। जो वेदान्तमें परमगुह्य और पूर्व कल्प में कहे हुए हैं,यह मैंने अपने सौभाग्य के कारण ब्रह्मा के मुखसे ही सुना हैं ।७३।

।। शिव से काल स्वरूप शक्ति कथन ।।

कऽलदुत्पद्यते सर्वं कालादेव विपद्यते ।
न कालनिरपेक्ष हि क्वचित्किंचिद्धि विद्यते ।१
यद स्याँयगत विश्वं शश्वत्संसारमण्डलम् ।
सगसहृतिमुद्राभ्यां चक्रक्तपरिवर्तते ।२
ब्रह्मा हरिश्व रुद्रश्च तथाऽन्ये च सुरासुराः ।
यत्कृयां नियतिं प्राप्य प्रभवो नातिर्बातितुम् ।३
भूतभव्यभविष्याद्यैर्विभज्य जरयन् प्रजाः ।
अतिप्रभुरिति स्वैरं वर्ततेऽतिभयङ्करः ।४
क एष भगवान् कालः कस्य वा वशवर्त्ययम् ।
क एवास्य वशे न स्यात्कथयैतद्विचक्षण ।५
कालाकाष्ठानिमेषादिकलाकलित विग्रहम् ।
कालत्मेति समाख्यात तेजो माहेश्वरं परम् ।६
यदलध्यमशेषस्य स्थावरस्य च ।
नियोगरूपमीशस्य बल विश्वनियामकम ।७

मुनियों ने कहा—काल से ही वस्तु की उत्पत्ति और लय है, क्योंकि काम कभी निरपेक्ष नही रहता ।१। जब यह सम्पूर्ण जगत् लीन होजाता हैं, तब पुन; उत्पन्न होता हैं,वह उत्पत्ति और प्रलय चक्रके समान चलती ही रहती हैं।२। ब्रह्मा, विष्णु रुद्र तथा अन्य देवता,जिसके नियम का उल्लंघन करने में समर्थ नही हैं ।४। जो भूत,भविष्य,वर्तमान रूपसे कालका विभाग

करके प्रजाको जराग्रस्त करके यहकालस्वच्छ और भयंकर रूप से वर्तमान रहता है ।४। वह काल क्या हैं?किससे वशमें रहता हैं?इसके वश में कोन नहीं हो सकता ? यह सब हमारे प्रति कहिये ।५। वायु ने कहा-कला, काष्टा,निमेश और कलाओं कीं वृद्धियहकालका देहहैं,यही कयात्मा महेश्वर का तेज कहागया है ।६। जिसे कोईभी स्थावर जगमप्राणी उल्लघन नहीं कर सकता,वह ईश्वर का नियोगरूप जगत की रक्षा करने वाला हैं ।७।

पस्यांशमयी शक्तिः कालात्मनि महात्मनि ।
ततो निष्क्रम्य सकांता विसृष्टाग्नेरिवायसी ।८
तस्मात्कालवशे विश्वं न स विश्वशे स्थितः ।
शिवस्य त वशे कालो न तालस्त वशे शिवः ।९
यतोऽपतिहितं शार्वं तेज काले प्रतिष्ठितम् ।
महती तेन कालभ्य मर्यादा हि दुरत्यया ।१०
कालं प्रज्ञाविशेषेण कोऽशिर्वतितमर्हति ।
कालेन तु कृत कमं न कश्चिद तिवर्तते ।११
एकाच्छत्रां महीं कृत्स्नां य पराक्रम्य शासति ।
तेऽपि नैवातिधर्तन्ते कालबेलामिवब्धयः ।१२
ये निगृह्येन्द्रियग्राम जयति सकद्ध जगत् ।
न जयत्यपि ते कालो जय त तानपि ।१३
आयुर्वेदविदो वेद्यास्त्वनुष्ठितरसायनाः ।
न मृष्युमति वर्तन्ये काला हि दुरतिकम ! ।१४

उसकी अंशमयी शक्ति कालात्मारूप से प्रविष्ट होगई जैसे लोहे अग्नि प्रवेश करती हैं ।८। इसलिए कालके वशमें विश्व हैं, परन्तु काल के वश में नहीं केवल शिवजी के वश में वहकाल हैं, परन्तु शिवजी काल के वश में नहीं है ।९। जिस कारण शिव का तेज काल में निहित हैं, उस कारण महत् से परे काल की मर्यादा को कोई मिटा नहीं सकता ।१०। अत्यन्त बुद्धिमानी करके भी कोई काल को अन्यथाकरने में समर्थ नहीं हैं, क्योंकि कालके कर्म को कभी अन्यथानही किया जासकता हैं ।११।जोअपने

पराक्रम से इन पृथिवी को वश में करके एक छत्र शासन करता है, वह भी काल की मर्यादा का उल्लघन नहीं कर सकता ।१२। जो इन्द्रियों को वश में करके सम्पूर्ण जगत को जीत लेते हैं वे भी काल पर विजय नहीं प्राप्त कर सकते, किन्तु काल उन पर विजय प्राप्त कर लेता है ।१३। आयुर्वेद और रसायन के ज्ञाता वैद्य भी काल को मिटाने में समर्थ नहीं हैं, क्योंकि काल दुरतिक्रम है ।१४।

श्रिया रूपेण शीलेव बलेन च कुलेन च ।
अन्यच्चिंतयते जतुः कालोऽन्यत्कुरुते बलात् ॥१५
अप्रियैश्च प्रियैश्चैव ह्यचिंतितसमागमैः ।
सये जयति भूतानि वियोजयति चेश्वरः ॥१६
यदैव दुखितः कश्चित्तदैव सुखितः परः ।
दुर्विज्ञेयस्वभावस्य कालस्याहो विचित्रता ॥१७
यो युवा स भवेद्वृद्धो यो बलीयान्स दुर्बलः ।
यः श्रीमान्सोऽपि निःश्रीक कालश्चित्रगतिर्द्विजाः ।।१८
नाभिजात्यै न वै शील न च नैपुणम् ।
भवेत्कार्याय पर्याप्तं कालश्च ह्यनिरोधकः ॥१६
ये सनाथाश्च दातारो गीतवाद्यै रुपस्थितः ।
ये चानाथाः परान्नदाः कालस्तेषु समक्रिय ।२०
फलत्पकाले न रसायनानि सक्ष्मत्तान्यपि चोषधानि ।
तान्येव कालेन समाहृतानि सिद्धिप्रयांत्याशु सुखदिशति।।२१

लक्ष्मी, रूप, शील आदि से जीव कुछ और ही सोचता है । परन्तु काल का बल कुछ और ही करता है ।१५। अप्रिय प्रिय तथा अचिंतित वस्तुओं की प्राप्ति या अभाव तथा प्राणियों का सयोग या वियोग काल के ही कर्म हैं ।१६। जैसे कोई एक दुःखी होता है, वैसे ही कोई अन्य सुखी होता है, इस प्रकार कालका स्वभाव और गति जानने में कठिन है ।१७। युवा वृद्ध हो जाता है बली निर्बल होता है, लक्ष्मीपकि कंगाल हो जाता है इस प्रकार काल की गति विचित्र ही है ।१८। जाति शील,बल चतुराई

यह कार्य के लिए पूर्ण नहीं होती,इसका प्रतिरोधक कालही है ।१९अत्यन्त मनोहर गायन-वदन के शब्दों में स्थित धनिक तथा पराया अन्न खाकर जीने वाले अनाथ इनमें काल का व्यवहार समान ही है।२०।श्रेष्ठ औषधि या रसायन भी अकाल में फल-प्रद नहीं होते, परन्तु श्रेष्ठ काल में दी हुई साधारण औषधि भी शीघ्र ही सुख देने वाली हो जाती है ।२१।

नाकालतोऽयं म्रियते जायते वा नाकालतः पुष्टिमध्यामुपैति ।
नाकलतःसुखितंदुःखितं वा नाकालिक वस्तुसमस्तिकिंचित्२२

कालेन शीत प्रतिवाति वातः कालेन वृष्टिर्जजदोनुपैति ।
कालेन चोष्मा प्रशम प्रयाति कालेन सर्वं सफलत्वमेति ।।२३

कालश्च सर्वस्य भवस्य हेतु कालेन सस्याति भवति नित्यम् ।
कालेन सस्यानि लय प्रयांति कालेन संजीवति जीवलोकः२४

इत्थं कालात्मनस्तत्व यो विजानाति तत्वतः ।
कालात्मानमतिक्रम्य कालातीतं स पश्यति ।।२५

न यस्य कालो न च बंधमुक्ति न च पुमान्न प्रकृतिनविश्वम् ।
विचित्ररूपाय शिवाय तस्मै नमः परस्मै परमेश्वराय ।।२६

काल के बिना प्राणी का मरण, जन्म ग्रहण पुष्टि आदि संभव नहीं है । काल के बिना सुख-दुःख की प्राप्ति भी नहीं होती अकाल की कोई वस्तु समान नहीं होती।२२। काल से ही उष्णत समीर बहती है,काल से ही मेघ वर्षा करते हैं, काल से ही उष्णता शांत होती है तथा काल से ही सब कार्य सफल होते हैं ।२३। काल से ही सबकी उत्पत्तिका कारण है, काल से खेती होती और काल से ही नष्ट हो जाती है, काल से ही सब लोक जीवित हैं ।२३। इस प्रकार जो कालात्मक परमेश्वर के तत्व को जानता है, वह कलात्मक का अतिक्रम करता हुआ निर्गुण ब्रह्म को प्राप्त होता है ।२५। जिसे न काल का बन्धन है, न मुक्ति है, जो पुरुष प्रकृति और विश्वरूप तथा विचित्र रूप है, उस परमात्मा पुरुष शिव के लिये नमस्कार है ।२६।

।। शिव द्वारा क्रीड़ा के रूप में जगत का निर्माण ।।

केन मानेन कालेस्मिन्नायुः सख्या प्रकल्प्यते ।
संख्यारूपस्य कालस्य कः पुनः परमोऽवधि ।।१

आयुषोऽत्र नमेषाख्यमाद्यमानं प्रचक्षते ।
संख्यारूपस्य कालस्य शांत्यतीतकलावधिः ।।२

अक्षिपक्ष्मपरिक्षेपो निमेषः परिकल्पितः ।

तादृशानां निमेषाणां काष्ठा दश पच च ।।३
काष्ठास्त्रिक्षत्कला नाम कलास्त्रिशन्मुहूर्तकः ।
मुहूर्त्तानामपि त्रिशदहोरात्रं प्रचक्षते ।।५
त्रिशत्सख्यैरहोरात्रैर्मासः पक्षद्वयात्मकः ।।५
ज्ञेयं पित्र्यमहोरात्रं मासः कृष्णसितात्मकः ।।६
मासैस्तेरयन षड्भिर्वषद्वे चायने मतम् ।
लौकिकेनैव मानेन शब्दो यो मानुषः स्मृतः ।।७

ऋषियों ने कहा — इस काल में आयु की संख्या की कल्पना किस प्रमाण से की जाती ? संख्या रूप काल की परम अवधि क्या है ? ।१। वायु ने कहा—आयु का प्रथम मान निमेष है संख्यात्मक काल की सीमा शान्ति से परे है।२। जितने काल में पलक झपकता है, उसे निमेष कहतेहैं, पन्द्रह निमेष की एक काष्ठा मानी गयी है ।३। तीस काष्ठा की एक कला, तीस कला का एक मुहूर्त तथा तीस मुहूर्त का एक दिन-रात्रि होता है ।४। तीस दिन रात्रि अथवा दो पक्ष का एक मास होता है।५। एक मास की पितरों की एक दिन-रात्रि अर्थात् कृष्णपक्ष रात्रि और शुक्लपक्ष दिन होता है ।६। छः मास का एक अयन, दो अयन का एक वर्ष लौकिक मान के अनुसार मनुष्यों का वर्ष यही है ।७।

एतद्दिव्यमहोरात्रमिति शास्त्रस्य निश्चयः ।
दक्षिण चायने रात्रिस्तथाद्गयन दिनम् ।।८
मासस्त्रिशदहोरात्रैर्द्दिव्यो मानुषवत्स्मृतः ।
संवत्सरोऽपि देवानां मासैर्द्वादशभिस्तथा ।।९
त्रीत्रि वषशतान्येव षष्टिवषयुतान्यपि ।
दिव्यः संवत्सरो ज्ञेयो मानुषेण प्रकीर्तितः ।।१०

दिव्येनैव प्रमाणेन युगसंख्या प्रवर्तते ।
चत्वारि भारते वर्षे युगानि कवयो विदु ।।११
पूर्वं कृतयुगं नाम ततस्त्रेता विधीयते ।
द्वापरं च कलिश्चैव युगान्यैतानि कृतत्स्नशः ।।१२
चत्वारि तु सहस्त्राणि वर्षाणां तत्कृत युगम् ।
तस्य ताधच्छती संध्या संध्यांशश्चतथाविध ।।१३
इतरेषु ससध्येषु ससंधुणांशेषु च त्रिषु ।
एकोपायेन वर्तन्ते सहस्राणि शतानि च ।।१४

मनुष्य के एक वर्ष का देवताओं का एक दिन रात, इसमें दक्षिणायन रात्रि और उत्तरायण दिवस हैं, यही शास्त्र का निर्णय है ।८। मानवी तीस वर्षों का एक सुर मास, ऐसे बारह महीनों का देवताओं का एक वर्ष होता है।६।इसप्रकार मनुष्यों के तीन सौ आठ वर्षों का देवताओं का एक वर्ष होत है ।१०। उसी देव-वर्ष से युग संख्या होती है, विज्ञ-जनों ने चार युग कहे हैं ।११। सत्युग, त्रेता, द्वापर और कलियुग ।१२। इनमें चार हजार दिव्य वर्षो का सत्युग होता है, इनमें चार सौ वर्ष की सन्ध्या और इतने ही वर्षों की संध्याँश होती है युग के पहिले संध्या और पश्चात् संध्यांश मानी जाती है ।१३। अन्य युगोंमें वर्ष और संध्याके क्रम में एक एक पाद कम होता है, जैसे त्रेता तीन हजार वर्ष का, संध्या और सध्याँश तीन-तीन सौ वर्ष, द्वापर दो हजार वर्ष, सध्या और सध्यांश दो दो वर्ष ।१४।

एतद्द्वादशसाहस्रं साधिक च चतुर्युगम् ।
चतुर्युगसहस्रं यत्संकल्प इति कथ्यते ।।१५
चतुर्युगैकसप्तत्या मनोरंतरमुच्यते ।
कल्पे चतुर्दशैकस्मिन्ननूनां परिवृत्तयः ।।१६
एतेन क्रमयोगेन कल्पमन्वंतराणि च ।
सप्रजानि व्यतीतानि शतशोऽथ सहस्रशः ।।१७
अज्ञेयत्वाच्च सर्वेषाभसंख्येयतया पुनः ।
शक्यो नैवानुपुर्व्याद्वै तेषां वक्तुं सुविस्तरः ।।१८

कल्पो नाम दिवा प्रोक्तो ब्रह्मणोऽव्यक्तजलन्मनः ।
कल्पानां वै हहस्रं वर्षमिहोच्यते ॥१६
वर्षाणामष्टसांस्रह यच्च तद्ब्रह्मणो युगम् ।
सवन युगस हस्रं ब्राह्म पद्मजन्मनः ॥२०

इस प्रकार संख्या और संध्यांश के सहित बारह हजार वर्ष की एक चतुर्युगी होती है तथाएक हजार चतुर्युगियों का एक कल्प होता है ।१५। इकहत्तर चतुर्युगियों का एक मन्वन्तर होता है तथा एक कल्प में चौदह मनु होते हैं।१६।इस योग से सहस्रों कल्प और मन्वन्तर व्यतीत हो चुके हैं ।१७। उन्हें न कोई जान सकता है, न उनकी संख्या गिन सकता है तथा न कोई क्रम पूर्वक विस्तार ही कर सकता है ।१८। अव्यक्तसे उत्पन्न होने वाले ब्रह्माजी का एक दिन उसी एक कल्प का होता है तथा एक हजार कल्प का एक ब्रह्म वर्ष होता है ।१६। इस प्रकार के आठ हजार वर्षों का एक ब्रह्म-युग होता है, ब्रह्मा के एक हजार युग का एक सवन होता है ।२०।

सवनानां सहस्रे च त्रिगुणं तथा ।
कल्पयते सकलः कालो ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥२१
तस्य वै दिवसे यांति चतुर्दश पुरदराः ।
शतानि मासे चत्वारि विंशत्या सहितानिच ॥२२
शब्दे पच सहस्राणि चत्वारिशद्यु तानि च ।
चत्वारिंशतसहस्राणि पंच लक्षाणि चायुषि ॥२३
ब्रह्मा विष्णोर्दिनै चक्रो विष्णु रुद्रदिने तथा ।
ईश्वरस्य दिने रुद्रः सदाख्लस्य तथेश्वरः ॥२४
साक्षाच्छिवस्य तत्सख्यस्तथा सोऽपि सदाशिवः ।
चत्वारिंशत्सहस्राणि पचलक्षाणि चायुषि ॥२५
तस्मिन्साक्षाच्चिवेनैष कालात्मा सम्प्रवर्तते ।
यत्तत्सृष्टेः सयाख्यात कालान्तरमिह द्विजाः ॥२६
एतत्कालान्तरं ज्ञेयमहर्वे परमेश्वरम् ।
रात्रिश्च तावती ज्ञेया पारमेश्य कृस्तनश ॥२७

अहस्तस्य तु या सृष्टि रात्रिश्च प्रलयः स्मृतः।
अहर्न विद्यते तस्य न रात्रिरिति धारयेत् ॥२८

एक हजार सवन को तिगुने करने पर परमेष्ठी ब्रह्मा की आयु पूर्ण होती है, ब्रह्मा के एक दिवस में चौदह अथवा एक महीने में चारसौ बीस इन्द्र हो जाते हैं।२१-२२। एक वर्षमें पाँच हजार चालीस इन्द्र होते हैं, ब्रह्मा की पूरी आयु में पाँच लाख चालीस हजार इन्द्र हो ज ते हैं।२३। ब्रह्मा विष्णु के एक दिन पर्यन्त रहते हैं तथा विष्णु की स्थिति रुद्र के एक दिन पर्यन्त है ईश्वर के एक दिन तक रुद्र स्थित रहता है, उसी को सत् कहते हैं।२४। शिवजी कृत काल की संख्या यही है, सत् नाम वाले शिव वही हैं, इनकी अवस्था में पाँच लाख चालीस हजार रुद्रादि होते हैं।२५। परन्तु साक्षात् शिव में काल की प्रवृत्ति नहीं होती। सृष्टि का जो यह कालान्तर कहा है, इतना काल उस ईश्वर का एक दिवस है, तथा इतनी ही उसकी रात्रि समझनी चाहिये।२६। दिन में सृष्टि तथा रात्रि में प्रलय होती है, परन्तु परमेश्वर के लिए दिन रात कुछ भी नहीं है।२७-२८।

एषोऽपचारः क्रियते लोकानां हितकाम्यया।
प्रजाः प्रजानां पतयो मूत्त यश्च सुरासुरा ॥२९
इद्रियाणान्द्रियार्थाश्च महाभूतानि पच च।
तन्मात्राण्यथ भूतादिर्बुद्धिश्च सह वदैतैः ॥३०
अहस्तिष्टंति सर्वाणि परमेशस्य धीमतः।
अहरते प्रलीयन्ते रात्र्यन्ते विश्वसंभवः ॥३१

लोक हित की दृष्टि से यह व्यवहार किया जाता है, प्रजा प्रजापति मूर्ति, सुर, असुर,। इन्द्रिय इन्द्रियों के विषय, पंचमहाभूत, तन्मात्रा, बुद्धि आदि इन्द्रिय तथा उनके देवता। यह सभी उस परमेश्वरके दिनमें स्थित होते और दिन की समाप्ति पर लीन हो जाते हैं।२६। काल, कर्म स्वभाव में उस विश्वात्मा की शक्ति का उल्लंघन कभी कोई नहीं कर सकता जिसकी आज्ञा के वश में यह सम्पूर्ण विश्व रहता है, उस महादेव शिव को नमस्कार है।३१।

।। शिव-क्रीड़ा द्वारा सृष्टि की उत्पत्ति विषयक प्रश्न ।।

कथं जगदिद कृत्स्नं विधाय च निधाय च ।
आज्ञया परमां क्रीड़ा करोति परमेश्वरः ।।१
किं तत्प्रथमसभूतं केनेदमखिलं ततम् ।
केन वा पुनरेवेदं ग्रस्यते पृथुकुक्षिणा ।।२
शक्तिः प्रथमसम्भूता शात्यतीतपदोत्तरा ।
ततो माया ततोव्यक्त शिवाच्छक्तिमत प्रभो ।।३
शान्त्यतीतपद शक्ते स्ततः शान्त्यतीपदं क्रमात् ।
ततो विद्यापदं तस्मात्प्रतिष्ठापदसम्भवः ।।४
निवृत्तिपदसमुत्पन्नं प्रतिष्ठापदतः क्रमात् ।
एवमुक्ता समासेन सृष्टिरीश्वरचोदिता ।।५
आमुलोम्यात्तथैतेषां प्रतिलोम्येन संहृतिः ।
अस्मात्पञ्चपदोद्दिष्टात्परः स्रष्ठा समिष्यते ।।६
कलभिः पंचभिर्व्याप्तं तस्माद्विश्वमिदजगत् ।
अव्यक्तं कारणं यत्तदतमना समनष्ठितम् ।।७
महदादिविशेषातं सृजतीत्यपि संगतम् ।
किंतु तत्रापि कर्तृत्वं नाव्क्तस्त न चात्मन ।।८

ऋषियों ने कहा—इस विश्व को भगवान् शिव किस प्रकार निर्माण तथा स्थित करके अपनी शक्ति के सहित कि प्रकार क्रीड़ा करते हैं ? ।१। यह विश्व प्रथम किस प्रकार उत्पन्न हुआ, किसने विस्तार को प्राप्त हुआ तथा अन्त में यह किसकी महाकोख में प्रविष्ट हो जाता है ? ।२। वायु ने कहा—पहिले शान्स्यतीन शक्ति प्रकट हुई, फिर भगवान् शिव की माया के द्वारा अव्यक्त प्रकृति की उत्पत्ति हुई ।३। प्रथम उत्पन्न शक्ति से शान्त्यतीत पद है, फिर शान्तिपद फिर विद्यापद तथा प्रतिष्ठापद हुआ ।४। प्रतिष्ठापद के पश्चात् निवृत्ति पद है, ईश्वर की प्रेरणा से हुई सृष्टि का संक्षिप्त वर्णन है ।५। जिस क्रम से इनकी उत्पत्ति होती है,

उसके प्रतिलोम से ही संहार होता है, न पाँच पदों का उपदेश सृष्टि के अन्तर की अपेक्षा नहीं करता।६। यह विश्व जिस कारण से पांच कलाओं से व्याप्त है, इसमें जो अव्यक्त कारण है, वह आत्मा में अधिष्ठित है, महत् से विशेष पर्यन्त उत्पत्ति होती है, परन्तु उसमें अव्यक्त और प्राणी का कर्त्तव्य नहीं है।७-८।

अचतनत्वाप्रकृतेरज्ञत्वात्पुरुषस्य च ।
प्रधानपरमाण्वादि यावत्किञ्चिदचेतनम् ॥३
तत्कर्तृक स्वव दृष्ठं बुद्धिमत्कारण बिना ।
जगच्च कर्तृसापेक्ष कार्य सावयव यतः ॥१०
तस्माच्छक्त स्वतन्त्रो यः सर्वशक्तिश्च सर्व वत् ।
अनादिनिधनश्चार्य महादेश्वर्य संयुत ॥११
स एव जगत कर्त्ता महादेवा महेश्वरः ।
पाता हर्त्ता च सर्वस्य ततः पृथगनन्वया ॥१२
परिणामा प्रधानस्य प्रवृत्ति पुरुषस्य च ।
सर्व सत्यव्रतस्यैव शाससेन प्रवर्तते ॥१३
इतीयं शास्वती निष्ठा सतां मतसि तर्तते ।
न चैनं पक्षमाश्रित्य वर्तते स्वल्पचेतनः ॥१४

प्रकृति के जड़ होने और जीव के अज्ञानी होने से प्रधान परमाणु आदि जो कुछ भी अचैतन्य हैं ९।उसका कर्त्तापन विद्वानों ने बिना कारण के ही स्वय देखा है, यह संसार कर्तृसापेक्ष है, क्योंकि कार्य सावयव है।१०। इस कारण जो सर्व स्वतन्त्र, समर्थ, सशक्त और सबका ज्ञाता है, वह अनावि अनन्त तथा सदैव ऐश्वर्यशाली है।१२। वही संसार का कर्त्ता महादेव महेश्वर है, वही सबका पालन-कर्त्ता, सहार-कर्ता तथा प्रथक है।१२। वही महदादि का परिणाम कर्त्ता है तथा सर्ववृत्त के शासन से इस सबकी प्रवृत्ति है।१३।सत्पुरुषों का हार्दिक निश्चय यही है,अल्पबुद्धि वाला उस पक्ष को ग्रहण करने में कभी समर्थ नहीं होता।१४।

यावददादिसमारभो तावद्यः प्रलयो महान् ।
तावदष्येति सकल ब्रह्मणः शरदा शतम् ॥१५

परमित्यायुषो नाम ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
तत्पराख्यं तदर्द्धं च परार्द्धमभिधीयये ॥१६

पर र्द्धद्वयकालांते ब्रलये समुपस्थिते ।
अव्यक्तमात्मनः कार्यमादायात्मनि तिष्ठति ॥१७
आत्मन्यवस्थितेऽव्यक्ते विकारे प्रातिसहृते ।
साधर्म्येणधितिष्ठेते प्रधानपुरुषावभौ ॥१८
तमःसत्वगुणाचेतौ समत्वेन व्यवस्थितौ ।
अनुद्रिक्तवनन्तौ तावोतप्रोतौ परस्मरम् ॥१६
गुणसाम्ये तदा तस्मिन्नविभागे तमोदये ।
शांतवातैकमीरे च न प्राज्ञायत किञ्चन ॥२०

जब तक कार्यारम्भ हो और जब तक प्रलयकाल उपस्थित हो, तब तक ब्रह्मा के सौ वर्ष व्यतीत हो जाते हैं।१५। अव्यक्त जन्मा ब्रह्माकी आय का यही क्रम है। उसकी आयु के प्रथम अर्ध भाग को परार्द्ध कहते है। ६। जब दो परार्द्ध व्यतीत हो जाते हैं, तब ब्रह्मा की आयु समाप्त हो जाती है,तब अव्यक्तात्मा को लेकर आत्मा से स्थित हो जाता है।१७। यह सपूर्ण शिव आत्मा में स्थित होकर विकारयुक्त संहृत होता है, उस समय यह प्रधान और पुरुष साधर्म से युक्त होते हैं।१७। तमोगुण और सत्वगुण समान रूप से स्थित होते हैं, सब ओर से परस्पर पिरोये हुए के समान रहते हैं।१६। गुणोंकी समानता से तपोमय होने के कारण इनका विभाग संभव नहीं। उस समय यह वायु के द्वारा शान्त होकर निश्चल जल के समान जानने में नहीं आते।२०।

अप्रज्ञाते जगत्यस्मिन् लक एव महेश्वरः ।
उपास्य रजनीं कृत्स्नां परां माहेश्वरीं ततः ॥२१
प्रभातायां तु शर्वर्या प्रधानपुरुषावुभौ ।
प्रविश्य क्षोभयामास मायायोमान्महेश्वरः ॥२२
ततः पुनरशेषाणां भूतानां प्रभवाप्ययात् ।
अव्यक्तादभवत्सृष्टिराज्ञया परमेष्ठिनः ॥२३

विश्वात्तरोत्तरविचित्रमनोरथस्य यस्यैकशक्तिमले सकलः समाप्त।
आत्मानमध्वपतिमध्वविदोवदतितस्मैनमःसकललोकविलक्षणाय।२४

उस विश्व की अप्रज्ञात दशा में उस माहेश्वरी रात्रि में वह एक ही महेश्वर स्थित रहते हैं।२१। रात्रि के बीतने पर प्रधान और पुरुष दोनों के भीतर वह परमेश्वर योग बल से प्रविष्ट होकर उन्हें, सुशोभित करते हैं।२२। फिर सम्पूर्ण भूतों की सृष्टि के निमित्त परमेष्ठी की आज्ञा से उस अव्यक्त के द्वारा सृष्टि होती है।२३। जिस परमेश्वर की माया के एकी खण्ड से ही उत्तरोत्तर श्रेष्ठ सृष्टि अद्भुत मनोरथों सहित समाप्त होता है, उस परमेश्वर को अध्वपति कहा जाता है। सब प्राणियों से विलक्षण उन परमेश्वर को नमस्कार है।२४।

॥ समस्त ब्रह्माण्ड का स्वरूप वर्णन ॥

पुरुषाधिष्ठितात्पूर्वमव्यक्ताद्धीश्वराज्ञया।
बुद्धयाययो विशेषांता विकारश्चाभवन् क्रमात् ॥१
शतस्तेभ्योविकारेभ्यो रुद्रो विष्णुः पितामहः।
कारात्वेन सर्वेषां त्रयो देवाः प्रजज्ञिरे ॥२
सर्वतोभुवनव्याप्ति शक्तितव्याहतां क्वचित्।
ज्ञानमप्रतिमं शश्वदैश्वर्यं चाणिमादिकम् ॥३
सृष्टिस्थितिलयाख्येषु कर्मषु त्रिषु हेतुताम्।
प्रभुत्वेन सहेतेषां प्रसादति महेश्वरः ॥४
कल्पान्तते पुनस्तेषामस्पार्द्धाबुद्धिमोहिनाम्।
सर्गरक्षालायाचार प्रत्येक प्रददौ च सः ॥५
एते परस्परोत्पन्ना धारयन्ति परस्परम्।
परस्परेण वर्द्धन्ते परस्परमव्रताः ॥६
क्वचिद्ब्रह्मा क्वचिद्विष्णुः क्वचिद्रुद्रः प्रशस्यते।
नानेन तेषामाधिक्यमैश्वर्यं चातिरिच्यते ॥७

वायु ने कहा—ईश्वराज्ञा से पुरुष से अधिष्ठित अव्यक्त बुद्धि को लेकर विशेष तक क्रमपूर्वक पहिले विकारोंकी उत्पत्ति हुई।१।उन विकारों

से रुद्र, विष्णु, ब्रह्मा यह तीन जगत् के कारण रूप देवता उत्पन्न हुए ।२। उनकी कहीं भी अवरुद्ध न होने वाली शक्ति हुई उनका अप्रतिहत ज्ञान अणमादि सिद्धियों के सहित हुआ ।३। इन तीनों के कर्म, उत्पत्ति, पालन और संहार हुए । इन रुद्रादि के प्रभुत्व से भगवान् शिव प्रसन्न होते हैं ।४। परमेश्वर ने कल्पान्तरों में बुद्धि और मोह की अस्पर्धा को उत्पत्ति, रक्षा और संहार के हेतु प्रदान किया ।५। यह परस्पर उत्पन्न होकर परस्पर ही सशक्त होते है तथा परस्पर ही स्थित होते हुए अपनी अपनी शक्ति की परस्पर वृद्धि करते हैं ।६। कहीं ब्रह्मा की प्रशंसा होती है कहीं विष्णु की और कहीं रुद्र की इससे उनके ऐश्वर्य में कहीं आधिक्य अथवा न्यूनता नहीं आती ।७।

मूर्खा निन्दन्ति तान्वाग्भिः संरभाभिनिवेशिनः ।
यातुधाना भवंत्येव पिशाचाश्च न संशये ।।८
देवो गुणत्रयातीतश्चतुर्व्यूहो महेश्वरः ।
सकलः सकलाधाः रशक्तेरुत्पत्तिकारणम् ।।९
सोऽमात्मा त्रयस्यास्य प्रकृतेः पुरुषस्य च ।
लीलाकृत लगत्सृष्टिरीश्वरत्वे व्यवस्थितः ।।१०
यः सर्वस्तात्परो नित्यो निष्कलः परमेश्वरः ।
स एव च तदाधारस्तदात्मा तदधिष्ठितः ।।११
तस्मान्महेश्वरश्चैव प्रकृतिः पुरुषस्था ।
सदाशिवो भवो विष्णुब्रह्माणा सर्वं शिवात्मकम् ।।१२
प्रधानात्प्रथमं जज्ञे वृद्धि ख्यातिर्महान् ।
महत्तत्वस्य सक्षाभादहकारस्त्रिधाऽभवत् ।।१३
अहंकारश्च भूतानि तन्मात्राणींद्रियाणि च ।
वैका रकादहकारात्सत्वोद्रिक्तात्त सात्विक ।।१४

तथा जो अल्प-ज्ञानी 'यह पर है, यह न्यून है अथवा यह श्रेष्ठ है'—ऐसा कहते हैं, वे अवश्य ही राक्षस या पिशाच बनते हैं ।८। वह ब्रह्म काल, विष्णु, पुरुष आदि रूप वाले महेश्वर चतुर्व्यूह रूप त्रिगुणातीत है तथा वह सब के आधार रूप शक्ति के उत्पन्न-कर्त्ता हैं ।९। इस प्रकार

इन ब्रह्मादि त्रिवेदों का तथा प्रकृति का आत्मा वही है तथा संसार की रचना करके अपने ही ऐश्वर्य में स्थित हो रहा है।१०। जो परमेश्वर सब से परे, कला-रहित हैं, वही सर्वाधार, सर्वात्मा तथा सब में अधिष्ठित है ।११। इस कारण महेश्वर प्रकृति पुरुष, शिव, विष्णु, ब्रह्मा आदि सभी शिवात्मा हैं ।१२। प्रधान से पूर्व बुद्धि, ख्याति और मति की उत्पत्ति हुई तथा महत्तत्व के क्षोभ से तीन प्रकार का अहंकार उत्पन्न हुआ।१३। अहंकार से पंचभूत और तन्मात्रा हुईं, तथा उस अहंकार के विकारी होने के कारण सत्वगुण से सत्व हुआ ।१४।

वैकारिकः स सर्गस्तु युगपत्संप्रवर्तते ।
बुद्धीन्द्रियाणि पचैव पचकर्मेन्द्रियाणि च ॥१५
एकादश मनस्तत्र स्वगुणेनोभयात्मकम् ।
तमयुक्तादहकाराद्भूततन्मात्रसंभवः ॥१६
भूतानामादिभूतत्वाद्भूतादिः कथ्यते तु सः ।
भूतादेः शब्दमात्रं स्यात्तत्र चाकाशसभवः ॥१७
आकाशात्स्पर्श उत्पन्नः स्पर्शाद्वायुद्‌भवः ।
वायो रूप ततस्तेजस्तेजसो रसंसभवः ॥१८
रसादापः समुत्पन्नास्ताभ्यो गन्धसमुद्भवः ।
गन्धाच्च पृथिवी जाता भूतेभ्योऽन्यच्चराचरम् ॥१९
पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च अव्यक्तानुग्रहेण च ।
महदादिविशेषान्ता ह्यण्डमुत्पादयन्ति ते ॥२०
तत्र कार्यं च करण संसिद्धं ब्रह्मणो यदा ।
तदंडे सुप्रपृद्धोऽभूत क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसज्ञित ॥२१

वह वैकारिक सर्ग समान ही प्रवृत्त होता है बुद्धि आदि पंच ज्ञानेन्द्रिय तथा पंच कर्मेन्द्रिय।१५। और ग्यारहवाँ मन, सत्व-रज युक्त होने से उभयात्मक हुआ। तमोयुक्त अहङ्कार से भूतादि तन्मात्रा उत्पन्न हुई ।१६। आदिभूत होने से उसे भूतों की आदि कहते है, भूतादि अहङ्कार से शब्दमात्रा होती है तथा उससे आकाश की उत्पत्ति कही है।१७।आकाशसे स्पर्श, स्पर्श से वायु,वायु से रूप, रूप से तेज तथा तेज से रस हुआ ।१८।

रस से जल की उत्पत्ति हुई, जल से गंध और गंध से पृथिवी हुई तथा इन्हीं पंच-महाभूतों से यह सम्पूर्ण चराचर सृष्टि हुई ।१९।पुरुषके अधिष्ठान तथा अव्यक्त के अनुग्रह से, महत् से विशेष तक यह सब अण्ड को उत्पन्न करते हैं ।२०। जब ब्रह्म के कार्य कारण की सिद्धि हुई, तब इस काण्ड में ब्रह्मा संज्ञा वाले क्षेत्र की वृद्धि हुई ।२१।

स वै शरीरी प्रथमः स वै पुरुष उच्यते ।
आदिकर्ता स भूतानां ब्रह्माग्रे समवर्तत ॥२२
तस्येश्वरस्य प्रतिमा ज्ञानवैराग्यलक्षणा ।
धर्मैश्वर्यकरी बुद्धिर्ब्राह्मी यज्ञेऽभिमानिनः ॥२३
अव्यक्ताज्जायते तस्य मनसा यद्यदीप्सितम् ।
वशीकृतत्वात्त्रैगुण्यात्सापेक्षत्वात्स्वभावतः ॥२४
त्रिधा विभज्य चात्मान त्रैलोक्ये संप्रवर्त्तते ।
सृजते ग्रसते चैव वीक्षते च त्रिभिः स्वयम् ॥२५
चतुर्मुखस्तु ब्रह्मत्वे कालत्वे चांतकः स्मृतः ।
सहस्रमूर्द्धा पुरुषस्तिस्रोऽवस्थाः स्वयभुवः ॥२६
सत्वं रजश्च ब्रह्माच कालत्वे च तमोरजः ।
विष्णुत्वे केवलं सत्व गुणवद्धिस्त्रिधा विभौ ॥२७
ब्रह्मत्वे सृजते लोकान् कालत्वे संक्षिपत्यपि ।
पुरुषत्वेऽयुदासीनः कर्म च त्रिविध विभोः ॥२८

यही प्रथम शरीरी उत्पत्ति हुई, उसी को पुरुष कहते हैं यही सर्व प्रथम उत्पन्न प्राणियों के आदिकर्त्ता ब्रह्मा हैं ।२२। उस सृष्टिकर्त्ता के अभिमान से ब्रह्मा की उपमा रहित, ज्ञान-वैराग्य संयुक्त ब्रह्म सम्बन्धी धर्म और ऐश्वर्य के करने वाली बुद्धि उत्पन्न हुई ।२३। इसके मन की सम्पूर्ण इच्छा अव्यक्त से उत्पन्न होती है वह तीनों गुणों को अपने वश में किये हुएहैं । वे गुण उसकी अपेक्षा करते हैं,क्योंकि यह स्वभावसे ही सापेक्ष है।२४। वह अपने आत्मा का तीन प्रकार विभाजन करके तीनों लोकों में प्रवृत्त होता है तथा उन्हीं तीन गुणोंके द्वारा, उत्पत्ति, पालन और विनाश

करता है ।२५। सृष्टि कर्म में चतुर्मुख ब्रह्मा संसार में रुद्र तथा पालन में उसे पुरुष (विष्णु) कहते हैं, इस प्रकार वह तीनों अवस्थाओं में स्वयम्भू है ।२६।ब्रह्मत्व में सत्वगुण और रजोगुण, कालत्व में तमोगुण और रजोगुण तथा विष्णुत्व में केवल सत्यगुण रहता है इस प्रकार से तीनों भेद वाली गुण-वृद्धि कही गयी है ।ब्रह्मत्व में लोकों की सृष्टि और कालत्व में संहार होता है, पुरुषत्व में देखने से ही पालन कार्य की सिद्धि हो जाती हैं ।२८।

एवं त्रिधा विभिन्नत्वाद्ब्रह्मा त्रिगुण उच्यते ।
चतुर्द्धा प्रविभक्तत्वाच्चतुर्व्यूहः प्रकीर्तितः ।।२९
आदित्वादादिदेवोऽसावजातन्वादजः स्मृतः ।
पाति यस्मात्प्रजाः प्रजापतिरिति स्मृतः ।।३०
हिरण्मयस्तु या मेरुस्तथोल्व सुमहात्मनः ।
गर्भोदक समुद्राश्च जर युश्चापि पर्वताः ।।३१
तास्मिन्नडे त्विमे लोका अतर्न्विश्वमिद् जगत् ।
चद्रादित्यौ सनक्षत्रौ सग्रहौ सह वायना ।।३२
अद्भिर्दशगुणाभिस्तु शह्योतोऽड समावृतम् ।
आपो दशगुणेनैव तेजसा बहिरावृताः ।।३३
तेजो दशणनैव वायुना बहिरावृता ।
आकाशेनावृतो वायुः ख च भूतादिपाऽवृतम् ।।३४
भूतादिर्महता तद्वदव्यक्तानावृतो महान् ।
एतैरावरणैरण्ड सप्तभिर्वहिरावृतम् ।।३५

इस प्रकार तीन रूपों के विभक्त होने के कारण वह ब्रह्मत्रिगुणात्म कहा गया है तथा चार प्रकार से विभक्त होने पर उसे चतुर्व्यूह कहते हैं ।२९। आदि होने के कारण उसे आदिदेव कहा गया है, अजन्मा होने से सज्ञक हुआ तथा प्रजा की रक्षा करने वाला होने से प्रजापति कहा गया था ।३०। उसका गर्भाशय सुवर्णमय सुमेरु है, गर्भ का जल समुद्र है और जरायु पर्वत है ।१। यह सब लोक इस खण्ड में निवास करता है, विश्व इसके अन्तर में विद्यमान है तथा चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, ग्रह

और वायु भी इसी में स्थित है।३२।यह बाहर दश गुणा जल से व्याप्त है तथा जल से दश गुणा तेज से व्याप्त है। ३३। आकाश से वायु तथा आकाश से ही पंचभूत वेष्ठित है।३४। भूतादि महान् से व्याप्त है, महान् प्रकृति से व्याप्त है. इस प्रकार यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड प्रकृति के सप्तावरणों से व्याप्त हो रहा है।३५।

एतदावृत्य चान्योन्यमष्टौ प्रकृतयः स्थितः।
सृष्टिपालनविध्वसकमकर्र्यो द्विजोत्तमाः ।।३६
एवं परस्परोत्पन्ना धारयति परस्परम्।
आधाराधेयभावेन विकारास्तु विकारिषु ।।३७
कूर्मोऽङ्गानि यथा पूर्व प्रसार्य विनियच्छति।
विकारांश्च तथाव्यक्तं सृष्ट्वा भूयो नियच्छति ।।३८
अव्यक्तप्रभवं सर्वमानुलोम्येन जायते।
प्राप्ते प्रलयकाले तु प्रातिलौम्येऽनुलीयते ।।३९
गुणा कालवशादेव भवति विषमाः।
गणसाम्ये लयो ज्ञेयो वैषम्ये सृष्टिच्यते ।।४०
तदिदं ब्रह्मणो योनिरेतदडघनं महद्।
ब्रह्मणः क्षत्रमुद्दिष्टं ब्रह्मा क्षेत्रज्ञ उच्तते ।।४१
इतीदृशानामण्डानां कोटचोज्ञेयाः सहस्रशः।
सर्वगत्वात्प्रधानस्य तिर्यगूर्ध्वमधः स्थिताः ।।४१

यह आठों प्रकृति परस्पर सापेक्ष हैं, इन्हीं के द्वारा सृष्टि, स्थित और संहार होता है।३५। यह परस्पर उत्पन्न होकर विश्व को परस्पर धारण करती हैं, आधार और आधेय के भाव से विकारियों के विकार ।२६। कछुए के देह समान फैलाते और संकुचित करते हैं, यही व्यक्त सब विकारों को प्रकट करता और यही नष्ट कर देता है।३८। यह सम्पूर्ण विश्व पूर्वोक्त क्रम से उत्पन्न होता हुआ अव्यक्त से प्रकट होता है यथा प्रलय उपस्थित होने पर प्रतिलोम रूप से लीन हो जाता है। ३९। काल के वश से ही विषम और गुणों की उत्पत्ति होती है, गुणों की विषमता में सृष्टि रचना तथा साम्य में लय होता है। ४०। पितामह

ब्रह्मा का कारण यही अण्ड है; ब्रह्म का क्षेत्र होने से ब्रह्मा क्षेत्रज्ञ कहा गया है ।४१। इस प्रकार के अण्ड करोड़ों सहस्र हैं, सर्वगत होने से यह ऊपर, नीचे तथा तिरछे स्थित हैं ।४२।

तत्र तत्र चतुर्वक्त्रा ब्राह्मणो हरयो भवाः ।
सृष्टा प्रधानेन तथा लब्ध्वा शंभोस्तु सन्निधिम्म् ।।४३
महेश्वरः परो व्यक्तादंडमव्यक्तसंभम् ।
अण्डाज्जज्ञ विभुर्ब्रह्मा लोकस्तेन कृतास्त्विमे ।।४४
अबुद्धिपूर्वा कथितो मयैष प्रधानसर्ग प्रथमः प्रवृत्तः ।
आत्यंतिकश्च प्रलयोऽन्काले लीलाकृतः केवलमीश्वरस्य।।४५
यत्तत्स्मृत कारणमप्रमेयं ब्रह्मा प्रधान प्रकृतः प्रसूतिः ।
अनादिमध्यान्तमन्तवीर्यं शुकलसुरक्त पुरुषेण युक्तम् ।।४६
उत्पादकत्वाद्रजसोऽतिरेकाल्लोकस्य संतानविवृद्धिहतून् ।
अष्टो विकारानपि चादिकाले सष्टासमश्नाति तथातलाले ।४७
प्रकृत्यवस्थापितकानणाना या च स्थितिर्या च पुनः प्रवृत्ति ।
तत्सर्वंप्रम कृतवैभवस्य सकल्पमात्रेण महेश्वरस्य ।।४८

ब्रह्मा, विष्णु, महादेव भी उन्हीं स्थानों में स्थित है, प्रधान द्वारा प्रकट होकर शिव सन्निधि को प्राप्त हुए विश्व की रचना करते है ।४३। परमेश्वर व्यक्त से परे है, उसी व्यक्त से अव्यक्त सज्ञा वाला अण्ड हुआ, अण्ड से ब्रह्मा हुए,जिन्होंने इन सब लोकों का निर्माण किया ।४४। जीवों के आवरण विक्षेप पूर्वक मैंने प्रथम सर्ग कह अन्त काल में आत्यन्तिक प्रलय होती है यह सब परमेश्वर की लीला ही समझो ।४५। अप्रमेय कारण भूत ब्रह्म, प्रधाभ प्रकृति से प्रादुर्भूत हुआ है, वह आदिहीन मध्य-हीन और अन्तहीन, वीर्यवान, लालश्वेत वर्ण वाले पुरुष से युक्त है ।४६। रज की वृद्धि सन्तति की वृद्धिके हेतु है । वे सृष्टि के आदि में आठविकारों को उत्पन्न करते और अन्त में उनका ग्रास कर लेते हैं ।४७। प्रकृति जन्म कारणों की स्थिति और प्रवृत्ति जहाँ तक है,वह अप्राकृत शिव के ऐश्वर्य-ज्ञान से है । महेश्वर के सङ्कल्प पात्र से यह उत्पन्न होता है ।४८।

॥ मोक्ष साधन में शिव-ज्ञान की प्रधानता ॥

किं तच्छ्रेष्ठयनुष्ठानं मोक्षो येनापरोक्षितः ।
तत्तस्य साधन चाद्य वक्तमर्हसि मारुत ।१
शैवो हि परमो धर्मः श्रेष्ठानुष्ठानशब्दितः ।
यत्रापरोक्षो लक्ष्येत साक्षान्मोक्षप्रदः शिवः ।२
स तु पंचविधो ज्ञेपः पञ्चभिः पर्वभिः क्रमात् ।
क्रिय तपोजपध्यानज्ञानात्मभिरनुत्तरै ।३
तैरेव सोत्तरैः सिद्धो धर्मस्त परमो तपः ।
परोक्षमपरोक्षं च ज्ञान यत्र च मोक्षदम् ।४
परमोऽपरमद्चोमौ त्रर्मो हि श्रुतिचोदितौ ।
धर्मशब्दाभिधेयेऽर्थे प्रमाण श्रुतिरेव नः ।५
परमो योगपयन्यो धर्म श्रुतिशिरोगतः ।
धर्मस्त्वपरमस्तद्वदधः श्रुतिमुखात्स्थितः ।६
अपश्वात्माधिकारत्वाद्यो धर्मः परमो मतः ।
साधारणस्ततोऽन्यस्तु सर्वेषामधिकारतः ।७

ऋषियों ने कहा—हे वायो ! जिस अनुष्ठान से अपरोक्ष ज्ञान प्राप्त होकर मोक्ष मिले, वह कौन-सा है, आप हमारे प्रति उसके साधन कहें ।१। वायु ने कहा श्रेष्ठ अनुष्ठान शिवकी उपासना ही ह, वही परम धर्म है, उसी से मोक्षदायक शिव अपरोक्ष होते हैं ।२। यह पाँच खंड वाला होने से पाँच प्रकार का है, क्रिया, जप, तप, ध्यान, और ज्ञानमय आत्मा से विचार करना ।३। उन श्रेष्ठ धर्मान्तरों सहित सिद्ध हुआ धर्म अपरम कहा गया है, उसी ने परोक्ष और अपरोक्ष मुक्ति को देने वाला ज्ञान उत्पन्न होता है ।४। वेद में परम और अपरम दोनों ही धर्म कहे गये हैं और वेद ही धर्म के विषय में परम प्रमाण है ।५। पाशुपत योग तक धर्म उपनिषद् भाग में और योगादि अपरम धर्म श्रुति के मुख में स्थित है ।६। परम धर्म में माया पाश से मुक्त आत्माओं का अधिकार है तथा योगादि साधारण धर्म में सभी का अधिकार है ।७।

स चाय परमो धर्मः परधर्मस्य साधनम् ।
धर्मशास्त्रादिभि सम्यक्‌ साँग एत्रावृंहितः ।८
शयौ यः परमो धर्म श्रेष्ठानशब्दितः ।
इतिहासपुराणत्भ्या कथचिदुपदृंहित ।९
शंवागमैस्तुं सम्पन्नः सहांणोपांग वस्तरः ।
तत्संस्काराधिकारैश्च सम्ययेवोपबृंहितः ।१०
शैवागमो हि द्विविधः श्रौतोऽश्रोतश्च संस्कृतः ।
श्रुतिसारमयः श्रौतः स्वतन्त्र इतरो मतः ।११
स्वतन्त्रो दशधा पूर्ण तथाऽष्टादशधा पुनः ।
का मकादिसमाख्याभिः सिद्धसिद्धान्ततंज्ञितः ।१२
श्रुतिसारमर्योयस्तु शतकोटिप्रविस्तरः ।
पर पाशुपतं यत्र व्रत ज्ञानं च कथ्यते ।१३
बुगावर्तोषु शिष्येत योगाचार्यस्वरूपिणा ।
तत्रतत्रावतीर्णेन शिवेतैव प्रयत्यते ।१४

अपर धर्म ही परम धर्म का साधन है धर्म-शास्त्रों में यह अङ्गों सहित पुष्ट हुआ है ।८। उसमें शिव धर्म आद्य हैं,उसीको श्रेष्ठ अनुष्ठान कहा गया है,उसका इतिहासों और पुराणों में भी वर्णन मिलता है ।९। शैव-शास्त्रों में इसका साँगोपाँग वर्णन है, शिव दीक्षा के सभी सस्कार उनमें कहे गये हैं ।१०। शैव शास्त्र श्रुति और स्मृति भेद से दो प्रकार का है । वेद शास्त्र वाला श्रोत तथा दूसरा स्वतन्त्र कहा गया है ।११। स्वतन्त्र पहिले इस प्रकार का था फिर अठारह प्रकार का हुआ,कामिकादि नाम से लेकर सिद्धान्त रक्षक है ।१२। वेदसार युक्त का सौ करोड़ का विस्तार हैं, उसमें पाशुपत व्रत परम ज्ञात कहने हैं ।१३। भगवान शिव युग-युग में योगाचार्य का अवतार लेकर शिष्यों को जो उपदेश देते हैं ।१४।

सक्षिप्यास्य प्रवक्तारश्चत्वारः परमर्षयः ।
रुद्रर्दधीचोऽपस्त्यश्च उपमन्युर्महायशाः ।१५
ते च पाशुपता ज्ञेयाः सहितानां प्रवर्तका ।

तत्संततीया गुरवः शतशोऽथ सहस्रश ।१६
तत्रोक्तः परमो धर्माश्चर्याद्या सा चतुर्विध ।
तेष पाशुपतो योगः शिव प्रत्यक्षयेद्दृढम् ।१७
तस्माच्छ्रेष्ठमनुष्ठान योगः पशुपतो मतः ।
तत्राप्युपायको युक्तो ब्राह्मणा स तु कथ्यते ।१८
नामाष्टकमयो योगः शिवेन परिकल्पितः ।
तेन योगेन सहसा शैवी प्रज्ञा प्रजायते ।१९
प्रज्ञया परमं ज्ञानमचिराल्लभते स्थिरम् ।
प्रसीदति शिवस्तस्य यस्य ज्ञानं प्रतिष्ठितम् ।२०
प्रसादात्परमो योगी यः शिवं चापरोक्षयेत् ।
शिवापरक्षात्संसारकारणेन वियुज्यते ।२१
ततः स्यान्मुक्तसंसारो मुक्त शिवसमो भवेत् ।

उसी को संक्षिप्त रूप से रुद्र दधीचि, अगस्त्य तथा उपमन्यु ने कहा है ।१५। संहिताओं के प्रवृत्त करने वाले वह पशुपति व्रतधारी हैं, उनकी सन्तति रूप में सहस्रों गुरुजन हुए ।१६। उन्होंने चार प्रकार का परम-धर्म कहा हैं उनमें पाशुपत योग भगवान् शिव के साक्षात् करने में श्रेष्ठ हैं ।१७। इस प्रकार पाशुपत योग ही उत्कृष्ट अनुष्ठान है, ब्रह्माजी ने जो उसका विधान कहा हैं, वह कहता हूँ ।१८। यह अष्टाँग योग शिव के द्वारा ही कल्पित हैं, उस योग से शैवी-बुद्धि शीघ्र उत्पन्न होती है ।१९। उस बुद्धि के प्राप्त होने पर परम ज्ञान की शीघ्र प्राप्ति होती है, जिसे यह ज्ञान हो जाता है उस पर शिवजी शीघ्र प्रसन्न होते है ।२०। उन्हीं के प्रसाद से परम योग प्राप्त होता है जो कि शिवजी को प्रकट कर देता है, शिव के प्रकट होने से संसार में उत्पत्ति का कारण नष्ट हो जाता है ।२१।

ब्रह्मप्रोक्त इत्युपायः स एव हृथगुच्यते ।२२
शिवो महेश्वरश्चैव रुद्रो विष्णुः पितामहः ।
संसारवैद्यः सर्वज्ञः परमात्मेति मुख्यतः ।२३
नामाष्टकमिदं मुख्यं शिवस्य प्रतिपादकम् ।

आद्यं तु पञ्चकं ज्ञेयं शान्त्यतीद्यानुक्रमात् ।२४
संज्ञाः स दाशिवादीनाँ पचोपाधिपरिग्रहात् ।
उपाधिविनिवृत्तौ तु यथास्वं विनिवर्तते ।२५
पदमेव हि तं नित्यमनित्याः पदिनः स्मृताः ।
पादानां प्रतिकत्तौ तु मुच्यन्ते पदिनो यतः ।२६
प्ररिवृत्त्तरे भूयस्तत्पदप्राप्तिरुच्यते ।
आत्मान्तराभिधान स्याद्यदाद्य रामपञ्चकम् ।२७
अन्यत्तु त्रितय नाम्नामुपादादियोगतः ।
त्रिविधिपाधिवचनाच्छित्र एवानुवर्तते ।२८

तब वह संसार से मुक्त होकर शिवजी के समान हो जाता है, ब्रह्मा द्वारा कहा गया उपाय अलग-अलग कहा गया है ।२२। उनके नाम शिव महेश्वर, रुद्र, ब्रह्मा, पितामह सर्वज्ञ,संसार भिषक तथा परमात्मा है।२३। यह आठों नाम शिवजी के नित्य प्रतिपादक हैं — शिव, महेश्वर रुद्र,विष्णु ब्रह्मा यह पाँच तथा शान्त्यतोपदे शैवाः से लेकर तीन ।२४। वे पांच उपाधि ग्रहण करने से शिवादि संज्ञक होते हैं, यह उपाधि दूर होने से भेद भी नहीं रहता ।२५। वह पद नित्य है, तथा पद वाले अनित्य हैं,पदों की परिवृत्ति में पद वाले मोक्ष को प्राप्त होते हैं ।२६। परिवृत्ति के अन्तर में अपाधि से पुनः पापप्राप्ति होती हैं आदि के पाँच नाम आत्मान्तर वाले हैं ।२७। संसार वैद्य, सर्वज्ञ, परमात्मा यह तीन नाम माया के अवलम्ब के कारण होते हैं यह तीन प्रकार की उपाधि से शिव का ही ग्रहण होता हैं ।२८।

अनादिमलसंश्लेष प्रागभावात्स्वभावयः ।
अत्यन्त परिशुद्धात्मेत्यतोऽयं शिव उच्यते ।२९
अथवाऽशेषकल्याणगुणैकधन ईश्वरः ।
शिव इत्युच्यत्तो सद्भिः शिवतत्वार्थवादिभिः ।३०
त्रयाविंशतितत्वेभ्यः प्रकृतिर्हि परा मता ।
प्रकृतेस्तु पर प्राहुः पुरुषं पञ्चविंशकम् ।३१

य वेदादौ स्वरं प्राहुर्वाच्यवाचकभावतः ।
वेदैकवेद्यय:थात्म्याद्वेदान्ते च प्रतिष्ठितः ।३२
तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परः स महेश्वरः ।
तद्धीनवृत्तित्वात्प्रकृतेः पुरुषस्य च ।३३
अथवा त्रिगुण तत्वमुपेयमिदसध्ययम् ।
मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ।३४
मायाविक्षोभकोऽनंतो महेश्वरसमन्वयात् ।
कालात्मा परमात्मादिः स्थूलः सूक्ष्मः प्रकीर्तितः ।३५

अनादि गुण से प्रागभाव और स्वभाव से सम्बन्ध वाले परम परि-शुद्धात्मा शिव ही कहे गये है ।२६। अथवा सम्पूर्ण कल्याण गुण के धन ईश्वर को ही शिव तत्व-वेत्ताओं ने शिव कहा हैं ।३०। प्रकृति तेईस तत्वों से परे है तथा प्रकृति से भी परे वह पच्चीसवाँ पुरुष कहा गया हैं ।३१। जिसे वाच्यवाचक भाव से वेदारम्भ में प्रणव कहा है और जो वेदों और उपनिषदों में अधिष्ठित हैं, वही प्रकृति में लीन होकर भोगार्थ प्रतिष्ठित हुआ है ।२३। प्रकृति में लीन हुए से परे महेश्वर है,प्रवृत्ति इसी के आधीन हैं तथा प्रकृति पुरुष का वश होना भी उसी के आधीन हैं ।३२। अथवा त्रिगुण तत्व उस अविनाशी की माया है,माया ही प्रकृति है तथा मायात्मक महेश्वर हैं ।३। नारायण पुरुष माया को विक्षुब्ध करने वाले हैं वे महेश्वर सेसम्बन्धित हैं तथा वह कालात्मा परमात्मा स्थूल और सूक्ष्म कहे जातेहैं।३५

रुद्दुःख दुःखहेतुर्वा तद्रावयति नः प्रभुः ।
रुद्र इत्युच्यते सद्भिः शिवः परमकारणम् ।३६
तत्वादिभूतपर्यन्य शरीरादिष्वयन्द्रितः ।
व्याप्यातिष्ठति शिवस्तत्वो रुद्रः इतस्ततः ।३७
जगतः पितृभूतानां शिवो मूर्त्यात्मनामपि ।
पितृभावेन सर्वेषां पितामह उदीरितः ।३८
निदानज्ञो यथा वैद्यो रोगस्य विनिवर्तकः ।
उपायैर्भेषजैस्तद्वल्लयभोगाधिकारतः ।३९
संनारस्येश्वरो नित्यं समूलस्य निवर्तकः ।

संसारवैद्य इत्युक्तः सर्वतत्वार्थवेदिभिः ।४०
दशार्थज्ञानसिद्धयर्थमिन्द्रियेश्वेषु सत्स्वपि ।
त्रिकालभाविनो भावान्स्थूलान्सूक्ष्मानशेषतः ।४१
अणवो नैव जानन्ति माययैव मलावृताः ।
असत्स्वपिच सर्वेषु सर्वार्थज्ञानहेतुषु ।४२

रुद्र दुःख अथवा दुःख के कारण को नष्ट करने वाले होने से वे रुद्र कहे जाते हैं, सत्पुरुषों का कहना है कि परम कारण शिव वही है ।३६। शिव-तत्व से भूमि पर्यन्त देहादि और घटादि को व्याप्त करके अधिष्ठित होने के कारण शिव को रुद्र कहा गया है ।३७। सूत्यात्मक, शिव के पितृभूत शिव सबके पित्र भाव में होने के कारण पितामह कहे गये हैं ।३८। जैसे निदान का ज्ञाता वैद्य रोग को दूर करने वाला हैं और अनेक औषधयुक्त उपाय करता है; उसी प्रकार प्रकृति के कर्म ज्ञान रूप उपायों से मुमुक्षुओं और कामुकों को क्रमपूर्वक लय, मोक्ष या भोग के अधिकार के अनुसार उन्हें प्रवृत्त करता है ।३९। इस प्रकार संसार के मूल को मिटाने वाला ईश्वर है तथा जगतपति होने से भी सभी तत्वज्ञाता उसे संसार वैद्य कहते है ।४०। शब्दादि विषयो के ज्ञान की सिद्धि के लिए ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय से तीनों काल में होने वाले स्थूल और सूक्ष्म भावों को ।४१। जीव तत्व के मल के कारण को प्राणी नहीं जानते और सभी विषयों का ज्ञान न होने के कारण भी ।४२।

यद्ययावस्थित वस्तु तत्तथैव सदाशिव ।
अयत्नेनैव जानाति तस्मात्सर्वज्ञ उच्यते ।४३
सर्वात्मा परनैरेभिर्गुणौर्नित्यसमन्वयात् ।
स्वस्मात्परत्मविरहात्परमात्मा शिवः स्वयम् ।४४
नामाष्टकमिद चैव लब्ध्वाऽऽचार्यप्रसादतः ।
निवृत्यादिकलाग्रन्थि शिवद्यैः पंचनामाभिः ।४५
यथास्वं क्रमशश्छित्ता शोधयित्वा यथागुणम् ।
गुणितैरेव सोद्धातैरनिरुद्धैरथापि वा ।४६
उत्कण्ठतालुभ्र मध्यवह्मरन्ध्रसमन्वितास् ।

छित्वा पुर्यष्ठकाकारं स्वात्मानं च सुषुम्णया ।४७
द्वादशांतः स्थितस्येन्दोर्नीत्वोपरि शिवौजसि ।
सहृत्य वदनं पश्चाद्यथा संकस्करणम् लयात् ।४८
शाक्तेनामृतवर्षेण ससिक्तायां तनौ पुनः ।
अवतार्यं स्वामात्मानमृतत्मांकृति हृदि ।४९
द्वादशांतः न्यितस्येन्दोः परस्ताच्छ्वेतपङ्कजे ।
समासीनं महादेव शङ्कर भक्तवत्सलम् ।५०

जो वस्तु जिस प्रकार हैं, उसे बिना यत्न के शिव उसी प्रकार जानते हैं, इसीलिये उन्हें सर्वज्ञ कहते हैं ।४३। इन परम गुणों से वह सर्वात्मा सदा सम्पन्न रहता हैं । अपने से परे आत्माओं के विरह से वह परम-आत्मा हैं ।४४। आचार्य गुरु की कृपा से इन आठ नामों को अर्थ सहित पाकर, पाँच नामों से कल्प ग्रन्थियों को ।४५ यथाक्रम छेदन करे और अपने अधिष्ठान क्रम से करके नामों को आवर्तन करे, उद्घात कर्म करे ।४६।इससे हृदय कण्ठ तालुभ्रू के मध्य ब्रह्मरन्ध्र से युक्त कला ग्रन्थि रूप भेनन्द्रिय सेनोबुद्धि, वासना, कर्मवायु और अविद्या के आठों आकारों का भेदन कर मध्य नाड़ी सुषुम्ना से ।४७। द्वादस दल वाले हृदय कमल में स्थित चन्द्रमा के ऊपर शिव प्रभाव में अपने आत्मा को ले जाय तथा अपने कारण में यथा योग्य लय होने से ।४८। शक्ति की अमृत-धारा से सीधे तथा अपने देह में स्थित आत्मा को हृदय में उतारे ।४९। और द्वादश दल हृदय कमल में चन्द्र से ऊपर भक्तवत्सल भगवान शङ्कर के दर्शन करे ।५०।

॥ पाशुपत व्रत और भस्म महिमा कथन ॥

भगवञ्छ्रोमिच्छामो व्रतं पाशुपतं परम् ।
ब्रह्मादयोऽपि यत्कृत्दा सर्वे पाशुपता स्मृताः ।१
रहस्यं वः प्रवक्ष्यामि सर्वपापानिकृन्तनम् ।
व्रत पाशुपतं श्रौतमथर्वशिरसि श्रुतम् ।२
क लश्चत्री पौर्णमासी शिवपरिग्रह ।

क्षेत्रारामाद्यरण्यं वा प्रशस्तः शुभलक्षणः ।३
तत्र पूर्वं त्रयोदश्यां सुस्नातः सुकृताह्निकः ।
अनुज्ञाप्य स्वामाचार्यं संपूज्य प्रणिपत्य च ।४
पूजां वैशेषिकीं कृत्वा शुक्लांबरधर स्वयम् ।
शुक्लयज्ञोपवीती च शुक्लमाल्यानुलेपनः ।५
प्राणायामत्रयं कृत्वा प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः ।६
व्रतमेतत्करोमीति भवेत्संकल्प्य दीक्षितः ।
याच्छरीरपात वा द्वादाशब्दमथापि वा ।७

ऋषियों ने कहा—हे प्रभो ! हमें पाशुपात व्रत के श्रवण की इच्छा हैं, जिसे करके ब्रह्मादिक भी पशुपत हो गये ।१। वायु ने कहा–मैं तुमसे सभी पापों को नष्ट करने वाले रहस्य को कहता हूँ यह पाशुपत व्रत अथर्वाशिरम् उपनिषद् में है ।२। इसका समय चैत्र की पूर्णमासी स्थान श्रेष्ठ लक्षण युक्त उद्यान कहा हैं ।३। त्रयोदशी के दिन प्रथम स्नानदि से निवृत्त हो कर अग्निमें हवनके पश्चात् अपने गुरु का पूजनकर प्रणामपूर्वक उनसे आज्ञा प्राप्त करे ।४। पूजनकर श्वेत श्वेत वस्त्र धारण करे श्वेत जनेऊ श्वेत माला श्वेत चन्दन लगावे ।५। कुशा के आसन पर स्थित होकर मुट्ठीमें कुश ग्रहण करे और उत्तर या पूर्वाभिमुख से तीन प्राणायाम करके देवी-देव को उनके विज्ञापित मार्ग से ध्यान करे ।६। और संकल्प करे कि मैं दीक्षित होकर यह व्रत करता हूँ, बारह वर्ष तक तथा मृत्यु पर्यन्त ।७।

तत्वदर्धं वा तदर्धं वा मासद्वादशकं तु वा ।
तदर्धं वा तदर्धं मासमेकमथापि वा ।८
दिनद्वादकं वाऽथ दिनषट्कमथापि वा ।
तदर्धं दिनमेकं वा व्रतसंकल्पनावधि ।९
अग्निधाय विधिपद्विरजाहोमकारणात् ।
सुत्वाज्येन समिद्भिश्चचरूणा चयणाक्रमन् ।१०

पूर्णमापूर्य तां भपस्तत्वानां शुद्धिमुद्दिशन् ।
जुहुयान्मूयमंत्रेण तैरेव समिदादिभिः ।११
तत्वान्येतानि मद्रे हे शुद्धयं यामित्यनुस्मरन् ।
पंचभूतानि तन्मात्राः पंचकर्मेन्द्रियाणि च ।१२

ज्ञानकर्मविभेदन पंचकर्मविभाष्टशः ।
त्वगादिधातवः सप्त पंच प्राणादिवायवः ।१३

मनोबुद्धिरहंख्यातिर्गुणाः प्रकृतिपुरुषौ ।
रागा विद्यकले चैव नियतिः काल एवं च ।१४

माया च शुद्ध विद्या च महेश्वरसद्राशिवौ ।
शक्तिश्व शिवतत्व च तत्वानि क्रमशो विदुः ।१५

या छः वर्ष, तीन वर्ष, एक वर्ष छः महीने, तीन या एक ही महीने। अथवा बारह दिन, छः दिन, तीन दिन या एक ही दिन के व्रत का संकल्प ले ।६। विरजाग्नि को विधिवत ग्रहण कर घृत, समिधा और चरु से यथा विधि हवन करे ।१०। पूर्णाहुति के उपरान्त तत्व शुद्ध यर्थ उन समिधा आदि का पंचाक्षर मन्त्र से हवन करे ।११। और ऐसा ध्यान करता जाय कि 'यह तत्व मेरे देह के निमित्त शुद्ध हो' पंचभूत, तन्मात्रा और पाँच कर्मेन्द्रिय ।१२। ज्ञान तथा कर्म के भेद से पाँच-पाँच प्रकार हैं त्वचा आदि सात धातु तथा प्राण आदि वायु ।१३। मन, बुद्धि, अहंकार, गुण, प्रकृति, पुरुष, राग, विद्या, कला, नियत और काल ।१४। माया, शुद्ध, विद्या, महेश्वर, शिव, शक्ति और शिव तत्व यह क्रम पूर्वक कहे हैं ।१।

मन्त्रैस्तु विरजैर्हुत्वा होताऽसौ विरजो भवेत् ।
शिवानुग्रहमासाद्य ज्ञानवान्स हि जायते ।१६

अथ गोमयमादाव पिण्डीकृत्याभिमंन्य च ।
विन्यस्याम्नो च समप्रोक्ष्य दिने तस्मिन्हविष्यभुक् ।१७

प्रभोते चतुर्दश्यां कृत्वा सर्वं पुरोदितम् ।
दिने यस्मिन्निराहरः कालं शेषं समापयेत् ।१८

प्राप्तः पर्वणि चाप्येवं कृत्वा होमावसानतः ।
उपसंहृत्य रुद्राग्नि गृह्णी याद्भस्म यत्नतः ।१९
प्रक्षाल्य चरणौ पश्चाद्द्विराचम्यात्मनस्तनुम् ।
संकुलीकृत्य तद्भस्म विरजामलसंभवम् ।२०
अग्निरित्यादिभिर्मन्त्रैः षड्भिराथर्वणैः क्रमात् ।
विमृज्यांगानि मूर्द्धादिचरणांतानि तैः स्पृशेत् ।२१

इन विरज मन्त्रों से हवन करने वाला पापों से छूट जाता है तथा शिव का अनुग्रह प्राप्त कर ज्ञानी होता है ।१६। फिर गोबर लाकर उसका पिंड बनावे और मन्त्र पढ़कर उसे सूंघे और अग्नि में रखदे, उस दिन हविष्यान्न का भोजन करे ।७। फिर चतुर्दशी के दिन प्रातःकाल नित्य कर्म से निवृत्त होकर निराहार रहता हुआ शेष समय व्यतीत करे ।१८। फिर पर्व के दिन सब कृत्यों को कर हवन के उपरान्त रुद्राग्नि को शान्त करे और यत्नपूर्वक भस्म ग्रहण करे ।१९। फिर चरण धोकर दो बार आचमन करे और अपने देह पर उस हवन की भस्म को मले ।२०। 'अग्निरिति भस्म' यह अथर्ववेद के छः मन्त्र हैं इनसे शिर से चरण पर्यन्त करे ।२१।

ततस्तेन क्रमेणैव समुद्धृत्य च भस्मना ।
सर्वांगोद्धुलनं कुर्यात्प्रणवेन पिवेन वा ।२२
ततस्त्रिपुण्ड्रं रचयेत्त्रियायुषसमाह्वयम् ।
शिवभावं समागम्य शिवयोगमथाचरेत् ।२३
कुर्यात्त्रिसन्ध्मप्येवमेतत्पाशुपतं व्रतम् ।
भुक्तिमुक्तिप्रदं चैतत्पशुत्वं विनिवर्तयेत् ।२४
तत्पशुत्वं परित्यज्य कृत्वा पाशुपतं व्रतम् ।
पूजनीयो महादेवो लिंगमूर्तिः सनातनः ।२५
विल्वपत्रैश्च पद्मैश्च रक्तैः श्वेतैस्तथोत्पलैः ।
नीलोत्पलैस्तथान्यैश्च पुष्पैस्तैस्तैः सुगंधिभिः ।२६
पण्यैः प्रशस्तैः पत्रैर्दूर्वाक्षतादिभिः ।
समभ्यर्च्य यथालाभ महापूजाविधानतः ।२७

इसी क्रम से भस्म को सम्पूर्ण शरीर में लगावे तथा प्रणव सहित शिव का उच्चारणकरे।२२। फिर 'त्र्यायुषं जमदग्नेः' मंत्रसे त्रिपुड़ धारण कर शिव-भाव को प्राप्त हो और शिव-योग का आचरण करे।२३। तीनों संध्याओं में इस मुक्ति, भुक्ति दायक और पशुत्व को नष्ट करने वाले पशुपत व्रत को करे।२४। इस पाशुपत व्रतसे पशुत्वसे मुक्त होकर लिंग मूर्ति भगवान् शङ्कर का पूजन करे।३५। बिल्व पत्र, श्वेत कमल. लाल कमल नील कमल तथा अन्य सुगन्धित पुष्पों।२६। और श्रेष्ठ बल्व पत्रों से तथा चित्र दूर्वा ओर अक्षत आदि से पूजन-विधि से पूजा करे।२७। तथा धूप,दीप नैवेद्य, अर्घ्य आदि शिव को समर्पित कर कल्याण में प्रवृत्त हो।२८।

धूप दीपं तथा चापि नैवेद्यं च समादिशेत् ।
निवेदयित्वा विभशे कल्याणं च समाचरेत् ।२८
पयोव्रतो वा भिक्षाशी भवेदेकाशनस्तथाः ।
नक्त युक्तशनो नित्यं भूशय्यानिरतः शुचिः ।२६
भस्मशायीतृणेशायी चीराजिनवृतोऽथवा ।
ब्रह्मचर्यव्रतो नित्यं व्रतयेतत्समाचरेत् ।३०
अकवारे तथार्द्रायां पंचदश्यां च पक्षयोः ।
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां शक्तस्तुपवसेदपि ।३१
पाखण्डिपतितोदक्याः सूतकान्त्यजपूर्वकान् ।
वर्जयेत्सर्वयत्नेन मनसा कर्मणा गिरा ।३२
क्षमादानदयासत्वाहिंसाशीलः सदा भवेत् ।
संतुष्टश्च प्रशान्तश्च जपध्यानरतस्तथा ।३३
कुर्यात्त्रिषणवणस्नान भस्मस्नानमथापि वा ।
पूजां शैशेषिकीं चैव मनसा वचसा गिरा ।३४
बहुनाऽत्र किमुक्तेन नाचरेदशिव व्रती ।
प्रमादात्तु तथाचारे निरूध्य गुरुलाघवे ।३५

दूध पान करे या भिक्षान्न सेवन करे केवल एकबार भोजन, रात्रि के समय नियत रूप से करे और पवित्र होकर पृथिवी पर सोवे।१६। भस्म या

तिनको पर अथवा चीर, अजिन या मृग चर्म पर शयन करे इस व्रत की समाप्ति पर्यन्त ब्रह्मचर्य पूर्वक रहे हैं ।३०। आर्द्रानक्षत्र रविवार, अमावस्या, पूर्णमासी, अष्टमी या चतुर्दशी को सामर्थ्य हो तो उपवास करे। ।३१। पाखण्डी, पतित, उदक्या (रजस्वला) सूत का आदि का मनसे या वाणी से भी ध्यान न करें ।३२। क्षमा, दया दान, अहिंसा, शील में सदा रहे तथा सदैव शान्त सन्तुष्ट और तप-ध्यान में रत रहे ।३३। तीनों समय स्नान करे असमर्थ हो तो भस्म-स्नान करे, मन, वचन से विशेष पूजा करता रहे ।३४। किसी अमंगल कृत्य को न करे, यदि प्रमाद उत्पन्न हो जाए तो आचार में उसकी लघुता या गुरुता के विचार से ।३५।

उचितां निष्कृतिं कुर्यात्पूजाहोमजपादिभिः ।
आसमाप्तेर्व्रतस्यैश्रमाचरेन्न प्रमादतः ।३६
देशिकेनाप्यनुज्ञातः प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः ।
दुर्भासनो दर्भपाणिः प्राणापानौ नियम्य च ।३७
जपित्वा शक्तितो मूल ध्यात्वा साम्बं त्रियंबकम् ।
अ ज्ञाप्य यथापूर्वं नमस्कृत्य कृताञ्जलिः ।३८
समुत्सृजामि भगवन्व्रतमेतत्वदाज्ञया ।
इत्युक्त्वा लिंयमूलस्थान्दर्भानुत्तरतस्येत् ।३९
ततो दण्डचटाचीर मेखला अपि चोत्सृजेसे ।
पुनराचम्य विधिवत्पञ्चाक्षरमुदीरयेत् ।४०
यः कृतत्यंतिकीं दीक्षामादेहान्तमनाकुलः ।
व्रतमेतत्प्रकुर्वीत स तु वैष्टिकः स्मृतः ।४१
सोऽत्याश्रमी च विज्ञेयो महापाशुपतस्तथा ।
स एवं तपतां श्रेष्टः स एव च महाव्रती ।४२

पूजन, हवन यज्ञ आदि कर्मों द्वारा उसका समुचित प्रायश्चित करे व्रत की समाप्ति पर्यन्त किंचित् भी प्रमाद न करे ।३६। आचार्य की आज्ञा लेकर पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके कुशा के आसन पर बैठे और कुशा हाथ में लेकर प्राणापान को रोक कर ।३७। शक्ति के अनुसार मूल मंत्रका

जप करे तथा शिवा सहित त्र्यंबक देवका ध्यान कर आज्ञा लेकर हाथ जोड़कर निवेदन करे।३८। हे भगवान् ! अब आपकी आज्ञा से इस व्रत को छोड़ता हूँ। यह कहकर लिंगमूल के कुशों का विसर्जन उत्तर भाग से करे।३९। फिर दण्ड जटा चीर और मेखला को भी छोड़ दे और विधि-पूर्वक आचमन कहकर पंचाक्षर मन्त्र का जप करे।४०। जो इस दीक्षा को मरण-पर्यन्त सावधानी पूर्वक करता हुआ व्रत करता है उसे नैष्ठिक व्रती कहते हैं।४१। वह सब आश्रमों में उत्कृष्ट महा पाशुपत व्रती होती है वही महाव्रती तपस्वियों में श्रेष्ठ है।४२।

न तेन सदृशः कस्चित्कृतकृत्यो मुमुक्षुषु।
यो यतिर्नैष्ठिको जातस्तमाहुर्नैष्ठिकोत्तमम्।४३
योऽन्वह द्वादशाहं ना व्रतमेतसमाचरेत्।
सोऽपि नैष्टिकतुल्यः स्यत्तीव्रव्रतसमन्वयात्।४४
घृताक्तो यचरेदेतद्व्रतं व्रतपरायणः।
द्वित्रैकदिवस वापि स च कश्चतः नैष्ठिकः।४५
कत्यमित्येव निष्कामो यश्चरेद्व्रतमुत्तमम्।
शिवार्पितात्मा सततं न तेत सदृशः क्वचित्।४६
भस्मच्छन्नो द्विजो विन्द्वामहापातकसभवै।
पापै सुदारुणैः सद्यो मुच्यते नात्र संशयः।४७
भस्म निष्टस्य नश्यति दोषा भस्माग्निसङ्गमात्।
भस्मस्नानविशुद्धात्मा भस्मनिष्ठ इति स्मृतः।४८
भस्मना दिग्धसर्वाङ्गो भस्मदीप्तस्त्रिपड्रकाः।
भस्मस्नायो च पुरुषो भस्मनिष्ठ इति स्मृतः।४९

मुमुक्षुओं में उसके समान कृतकृत्य नहीं है, जो यती नैष्ठिक ही वह श्रेष्ठ नैष्टिक हैं।४३। जो इस व्रत को बारह दिन उपवास पूर्वक करे, वह भी तीव्र व्रत के कारण नैष्ठिक के समान ही हो जाता है।४४। जो अपने देह में घृत लगाकर व्रत को करे, वह दो तीन दिन भी करे तो नैष्ठिक ही है।४५। कामना-रहित होकर इस व्रत को करने वाले

जो व्रती शिवजी की अपनी आत्मा अर्पण किये हुए हैं उनके समान अन्य कोई नही है ।४६। विद्वान ब्राह्म अपने देह में भस्म मलकर महापापों से उत्पन्न कष्टों से शीघ्र मुक्त होता है इसमें सन्देह नहीं है ।४७। भस्म निष्ठ पुरुषों के सभी दोष अग्नि के संसर्ग के कारण नष्ट हो जाते हैं भस्म स्नान करने वाले पुरुष को भस्मनिष्ठ कहते हैं ।४८। जिसके देह में भस्म रमा है, जिसका त्रिपुण्ड्र भस्म से दीप्ति युक्त है,वह स्नान के कारण भस्म-निष्ठ होता है ।४९।

भूतप्रेतपिशाचाश्च रोगाश्चातीव दुःसहा ।
भस्मनिष्ठस्य सान्निध्याद्विद्रवंति न संशयः ।५०
भासनाद्भसितं प्रोक्तं भस्म कल्मषभक्षणात् ।
भूतिर्भूतिकरी चैव रक्षा रक्षाकरी परा ।५१
किमन्य दिह्वक्तव्यं भस्ममाहात्यकारणम् ।
व्रती च भस्मना स्नातः स्वायं देवो महेश्वरः ।५२
परमांस्त्र च शैवानां भस्मैतत्पारमेश्वरम् ।
धौम्याग्रजस्य तपसि व्यापदो यन्निवारिताः ।५३
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कृत्वा पशुपतव्रतम् ।
धनवद्भस्म सगृह्य भस्मस्नानरतो भवेत् ।५४

उस भस्मनिष्ठ के समीप्य से वड़े भयङ्कर रोग, भूत प्रेत, पिचाच भी दूर भागते हैं, इसमें संशय नहीं है ।५०। पाप दूर करने वाला होने से तथा भासमान होने से इसे भस्म कहा गया है वह विभूति ऐश्वर्यदायिनी तथा परम मोक्ष करने वाली हैं ।५१। व्रती भस्म स्नान करके स्वयं महेश्वर रूप होता है ।५२। यह परमेश्वरी भस्म शैव्यों का परमशास्त्र है,इसने उपमन्यु की आपत्ति निवारण की है ।५३। इसलिए सब यत्न करके भी पाशुपत व्रत करें और धन के समान भस्म को एकत्र करे । इस प्रकार भस्म-स्नान में सदा प्रीतिवान् रहे ।५४।

॥ वायुसंहिता [उत्तर भागः] ॥

॥ पाशुपत ज्ञान की सर्वश्रेष्ठता ॥

किं तत्पाशुपतं ज्ञानं कथं पशुपतिः शिवः ।
कथं धौम्याग्रजः पृष्टः कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा ।१
एतत्सर्वं समाचक्ष्य वायो शङ्करविग्रह ।
त्वत्समो न हि वक्तास्ति त्रैलोक्येष्वपरः प्रभुः ।२
इत्याकर्ण्य वचस्तेषां महर्षीणां प्रभंजनः ।
सस्मृत्य शिवमीशानं प्रवक्तुमुपचक्रमे ।३
पुरा साक्षान्महेशेन श्रीकंठाख्येन मन्दरे ।
देव्यैदेवेन कथित ज्ञानं पाशुपत परम् ।४
तवेव पुष्ट कृष्णेन विष्णुना विश्वयोनिना ।
पशत्वं च सुरादीनां पतित्य च शिवस्य च ।५
यथोचदिष्ट कृष्णाय मुनिना ह्युपमन्युना ।
तथा समासतो वक्ष्ये तच्छृणुध्वमतन्द्रितः ।६
तुर पमन्युमासीनं विष्णुः कृष्णवपुधरः ।
प्रणिपत्य यथान्यायामिद वचनमब्रवीत् ।७

ऋषियों ने कहा—पाशुपत ज्ञान क्या है ? शिव पाशुपति क्यों कहे जाते हैं ? श्रीकृष्ण ने उपमन्यु से किस प्रकार का प्रश्न किया था ? ।१। हे वायो ! आप शङ्कर के देह है,हमारे प्रति यह सब कहने की कृपा करिये इस समय त्रैलोक्य में आपके समान कोई वक्ता नहीं है ।२। सूतजी ने कहा—उन ऋषियों के इस प्रकार वचन सुनकर ईशान शिव का स्मरण कर पवन देवता कहने लगे ।३। पवन ने कहा-सर्वप्रथम महेश्वर देव ने मन्दराचल में देवो को पाशुवत का ज्ञान का वर्णन किया था । ४ । वही वृतान्त विश्नयोनि श्रीकृष्ण ने पूछा था कि देवता आदि को पशुत्व की

प्राप्ति किस प्रकार हुई और शिवजी को उनका पतित्व किस प्रकार से प्राप्त हुआ ? ।५। जैसे उपमन्यु ने श्रीकृष्ण को उपदेश दिया था, वह मैं तुम्हें सक्षेप में बताता हूँ, तुम ध्यान से श्रवण करो ।६। एक समय की बात हैं–बैठे हुए उपमन्यु मुनि के पास कृष्ण रूपी भगवान् विष्णु ने प्रणाम कर इस प्रकार कहा है ।७।

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि दैव्य देवेन भाषितम् ।
दिव्यं पाशुपतं ज्ञानं विभूति वास्य कृत्स्नश ।८
कथं पशुपतिर्देव: पशव: के प्रकीर्तिता: ।
के पाशैस्ते निबध्यते विमुच्यते च ते कथम् ।९
इति सचोदिता श्रीमानुपमन्युमहात्मना ।
प्रणम्य देव वेवी च प्राह पृष्टो यथा तथा ।१०
ब्रह्माद्या: स्थावरांताश्च देवदेवस्य शालिन: ।
पशव: परिकीर्त्य ते संसारवर्शतिन: ।११
तेषां पतित्वाद्देवेश: शिव: पशुपतिां स्मृत: ।
मलमायादिभि: पाशै स वध्नांति पशून्पति. ।१२
स एव मोचकस्तेषां भक्त्या सम्यगुपासित: ।
चतुर्विशतितत्वानि मायाकर्मगुणा अमी ।१३
विषया इति कथ्यन्ते पाशा जीवनिबन्धना. ।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तान् पशून्बद्ध्वा महेश्वर: ।१४

श्रीकृष्ण वाले हे भगवान् ! भगवान् शङ्कर ने पार्वतीजी को जो दिव्य पाशुपत ज्ञान और उसकी सब भूतियाँ बतायी थी मैं उसे सुनना चाहता हूँ ।८. वह पाशुपति देव किस प्रकार से हैं ! पशु कौन है । किन पाशोंमें उनका बन्धन होता हैं ? तथा वे किस प्रकार बन्धन से छूटते हैं ? ।९। जब उपमन्यु ने यह वचन सुने तब वह शिव-शिवा को प्रणाम कर प्रसन्नतापूर्वक कहने लगे ।१०। उपमन्यु ने कहा—ब्रह्मा से लेकर संसार वर्ती सभी जीव देव-देव शूली के पशु कहे जाते हैं ।११। उन पशुओं के स्वामी होने से वे देव-देव पशुपति कहे जाते हैं,उन प्राणियों को वही पशुपति मल और माया आदि के पाशों से उनका बन्धन करता है ।१२। उपासना किये

जाने पर वही भक्तों के पापों को नष्ट करता है, वह माया के गुण और कर्म चौबीस तत्व के हैं।१३। यही विषय कहे गये हैं, इन्हीं से जीव बँधा हुआ है ब्रह्म से स्तम्ब तक पशुओं के बन्धनकार शिवजी ही हैं।१४।

पाशैरेतैः पतिर्देवः कार्यं कारयति स्वकम्।
व्रतस्याज्ञया महेशस्य प्रकृतिः पुरुषोचिताम् ॥१५
बुद्धिं प्रसूते सा बुद्धिरहंकारमहङ्कृतिः।
इन्द्रियाणि दशैक च त मात्रापंचकं तथा ॥१६
शासनाद्देनदेवस्य शिवस्य शिवदायिनः।
तन्मात्राण्यपि तस्यैव शासनेन महीयसा ॥१७
महाभूतान्यशेषाणि भावयंत्यनुपूर्वशः।
ब्रह्मादीनां तृणान्तानां देहिनां देहसंगतिम् ॥१८
महाभूतान्यशेषाणि जनयथि शिवाज्ञया।
अध्यवस्यति वै बुद्धिरहंकारो भिमन्यते ॥१९
चित्तं चेतयते चापि मनः सङ्कल्पयत्यपि।
श्रोत्रादीनि च गृहणन्ति शब्दादान्विषयान् पृथक ॥२०
स्वानेव न न्यान्देवक्य दिव्येनाज्ञाबलेन बै।
वागादीन्यपि यान्यासस्तानि कर्मेन्द्रियाणि च ॥२१

इन पाशों से बाँध कर संसार का कार्य कराते हैं शिवाज्ञा से वह प्रकृति उचित।१५। बुद्धि को उत्पन्न करती है, उसी से अहंकार, दशों इन्द्रिय, मन, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध और पंच तन्मात्राऐं उत्पन्न होती हैं।१६। कल्याणदाता शिवजी की आज्ञा से तन्मात्रा भी उसी के द्वारा होती हैं।१७। तथा महाभूतों की उत्पत्ति यथाक्रम होती है, ब्रह्मा से तिनका तक सभी देहधारी हैं।१८। शिवाज्ञा से यह महाभूत सभी को उत्पन्न करते हैं, इसीलिए निश्चयात्मिका बुद्धि को अहंकार कहा गया है।१९। वह चित्त को चैतन्य करके मन को सङ्कल्पवान करती हुई श्रोता ओर शब्दादि को पृथक् ग्रहण करती है।२०। शिवाज्ञा से अपने ही बल से सभी वाणी आदि इन्द्रिय कर्मेन्द्रिय होती हैं।२१।

यथास्वं कर्म कुर्वन्ति नान्यत्किंचिच्छिवाज्ञया ।
शब्दादयोऽपि गृह्यन्ते क्रियन्ते वचनादयः ।२२
अविलध्या हि सर्वेषामाज्ञा शंभोर्गरीयसी ।
अवकाशमशेषाणां भूतानां संप्रयच्छसि ।२३
आकाशः परमेशस्य शासनादेव सर्वगः ।
प्राणाद्यैश्च तथा नामभेदैस्तबहिर्गमत् ।२४
विर्भति सर्वं शर्वस्य शासनेन प्रभजनः ।
हव्यं वहित देवानां कव्यं कव्याशिनामपि ।२५
पाकाद्यं च करोत्यग्निः परमेश्वरशासनात् ।
स जीवनाद्य सर्वस्य कुर्वत्यापस्तदातज्ञया ।२६
विश्वम्भरा जगन्नित्य धत्ते विश्वेश्वराज्ञया ।
देवान्पात्यसुरान् हन्ति त्रिलोकमभिरक्षति ।२७
आज्ञया तस्य देवेन्द्रा सर्वै र्देवैरलंध्यया ।
आधिपत्यमपां नित्य कुरुते वरुणः सदा ।२८

शिवाज्ञा से ही सब अपने-अपने कर्म को ग्रहण करते हैं ।२२। उन शिव की आज्ञा का उल्लंघन करने में कोई भी समर्थ नहीं है, वे सबसे अधिक बलवान् तथा सब प्राणियों को अवकाश देने वाले हैं ।२३। उन्हीं की आज्ञा से आकाश सर्वगामी है, प्राणादि से तथा नाम भेद से बाह्याभ्यन्तर विश्व को ।२४। शिवाज्ञा से वायु धारण करता है तथा देवताओं के हव्य और पितरों के का वहन करने वाला ।२५। और पाकादि का कर्ता अग्नि भी उन्हीं की आज्ञा से वर्तता है तथा जल भी उन्ही की आज्ञा से सम्पूर्ण विश्व को जीवन देता है ।२६। पृथ्वी भी उन्हीं की आज्ञा से नित्य प्राणियों को धारण करती है तथा देवताओं की रक्षा असुरों का सहारा और त्रैलोक का पालन होता है ।२७। उन्हीं की उल्लंघन न होने वाली आज्ञा से इन्द्र देवताओं का तथा वरुण जलों का स्वामित्व प्राप्त करते हैं ।२८।

पाशैर्बध्नाति च यथा दंडयांस्यस्यैव शासनात् ।
ददाति नित्यं यक्षेन्द्रोद्रविणंद्रविणेश्वरः ।२९

पुण्यानुरूपं भूतेभ्य पुरुषस्यानुशासनात् ।
करोति सपदः शश्वज्ज्ञानं चापि तुमेधसाम् ।३०
निग्रहं चाप्सासाधूनामीशानः शिवशासनात् ।
धत्ते तु धरणीं मूर्ध्वा शेषः शिवनियोगतः ।३१
यामाहुस्तामसीं रौद्रीं मूर्तिमंतकरीं हरेः ।
सृजत्यशेषमीशस्य शासनाच्चतुचदाननः ।३२
अन्याभितूर्तिभि स्वाभिः पाति चांते मिहन्ति च ।
विष्णुः पालयते विश्वं कालकालस्य शासनात् ।३३
सृजते त्रसते चापि स्वकाभिस्तनुभिस्त्रिभि ।
हरत्यते जगत्सर्व हरस्तस्यैव शासनात् ।३४
सृजत्यपि चविश्वात्मा त्रिधाभिन्नस्तुरक्षति ।
कालः करोति सकलं कालः संहरति प्रजाः ।३५

शिवाज्ञा से ही धर्मराज प्राणियों का, उत्पीडक मृतकों को यातनाऐं तथा धर्म त्यागने वालों को अनेक प्रकार के कष्ट देते हैं तथा विधि हीन कर्मों को निरन्तहर लेते और निशाचरों का अधिपत्य करते हैं, बन्धन योग्य प्राणियों को बाँध कर दण्ड देते हैं तथा उन्हीं की आज्ञा से कुवेर सबको धन प्रदान करते है ।२९। जिसका जैसा पुण्य है वैसा ही द्रव्य देते हैं, बुद्धिमानों को ऐश्वर्य तथा ज्ञान भी देन है ।३०। शिवाज्ञा से ईशान देव असाधुओं का निग्रह करते हैं और शेषजी पृथिवी को धारण करते हैं ।३१। जिस शिवमूर्ति को अन्तकरी तामसी मूर्ति कहते हैं, बसी के शासन में ब्रह्मा सम्पूर्ण विश्व की रचना करते हैं ।३२। इस प्रकार अपनी तीन मूर्तियों से रक्षा, सृष्टि और विनाश करते हैं तथा अपने देह से प्रकट करके ग्रस लेते है और उन्हीं के शासन में अन्त में विश्व का हरण कर लेते हैं ।३३। वह विश्वात्मा सृष्टि करके तीन रूप में विश्व की रक्षा करते, यह सब काल करता और काल ही संहार करता है ।३५।

कालःपालयते विश्वं कालकालस्यशासनात् ।
त्रिभिरशैर्जगद्बिभ्रत्तेजोभिर्वृष्टिमादिशन् ।३६

दिवि वर्षत्यसौ भाद्रदैवदेस्य शासनात् ।
पुष्णात्योषधिजायानि भूतान्याह्लादयष्यपि ॥३७
देवैश्च पीयते चन्द्रश्चचन्द्रभूषणशासनात् ।
आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनो मरुतस्तथा ॥३८
खेचरा ऋषयः सिद्धा भोगिनी मनुजा मृगाः ।
पशवः पक्षिणश्चैव कीटाद्याः स्थावराणि च ॥३९
नद्यः समुद्राः गिरयः काननानि सरांसि च ।
वेदाः सांगाश्च शास्त्राणि मंत्रस्तोममखादयः ॥४०
कालाग्न्यादिशिवांतानि भुवनानि सहाधिपैः ।
ब्रह्माण्डान्यप्यसख्यानि तेषामावरणानि च ॥४१
वर्तमानान्यतीतानि भविष्यन्त्यपि कृत्स्नश ।
दिशश्च विदिशश्चैव कालभेदाः कलादयः ॥४२

काल के शासन से काल ही विश्व का पालन करता, काल ही ग्रहण करता तथा तीन अंशों से विश्व को धारण कर तेज से वर्षा करता है ।६। सूर्य रूप होकर शिवाज्ञा मानता और सब औषधियों को पुष्ट कर प्राणियों को प्रसन्न करता है ।३७। शिवाज्ञा से यह चन्द्रमा देवताओं द्वारा पान किया जाता तथा आदित्य, वसु, रुद्र, अश्विनीकुमार और मरुद्गण ।३८। खेचर, ऋषि, सिद्ध नाम मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट आदि स्थावर जीव ।३९। नदी, समुद्र, वन, पर्वत सरोवर, अङ्गों सहित वेद-शास्त्र, मन्त्र और स्तोम यज्ञ ।४०। तथा कालाग्नि से शिव पर्यन्त अधिपतियों सहित भुवन, असंख्य ब्रह्माण्ड तथा उनके आवरण ।४१। भूत, भविष्यत, वर्तमान, दिशा, विदिशा तथा काल के भेद और कला आदि ।४२।

यच्च किंचिज्जगत्यस्मिन् दृश्यते श्रूयतेऽपि वा ।
तत्सर्वं शङ्करस्याज्ञा बलेन समधिष्ठितम् ॥४३
आज्ञाबला त्तत्रधरा स्थितेह धराधरा वारिधरा समुद्रा ।
ज्योतिर्गणा शक्रमुखाश्च देवाः स्थिरे ।
चिर वा चिदचिद्यदस्ति ॥४४
अत्याश्चर्यमिदं कृष्ण शंभोरमितकर्मणः ।

आज्ञाकृत शृणुष्वैतच्छ्रुतं श्रुतिमुखे मया ।।४५
पुरा किल सुराः सेंदा विवदंतः परस्परम् ।
असुरान्समरे जित्वा जेताऽहमहमित्युत ।।४६
तदा महेश्वरस्तेषां मध्यतो वरवेषधृक् ।
स्वक्षणर्णैर्विहीनांग स्वयं क्षय इवाभवत् ।।४७
स तानाह सुरानेकं तृणमादाय भूतले ।
य एतद्विकृत कर्तुं क्षमते स तु दैत्यजित् ।।४८
यक्षस्य वचन श्रुत्वा वज्रपाणिः शचीपतिः ।
किं चत्क्रुद्धा विहस्यैनं तृणमादातुमुद्यतः ।।४९

इस विश्व में जो कुछ भी देखा सुना जाता है, वह सब शिवाज्ञा के प्रभाव से ही स्थित है ।४२। यह पृथिवी भी उन्हीं की आज्ञावश स्थित है, पर्वत, मेघ, समुद्र ज्योतिर्गण, इन्द्रादि देवता तथा चराचर जगत् उन्हीं की आज्ञा के वशवर्ती हैं ।४४। उपमन्यु ने कहा भगवान् शिव के चरित्र अत्यन्त आश्चर्यप्रद हैं। उनके मित अमित कार्यों को वेदादि के द्वारा मैंने सुना, वह तुम श्रवण करो ।४५। इन्द्र के सहित देवगण ने दैत्यों को जीत कर परस्पर विवाद किया कि हमने जीती ।४६। तब उनके मध्य अति उत्तम यक्षराज के वेश को धारण किये महेश्वर वाले ।४७। उन्होंने पृथिवी में एक तिनका रखकर कहा—जो इस तिनके को चलायमान करदे उसी ने दैत्यों को जीता ।४८। उनकी बात सुनकर वज्री इन्द्र क्रुद्ध हँसे और उस तिनके को उठाने की चेष्टा करने लगे ।४९।

न तत्तणमुपादातुं मनसाऽपि च शस्यते ।
यथान्तथापि तच्छेत्तुं वज्र वज्रधरोऽसृजत् ।।५०
तद्वज् निजवज्रेण समृष्टिमिवं सर्वतः ।
तृणेनाभिहत तेन तिर्यगग्र पपात ह ।।५१
ततश्चान्ये सुसरब्धा लोकपाला महाबलः ।
सभृजुस्तृणमुद्दिश्य स्वायुधानि सहस्रशः ।।५२
प्रजज्वाल महावह्निः प्रचण्डः पवनो ववौ ।

प्रवृद्धोऽपांपथियँद्वत्प्रलये समुपस्थिते ।५३
एवं देवै समारब्ध तृणमुद्दिश्य यत्नतः ।
व्यर्थमासीदहो कृष्ण यक्षस्यात्मबलेन वै ।५४
तदाह यक्षं देवेन्द्र को भवानित्यमर्षित ।
ततः स पश्यतामेव तेषामंतरधादथ ।५५
तदंतरे हैमवती देवी दिव्यविभूषणा ।
आविरासीन्नभोरंगे शोभमना शुचिस्थिता ।५६

परन्तु वे मन से भी उसे उठाने में समर्थ न हुए तो उसे काटने के लिए इन्द्र ने वज्र मारा ।५०। परन्तु वह, तिन के रूप वज्र से तिरस्कृत होगया और उसके तेज को सहन न कर पृथिवी पर जा गिरा ।५१। उसी प्रकार अन्य महावली लोकपालों ने भी अपने-लपने हजारों आयुध उस तिनके पर चलाये ।५२। उस समय भीषण अग्नि जल उठी, भयंकर पवन चलने लगा और प्रलयकाल उपस्थित होने के समान समुद्र उमड़ पड़ा ।५३। इस प्रकार उसे तिनके के किया गया देवताओं का सब पराक्रम विरर्थक होगया ।५४। तब इन्द्र ने सहनशीलता त्यागकर यक्षराज से पूछा कि तुम कौन हो ? उसी समय यक्षराज अन्तर्धान होगये ।५५।तभी दिव्या भूषण धारण किये अत्यन्त शोभा धारण किये अत्यन्त गोभा वाली एक स्वर्णमयी देवी मन्द-मन्द मुसकाती हुई आकाश में प्रकट हुई ।५६।

तां दृष्ट्वा विस्मयाविष्टा देवा शक्रपुरोगमा ।
प्रणम्य यक्ष प्रपच्छ कोऽसौ यक्षौ विलक्षण ।५७
साऽब्रवीत्सस्मितं देवी स युष्माकमगोचर ।
येनेदं भ्रम्यते चक्रं संसाराख्यं चराचरम् । ५८
तेनादौ क्रियते विश्वं तेन सह्रियते पुनः ।
न तन्नियन्ता कश्चित्स्यात्तैन सर्वं नियम्यते ।५९
इत्युक्त्वा महादेवी तत्रैवातरधत्त वै ।
देवाश्च विस्मिता सर्वे तां प्रणम्य दिवं ययु ।६०

उसे देखकर इन्द्रादि देवताओं को बड़ा आश्चर्य हुआ और वे उस देवी को प्रणाम कर पूँछने लगे कि वह यक्ष कौन था ? ।५७। तब देवी ने हँसकर उत्तर दिया कि वह तुम्हारी इन्द्रियों को दिखाई नहीं दे सकता यह जो संसार रूपी चक्र चराचर से सम्पन्न होकर घूमता हैं ।५८। इसकी रचना तथा अन्त में संहार वही करता है, उसके लिए कोई नियम नहीं है, परन्तु वह सभी का नियामक है।५९। इतना कहकर वह शिवा वहीं अन्तर्धान हो गई और सब देवगण उसे प्रणाम कर स्वर्गलोक को गये ।६०

॥ समस्त जगत् शिवमय है ॥

शृणु कृष्ण महेशस्य शिवस्य हरमात्मनः ।
मूर्त्यात्मिभिस्ततं कृत्स्न जगदेतच्चराचरम् ।१
स शिवः सर्ममेवेदं स्वकीयाभिश्च मूर्तिभिः ।
अधितिष्टत्यमेयात्या ह्येतत्सर्वमनुस्मृतम् ।२
ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रो महेशान सदाशिवः ।
मूर्त्तयस्तस्य विज्ञेया याभिर्दिश्वमिदं ततम् ।३
अथाऽन्याश्चापि तयव पञ्च ब्रह्मसमाह्वया ।
तनूभिस्ताभिरव्याप्तमि किंचिन्न विद्यते ।४
ईशान पुरुषोऽघोरो वामः सद्यस्तथैव च ।
ईशानाख्या तु या तस्य मूर्तिराद्या गरीयसी ।
भोक्तारं प्रकृतेः साक्षात्क्षेत्रज्ञमधितिष्ठति ।६
स्थाणोस्त पुरुषाख्या या मूर्तिमूर्तिमतः प्रभोः ।
गुणाश्रयात्मच भोग्यतव्यक्ममधितिष्ठति ।७

महात्मा उपमन्यु ने कहा—हे कृष्ण ! उन परमेश्वर शिव की मूर्ति यह चराचर विश्व जिस प्रकार व्याप्त हो रहा हैं,वह सुनो ।१। यह शिव ही अपनी मूर्तियों से अधिष्ठित होकर जो कुछ भी है, उसका जानने वाला है ।२। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, महेशान, शिव यह सब उसी की मूर्ति है, उन्हीं से सम्पूर्ण विश्व विस्तार को प्राप्त है ।३। शिवजी की पञ्च ब्रह्मा मूर्ति से सम्पूर्ण विश्व व्याप्त हैं ।४। ईशान, पुरुष, घोर, वामदेव

और सद्याजात यह उनकी पञ्चमूर्ति विश्व-विख्यात है ।५। उनकी ईशान नामक मूर्ति प्रकृति की भोक्ता होकर क्षेत्र में स्थित है ।६। सत्पुरुष नामक स्थाणु की मूर्ति गुणाश्रय होकर भोगती है, वह अव्यक्त में स्थित है ।७।

धर्माद्यष्टाङ्गसंयुक्तं बुद्धितत्वं पिनाकनः ।
अधितिष्ठत्यघोराख्या मूर्त्तिरत्यंपूजिता ।।८
वामदेवाह्वयां मूर्त्ति महादेव वेधसः ।
अहंकृते धिष्ठात्रीमाहुरागमवेदिनः ।।९
सद्योजाताह्वयां मूर्त्ति शम्भोरमितवर्चसः ।
मनसः समधिष्ठात्रीं मनिमंत प्रचक्षते ।।१०
श्रोत्रस्य वाच शब्दस्य विभोर्व्योम्नस्तथैव च ।
ईश्वरीमीश्वरस्येमाशाख्यां हि विदुबुंधाः ।।११
त्वक्पाणिस्पर्शवायनामीश्वरीं मूर्तिमैश्वरीम् ।
पुरुषांख्यं विदु सर्वे पुराणार्थविशारदाः ।।१२
चाक्षुषश्चरणस्यापि रूपस्याग्नेस्तथैव च ।
अघोराख्यामधिष्ठात्री मूर्तिमाहूर्मनीषिणः ।।१३
रसनायाश्च पयोश्च रसस्यापां तथैव च ।
ईश्वरीं वामदेवाख्यां मूर्त्ति तन्निरतां विदुः ।।१४

अघोर मूर्ति शिव के बुद्धित्व में पूजित है तथा धर्मादि अष्टाङ्ग से युक्त होकर स्थित हैं ।८। विधाता या वामदेव नामक शिव-मूर्ति को शास्त्रज्ञ जन अहंकार में स्थित रहने वाली कहते हैं ।९। शिव की सद्योजात मूर्ति ज्ञानीजन मनमें स्थित होने वाली बताते हैं ।१०। श्रोत्र, वाणी, शब्द और आकाश की विभु तथा सबकी ईश्वर मूर्ति को ज्ञानियों ने, 'ईशान' कहा है ।११। त्वचा, हाथ, स्पर्श और वायु की अधीश्वरी मूर्ति को पुराणवेत्ताजन 'पुरुष' कहते हैं ।१२। चक्षु चरण और अग्नि की अधीश्वरी मूर्ति को विद्वानों ने अघोर कहा है ।१३। रसना, वायु, रस और जल की अधीश्वरी मूर्त्रि की उसके ज्ञाताओं ने 'वामदेव' कहा है ।१४।

घ्राणस्य चैवोपस्थस्य गन्धस्य चं भुवस्तथा ।
सद्योजाताह्वया मूर्ति मीश्वरीं संप्रचक्षते ।।१५

मूर्तयः पंच देवस्यं वन्दनीयाः प्रयत्नतः ।
श्रेयोर्थिभिर्नरैर्नित्यं श्रेयसामेकहेतवः ॥१६
तस्य देवादिदेवास्य मूर्त्यष्ठकमय जगत् ।
तस्मित्व्याप्य स्थित विश्वमूत्रे मणिगणा इव ॥१७
शर्वो भवस्तथा रुद्रा उग्रो भोमः पशोः पतिः ।
ईशानाश्च महादेवो मूर्तयश्चाष्ट विश्रुताः ॥१८
भूम्यभोऽग्निमरुद्व्योमक्षेत्रज्ञार्कनिशाकराः ।
अधिष्ठिता महेशस्य सर्वाद्यैरष्टमूर्त्तिभिः ॥१९
चराचरात्मक विश्वं धत्तै विश्वं भरात्मिका ।
शार्वी शर्वाह्वया मूर्तिरिति शास्त्रस्य निश्चयः ॥२०
संजीवनं समस्मस्य जगतः सलिलात्मिका ।
भावीति गीयते मूर्तिर्भवस्य परमात्मनः ॥२१

घ्राण, उपस्थ गन्ध और पृथिवी की औश्वरी मूर्ति 'सद्योजात' नाम वाली कही गई ।१५। देवदेव की यह पाँचों मूर्ति यत्नपूर्वक कथन करे मङ्गल की कामना करने वाले पुरुषों को यह सदा मङ्गल प्रदान करने वाली है ।१६। उन देवाधिदेव शिव की यह अष्ट मूर्तिमय है, जैसे धागे में मणि पिराई हुई रहती है, वैसे ही यह विश्व उनमें संयुक्त है ।१७। उनकी आठ मूर्तियां— शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति ईशान और महादेव है ।१८। पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, व्योम क्षेत्रज्ञ, अर्क और चन्द्रमा-शिवजी की यह आठों मूर्ति कल्पित है ।१९। चराचरात्मक विश्व को यह पृथिवी धारण करती है शास्त्र का निर्णय है कि यह शिवात्मक मूर्ति है ।२०। इस सम्पूर्ण विश्व का जीवन जलात्मक है, परमेश्वर शिव की मूर्ति भावी कही जाती है ।२१।

वहिरंतर्गताद्विश्वं व्याप्य तेजोमयी शुभा ।
रौद्रीरुद्रस्य या मूर्तिरास्थिता घोररूपिणा ॥२२
स्पदयत्यनिलात्मेद बिभर्ति स्पदते स्वयम् ।
औग्रीति कथ्यते सद्भिर्मूर्तिरुपस्य वेधसः ॥२३

सर्वावकाशदा सर्वव्यापिका गगनात्मिक ।
मूर्तिर्भीमस्य भीमाख्या भूतवन्दस्य भेदिका ।२४
सर्वात्मनामधिष्टात्री सर्वक्षेत्रनिवासिनी ।
मूर्तिः पशुपतेर्ज्ञेया पाशुपाशनिकृन्तनी ।२५
दीपयन्ती जगत्सर्वं दिवाकरसमाह्वया ।
ईशानाख्या महेशस्य मूर्तिर्दिवि विसर्पति ।२६
आप्याययति यो विश्वममृतांशुर्निशाकरः ।
महादेवस्य सा मूर्तिर्महादेवसमाह्वया ।२७
आत्मा तस्याष्टमी मूर्तिः शिवस्य परमात्मनः ।
व्यापिकेतरमूर्तीनां विश्वं तस्माच्छिवात्मकम् ।२८

बाह्याभ्यन्तर विश्व को व्याप्त कर उसकी तेजोमयी शुभ मूर्ति तथा घोर रूप रौद्र मूर्ति है ।२२। सम्पूर्ण विश्व का स्पन्दन करने वाला वायु इसका भरण-पोषण करता है और उसकी उग्र मूर्ति 'उग्र' कहलाती है । उनकी आकाशात्मक मूर्ति सबको अवकाश देने वाली है तथा सब प्राणियों को भयदायक भीम मूर्ति है ।२४। जो सब क्षेत्रवासियों के अन्तःकरण में सर्वात्म रूप से स्थित है, वह पशुपति मूर्ति सब जीवों के पाश को काटने वाली है ।२५। सूर्य रूप से वे सम्पूर्ण विश्व को प्रकाशित करते हैं ईशान नामक शिव मूर्ति स्वर्ग में चलने वाली है ।२६। विश्व को अपनी चाँदनी से तृप्त करने वाली उनकी चन्द्र मूर्ति है, वह महादेव संज्ञा वाली है ।२७। शिव की व्यापक मूर्ति इनमें आठवी है, यह इतर मूर्ति से अधिक व्यापक होने के कारण शिवात्मक हैं ।२८।

वृक्षस्य मूलसेकेन शाखाः पुष्यन्ति मै यथा ।
शिवस्य पूजया तद्वत्पुत्यष्यस्य बपुर्जगत् ।२९
सर्वाभयप्रदानं च सर्वाग्रहण तथा ।
सर्वोपकारकणं शिवस्याराधनं विदुः ।३०
यथेह पुत्रपौत्रादेः प्रीत्या प्रीतो भवेत्पिता ।
तथा सर्वस्य संप्रीत्या प्रीतो भवति शङ्कर. ।३१

देहिनो यस्य कस्यापि क्रियते यदि निग्रह ।
अनिष्टमष्टमूर्तेस्तत्कृतमेव न संशयः ।३२
अष्टमूर्त्यातमना विश्वमधिष्ठाय स्थितंशिवम् ।
भजस्व सर्वभावेन रुद्रं परमकाहणम् ।३३

वृक्ष की जड़ को सीचने से जैसे शाखाऐं फूलती-फलती है, वैसे ही शिव का पूजन रूप अभिषेक करने से देहमय विश्व की पुष्टि होती है ।२९। सबको अभयदान तथा सबके लिए अनुग्रह का विधान करने वाला, सम्पूर्ण उपकारों का कारण भगवान् शिव का अराधना ही है ।३०। जैसे पुत्र—पोत्रादि के सुख से पिता प्रसन्न होता है, वैसे ही सबकी प्रीति से शिव प्रसन्न होते हैं ।३१। किसी भी देहधारी का निग्रह करना, शिव की अष्टमूर्ति का ही निग्रह करना है ।३२। इस प्रकार अष्टमूर्ति से सम्पूर्ण विश्व को व्याप्त करके स्थित हुए परम कारण रूप भगवान् शिव का सर्व भाव से भजन करना ही श्रेयस्कर है ।३३।

।। जीव पशु हैं ओर शिव जगतपति ।।

विग्रह देव देवस्य विश्ववमेतच्चराचरन् ।
तदेव न विजानति पशवः पाशगौरवात् ।१
तमेकमेव वहुधा वदन्ति यदुनन्दन ।
अजानन्तः परं भावमविकल्प महर्षयः ।२
अपरं ब्रह्मरूपं च परं ब्रह्मात्मक तथा ।
केचिदाहुमहादेवमनादिनिधनं परम् ।३
भूतेन्द्रियांत करणप्रधानविषयात्मकम् ।
अपरं व्रह्म विर्दिष्टं पर ब्रह्मचिदात्मकम् ।४
वृहत्वाद्वृंहणत्वाद्वा ब्रह्म चेत्तभिधीयते ।
उभये ब्रह्मणो रूपे ब्रह्मणोऽधिपतेः प्रभो ।
विद्याविद्यास्वरूपीति कैश्चिदीशो निगद्यते ।३
विद्या तु चेतनां प्राहुस्तथाविद्यामचेतनाम् ।
विद्याविद्यात्मकं चैव विश्वगुरोर्विभोः ।६

रूपमेव न सन्देहो विश्वं तस्य वशे यत: ।
भ्रांतिर्विद्या पसा चेति शार्वं रूपं परविदु: ॥७

उपमन्यु ने कहा—यह चराचर जगत् उन्ही देवदेव शिव का निग्रह है, पाश में बँधे हुए जीव उन्हें नहीं जानते ।१। हे कृष्ण ! उस एक का ही अनेक प्रकार से वर्णन किया जाता है ।२। अपर ब्रह्म स्वरूप ही पर ब्रह्म है, उसी को महादेव, अनादि, निधन कहा जाता है ।३। भूतेन्द्रिय अन्तःकरण प्रधान विषयात्मक अपर ब्रह्म हीपर ब्रह्मात्मक एवं विदात्मक है ।४। नहीं वृहत् और वृहण होने के कारण परम संज्ञक है, वे दोनों ब्रह्म के ही रूप हैं, उन्हें कोई विद्या-अविद्या रूप ईश्वर कहते हैं ।५। विद्या चेतना और अविद्या अचेतना है, विश्व गुरु का यह विद्या, अविद्या तथा अविद्यात्मक स्वरूप है ।६। यह उसी का स्वरूप है, इसमें सन्देह नहीं है, उसी के वंश में संसार स्थित है तथा यह सभी शिव का रूप है ।७।

अयथाबुद्धिरर्थेषु बहुधा भ्रांतिरुच्यते ।
यथार्थाकारसंवित्तिर्विद्याति परिकीर्तये ॥८
विकल्परहितं तत्वं परमित्यभिधीयते ।
वैपरीत्यदच्छब्द: कथ्यते वेदवादिभि: ॥९
तयो पतित्वात्तु शिव: सदसस्पतिरुच्यते ।
चराक्षरात्मक प्राहु: क्षराक्षरपर परे ॥१०
क्षर: सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ।
उभे तेपरमेशस्य रूपे तस्य वशे पत: ॥११
तयो: पर: शिव: शान्त:क्षाराक्षरपर: स्मृत: ।
समष्टिव्यष्टिरूप च समष्टिव्यष्टिकारणम् ॥१२
वन्दनि मुनय: केचिच्छ्रव परमकारणम् ।
समष्टिमाहुरव्यक्त व्यष्टि व्यक्त तथैव च ॥१३
ते रूपे परमेशस्य तदिच्छाया प्रवर्तनात् ।
तयो: कारणभावेन शिवं परमकारणम् ॥१४

अर्थों में अयथार्थ बुद्धि होने को ही भ्रान्ति कहा है, अर्थाकार सवित्ति

को विद्या कहा गया है ।८। तत्वपद विकल्प रहित है तथा इसके विपरीत तत्व को वेदवादियों ने असत् कहा है ।९। सत्पुरुष सत्य और साधु में सत् शब्द प्रयुक्त करते हैं, इससे विपरीत असत् है तथा सत्-असत् वाला यह विश्व उस परमेष्ठी का देह है और सत् असत् के पति होने से शिव को सत्-असत् के पति और क्षर-अक्षरात्मक कहते हैं, परन्तु वह क्षर अक्षर से भी है ।१०। सभी प्राणी क्षर (नाशवान्) हैं, कूटस्थ को अक्षर कहा है, यह दोनों ही उस परमेश्वर के आधीन हैं ।११। उससे परे शान्त शिव को क्षराक्षर से कहा है तथा समष्टि व्यष्टि रूप समष्टि का कारण है ।१२। कोई शिव के परम कारण कहते हैं तथा समष्टि अव्यक्त और व्यष्टि को व्यक्त बताते हैं ।१३। ईश्वरेच्छा से यह दोनों स्वरूप उसी के हैं, उनका कारण न होने से शिव परम कारण हैं ।१४।

कारणार्थविदः प्राहुः समष्टिव्यष्टिकारणम् ।
जातिव्यक्तिस्वरूपीति कथ्यते केश्चिदाश्वरः ।।१५
या पिण्डेप्यनुवर्तत सा जातिरिति कथ्यते ।
व्यक्तिर्व्यावृत्तिरूप त पिंडजात समाश्रयम् ।।१६
जातयो व्यक्तयश्चैव तदाज्ञापरिपालिताः ।
यतस्ततो महादेवा जातिव्यक्तिवपुः स्मृतः ।।१७
प्रधानपुरुषव्यक्तकालात्मा कथ्यते शिवः ।
प्रधान प्रकृतिं प्राहुः क्षेत्रज्ञ पुरुष तथा ।।१८
त्रयोविंशतितत्वानि व्यक्तमाहुर्मनीषिणः ।
कालः कार्यप्रपचस्य परिणामैककारणम् ।।१९
एषामीशोऽधिपो प्राता प्रवर्तकनिवर्तकः ।
आविर्भावतिरोभावसेतुरेकः स्वराजडजः ।।२०
तस्मात्प्रधानपुषव्यक्तकालस्वरूपवान् ।
हे तु नेताऽधिपस्तेषां धाता भोक्तो महेश्वरः ।।२१

कारण के जानने वालों ने समष्टि-व्यष्टि को करण कहा है। कोई ईश्वर, जाति और व्यक्ति स्वरूप बताते हैं ।१५। पिण्डोंमें वर्तने वाली को

जाति कहा है वह व्यक्ति आवृत्ति रूप सभी पिन्ड जाति में स्थित है ।१६। जाति और व्यक्ति उसी की आज्ञा के वश है, इसलिए शिव को जाति और व्यक्ति को स्वरूप वाले कहा गया है ।१७। प्रधान पुरुष व्यक्त और कलात्मा शिव हैं,प्रधान प्रकृति है तथा पुरुष क्षेत्रज्ञ है ।१८। तेईस तत्वों का नाम व्यक्त बताया है, कार्यकाल के प्रपंच के परिणाम का एक ही कारण है ।१९। यही ईश्वर प्रवर्तन और निवर्तन करता है तथा यही आविर्भाव और तिरोभावका एक कारण हैं ।२०। इसलिए प्रधान,पुरुष काल-स्वरूपात्मक है, उसका कारण तथा अधिपति एक शिव ही है ।२१।

त्रिराड्हिरण्यगर्भात्मा कैश्चदीशो निगद्यते ।
हिदण्यगर्भो लोकानां हतुर्विश्वात्मको विराट् ।२२
अन्तर्यामी परश्चे तिकथ्यते कविभिः शिवः ।
प्राज्ञस्तै जसविश्वात्मेत्यपरे यप्रचक्षते ।२३
तुरीयमपरे प्राहुः सौम्यमेव परे विदुः ।
माता मान च मेयं चंति चाहुरथापरे ।२४
कर्ता क्रिया च कार्य्यं च कारणं परे ।
जाग्रत्स्वनसुषुप्त्यापरे सप्रचक्षते ।२५
तुरीयमपरे प्राहुस्तुर्यातीतमितीपरे ।
तमाहुर्विगुणं केचिद्गुणंवतं परे बिदुः ।२६
केतिचसंसारिण प्राहुस्तमः संसारिण परे ।
स्वतन्त्रमपरे प्राहुरस्वतन्त्रं परे विदुः ।२७
घोरमित्यपरे प्राहुः सौम्यमेव परे विदुः ।
रागवन्तं परे प्राहुर्वीतरागं तथापर ।२८

कोई कहते हैं कि विराट हिरण्यर्भात्मा ईश्वर हैं. क्योंकि ब्रह्मलोक का विश्वात्मा विराट् ही है ।२२। कवियों ने अन्तर्यामी और पर को शिव कहा है, कोई प्राज्ञ तेज से विश्वात्मा बतलाते हैं ।२३। कोई तुरीय और कोई सौम्य कहते हैं, किसी ने उसे माता, मान, मेय तथा मति कहा है ।२४। कोई कर्ता, क्रिया, कारण, कारण तथा कोई जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति

वाला कहते हैं।२५। किसी ने तुरीय, किसी ने तुर्यातीत कहा हैं, कोई निर्गुण तथा कोई सगुण कहते हैं।२६। कोई संसारी, असंसारी, स्वतन्त्र तथा कोई अस्वतन्त्र कहते हैं।२७। किसी ने घोर सौम्य तथा किसी न रागी और किसी ने विरागी कहा हैं।२८।

निष्क्रियं च परे प्राहुः सक्रिय चेतरे जनाः।
निरिद्रियं परे प्राहुः सेंद्रियं च तथापरे।२९
ध्रुवमित्यपरे प्राहुस्तध्रुवमितोरे।
अरूप कुचिदाहुर्वे रूपवन्तं परे विदुः।३०
अदृश्यमपरे ग्राहुदृश्यमित्यपरे विदुः।
वाच्यमित्यररे प्राहुरवाच्यमिति चापरे।
शब्दामकं परे प्राहुः शब्दायीतमथाहरे।३१
केचिच्चिन्तामयं प्राहुश्चिन्तया रहित परे।
ज्ञातात्मक परे प्राहुर्विज्ञानामिति चापरे।३२
केचिज्ज्ञेयमिति प्राहुरज्ञेयमिति केचन।
परमेके तमेवाहुरपर च तथापरे।३३
एवं विकल्प्यमान तु याथात्म्यं परमेष्टिनः।
नाध्यवस्यति मुनयो नाना प्रष्ययकारणात्।३४
यैः पुनः सर्वभावेनः प्रपन्नाः परनेश्वरम्।
ते हि जानंत्ययत्नेन शिव परमकारणम्।३५
यावपशर्नेव पश्यत्यनीश कवि पुराण भुवनस्येशितारम्।
तायद्दु के वर्तते बद्धपाशः संसारेऽस्मिश्चक्रनेमिमै।३६
यवा पश्यः पश्यते रुक्मवर्ण कर्तारनीश पुरुषं ब्रह्मयोनिम्।
तदा विद्वान्पुन्नपापे विधूय निरंजनः पूरसमुपैति साम्यम्।३७

कोई क्रिया-रूप कोई निष्क्रिय, कोई इन्द्रिययुक्त और कोई इन्द्रिय रहित कहते है।२९। कोई चल, कोई अचल, रूप-रहित और कोई रूपवान् कहते हैं।३०। किसी ने उन्हें दृश्य कहा है, कोई अदृश्य बताते हैं, कोई वाच्य, अवाच्य शब्दात्मक तथा कोई शब्द से परे कहते हैं।१।

किसी ने चिन्तायुक्त और किसी ने अचिन्तायुक्त कहा है, कोई ज्ञान रूप और कोई विज्ञान रूप कहते हैं।३२। कोई ज्ञेय, कोई अज्ञेय कोई एक और कोई अनेक बताते हैं।३३। इस प्रकार उस परमेष्ठी की अनेक प्रकार से कल्पना की गई है और अनेक प्रकार के विश्वास के कारण मुनिजन भी यथार्थ निर्णय करने में समर्थ नहीं है।३४। परन्तु जो सर्वभाव से उन परमेश्वर शिव की शरण को प्राप्त हो चुके हैं, वे विना किसी यत्न के ही उन परम कारण को जान लेते हैं।३५। जब तक यह प्राणी संसार को वश करने वाले पुराण-पुरुष परमेश्वर के दर्शन नहीं करता, तब तक पाश में बँधा रहकर चक्रनेमि के समान घूमता रहता है।३६। और जब वह विश्वकर्त्ता हिरण्यगर्भ ईश्वर के ब्रह्म के दर्शन करता है तब पुण्य-पाप को दूर करके शिवजी के तादात्म्य को पाता है।३७।

॥ युगों में शिव के योगावतार ॥

युगावर्तेषु सर्वेषु योगाचार्यच्छलेन तु।
अवतारान्हि शर्वस्य शिष्यांश्च भगवन्वद ॥१
श्वेतः सुतारो मदनः सुहोत्र एक एव च।
लौगाक्षिश्च महामायो जैगीषव्यस्तथैव च ॥२
दधिवाहश्च ऋषभो मुनिरुग्रोऽत्रिरेव च।
सुपालको गौतमश्च तथा वेदशिरा मुनिः ॥३
गोकर्णश्च गुहावासी शिखंडी चापरः स्मृत।
जटामासी चाटहासो दारुको लांगली तथा ॥४
महाकालश्च शूली च दंडी मुण्डीश एव च।
सविष्णुः सोमशर्मा च लकुटीश्वर एव च ॥५
एते वाराहकल्पेऽस्मिन्सप्तमयांतरे मनो।
अष्टाविंशतिसंख्याता योगाचार्या युगक्रमात् ॥६
शिष्याः प्रत्येकमेतेषां चत्वारः शांतचेतसः।
श्वेतादयश्च रुष्यान्तास्तान्प्रवीमियथाक्रमम् ॥७

श्रीकृष्ण ने कहा—सब युगों के प्रारम्भ में योगाचार्य के छल वाले

शिवजी के अवतार और उनके शिष्यों का वृतान्त सुनाइये ।१। उपमन्यु ने कहा—श्वेत, सुतार, सुहोत्र, मदन, कक, लौगाक्षि, महामाय, जैगीषव्य ।२। दधिवाह, ऋषभ, मुनि, उग्र, अत्रि सुबालक, गौतम, वेदशिरा ।३। गोकर्ण, गुहावासी, जटामाली, शिखण्डी, अट्ठाहास, लांगली व दारुक ।४। महाकाल, शूली, दण्डी, मुण्डी, सहिष्णु नकुलीश्वर और सोम शर्मा ।५। यह सब वैवस्वतमनु के वाराहकल में हुए। युगों के क्रम से यह योगाचार्य अट्ठाईस हुए हैं ।६। एक-एक के चार-चार शिष्य हुए, शान्त से रुष्ब पर्यन्त सभी शिष्मों को कहता हूँ ।७।

श्वेतः श्वेतशिखश्चैव श्वेताश्चः श्वेतलोहितः ।
दुन्दुभिः शतरूपश्च ऋचीकः केतुमास्तथा ।।८
विकोशश्च विकेशश्च विपाशः पाशनाशनः ।
सुमुखो दुर्मुखश्चैव दुर्गमा दुरतिक्रमः ।।९
सनत्कुमारः सनक सनन्दश्च सनातनः ।
सुधामा विरजाश्चैव शखच्चांडज एव च ।।१०
सारस्वतश्च मेघश्च मेधवाहः सुवाहकः ।
कपिलाश्चासुरिः पञ्चशिख बाष्कल एव च ।।११
पराशरश्च गर्गश्च भार्गवश्चांगिरास्तथा ।
बलबन्धुर्निरामित्रः केतुश्रृंगस्तपोधन ।।१२
लवोदश्च लवश्च लम्वात्मा लबकेशकः ।
सर्वज्ञः समबुद्धिश्च साध्यीसद्धिस्तथैव च ।।१३
सुधाता कश्यचैपश्च वसिष्ठो विरजास्तथा ।
अत्रिरुग्रो गुरुश्रेष्ठः श्रवणोऽथ श्रविष्ठक ।।१४

श्वेत, श्वेतशिख, श्वेताश्च, श्वेतलोहित, शतरूपा, ऋचीक, दुन्दुभि केतुमान ।८। विकोश, विकेश, विपाक, पाशनाशन दुर्मुख, सुमुख. दुर्दम, दुरतिक्रम ।९। सनक, सनन्दन, सनत कुमार, सनातन सुधामां, शंखपाद, विरज, वैरज ।१०। सारस्वत, मेध, मेघवाह, कपिल आसुरी पचतिखा, बाष्कल ।११। पराशर, गर्ग, भार्गव, अंगिरा, बलवन्धु, निरामित्र, केतु,

श्रृंश, तपोधन ।२। लम्बोदर, लम्बाक्ष, लम्बकेश, सर्वज्ञ, समुबुद्धि, साध्यबुद्धि ।१३। सुधामा, कश्यप, वसिष्ठ, वरिज, अत्रि, उग्र, गुरु, श्रेष्ठ, श्रवण, श्रविष्ठक ।१४।

कुणिश्च कुणिवाल्श्च कुशरीरः कुनेत्रकः ।
काश्यपो ह्युशनांश्चैव च्यवनश्च बृहस्पति ॥१५
अतथ्यो वामदेवश्च महाकालो महाऽनिलः ।
वाचःश्रवाः सुवीरश्च श्यावश्च यतीश्वरः ॥१६
हिरण्यनाभः कौशल्यो लोकाक्षिः कुथुमिस्तथा ।
सुमन्तुर्जैमिनिश्चैव कुबन्धः कुशकन्धरः ॥१७
प्लक्षो दार्भायणिश्चैव केतुमान्गौतमस्तथा ।
भल्लवी मधुपिंगश्च श्वेतकेतुस्तथैव च ॥१८
उशिजो बृहदवश्च देवलः कविरेव च ।
शालिहोत्रः सर्वेषश्च युवनाश्चः शरद्वसः ॥१९
अक्षपादः कणादश्च उलूकी वत्स एव च ।
कुलिकश्चैव गर्गश्च मित्रको रुष्य एव च ॥२०
एते शिष्या महेशस्य योगाचार्यस्वरूपिणः ।
सख्या च शतमेतषां सह द्वादशसंख्यया ॥२१

कुणी, कुणबाहु, कुशरीर, कुनेत्रक, कश्यप, उशना, च्यवन, बृहस्पति ।१५। उतथ्य, वामदेव, महाकाल,महानील, वाचश्रवा, सुधीर, श्यामाश्व, यतीश्वर ।१६। हिरण्यकाम, कौशल्य, लोकाक्षि, कुथुभि, सुमन्त, जैमनी, कबंध, कुश, कन्धर ।१७। प्लक्ष, दार्भातणि, केतुमान, गौतम, वल्लभी, मधुपिंग, श्वेतकेतु ।१८। उशिज, वृहदश्व, देवल, कवि, शालिहोत्र, सुवेश, शम्बूक, आश्वलायन, शरद्वसु, छलगकुण्ड, कर्णकुम्ब,प्रबाहुक,उलूक विद्युत ।१९। अक्षपाद, कणाद, उलूकवत्स, कुशिक, गर्ग, मित्रक और रुष्य ।२०। यह सभी योगाचार्य महेश्वर के शिष्य हैं, यह सब एक सौ बारह हैं ।२१।

सर्वे पाशुपताः सिद्धा भस्मोद्धूभितविग्रहाः ।
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञा वेदवेदांगपारगाः ॥२२

शिवाश्रमरताः सर्वे शिवज्ञानपरायणाः ।
सर्वसङ्गविनिर्मुक्ताः शिवैकासक्तचेतसः ॥२३
सर्वद्वन्द्वसह धीराः सर्वभूतहिते रताः ।
ऋजवो मृदवः स्वस्था जितक्रोधा जितेन्द्रियः ॥२४
रुद्राक्षमालाभरणास्त्रिपुंडांकितमस्तकाः ।
शिखाजटाः सर्वजटा अजटा मुंडशीर्षकाः ॥२५
फलमलाशनप्राशाः प्राणायामपरायणाः ।
शिवाभिमानसपन्नाः शिवध्यानैकतत्पराः ॥२६
समुन्मथितससारविषवृक्षाकुरोद्गमाः ।
प्रयातुमेव सन्नद्धा परं शिवपुरं प्रति ॥२७
सदेशिकानिमान्मत्वानित्य यः शिवमर्चयेत् ।
स याति शिवसायुज्यं नात्र कार्याविचारणा ॥२८

यह पाशुपतव्रत से युक्त भस्म को अंश में लगाने वाले सर्व शास्त्रार्थ के तत्वज्ञाता यथा वेदवेदांग के पारगामी ।२२। शिवाश्रय में प्रीति वाले, शिवज्ञान से लगे रहने वाले, सग-हीन, तथा शिव मे ही मन को संयुक्त रखने वाले।२३।शीतोष्णादि को सहन करने वाले,सभी भूतों का हितकरने वाले, क्रोध को जीतने वाले ।२४। रुद्राक्ष की माला के आभरण, त्रिपुण्ड और शिखामात्र जटा धारण करने वाले तथा जटा रहित और शिरमुँडाये हुये ।२५। फल मूल का भोजन करने वाले प्राणायाम करने वाले, शैव, मार्ग में तथा शिव ध्यान में तत्पर ।२६। विश्व रूपी विष के अंकुरों को उखाड़ने वाले तथा शिवपुर में जाने को कटिबद्ध ।२७। ऐसे श्वेतादि को अपना आचार्य मानकर जो शिवजी का पूजन करता है, वह निःसंदेह शिवधाम को प्राप्त होता है ।२८।

॥ ब्राह्मणादि वर्णों का अधिकार कथन ॥

अथ वक्ष्यामि देवेश भक्तानामधिकारिणाम् ।
विदुषां द्विजपुख्यानां वर्णधर्म समासतः ॥१

वि स्नानं च।ग्निकार्यं च लिंगाचनमनुक्रमम् ।
दानेमीश्वरभावश्च दया सर्वत्र सर्वदा ।।२
सत्य सन्तोषमास्तिक्यमहिंसा सर्वजतुषु ।
हरीश्रद्धाध्ययन योग: सदाध्यापनमेव च ।।३
व्याख्यानं ब्रह्मचर्यं च श्रवण च तप: क्षमा ।
शौच शिखोपवीत च उष्णीष चौत्तरीयकम् ।।४
निषिद्धासेवन चैव भस्तरुद्राक्षधारणम् ।
पर्वण्यभ्यर्चन देवि चतुर्दश्यां विशेषत: ।।५
पानं च ब्रह्मकूर्चस्य मासि मासि यथाविधि ।
अभ्यचनं विशेषेण तेनैव स्नाप्य मां प्रिये ।।६
सर्वक्रियान्नसन्त्याग: श्राद्धान्नस्य च वजनम् ।
तथा पर्युषितान्नस्य यावकस्य विशेषत: ।।७

शिवजी ने कहा—हे देवि ! श्रेष्ठ ब्राह्मण तथा अधिकारी भक्तों के वर्ण धर्म को में समास से वर्णन करता हूँ ।१। त्रिकाल स्नान करे, अग्नि कार्य लिंग पूजन, दान शिवभावयुक्त होकर सर्वत्र दया करे ।२। सत्य, सन्तोष, आस्तिकता,अहिंसा लज्जा श्रद्धा, वेदपाठ और योग।३। व्याख्यान, ब्रह्मचर्य, तप क्षमा, शौच, शिखा, यज्ञोपवीत, पाग, दुपट्टा को धारण करे ।४। किसी निषिद्ध वस्तु का सेवन न करे, भस्म-रुद्राक्ष धारण करे, पर्व में विशेषकर चतुर्दशी में पूजा करे ।५। ब्रह्मकूर्च विधि में गव्य-पान प्रत्येक मास विधिपूर्वक करे, उसी से मुझे स्नान करावे और विशेष अर्चन करे ।६। अन्न का त्याग, श्रद्धान्न का तथा विशेष कर यावक का त्याग करे ।७।

मद्यस्य मद्यगन्धस्य नैवेद्यस्य च वर्जनम् ।
सामान्यं सर्ववर्णानां ब्राह्मणानां विशेषत: ।।८
क्षमा चांविश्च सन्तोष: सत्यमस्तेयमेव च ।
ब्रह्मचर्यं मम ज्ञान वैराग्य भस्मसेपनम् ।।९
सर्वसगनिवृत्तिश्च दर्शतानि विशेषत: ।
लिंगानि योगिनां भूयो दिवा भिक्षाशतंतथा ।।१०

वानप्रस्थाश्रमस्थानां समानमिदमिष्यते ।
रात्रौ न भोजनं कार्यं सर्वेषां ब्रह्मचारिणाम् ॥११
अध्यापन याजनं च क्षत्रियस्याप्रतिग्रहः ।
वैश्यस्य च विशेषेण मया नात्र विधीयते ॥१२
रक्षणं सर्ववर्णानां युद्धे शत्रुवधस्तथा ।
दुष्टपक्षिगाणां च दुष्टानां शतनं नृणाम् ॥१३
अविश्वासश्च सर्वत्र शिववासो मम योगिषु ।
स्त्रोसंसर्गश्च कालेषु चभूरक्षणमेव च ॥१४

मद्य, मद्य की गंध और मेरे अर्पण किया हुआ नैवेद्य इनका सभी वर्णों में त्याग और विशेष कर ब्राह्मणों का तो धर्म ही है ।८। क्षमा, शान्ति, संतोष, अचौर्य, ब्रह्मचर्य वैराग्य, मेरा ज्ञान और भस्म का सेवन करे ।९। सबके सङ्ग का त्याग करे यह दश कार्य करे, योगियों के लक्षण हैं दिन में भिक्षा माँगे ।१०। वानप्रस्थ आश्रमों का धर्म भी समान है, योगी और यह एक ही धर्म वाले हैं, ब्रह्मचारी रात्रि में भोजन न करें ।११। अध्यापन, यज्ञ कराना दान लेना क्षत्रिय और वैश्यों को नहीं करना चाहिए । राजा सब वर्णों की रक्षा करे, युद्ध में शत्रुओं का संहार करे तथा दुष्ट पक्षियों मृगों और मनुष्यों का निग्रह करे ।१२-१३। सब के प्रति अविश्वास और मेरे प्रति विश्वास करे, ऋतु समय नारी सेवन तथा सेना का रक्षण करे ।१४।

सदा संचारितैश्चारैर्लोकवृत्तांतवेदनम् ।
यदास्क्षधारणं चैव भस्मकचकधारणम् ॥१५
राज्ञां ममाश्रमस्थानामेष धर्मस्य सग्रहः ।
गोरक्षण च वाणिज्य कृषिर्वैश्यस्य कथ्यते ॥१६
शुश्रूषेतरवर्णानां धर्मः शूद्रस्य कथ्यते ।
उद्यानकरणं चैव मम क्षेत्रसमाश्रयः ॥१७
धर्मपत्न्यास्तु गमनं गृहस्थस्य विधीयते ।
ब्रह्मचर्यं वनस्थानां यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ॥१८
स्त्रीणां तु भर्तृशुश्रूषा धर्मोनान्यः सनातन ।
समार्चन च कल्याणि नियोगो भर्तृरस्ति चेत् ॥१९

या नारी भर्तृशुश्रूषां विहाय व्रततत्परा ।
स नारी वरकं याति नात्र कार्या विचारणा ॥२०

सदा अपने दूत भेजकर वृत्तान्त जाने, अस्त्र, वस्त्र, कंचुक और भस्म धारण करे।१५।जो राजा मेरे आश्रय में स्थितहैं, उनका यह धर्म है। वैश्यों का धर्म गौरक्षा कृषि और वाणिज्य है।१६।तीनों वर्णों की सेवा शूद्र का कर्म है, बगीचा लगाना क्षेत्र का आश्रय ।१७।तथा अपनी धर्मपत्नी में गमन ही गृहस्थ का धर्म है । ब्रह्मचारियों को और वन में रहने वाले यतियों को ब्रह्मचर्य धारण करना चाहिये।१८।स्त्रियों के लिए पतिसेवा के अतिरिक्त अन्य कोई धर्म नहीं, स्वामी की आज्ञा लेकर ही स्त्री को मेरा पूजन करना चाहिए।१९। जो स्त्री अपने स्वामी की सेवा छोड़कर व्रत करती है, वह नरकगामिनी होती है, इसमें संशय नही है ।२०।

अथा भर्तृविहीमाया वक्ष्ये धर्मं सनातनम् ।
व्रतं दानं तपः शौचं भूशय्या नक्तभोजनम् ॥२१
ब्रह्मचर्यं सदा स्नानं भस्मना सलिलेन वा ।
शांतिमौन क्षया नित्य संविभागो यथाविधि ॥२२
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां पौर्णमास्या विशेषत ।
एकादश्यां च विधिवदुपवासो ममार्चनम् ॥२३
इति संक्षेपतः प्रोक्तो मयाश्रमनिषेविणाम् ।
ब्रह्मक्षत्रविशा देवि यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ॥२४
तथैव वानप्रस्थानां गृहस्थानां च सुंदरि ।
शूद्राणामथ नारीणां धर्म एष सनातनः ॥२५
ध्येयस्त्वयाऽह देवेशि सदा जाप्यः षडक्षरः ।
वेदोक्तमखिल धर्मामिति धर्मार्थसंग्रहः ॥२६
अथ ये मानवा लोके स्वच्छया धृतविग्रहाः ।
मावातिशयपन्यासः पूर्वसंस्कारसयुताः ॥२७
विरक्ता वानुक्ता वा स्त्र्यदीनां विषयेष्वपि ।
पापैर्न ते विलिपते पद्मपत्रमिवाभसा ॥२८

स्वामी से हीन नारियों का धर्म कहता हूँ व्रत, दान, तपस्या, शचौच, रात्रि भोजन और पृथिवी में शयन।२१।ब्रह्मचर्य पालन,भस्म व जल-स्नान शान्ति, मौन, क्षमा, संविभाग दुष्टों से दूर रहना तथा विधिवत् ।।२२।। अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णमासी तथा विशेषकर एकादशी में मेरा पूजन करे ।२३। यह विधि अपने आश्रम में स्थित होने की संक्षेप में कही है ब्राह्मण क्षत्रिय,वैश्य,यती,ब्रह्मचारी।२४। वानप्रस्थ, गृहस्थ और स्त्रियों का सनातन धर्म यही है ।२५। हे देवि ! तुम्हें सदा मेरा ध्यान और षडक्षर कर जप करना चाहिए, वेदों में वर्णित धर्म का सार यही है ।२६।जो मनुष्य अपनी इच्छा से व्रत करते, अत्यन्य भान और पूर्ण संस्कार वाले हैं ।२७। तथा स्त्रियादि विषयों में अनासक्त हैं. वे कमलपत्र के जल से लिप्त न होने के समान पापों से लिप्त नहीं होते ।२८।

तेषां ममात्मविज्ञानं विशुद्धानां विवेकिनाम् ।
मत्प्रसादाद्धिशुद्धानां दुःखमाश्रमरक्षणात् ।।२९
नास्ति कृत्यमकृत्यं च समाधिर्वा परायणम् ।
न विधिर्न निषेधश्च तेषां मम यथा तथा ।।३०
तथेह परिपुर्णस्य साध्यं मम न विद्यते ।
तथेह परिपुर्णस्य साध्यं मम न विद्यते ।
तथैव कृतकृत्यानां तेषामपि न संशयः ।।३१
मभद्क्तानां हितार्थाय मानुष भावमाश्रिता ।
रुद्रलोकात्परिभ्रष्टास्ते रुद्रा नात्र संशयः ।।३२
ममानुशासन यद्वद्ब्रह्मादीनां प्रवतकम् ।
तथा नाराणामन्येषां सन्नियोगः प्रवर्तकः ।।३३
ममाज्ञाधारभावेन सद्भावातिशयेन च ।
तदालोकनमात्रेण सर्वपापक्षयो भवेत् ।।३४
प्रत्ययाश्च प्रवतते प्रशस्तफलसूचकाः ।
मयि भाववतां पुंसा प्रागदृष्टार्थगोचराः ।।३५

मेरे प्रसाद से उन विवेकी पुरुषों को आत्म-विज्ञान की प्राप्ति होती है क्योंकि आश्रम धर्म की रक्षा करना कठिन है ।२९। उनके लिए कर्म,अकर्म

समाधि परायण या विधि निषेध कुछ भी नहीं है ।३०। जैसे मुझ परिपूर्ण के लिए कुछ साधन योग्य नहीं, वैसे ही जो कृतकृत्य हो चुके उनके लिए कोई कार्य शेष नहीं रहता।३१।मेरे भक्तों के हितार्थ मनुष्य भाव में आश्रित रुद्र लोक से आगत मनुष्य रुद्र स्वरूप ही हैं ।३२। मेरी आज्ञा जैसे ब्रह्मादि को प्रवृत्त करती है, वैसे ही अन्यों को करती है।३३।मेरी आज्ञा का धारण और मुझ में अत्यन्त भाव लगाने वालों के दर्शन से ही सब पाप क्षीण हो जाते हैं ।३४। उन्हें श्रेष्ठ फलदायक विश्वासों की प्राप्ति होती है, जो मुझसे प्रेम करते हैं, उन्हें अर्थ का ज्ञान पहिले ही हो जाता है ।३५।

कपस्वेदोऽश्रुपातश्च कण्ठे च स्वरविक्रिया ।
आनदाद्युपलब्धिश्च भवेदाकस्मिकी मुहुः ॥३६
सतैर्व्यस्तैः समस्तैर्वा लिगैरव्यभिचारिभिः ।
मदमध्योत्तमैर्भावैर्विज्ञेयास्ते नरोत्तमाः ॥३७
यथायोऽग्निसमावेशान्नायौ भवति केवलम् ।
तथैव मम सान्निध्यान्न ते केवलमानुषाः ॥३८
हस्तपादादिसाधर्म्याद्रुद्रान्मर्त्यवपुधरान् ।
प्राकृतानिव मन्वानो नावजानंति पडितः ॥३९
अवज्ञानं कृतंतेषु नरैर्व्यामूढचेतनैः ।
आयुः श्रियं कुल शील हित्वा निरयभावहेम् ॥४०
ब्रह्म विष्णुसुरेशानामपि तूलायते पदम् ।
मत्तोऽन्यदननेक्षाणामुद्धतानां महात्मनाम् ॥४१
अशुद्धं बोद्धसैश्वर्यं प्राकृत पौरुष तथा ।
गुणेशांनामतस्त्याज्यं गुणातीतपदैषिणाम् ॥४२

उन्हें कम्प, स्वेद, अश्रुपात, कन्ठ-स्वर गद्गद तथा आनन्द की उपलब्धि बारम्बार अकस्मात् होती है ।३६। उन सब अव्यभिचारी लक्षणों के युक्त मनुष्यों को श्रेष्ठ समझे ।३७। जैसे अग्नि से संयुक्त होने पर लोहा केवल लोहा ही नहीं रहता, वैसे ही वे मेरी समीपता से मनुष्य नहीं, वरन् वैसे ही रूप वाले हो जाते हैं ।३८। हाथ, पाँव आदि सहित रुद्र रूप धारण

करने वालों को साधारण समझकर कभी निन्दा न करे।३९।जो मूर्ख उनका अपमान करते हैं उनकी आयु शील, कुल तो नष्ट होते ही हैं, साथ ही उन्हें नरक में जाना पड़ता है।४०। ब्रह्मा विष्णु, महेश का भी पद तोला जाय तो उनसे छोटा ही रहता है।४१। गुणातीत पद की कामना वालों को अशुद्ध बुद्धि का परित्याग करना चाहिए।४२।

अथ किं बहुनोक्तेन श्रेयः प्राप्त्यैकसाधनम् ।
मयि चित्तसमासगो येन केनापि हेतुना ॥४३
इत्थ श्रीकंठनाथेन शिवेन परमात्मन ।
हिताय जगतामुक्तो ज्ञानसारार्थसंग्रहः ॥४४
विज्ञानसग्रहस्यास्य वेदशास्त्राणि कृत्स्नशः ।
सेतिहासपुराणानि विद्या व्याख्यानविस्तरः ॥४५
ज्ञान ज्ञेयमनुष्ठेयमधिकारोऽथ साधनम् ।
साध्यं चेति षडर्थानां संग्रहस्त्वेष सग्रहः ॥४६
गुरौरधिकृतं ज्ञानं ज्ञेयं पाशः पशुः पतिः ।
लिंगार्चनाद्यनुष्ठेयं भक्तस्त्वधिकृतोऽपि यः ॥४७
साधन विवमंत्राद्यं साध्यं शिवसमानता ।
षडर्थसंग्रहस्यास्य ज्ञानात्सर्वज्ञतोच्यते ॥४८
प्रथमं कर्मयज्ञादेर्भक्त्या वित्तानुसारतः ।
ब्राह्मेऽभ्यर्च्य शिवं पश्चादंर्यागेरतो भवेत् ॥४९

मङ्गल की प्राप्ति का एक ही साधन मुझ में चित्त का लगाना है।४३। उपमन्यु ने कहा-इस प्रकार नीलकण्ठ भगवान् शिव ने ज्ञान सार संग्रह का वर्णन किया।४४। विज्ञान संग्रह में इतिहास, पुराण आदि विद्याओं का वर्णन किया है।४५। ज्ञान, ज्ञेय तथा अनुष्ठान योग्य साधन साध्यषडर्थों का यह संग्रह कहा गया है।४६। गुरु में प्राप्त शिवज्ञान को जानना चाहिए तथा भक्तों को लिंगार्चना आदि अनुष्ठान करना चाहिए।४७। शिव मन्त्र आदि का साधन तथा षडंग संग्रह के ज्ञान से जीव सर्वज्ञ हो जाता है।४८। प्रथम यज्ञादि कर्म अपने सामर्थ्यानुसार करे और वाह्यान्तर में शिवजी का पूजन करे।४९।

रतिरभ्यतरे यस्य न बाह्ये पुण्यगौरवात् ।
न कर्म करणीय हि वहिस्तस्य महात्मना ॥५०

ज्ञानामृतेन तृप्तस्य भक्त्या शैवशिवात्मनः ।
नांतर्न च बहिः कृष्ण कृत्यमस्ति कदाचन ॥५१

तस्मात्क्रमेण संत्यज्य बाह्यमाभ्यन्तयं तथा ।
ज्ञानेन ज्ञेयमालोक्याज्ञानं चापि परित्यजेत् ॥२२

नैकाग्रं चेच्छिवे चित्त कि कृतेनापि कर्मणा ।
एकाग्रमेव चच्चित्तं कि कृतेनापि कर्मणा ॥५३

तस्मात्कर्माण्यकृत्वा वा कृत्वा वांतर्बहिःक्रमात् ।
येन केनाप्युपायेन शिवे चित्तं निवेशयेत् ।।५४

शिवे निविष्टचित्तानां प्रतिष्ठियधिया सताम् ।
परत्रेह च सर्वत्र निर्वतिः परमा भवेत् ॥५५

इहोन्नमः शिवावेति मन्त्रेणानेन सिद्धयः ।
स तस्मादधिगर्तव्यः परावरविभूतये ॥५६

जो बाह्यकर्म के प्रति नहीं, अपितु अन्तर पूजक में प्रीति रखता है उस महात्मा को बाह्यकर्म करना अनिवार्य नहीं है ।५०। हे कृष्ण! जोशिव भक्त ज्ञानामृत से तृप्त हैं उनके लिए बाह्याभ्यन्तर कोई भी कर्म शेष नहीं रहता।५१।इसलिए क्रम से बाह्याभ्यंतर का त्याग कर ज्ञान से ज्ञेय पदार्थ को जानकर ज्ञान को भी त्याग दे ।५२।शिव में यदि चित्त की एकाग्रता नहीं है तो कर्म से भी क्या है,यदि चित्त एकाग्र है तो कर्म न करने से भी कोई हानि नहीं।५३।इसलिए कर्म करके अथवा न करके जैसे भी हो शिवजी में चित्त लगावे।५४।जो बुद्धिमान शिवजी में चित्त लगाते हैं उन्हें सर्वत्रअत्यन्त निवृत्ति होती है ।५५। 'ॐ नमः शिवाय मन्त्र में सर्वसिद्धि है. इसलिए परापर की विभूति के निमित्त उस मन्त्र का जाप करे ।५६।

॥ पंचाक्षर मन्त्र जप विधान ॥

समुद्रतीरे नद्यां चं गर्षेटे देवालनेऽपि वा ।
शुचौ देशे गृहे वापिं काले सिद्धिकरे तिथौ ॥१

नक्षत्रे शुभयोगे च सर्वदोषविवर्जिते ।
अनुगृह्य ततो दद्याज्ज्ञान मम यथाविधि ।।२
स्वरेण च्चारयेत्सम्यगेकांतेऽतिप्रसन्नधीः ।
उच्चार्योच्चारयित्वा तमावयोर्मन्त्रमुत्तमम् ।।३
शिवं चास्तु शुभ चास्तु शोभनौऽस्तु प्रियोऽस्त्विवति ।
एवं दद्याद्गुरुर्मंत्रमाज्ञां चैव ततः परम् ।।४
एव लब्ध्वा गुरोर्मन्त्रमाज्ञां चैव समाहितः ।
यावज्जीव जपेन्नित्यमष्टोत्तषसहस्रकम् ।
अनन्यस्यत्परो भूत्वा स याति परमां गतिम् ।।६
जपेदक्षरलक्षं वै चतुर्गणितमादरात ।
नक्ताशी संयमी यः स पोरश्चरणिकः स्मृतः ।।७

शिव ने कहा— समुद्र तट, नदी गोष्ठ, देवालय, पवित्र देश या घर में पवित्र तिथि में ।१। शुभ नक्षत्र में सब दोष शान्त करके विधिपूर्वक मेरा ज्ञान दे ।२। कत्यन्त प्रसन्न मन से एकान्त में हमारे मंत्र का बारम्बार उच्चारण करे ।३। शिव हो, मंगल हो, शुभ हो, इस प्रकार कहकर गुरु आज्ञा दे ।४। इस प्रकार सावधान होकर गुरु से मंत्र ग्रहणकर पुरश्चरण पूर्वक संकल्प देकर जप करे ।५। एक हजार एक सौ साठ मन्त्रों को जीवनपर्यन्त नित्य जपे और अनन्य मनसे कार्य करे तो परमगति का अधिकारी होता है ।६। मन्त्र में जितने अक्षर हैं, उतने ही लाख जप करे, रात्रि में भोजन करे और संयम से रहे तो वह पुरश्चरणी होता है ।।७।।

यः पुरश्चरण कृत्वा नित्यजापी भवेत्पुनः ।
तस्य नास्ति समो लोके स सिद्धः सिद्धिदो भवेत् ।।८
स्नान कृत्वा शचौ देशे बद्ध्वा रुचिरमासनम् ।
त्वया मां हृदि सचिंत्य स्वचिंत्य स्वगुरु ततः ।।९
उड़मुखः प्राड़मुखो वा मौनी चैकाग्रमानसः ।
विशोध्य पचःतत्वानि दहनप्लावनादिभिः ।।१०

मत्रन्यासादिकं कृत्वा सफलीकृतविग्रहः ।
आवयोर्विग्रहौ ध्यायन्प्राणापानौ नियम्य च ।।११

विद्यात्स्थानं स्वकं रूपमृषिं छन्दोऽधिदैवतम् ।
बीजं शक्ति तथा वाक्य स्मृत्वा पंचाक्षरीञ्जपेत् ।।१२

उत्तम मानस जाप्युमुपांशुश्चैव मध्ययम् ।
अधमं वाचिक प्राहुरागमार्थविशारदाः ।।१३

उत्तमं रुद्रदैवत्यं मध्यमं विष्णुदैवतम् ।
अधमं ब्रह्मदैवत्यमित्याहुरनुपूर्वशः ।।१४

पुनश्चरण करके नित्य जप करने वाले के समान लोक में कोई भी नहीं है वह सिद्धि का दाता होता है ।८। पवित्र तीर्थ में स्नान कर श्रेष्ठ आसन लगाकर अपने हृदय में तुमको, मुझे और गुरु को स्मरण कर, उत्तर अथवा पूर्वाभिमुख मौन धारणपूर्व एकाग्र मन से दहन प्यावनादि द्वारा पंच तत्वों को शुद्ध करे ।९-१०। मन्त्र न्यास आदि से शरीर को कला युक्त कर मेरा तुम्हारा ध्यान कर प्राणापान को रोके ।११। विद्या स्थान, स्वरूप, ऋषि, छन्द, देवता, बीज, शक्ति, वाचक का स्मरण कर पंचाक्षरी विद्या को जपे ।१२। मन में ही जप करना श्रेष्ठ है, जिसमेंहोठ हिलें वह मध्यम तथा जिसमें शब्द निकले वह अधम है।१३।रुद्र देवता के उत्तम, विष्णु के मध्यम और ब्रह्मा के मन्त्र अधम कहे गए हैं ।१४।

यदुच्चनीचस्वरितैः स्पष्टास्पष्टपदाक्षरैः ।
मंत्रमुच्चारयेद्वाचा वाचिकोऽयं जपः स्मृतः ।।१५
जिह्वामात्रपरिस्पंदादीषदुच्चारितोऽपि वा ।
अपरैरश्रुतः किंचिच्छ्रुतो वोपांशुरुच्यते ।।१६
धिया यदक्षरश्रेण्या वर्णाद्वर्णं पदात्पदम् ।
शब्दार्थचिंतनं भूयः कथ्यते मानसो जपः ।।१७
वाचिकस्त्वेक एव स्यादुपांशः शतमुच्यते ।
साहस्रं मानसः प्रोक्तः सगर्भस्तु शताधिकः ।।१८

प्राणायामससायुक्तः सगर्भो जप उच्यतेः ।
आद्यतयोरगर्भोऽपि प्राणायामः प्रशस्यते ।।१९
चत्वारिंशत्समावृत्तीः प्राणानायम्य सस्मरेत् ।
मंत्र मत्रार्थविद्धीमानशक्तः शक्तितोः जयेत् ।।२०
पचक त्रिकमेकं वा प्राणायाम समाचरेत् ।
अगर्भं वा सगभ वा सगर्भस्तत्र शस्यते ।।२१

ऊँचे नीचे स्वर से स्पष्टता से, शीघ्रता से मन्त्र को उच्चारण करने वाले वाचक होते हैं ।१५। जिस जप में जिह्वा हिले, परन्तु उच्चारण न हो तथा दूसरों को स्पष्ट सुनाई न पड़े वह उपांशु है ।१६। बुद्धि में ही अक्षर और पद का ध्यान तथा अर्थ का चिन्तन किया जाय वह मानसी जप है ।१७। वाचिक से एक,उपांशु से सौ,मन से हजार तथा आदि अन्त में प्राणायाम सहित जप करने से उससे भी सौ गुणे फल की प्राप्ति होती है ।१८। आदि अन्त में प्राणायाम पूर्वक जप करने को सगर्भ जप कहते हैं, अगर्भ जप के आदि अन्त में भी प्राणायाम करना कहा है ।१९। चालीस आवृत कर प्राणायाम करे,इस प्रकार मन्त्र तथा मन्त्रार्थ का ज्ञाता शक्ति के अनुसार जप करे ।२०। पाँच या तीन प्राणायाम करे, अथवा एक ही करे अगर्भ और सगर्भ मन्त्र में सगर्भ ही श्रेष्ठ है ।२१।

सगर्भादपि साहस्रं सध्यानो जप उच्यते ।
एषु पचविधेष्वेकः कर्त्तव्यः शक्तितो जपः ।।२२
अंगुल्या जपसख्यानमेवमेत्रमुदाहृतम् ।
रेखपाऽष्टगुण विद्यत्पुत्रजीवैर्दशाधिकम् ।।२३
शतं स्याच्छंखमणिभिः प्रवालैस्तु सहस्रकम् ।
स्फाष्टिकैर्दशसास्रं मौक्तिकैर्लक्षमुच्यते ।।२४
पद्माक्षैर्दशलक्षं तु सौवर्वं कोटिरुचच्यते ।
कुशग्रथ्या च रुद्राक्षैरनतगुणितं भवेत ।।२५
त्रिंशदक्षैः कृता माला धनदा जपकर्मणि ।
सप्तविंशतिसंख्यातैरक्षैः पुष्टिप्रदा भवेत् ।।२६

पचविंशतिसंख्यातैः कृताः मुक्ति प्रयच्छति ।
अक्षैस्तु पंचदशभिरभिचारफलप्रदा ॥२७
अंगुष्ठ मोक्षदं विद्यात्तर्ज्जनीं शत्रुनाशिनीम् ।
मध्यमां धनदां शांति करोत्येषा ह्यनामिका ॥२८

सगर्भ से भी हजार गुण ध्यान-जप कहा है, इन पांच विधियों में से शक्ति के अनुसार कोई भी विधि करे।२। उंगली से जप करे तो एक गुणा, रेखा से आठ गुणा तथा जियापोते से दस गुण॥२३।शंखमणि से सौ गुणा,मूंगों से सहस्रगुणा,स्फटिक से दस सहस्र गुणा तथा मुक्ताओं से लक्ष गुणा ।२४।कमल गट्टों से दस लक्ष गुणा, सुवर्ण से करोड़ों गुणा तथा कुश ग्रन्थि अथवा रुद्राक्ष से अनन्त फल की प्राप्तिहोतीहै।२५। तीस दाने वाली माला का जप धर्मदायक है, सत्ताइस दानों की माला पुष्ट देती है ।२६। पच्चीस दाने वाली माला मोक्ष और पन्द्रह दाने की माला अभिचार कर्म को सिद्ध करती है ।२७। अँगूठे से जप करे तो मोक्ष, तर्जनी से शत्रु-नाश, मध्यमा से धन प्राप्ति और अनामिका से शान्ति मिलती है ।२८।

अष्टोत्तरशतं माला तत्र स्यादुत्तमोत्तमा ।
शतसंख्योत्तमा माला पचाशद्भिस्तु मध्यमा ॥२९
चतुःपचाशदक्षैस्तु हृच्छेष्टा हि प्रकीर्तिता ।
इत्येव मालया कुर्याज्जप कस्मै न दर्शयेत् ॥३०
कनिष्ठा क्षरणो प्रोक्ता जपकर्मणि शोभना ।
अंगुष्ठेन जपेज्जप्यमन्यैरंगुलिभिः सह ॥३१
अंगुष्ठेन विना जप्य कृत तदफल यतः ।
गृहे जपं समं विद्याद्गोष्ठे शतगुण विदुः ॥३२
पुण्यारण्ये तथाऽऽरामे सहस्रगुणमुच्यते ।
अयुत पर्वते पुण्ये नद्यां लक्षमुदाहृतम् ॥३३
कोटि देवालये प्राहुरनन्तं मम सन्निधौ ।
सूर्यस्याग्नेर्गुरोरिंदोर्दीपस्य च जलस्य च ॥३४
विप्राणां च गवां चैव सन्निधो शस्यते जपः ।
तत्पूर्वाभिमुख वश्यं दक्षिण चाभिचारिकम् ॥३५

इसमें एक सौ आठ दानों की माला सर्वश्रेष्ठ,सौ की श्रेष्ठतथापचास दानों की मध्यम होती है।२६।चौअन रुद्राक्षों की माला हृदय के लिए हितकारी है। माला से जप करके किसी को दिखाना नहीं चाहिए।३०।कनिष्ठिका जप करने में उत्तम तथा दुःख का नाश करने वाली है, अँगूठे के साथ अँगूलियों सहित जप कर।३१।अँगूठे के बिना किया गया जप निष्फल है,घर में जप का समान तथा गोष्ठ में सौ गुणा फल होता है।३२।पुण्यवन में अथवा बाग में जप करे तो हजार गुणा फल मिलता है।३३।देवालय में कोटि गुणा और मेरे निकट करे तो अनन्त फल हो,सूर्य,अग्नि,रुद्र,चन्द्रमा दीपक, जल।३४।ब्राह्मण और गौओं के समीप जप करना उत्तम है, पूर्वाभिमुख होकर वशीकरण तथा दक्षिणाभिमुख से अभिचार।३५।

पश्चिम धनद विद्यादौत्तरं शांतिद भवेत् ।
सूर्याग्निविप्रदेवानां गुरुणामपि सन्दिधौ ॥३६
अन्येषां च प्रसक्ताना मन्त्रं न विमुखो जपेत् ।
उष्णीषी कंचुकी नग्नो मुक्तकेशो गलावतः ॥३७
अपवित्रकरोऽशुद्धो विलपन्न जपेत्क्वचित् ।
क्रोधं मदं क्षुतं त्रीणि निष्ठीवनविजृंभणे ॥३८
दर्शन च श्वोचानां वर्जयेज्जपकर्मणि ।
आचामत्सभवे तेषां स्मरेद्वा मां त्वया सह ॥३९
रथ्यायामशिवे स्थाने न जपेत्तितिरान्तरे ।
प्रसार्य्य न जपेत्पादौ कुक्कुटासत एव वा ॥४०
यानशय्याधिरूढो वा चिताव्याकुलितोऽथवा ।
शक्तश्चेत्सवमेवंतशक्तः शक्तितो जपेत् ॥४१
किमत्र बहुनोक्तेन समासेन वचः शृणु ।
सदाचारो जपऽशुद्ध ध्यायन्भद्रं समश्नुते ॥४२

पश्चिम की ओर धन देने वाला तथा उत्तर की ओर शान्तिदायक है और सूर्य, अग्नि, ब्राह्मण, देवता, गुरुजनों के समीप।३६। अथवा अन्य प्रशस्तजनों के पास विमुख होकर जप न करे, पान, कुरता, नगा, खुले

केश या कंठ लपेटे हुए ।३७। अपवित्र हाथ से, रुदन करता हुआ, क्रोध, छींक, जंभाई लेते या थूकते हुए ।३८। अथवा श्वान या नीच व्यक्तियोंको जप करते समय में न देखे, यदि देखले तो आचमन करे या मेरा तुम्हारा स्मरण करे ।३९। गली, अपवित्र स्थान तथा अन्धकार में या पाँव फैला कर अथवा कुक्कुटासन से जप न करे ।४०। खाट पर बैठकर या चिन्तासे व्याकुल हो तो जप न करे अथवा अशक्त हो तो शक्ति के अनुसार जपे ।४१। सदाचार रहे, शुद्धतापूर्वक जपे और ध्यान करे तो मंगल को प्राप्त होता है ।।४२।।

आचारः परमो धर्म आचारः परम धनम् ।
आचारः परमा विद्या आचार परमा गतिः ।।४३
यस्य यद्विहितं कर्म वेदे शास्त्रे च वैदिकैः ।
तस्य तेन समाचारः सदाचारी न चेतरः ।।४४
आस्तिकश्चेत्प्रमादाद्यै सदाचाराद् विच्युतः ।
न दुष्यति नरो नित्यं तस्मादिस्तिकतां व्रजेत् ।।४५
यथेहास्ति सुखं दुःख सुकृतैदुष्कृतैरपि ।
तथा परत्र चास्तीति मतिरास्तिक्यमुच्यते ।।४६
रहस्यमन्यद्वक्ष्यामि गोपनीयमिदं प्रिय ।
न वाच्य तस्य कस्यापि नास्तिकस्याथवा पशोः ।।४७
सदाचारविहीनस्प पतितस्यऽन्त्यजस्य च ।
पञ्चाक्षरात्परं नास्ति परित्राण कलौ युगे ।।४८
गच्छतस्तिष्ठतो वापि स्वेच्छया कम कुवतः ।
अश चेर्वा शुचेर्वापि मन्त्रोऽय न च निष्फलः ।।४९

आचार परमगति परमविद्या परम धन तथा परम धर्म है ।४३। वेदाशास्त्र में जिसके लिए जो कर्म विधान दिया हुआ है, उसे वही कर्म करना श्रेयस्कार है ।४४। आस्तिक होकर प्रमादादि के कारण सेसंचारसे गिर जाय तो भी दूषित नहीं होता इसलिए आस्तिकता अवश्य होनी चाहिये ।४५। सुकृत, दुष्कृत से जो सुख-दुःख यहाँ है, वही परलोक में प्राप्त होगा. इस बुद्धि को आस्तिकता कहते हैं ।४६। हे देवि ! अब और

भी गुप्त रहस्य कहता हूँ, नास्तिक जीवों के प्रति इसे न कहे ।४७। सदा-चारहीन, पतित और अन्त्यज से रक्षा करने के लिए कलियुग में पंचाक्षर से उत्तम अन्य कोई मन्त्र नही ।४८। चलने में खड़े होने में या स्वेच्छापूर्वक करने में अथवा पवित्रता-अपवित्रता में भी यह मन्त्र फल-हीन नहीं होता है ।४६।

अनाचारवतां पुंसामविशुद्धषडध्वताम् ।
अनादिष्टोऽपि गुरुणा मन्त्रोऽयं न च निष्फलः ।५०
सर्वावस्थां गतस्यापि मयि भक्तिमतः परम् ।
सिद्ध्यत्येव न सन्देहो नापरस्य तु कस्यचित् ।५१
न लग्नतिथिनक्षत्रवारयोगादयः प्रिये ।
अस्यात्यतमवेक्ष्याः स्युर्नैष सुप्त सदोदितः ।५२
न कदाचिन्न कस्यापि रिपुरेष महामनुः ।
सुसिद्धो वापि सिद्धो वा साध्यो वापि भविष्यति ।५३
सिद्धेन गुरुणाऽऽदिष्टः सुसिद्ध इति कथ्यते ।
असिद्धेनापि वा दत्तैः सिद्धिसाध्यस्यु केवलः ।५४
असाधितः साधितो वा सिद्ध्यत्येव न संशयः ।
श्रद्धातिशययुक्तस्य मयि मन्त्रे तथा गुरौ ।५५
तस्मान्मन्त्रान्तरास्त्यक्त्वा सापायानधिकारतः ।
आश्रयेत्परमां विद्यां साक्षात्पंचाक्षरीं बुधः ।५६
मन्त्रान्तरेषु सिद्धेषु मन्त्र एष न सद्ध्यति ।
सिद्धे वस्मिन्महामन्त्रे ते च सिद्धा भवत्युतः ।५७

आचार रहित, अविशुद्ध षडध्वज वालों को अथवा गुरु ने उपदेश न दिया हो तो भी यह मन्त्र निष्फल नहीं होता ।५०। चाहे जिस अवस्था में मेरी परम-भक्ति करने वाला सिद्ध हो जायेगा, अन्य किसी को सिद्धि नही प्राप्त होती,इसमें संशय नहीं है ।५१। हे देवि ! लग्न, नक्षत्र तिथि वार, योग आदि अथवा सोते, जागते किसी समय भी मन्त्र जपने का मेरे भक्त को निषेध नहीं ।५२। मेरे भक्त का कोई शत्रु नही होता । उसके लिए सुसिद्ध सिद्धि अथवा असाध्य दुर्लभ कुछ नहीं रहता ।५३। सिद्ध गुरु

के आदेश से सुप्रसिद्ध कहा जाता है, आसद्धि द्वारा प्राप्त और स्वयं पठित साध्य से सिद्ध होता है।५४। असाधित या साधत भी सिद्ध हो जाता है और मुख में मन्त्र और गुरु में श्रद्धा से स्थित रहता है।५५। इसलिए मन्त्राक्षरों को छोड़कर हृदय में पंचाक्षरी विद्या का आश्रय करना चाहिए।५६। मन्त्राक्षरों से सिद्ध होने के कारण यह मन्त्र सिद्ध नहीं होता,इसके सिद्ध होते ही अन्य सब मन्त्र स्वय सिद्ध हो जाते है।५७।

॥ शिव दीक्षा विधान और गुरु माहात्म्य ॥

भगवन्मन्त्रमाहात्म्यं भवता कथित प्रभो।
तत्प्रयोगविधानं च साक्षाच्छ्रुतिसमं यथा।१
इदानीं श्रोतमिच्छामि शिवसंस्कारमुत्तमम्।
मन्त्रसग्रहणे किंचित्सूचितं न तु विस्तृतम्।२
हन्त ते कथयिष्यामि सर्वपापविशोधनम्।
संस्कारं परमं पुण्यं शिवेन परिभाषितम्।३
सम्यक् कृताधिकारः स्यात्पूजादिष नरो यतः।
संस्कारः कथ्यते तेन षडध्वपरिशोधनम्।४
दीयते येन विज्ञानं क्षीयते पाशबन्धनम्।
तस्मासंकार एवायं दीक्षेत्यपि च कथ्यते।५
शाम्भवी चैव शाक्ती च मान्त्री चैव शिवागमे।
दीक्षोपदिश्यते त्रधा शिवेन परमात्मना।६
गुरोरालोकमन्त्रेण स्वशक्तिसंभाषणादपि।
सद्यः संज्ञाः भमेज्जन्तो पाशोपक्षयकारिणी।७

श्रीकृष्ण ने कहा – हे प्रभो! आपने मन्त्र का माहाम्य कथन किया तथा उसके प्रयोग का श्रुति सम्मत विधान भी कहा।१। इस समय मंत्रके ग्रहण में शिव संस्कार श्रवण की इच्छा है, जो आपने सूक्ष्म रूप से कहा उसे विस्तारसे कहें।२। उपमन्युने कहा–सभी कर्मों को दूर करने की विधि बताता हूँ,उस पवित्र संस्कार को शिव ने स्वयं ही वर्णन किया।३। पूजन में सर्व प्रकार संस्कार करना चाहिये, षड्मार्ग का शोधन-संस्कार कहा

गया है ।४। जिस संस्कार से विज्ञान होता है और पाशका बन्धन काटताहै इसीलिए उसे दीक्षा कहा हैं ।५। शिव शास्त्रमें शांभवी, शक्ति और मांत्री इन तीन प्रकारों की दीक्षा स्वयं शिव ने कही हैं ।६। गुरु के दर्शन, स्पर्श और सम्भाषण से पशु की पाश-क्षय करने वाली संज्ञा तुरन्त होती है ।७।

सादीक्षा शांभवी प्रोक्ता सा पुनर्भिद्यते द्विधा ।
तीव्रा तीव्रतरा चेति पाशोपक्षयभेदतः ।८
यथा स्यान्निवृ तिः सद्यः सैव तीव्रतरा मता ।
तीव्रा तु जीवतोऽयतं पुंसः पापविशोधिका ।९
शाक्ती ज्ञानवती दीक्षा शिष्यदेह प्रविश्य तु ।
गुरुणा योगमार्गेण क्रियते ज्ञानचक्षुषा ।१०
मांत्री क्रियावती दीक्षा कुण्डमङ्गलपूर्विका ।
मन्दमन्दतरोद्देशात्कर्तव्या गुरुणा बहिः ।११
शक्तिपातनुसारेण शिष्योऽनुग्रहमर्हति ।
शौवधर्मानुसारस्य तन्मूलत्वात्समागतः ।१२
यत्र शक्तिर्न पतिता तत्र शुद्धिर्न जायते ।
न विद्या न शिवाचारो न मुक्तिर्न च सिद्धयः ।१३
तस्मांलिगानि सवोक्ष्य शक्तिपातस्य भूयसः ।
ज्ञानेन क्रियया वाथ गुरुः शिष्यं विशोधयेत् ।१४

उसी को शाम्भवी दीक्षा कहते है, उसके दो प्रकार हैं, जो पापक्षय के भेद से तीव्रा और तीव्रतरा कही गयी हैं ।८। शीव्र निवृत्ति करने वाली तीव्रतरा और पाप का शोधन करने वाली तीव्रा कही जाती है ।९। जो दीक्षा ज्ञान-चक्षु से प्राप्त होती और योग मार्ग द्वारा गुरु से शिष्य के शरीर में प्रविष्ट होती हैं वह शाक्ती तथा ज्ञानात्मक हैं ।१०। क्रिया वाली मांत्री दोक्षा कुण्ड मण्डलसे पूर्व मन्द और मन्दतर के भेद से गुरु बहिर्भाव में करे ।११। शक्ति तथा सामर्थ्य के अनुसार ही शिष्य अनुग्रह योग्य हैं, क्योंकि शैव धर्म के अनुसार वह उसका मूल है ।१२ जहाँ शक्ति पतित नही होती वहाँ शुद्धि नहीं होती और न विद्या, शिवाचार,

मुक्ति अथवा सिद्धि ही होती हैं ।१३। इसलिये शक्तिपात के लक्षणों को देखकर ज्ञान और क्रिया के द्वारा शिष्य को शुद्ध करना चाहिए ।१४।

योऽन्यथा कुरुते मोहात्स विनश्यति दुर्मति ।
तस्मासर्वप्रकारेण गुरुः शिष्य परीक्षयेत ।१५
लक्षण शक्तिपातस्य प्रबोधानन्दसम्भवः ।
सा यस्मात्परमा शक्तिः प्रवोधनन्दरूपिणो ।१६
आनन्दबोधयोर्लिङ्गमतःकरणविक्रयाः ।
यथा स्यात्कंपरोमांचस्वनेत्रांगविक्रियाः ।१७
शिष्योऽपि लक्षणैरेभिः कुर्याद्गुरुपरीक्षणम् ।
तत्सम्पर्के शिवार्चादौ सङ्गतेवांथ तद्गतैः ।१८
शिष्यस्तु शिक्षणीयत्वाद्गुरोरौरवकारणात् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गुरोगौरवामाचरेत् ।१९
यो गुरुः सः शिवः प्राक्यो यः शिव स गुरुः स्मृतः ।
गुरुर्वा शिव एवाथ विद्याकारेण सस्थितः ।२०
यथा शिवस्तथा विद्या यथा विद्या तथा गुरुः ।
शिवप्रविद्यागुरुणां च पूजया सदृशं सलम् ।२१

उसका मोह नष्ट होता है या नहीं, इस प्रकार गुरु शिष्य की परीक्षा करे ।१५। अत्यन्त आनन्द की प्राप्ति शक्ति के पतित होने का चिन्ह है। क्योंकि वह पराशक्ति प्रबोधानन्द स्वरूप है ।१६। अन्तःकरण की विक्रिया आनन्द बोध का लक्षण है, उससे कम्पन-रोमाँच-स्वर एव नेत्रादि के विकार प्रतीत होते हैं ।१७। शिष्यों की लक्षणों से परीक्षा करे, सम्पर्क में शिव की पूजा में, अपनी अथवा उसकी गति से परीक्षा करनी चाहिए ।१८ शिक्षण के योग्य होनेसे शिष्य और गौरवयुक्त होने से गुरु की संज्ञा होती है, इसलिए हर प्रकार से गुरु का गौरव रखे ।१९। गुरु ही शिव हैं, शिव ही गुरु है तथा गुरु और शिव दोनों विद्या हैं तथा विद्या ही गुरु हैं, इस-लिए शिव,गुरु और विद्या के पूजन के समान फल होता है ।२१-२२।

सर्वदेवात्मकश्चासौ सर्वमन्त्रमयो गुरुः ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तस्याज्ञां शिरसा वहेत् ।२२

श्रेयोऽर्थो यदि गुर्वाज्ञां मनसापि न लंघयेत् ।
गुरुज्ञिपालको तस्माज्ज्ञानसम्पत्तिमश्नुते ।२३

गच्छस्तिष्ठन्स्वपन्भुंजन्नान्यत्कर्म समाचरेत् ।
समक्षं यदि कुर्वीत सर्म चानुज्ञया गुरोः ।२४

गुरोर्गृहे समक्षं वा न यथेष्टासनो भवेत् ।
गुरूर्देवो यतः साक्षायद्गृहं देवमन्दिरम् ।२५

पापिनां च यथां संगात्तत्पापात्य तितो भवेत् ।
यथेह विह्नसंपर्कान्मिलं त्यजति काञ्चनम् ।२६

तथैव गुरुसम्पर्का त्यजति मानवः ।
यथा वह्निसमीपस्थो घृतकुम्भो विलीयचे ।२७

तथा पापं विलीयतं ह्याचार्यस्य समीपतः ।
यथा प्रज्वलितो वाह्नि शुष्कमार्द्रं च निर्दहेत् ।२८

गुरु सम्पूर्ण देवात्मक तथा तन्त्रमय हैं. इसलिए गुरु की आज्ञा को प्रयत्नपूर्वक शिर पर धारण करे ।२२। कल्याणकामी शिष्य गुरु आज्ञा को मन से भी नहीं लाँघता क्योंकि गुरु आज्ञा के पालत करने वाले को ज्ञान और सम्पत्ति दोनों ही प्राप्त होते हैं ।२३। चलते, खड़े होते, सोते, खाते तथा अन्य कार्यों को करने के लिए गुरु की आज्ञा प्राप्त कर ।२४। गुरु के घर में या उनके सामने श्रेष्ठ आसन पर न बैठे क्योंकि उसका घर देव-मन्दिर और वह साक्षात् देवता है ।२५। जैसे पापियों की संगति से पतित हो जाता हैं, वैसे ही गुरु की संगति से सब पाप नष्ट होकर धर्मफल मिलता है जैसे अग्नि के सम्पर्क से सुवर्ण स्वच्छ हो जाता है ।२६। गुरु के सम्पर्क से उसी प्रकार शिष्य शुद्ध हो जाता है जैसे अग्नि के सम्पर्क से घी का कलश लीन हो जाता है ।२७। वैसे ही गुरु के सम्पर्क से पाप लीन हो जाते हैं, जैसे जलती हुई अग्नि सूखे काष्ठ को भस्म करती हैं ।२८।

तथाऽयमपि सन्तुष्टो गुरुः पापं क्षणाद्दहेत् ।
मनसा कर्मणा वाचो गुरोः क्रोधं न कारयेत् ।२९
तस्य क्रोधेन दह्यन्ते ह्यायुःश्रीज्ञानसत्क्रियाः ।
तत्क्रोधकारिणो ये स्युस्तेषां यज्ञाश्च निष्फलाः ।३०
यमाश्च नियमाश्चैव नात्र कार्या विचारणा ।
गुरोर्विरुद्ध यद्वाक्यं न वदेज्जातुचिन्नरः ।३१
वदेद्यदि महामोहाद्रौरव नरक व्रजेत् ।
मनसा कर्मणा वाचा गुरुमुद्दिश्य यत्नतः ।३२
श्रेयोऽर्थी चेन्नरो धीमान्न मिथ्याचारमाचरेत् ।
गुरोहितं प्रियं कुर्यादादिष्टो वा न वा सदा ।३३
असमक्षं समक्षं वा तस्य कार्यं समाचरेत् ।
इत्थमाचारवान्भक्तो नत्यमुद्युक्तमानसा ।३४
गुरुप्रियकरः शिष्य शवधमोस्ततोऽर्हति ।
गुरुश्चैद्गुणवान्प्राज्ञः परनानन्दभासकः ।३५

वैसे ही सन्तुष्ट हुए गुरु क्षणभर में पापों को भस्म कर डालते हैं, इसलिए मन, वाणी और कर्म से गुरु को क्रोधित नहीं करना चाहिए ।२९। क्योंकि गुरुके क्रोधित होने से आयु, श्री, ज्ञान और सत्क्रिया नष्ट हो जाती हैं जो शिष्य गुरुको क्रोधित करतेहैं,उनके यज्ञ फलहीन होते हैं ।३०।उनके यम-नियम निःस्सन्देह नष्ठ हो जाते हैं, इसलिये कभी भी गुरुके विरुद्ध कोई बात न कहे ।३१। यदि मोहवश कहता है तो नरकगामी होता हैं । बुद्धिमान् को मन,वाणी और कर्मसे गुरु-सेवा करनी चाहिए ।३२। जो शिष्य कल्याण की कामना करे, उसे मिथ्याचार से बचना चाहिए, गुरु का एक दुर्गुण कहने से सौ दुर्गुण होते है और गुरु के गुण कहने से सभी पुष्पो का फल मिलता हैं, गुरु कहें चाहे न कहे सदा गुरु का प्रिय और हित की करना चाहिए ।३३। उनके सामने पीछे भी उनके हित का कार्य करे, इस प्रकार आचारवान शिष्य श्रेष्ठ मनपूर्वक नित्यप्रति गुरु का प्रिय कार्य करता हुआ शिव धर्म में रत रहे जो गुरु आनन्ददायक एवं विज्ञ हो ।३५।

तत्वविच्छिन्नसंसक्तो मुक्तिदो न तु चापरः।
सवित्संजननं तत्वं परमानन्दसंभवम् ।३६
तत्तत्व दिदितं येन स एवानंददर्शकः।
न पुनर्नाममात्रेण संविदा रहितस्तु यः।३७
अन्योन्यं तारयेत्नौका किं शिला तारयेच्छिलाम्।
एतस्य नाममात्रेण मुक्तिवे नाममात्रिका।३८
यैः पुनर्विदितं ते मुक्ता मोचयत्यपि :
तत्वहीने कुतो बोध कुतो ह्यात्मपरिग्रहः।३९
परिग्रहविनिमुंक्त पशरित्यभिधीयते।
पशभिः प्रेरितश्चापि पशुत्वं नातिदर्तते।४०
तस्मात्तत्वविदेवेह मुक्तो मोचक इष्यते।
सर्वलक्षणसंयुतः सर्वशास्त्रविदप्ययम्।४१
सर्वोपायविधिज्ञोऽपि तत्वहीनस्तु निष्फलः।
सर्वोपायविधिज्ञोऽपि तत्वहीनस्तु निष्फलः।
यस्यानुभवपयन्ता बुद्धिस्तत्वे प्रवर्तते।४२

तथा जो तत्वज्ञानी शिवभक्त हैं, वही मोक्ष देने में समर्थ हैं। ब्रह्माज्ञान की प्रकट करने वाला तत्व परमानन्द से ही उपलब्ध होता है।३६। वह परमानन्द दर्शक तत्व से ही जाना है। जो गुरु ज्ञानहीन हैं वह मोक्ष देने में समर्थ नहीं।३७। ज्ञानी गुरु शिष्य परस्पर तारने में समर्थ होते है। मूर्ख गुरु शिष्य को कभी भी पार नहीं कर सकता।३८। तत्व ज्ञानी तो स्वयं ही मुक्त है, अन्यों की भी मुक्त करने में समर्थ है, तत्व के बिना ज्ञान नहीं और ज्ञान के बिना आत्मज्ञान नहीं।३९। आत्मज्ञान के बिना इसकी पशु संज्ञा है, पशुओं से प्रेरित होने पर पशुत्व को निवृत्ति संभव नहीं।४०। इस प्रकार तत्वज्ञानी ही संसार से पार कर सकता हैं, सर्व लक्षणयुक्ता सर्व शास्त्रों का ज्ञाता।४१। भी यदि तत्वज्ञान से रहित हो तो व्यर्थ है. जिस गुरु की अनुभवी बुद्धि प्रवृत्त होती है।४२।

तस्यावलोकनाद्यैश्च परानन्दोऽभिजायते।
तस्माद्यस्मेत्र पर्कात्बोधानन्दसंभत्र:सम्भव.।४३

गुरु तमेव वृणुयान्नापरं मतिमान्नरः ।
स शिष्यैर्विनयाचारचतुरैरुचितो गुरुः ।४४
यावद्विज्ञायते तावत्सेवनीयो मुमुक्षुभिः ।
ज्ञाते तस्मिन् स्थिरा भक्तिर्यावत्तत्वं समाश्रयेत् ।४५
न तु तत्वं त्यजेज्जातु नोपेक्षत कथंचन ।
यत्रानदः प्रबोधो त्वा नाल्पमण्युपलभ्यते ।४६
वत्सरादपिशिष्येण सोऽन्यं गुरुमुपाश्रयेत् ।
गुरुमन्य प्रपन्नेऽपि नावमन्येत पौर्विकम् ।
गुरोर्भ्रातृंस्तथा पुत्रान्बोधकान्प्रेरकानपि ।७
तत्रादावृपसंगम्य ब्राह्मणं वेदपारगम् ।
गुरुमाराधयेत् प्राज्ञं सुभगं प्रियदर्शनम् ।४८
सर्वभयप्रदातारं करुणाक्रांतमानसम् ।
तोषयेत्तं प्रयत्नेन मनसा कर्मणा गिरा ।४९

उनके दर्शन से परानन्द होता है, इससे जिसकी संगति में प्रबोधानन्द प्राप्त हो ।४३। उसी को गुरु करना चाहिये, अच्छा शिष्य विनयाचा पूर्वक गुरु की भले प्रकार ।४४। ज्ञान की प्राप्ति पर्यन्त सेवा करे,और स्थिर भक्ति का आश्रय करे ।४५। उस गुरु को कभी उपेक्षा न करे, कभी उसका त्याग न करे, यदि किंचित् भी आनन्द और प्रबोध न हो ।४६। तो एक वर्ष पश्चात् अन्य गुरु बनावे परन्तु गुरु का भी तिरस्कार न करे, गुरु के भाई पुत्र बोधक और प्रेरक हो ।४७। उनके पास जाकर पण्डित गुरु के आराधना करे जो प्रियदर्शन हों ।४८। ऐसे सब प्रकार अभयदायक गुरु को करुणायुक्त मन, वाणी और कर्म से प्रसन्न करे ।४९।

तावदाराधयेच्छिष्यः प्रसन्नोऽसौ भवेद्यथा ।
तस्मिन् प्रसन्ने शिष्यस्य सद्यः पापक्षयो भवेत् ।५९
स एव जनको माता भर्ता बधुर्धनं सुखम् ।
सखा मित्रं च वत्तस्मात्सर्वं तस्मै निवेदयत् ।५१
यदा शिवाय स्वदत्तावनास्त्मानं देशिकात्मने ।

तदा शैवो भवेद्देही न ततोऽपि पुनर्भवः ।५२
गुरुश्च स्वाश्रितं शिष्यं वर्षनेक परोक्षयेत् ।
ब्राह्मणं क्षत्रिय वैश्यं च विव्रर्षकम् ।
गाणद्रव्यप्रदानाद्यै रादेशैश्च समासमैः ।
उत्तमांश्चघमे कृत्वा नीचानुत्तकमर्मणि ।५४
आक्रुष्टास्ताडिता वापि ये विषादं न यांत्यपि ।
ते योग्या संयमाः शुद्धाः शिवसकारकर्मणि ।५५
अहिंसका दयावंतो नित्यमुद्यु क्तचेतसः ।
अमानिनो बुद्धिधमतस्त्यक्तस्पर्द्धाः प्रियंवदा ।५६
ऋजवो मृदवः स्वच्छा विनीताःस्थिरचेतस ।
शौचाचारसमायुक्ताः शिवभक्ता द्विजातयः ।५७
एवं वृत्तसमोपेता वाङ्मनः कायकर्मभिः ।
शोध्या बोध्या यथान्यायमिति शास्त्रेषु निश्चयः ।५८

उवकी प्रसन्नता प्राप्ति पर्यन्त सेवा करे, गुरु के प्रसन्न होते ही शिष्य के सब पाप नष्ट हो जाते है ।५०। गुरु ही माता, भ्राता, बन्धु, सखा, धन तथा सुख है इसलिये सब कुछ उनको अर्पण कर दे ।५१। उस शिव रूप गुरु को अपनी आत्मा का दान कर देने पर ही यह देहधारी शिव रूप होता है फिर उसका जन्म नहीं होता ।५२। आचार्य स्वरूप को प्र त होकर यह पशु अपने पापों का क्षतच करके परमपद पाता है । गुरु अपने शिष्य की एक वर्ष तक परीक्षा करे तथा क्षत्रिय, वैश्य की क्रम से दो तीन वर्ष तक की परीक्षा करने का विधान है ।५३। प्राणद्रव्य के प्रदान से समास में उत्तम को नीच और नीच को अच्छे कर्म में लगावे ।४६। जो ताडन करने से विषाद को प्राप्त नहीं होने वे शिव संस्कार के कर्म में योग्य, संयत और शुद्ध माने जाते हैं ।५५। जो अहिंसा प्रिय वचन बोलने वाले दयायुक्त, मानरपित, बुद्धिसम्वन्ध, स्थिर बुद्धि ।५६। सरल, मृदु, स्वच्छ, विनीत, स्थिरचित, शौचाचार से सम्पन्न शिवभक्त ब्राह्मण हैं ।५७। इस प्रकार मन वचन, कर्म से शुद्ध बोधयुक्त शिष्य हों, उनका संस्कार करे, यही शास्त्र का निर्णय है ।५८।

॥ शिव-दीक्षा में शिष्य-संस्कार वर्णन ॥

पुण्येऽहनि शुचौ देशे वहुदोषयिवविर्वजिते ।
देशिकः प्रथम कुर्यात्संस्कारं समयाह्वयम् ।१
परीक्ष्य भूमिं विधिवद्गंधवर्णरसादिभिः ।
शिविशास्त्रोक्तमार्गेण मंडप तत्र कल्पयेत् ।२
कृत्वा वेदिं च तन्मध्ये कुण्डानि पारकल्पयेत् ।
अष्टदिक्षु तथा दिक्षु तवैशात्यां पुनः क्रमात् ।३
प्रधानकुंडं कुर्वीत यदा पश्चिमभागतः ।
प्रधानमेकमेकाथ कृत्वा शोभां प्रकल्पयेत् ।४
वतानध्वजमालाभिविविधाभिरनेकशः ।
वेदिमध्ये ततः कुर्यान्मंडल शुभलक्षणम् ।५
रक्त मादिभिश्चूर्णेरीश्वरावाहनो चित्तम् ।
सिंदूरशालिनीवारचूर्णैरेवाथ निर्द्धनः ।६
एकहस्तं द्विहस्तं वः सितं वा रक्तमेव वा ।
एकहस्तस्त पद्मस्य कर्णिकाऽष्ठांगुला मता ।७

उपमन्यु ने कहा—पुण्य दिवस में पवित्र स्थान में जो साधक समयाह्वय संस्कार करे ।१। वह गंध, वर्ण, रसादि से प्रथम पृथिवी की परीक्षा कर शिव शास्त्रोक्त विधान से मण्डप बनावे ।२। वेदी बनाकर उसमें कुण्ड बनावे तथा आठों दिशाओं में ईशान दिशा के क्रम से ।३। प्रधान कुण्ड का निर्माण करे अथवा पश्चिम क्रम से बनावे और उसमें एक प्रधान करके सुशोभित करे ।४। आच्छादन, ध्वजा, माला आदि सजाकर वेदी के और एक में सुन्दर मण्डप बनावे ।५। रक्त हेमादि के चूर्ण से ईश्वराह्व करे और दरिद्र हो तो सिंदूर शालि तथा नीवार के चूर्ण से ही आह्वान करे ।६। एक हाथ अथवा दो हाथ का चोड़ा श्वेत या रक्त कमल बनाकर उसमें आठ दल रखे ।७।

केसराणि तदर्द्धानि शेषं चाष्टदलादिकम् ।
ष्टिहस्तस्यं पद्मस्य द्विगुणं कर्णिकादिकम् ।८
कृत्वा शोभोपशोभाढयामैशान्यां तस्य कल्पयेत् ।
एकहस्तं तदर्द्ध वा पुनर्वांद्यां तु मंडलम् ।९

व्रीहितंदुलसिद्धार्थतिलपुष्पकुशास्तरे ।
तत्र लक्षणसंयुक्तं शिवकुम्भं प्रसाधयेत् ।१०
सौवर्णं राजतं वापि ताम्रजं मृन्मयं तु वा ।
गंधपुष्पाक्षताकीर्णं कुशदूर्वाङ्क राचितम् ।११
सितसूत्रावृतं कंठे नववस्त्रयुगावृतम् ।
शुद्धाम्बुपूमुत्कूचै सद्रव्य सापिधानकम् ।१२
भृंगार वर्धनीं चापि शखं च चक्रमेव वा ।
विना सूत्रादिकं सर्वं पद्मपत्रमथापिवा ।१३
तस्यासनारविंवस्य कल्पयेदुत्तरे दले ।
अग्रतश्चंदनांभोभिरस्त्रराजस्य वर्द्धिनीम् ।१४

उसके आधे में केशर और आधे में दल बनावे ।८। ईशान की ओर अनेक प्रकार से सुशोभित करे,वेदी में एक हाथ अथवा अर्ध हाथ का मंडप रचे ।९। व्रीहि,अक्षत सरसों तिल, पुष्प और कुश बिछाकर सर्व लक्षण युक्त शिवघट स्थापित करे ।१०। वह घट सुवर्ण,चाँदी ताम्र अथवा मृत्तिका का हो,गन्ध, पुष्प,अक्षत,कुश,तथा दूर्वा के अंकुरों में उसका पूजन करो ।११। सफेद सूत्र कण्ठ में बांधे और दो नवीन वस्त्रों से उसे ढक दे, शुद्ध जल से युक्त कूर्च, विधान-द्रव्य ।१२। झारी, बेला, शख, चक्र और सूत्र के बिना सभी वस्तु कमल के ।१३। उत्तर दल में कल्पना करे तथा शिवशास्त्र में वर्णित विधि से चन्दन के जल से अग्रभाग की ओर आचमन करे ।१४।

मंडलस्य ततः प्राच्यां मत्रकुम्भे च पूर्ववत् ।
कृत्वा विधियदीशस्य महापूजां समाचरेत् ।
अथार्णवस्य तीरे वा नद्यां गोष्टेऽपि वा गिरौ ।
देवागारे गृहे वापि देशेऽन्यस्मिन्मनोहरे ।१६
कृत्वा पूर्जोदितं सर्वं बिना वा मंडपादिकम् ।
कृत्वा पूर्ववत्कृत्वा स्थडिल च विभावसोः ।१७
मंडलं पूर्ववत्कृत्वा स्थडिल च विभावसोः ।
कृत्वा पूजाभवनं प्रहृष्टवदनो गुरुः ।
सर्वमंगलसंयुक्तः समाचरितनैत्यकः ।१८

महापूजां महेशस्य कृत्वा मण्डलमध्यतः ।
शिवकुम्भे तथा भूयः शिवमावाह्यपूजतेयेत् ।१९
पश्चिमाभिमुख्रं ध्यात्वा यज्ञरक्षंकमीश्वरम् ।
अर्चयेदस्त्रवर्द्धन्यामस्त्रमीशस्य दक्षिणे ।२०
मन्त्रकुम्भे च विन्यस्य मन्त्रं मंत्रविशारदाः ।
कृत्वा मुद्रादिकं सर्वं मंत्रयोगं समाचरेन् ।२१

उस मण्डल के पूर्ववत् मन्त्र से कुम्भ का पूजन करे, इस प्रकार विधिवत् ईश्वर का पूजन करे ।१५। नदी, गोष्ठ, सागर या पर्वत के किनारे देवालय, गृह अथवा किसी मनोहर स्थान में ।१६। मंडप आदि के बिना सब पूर्वोक्त विधान करके अग्नि मण्डल और स्थण्डिल करे ।१७। प्रसन्न मुख से गुरु की पूजा वाले गृह में प्रविष्ट होकर सम्पूर्ण मंगलों से युक्त होकर नित्य विधि से करे ।१८। मंडल के मध्य में शिवजी का महान् अर्चन करके शिवकुम्भ में शिवाह्वान एवं पूजन करे ।१९। यज्ञरक्षा वाले ईश्वर के पश्चिम मुख से ध्यान करके ईश्वर के दक्षिण ओर अस्त्र वर्द्धनी की पूजा करे ।२०। मन्त्रज्ञाता कुम्भ में मन्त्र को स्थापित करे तथा सब मुद्रादि करके मन्त्र योग करे ।२१।

ततः शिवानले होमं कुर्याद्देशिकसत्तमः ।
प्रधानुकुंडे परितो जुहुयुश्चापरे द्विजाः ।२२
आचार्यात्पादमर्द्धं वा होमस्तेषां विधीयये ।
प्रधत्नकुंड एवाय जुहुयाद्देशिकोत्तमः ।२३
स्वाध्यायमपरे कुर्युः स्त्रों मंगलवाचनम् ।
जप च विधिवच्चान्ये शिवभक्तिपरायणाः ।२४
नृत्यं गीतं च वाद्य च मंगलान्यपराणि च ।
पूजनं च सदस्यानां कृत्वा सम्यग्विधान ।२५
पुण्याह कारयित्वाऽथ पुनः सपूज्य शङ्करम् ।
प्रार्थयेद्देशिको देव शिष्यानुग्रहकाम्यथा ।२६
प्रसीद देवदेवेश देहमाविश्य मामकम् ।
विमोचयैनं विश्वेशं घृणया च घृणानिधे ।२७

अथ चैवं करोमीति लब्धाणुज्ञस्तु देशिकः ।
आनीयोपोषित शिष्य हविष्याशिनमेव वा ।२८
एकाशनावा विरवं स्तातं प्रातः कृतक्रियम् ।
जपंतं प्रणव देवं ध्यायंतं कृतमङ्गलम् ।२९

फिर प्रधान आचार्य शिवाग्नि में हवन करे और अन्य ब्राह्मण चारों ओर हवन करे ।२२। आचार्य से चौथाई हवन करे तथा प्रधान आचार्य प्रधान कुंड में हवन करे ।२३। अन्य ब्राह्मण वेदपाठ तथा मङ्गल वाचक स्तोत्र का पाठ करें ।२४। नृत्य, गायन, वाद्यादि युक्त सभा में आने वालों का विधिपूर्वक सत्कार करे ।२५। पुण्याहवाचन करके शिवजी का अर्चन करे और शिष्य के अनुग्रह के लिए आचार्य की प्रार्थना करे ।२६। हे देव-देव ! आप प्रसन्न होकर मेरे शरीर में प्रविष्ट हों, हे कृपानिधे ! मुझे दुःख से मुक्त कराइवे ।२७। इस अनुज्ञा को पाकर आचार्य को शिष्य को बुला-कर उस प्रातःकालीन उस प्रातःकालीन स्नान वाले व्रत को करे ।२८-२९

द्वारस्य परिचमस्याग्रमंडले दक्षिणस्य वा ।
दर्भासने समीसीनं विधायोदङ्मुखं शिशुम् ।३०
स्वयं प्राग्वदनस्तिष्ठन्मूर्ध्वकायं कृतांजलिम् ।
सप्रोक्ष्य प्रोक्षणीतोयैमूर्द्धन्यन्त्रैण मुद्रया ।३१
पुष्पक्षेपेण संताडय बध्नोयाल्लोचन गुरुः ।
दुकूलार्द्धन वस्त्रेण क्षंत्रितेन नवेन च ।३२
ततः प्रवेशयेच्छिष्यं गुरुर्द्वारेण मंगलम् ।
सोऽपि तेनेरितः शभोराचरेत्त्रिः प्रदक्षिणाम् ।३३
ततः सुवर्णसंमिश्रं श्रुत्वा पुष्पांजलिं प्रभोः ।
प्राङ्मुखश्चोदडशुखो वा प्रणमेत्दडवत्क्षितौ ।३४
ततः संप्रोक्ष्य मूलेन शिरस्यस्त्रेण पूर्ववत् ।
संताडय देशिकस्तस्य मोचयेन्नेत्रबन्धनम् ।३५

पश्चिम द्वार के आगे, दक्षिण मंडल की ओर कुशासन पर उस शिष्यको उत्तराभिमुख बैठायें ।३०। स्वयं पूर्वाभिमुख होकर ऊँचा शरीर करे तथा उस

हाथ जोड़े हुए शिष्य को मुद्रास्त्र से जल के द्वारा शिर प्रोक्षण करे ।३१। फूलों को मारकर ताड़न करे तथा नेत्रों को नवीन अभिमंत्रित दुपट्टे में बाँध कर ।३२। शिष्य को द्वार की ओर से प्रवेश करावे तथा शिष्य गुरु-प्रेरणा से शिवजी की तीन परिक्रमा करे ।३३। फिर स्वर्ण मिश्रित पुष्पांजलि अर्पल कर पूर्वाभिमुख होकर प्रणाम करे तथा पृथिवी में दण्ड के समान गिर जाय ।३४। फिर पूर्ववत् गुरु मूलअस्त्र से शिष्य के शिर को छिड़क कर पुष्प फेंक कर मारें और नेत्रों को खोल दे ।

स दृष्ट्वा भूयः प्रणमेत्साञ्जिलिः प्रभुम् ।
यथासीन शिवाचार्यो मंडलस्य तु दक्षिणे ।३६
उपवेश्यात्मनः सव्ये शिष्यं द्रर्भासने गुरु ।
आराध्य च महादेवं शिवहस्तं प्रविन्यसेत् ।३७
शिवतेजोमयं पाणि शिवमंत्रमुदीरयेत् ।
शिवाभिमानसंपन्नो न्यसेच्चिजष्यस्य मस्तके ।३८
सर्वांगालंबन कुर्यात्तेनैव देशिकः ।
शिष्योऽपि प्रणमेद्भू मौ देशिकाकृतिमीश्वरम् ।३९
ततः शिवानले देव समभ्यर्च्य यथाविधि ।
हुताहुतित्रयं शिष्यमुपवेश्य यथा पुरा ।४०
दर्भाग्रैः संस्पृशस्तं च विद्ययात्मानमाविशेत ।
नमस्कृत्य महादेवं नाडीसंधानमाचरेत् ।४१
शिवशास्त्रोक्तमार्गेण कृत्वा प्राणस्य निगमम् ।
शिष्यदेहप्रवेशं च स्मृता मंत्रास्तु तर्पयेत् ।४२

वह उस मण्डलको देखकर शिवको दण्डवत । प्रणामकरे फिर आचार्य शिष्यको दक्षिण मंडलकी ओर बैठा देवे ।३६। और उसे अपने दक्षिणऔर कुशा पर बैठे हुए शिवकी आराधना कराकर शिव हाथ से स्पर्श करे ।३७। शिव मंत्रोच्चार पूर्वक,शिव अभिमानसे युक्त होता हुआ शिव तेज-युक्त हाथको शिष्यके सिर पर फेरे ।३८। उसी हाथसे शिष्यके संपूर्ण अगों का स्पर्श करे तथा शिष्य भी गुरुको ईश्वर मानकर प्रणाम करे।३९। फिर

शिवालय में विधिवत् पूजन कर तीन आहुति देकर शिष्य को आगे करे ।४०। और उसे दम के अगले भाग से स्पर्श करते हुए आत्मा का विधान करके शिव प्रणाम कर नाड़ी संधान करे ।४१। शिवशास्त्रोक्त विधान से प्राणायाम करके शिष्य के देह में प्रविष्ट होने के लिए स्मरण करके मन्त्रों से तर्पण करे ।४२।

सतर्पणाय मूलस्य तेनवाहुतयो दशः ।
देतास्तिस्रस्तथांगानामंगैरव यथाक्रमम् ।४३
ततः पूर्णाहुति दत्वा प्रायश्चित्ताय देशिकः ।
पुनर्दशाहुतीः कुर्यान्मूलमंत्रेण मंत्रवित् ।४४
तुनः संपूज्य देवेशं सम्यगाचम्य देशिकः ।
हुत्वा चैव यथान्यायं स्वजात्या वैशगमुद्धरेत ।४५
तस्यं वं जनयेत्क्षात्रमुद्धारं च ततः पुनः ।
कृत्वा तथैव विप्रत्व जनयेदस्य देशिककः ।४६
राजन्यं चैवमुद्धृत्य कृत्वा विप्र पुनस्तयोः ।
रुद्रत्वं जनयेद्विप्र रुद्रनामैव साधयेत् ।४७
प्रोक्षणं ताडनं कृत्वा शिशोः स्वात्मानमात्मनि ।
शिवात्मकमनुस्मृत्य स्फुरंतं विस्फुलिंगवत् ।४८
नाड्य यथोक्तया वायु रेचयेन्मन्त्रतो गुरुः ।
निर्गम्य प्रविशेन्नाडयां शिष्यस्य हृदय तथा ।४९

मूल मन्त्र की तृप्ति के लिए विनियोग पूर्वक दस आहुतियाँ दे और उसी मूल मन्त्र से अंग के देवताओं को तृप्त करे ।४३। फिर आचार्य प्रायश्चित की पूर्णाहुति दे तथा मूल मन्त्र से दस आहुति देनी चाहिए ।४४। फिर आचार्य शिवजी का पूजन करे और प्रणाम आचमन कर वैश्य जाति का उद्धार करे ।४५। इसी प्रकार क्षत्रिय का उद्धार कर ब्राह्मणत्व उत्पन्न करावे और ।४६। राजत्व तथा वैश्वत से छुड़ाकर ब्राह्मणत्व प्राप्त होने पर रुद्रत्व उत्पन्न करे और रुद्रका साधन करे।४७। शिष्य को प्रोक्षण और ताड़न करके अपनी आत्म से आत्मा में स्फूर्यमाण होकर शिवात्मा को स्मरण करे ।४८। मन्त्र पूर्वक गुरु-नाड़ी द्वारा वायु को निकाले तथा सुषुम्ना से निकालकर कुम्भक से प्रवेश करावे और शिष्य के हृदय में ।४९।

प्रविश्य तस्य चैतन्यं नीलबिन्दुनिभ स्मरन् ।
स्वतेजसाऽपास्तमल ज्वलतमनुचितयेत् ।५०
तमादाय तथा नाड्या मन्त्री सहारमुद्रया ।
पूरकेण निवेश्वैनमेकी भावार्थमात्मनः ।५१
कु भकेन तथा नाड्या रचकेन तथा पुरा ।
तस्मादादाय शिष्यस्य हृदये त निवेशयेम् ।५२
तमालभ्य शिवाल्लब्ध तस्मै दत्वोपवीत्रकम् ।
हुत्वाऽऽहुतित्रय पश्चन्द्दद्यात्पूर्णाहुतिं ततः ।५३
देवस्य दक्षिणे शिष्यमुपवेश्य वरासने ।
कुशपुष्पपरिस्तीर्णे वद्धांजतिरुड्मुखम् ।५४
स्वास्तिकासनमारूढ त्रिधाय पाङ्मुख स्वयम् ।
वरासनस्थितो मंत्रैर्महामङ्गलानिः स्वनैः ।५५
समादाय घटं पूर्णं पूर्णमेव प्रसादितम् ।
ध्यायमानः शिव शिवयाभिषिचेत देशिकः ।५६

मन्त्र शवेश कराकर नीलबिन्दु के स्मरणपूर्वक अपने तेज से मल दूर करता हुआ प्रकाश का चिन्तन करे ।५०। इस वायु को गुरु इसी नाड़ी के द्वारा ग्रहण कर पूरक से निविष्ट कर आत्मा ते आत्माका एकी भाव करके ।५१। कुम्भ नाड़ी से वायु की शोध कर शिष्य के हृदय में स्थित करे ।५२ फिर उस शिष्य को स्पर्श करके शिव से ग्रहण किये यज्ञोपवीत को शिष्य को प्राप्त कराकर तीन आहुतियाँ देकर फिर पूर्णाहुति दे ।५३। शिव के दक्षिण और शिष्य को उचित आसन पर बैठावे और कुशा पर बिछे फूलों पर उत्तराभि मुख कर बद्ध शिष्य को ।५४। स्वतिक आसन से बैठावे और पूर्वाभिमुख स्वय बैठकर श्रेय मङ्गल मन्त्रों के उच्चारण पूर्वक उत्तम आसन पर बैठकर ।५५। सिद्ध किये हुये पूर्ण घट को लाकर ध्यानरत शिष्य पर जल छिड़के ।५६।

अथापनुद्यस्नानांबु परिधाय सितांवरम् ।
आचान्तोऽलंकृतः शिष्यः प्रजालिर्मंडपव्रजेत् ।५७
उपवेश्य यथापूर्वं तं गुरुदर्भैर्विऽटरे ।
संपूज्य मंडदे देवं करन्यासं समाचरेत् ।६८

ततस्तु भस्मना देवं ध्यायन्मनसि देशिकः ।
सभालमेत पाणिभ्यां शिशुं षिवमुदीरयेत् ।५६
अथ तस्य शिवाचार्यो दहनप्लावनादिकम् ।
सकलीकरण कृत्वा मातृकन्यासवर्त्मना ॥६०
ततः शिवासनं ध्यात्वा शिष्यमूर्द्धनि देशिकः ।
तत्रावाह्य तथान्यायमचतेन्मनसा शिवम् ॥६१
प्रार्थयेत्प्रांजलिर्देव नित्यमंत्र स्थितो भव ।
इति विज्ञाप्य तं शंभोस्तेजसा भासुर स्मरेत् ॥६२
सपुज्याथ शिव शैवीमाज्ञां प्राप्य शिवात्मिकाम् ।
कर्णेशिष्यस्य शनकैः शिवयन्त्रमुदीरयेत् ॥६३

और स्नान के जल को पोंछकर सफेद वस्त्र धारण कर, सुसज्जित होकर हाथ जोड़ता हुआ शिष्य में मंडप में पहुंचे ।५७। तब गुरू उसे कुश के आसन पर बैठाकर मंडल में देवार्चन कराकर न्यास करे ।५८। फिर भस्म हाथ में लेकर शिव का ध्यान करके शिष्य को हाथ से पकड़ कर शिव मन्त्र का उच्चारण करावे ।५९। फिर उस शिष्यको आचार्य संकली कारण मातृका-न्यास के मार्ग से करावे ।६०। तब शिवासन का ध्यान करके आचार्य उस शिष्य को न्यायपूर्वक आवाहन कर मन से शिव का पूजन करे ।६१। तथा करवद्ध प्रार्थना करे कि आप यहाँ नित्य निवास करने की कृपा करें, शिव के प्रति ऐसा निवेदन कर उस महातेजस्वी स्वरूप का स्मरण करे ।६२। फिर शिवजीकी पूजा कर शिवकी आज्ञा को पाकर गुरु शिष्य के कान में धीमे धीमे शिव मन्त्र का उपदेश करे ।६३।

स तु बुद्धांजलिः श्रुत्वा मन्त्रं तद्गतमानसः ।
शनैस्त व्याहरेच्छिष्यः शिवाचार्यस्य शासनात् ॥६४
ततः शाक्तं च सदिश्य मन्त्रं मन्त्रविचक्षणः ।
उच्चारयित्वा च सुख यस्मै मङ्गलमादिशेत् ॥६५
ततः समासान्मन्त्रार्थं वतच्यवाचकयोगतः ।
समादिश्वरं रूपं योगमासनमादिशेत् ॥६६

अथ गुर्वाज्ञया शिष्यः शिवाग्निगुरुसन्निधौ ।
भक्त्यैवमभिसंधाय दीक्षावाक्यमदीरयेत् ॥६७
वरं प्राणपरित्यागश्छेदनं शिरसोऽपि वा ।
न त्वनभ्यर्च्य भुंजीत भगवन्तं त्रिलोचनम् ॥६८
स एव दद्यान्नियतो यावन्मोहविपर्ययः ।
तावदाराधयेद्देवं तन्निष्ठस्तत्परायणः ॥६९
ततः स समयो नाम भविष्यति शिवाश्रमे ।
लब्धाधिकारो गुर्वाज्ञापालकस्तद्वशो भवेत् ॥७०

शिव-मन्त्र में चित्त को लगाता हुआ शिष्य मन्त्र को सुनकर धीरे-धीरे ही उच्चारण करे ।६४। फिर मन्त्र कुशल गुरु मन्त्रोच्चारण कराने के उपरान्त शिष्य के लिए मंगलाचार करावे ।६५। फिर वाच्य-वाचक योग से कई मास तक मंत्रार्थ को कहकर ईश्वर रूप वर्णन और योगासन सिखावे ।६६। तब गुरु आज्ञा से शिष्य शिवाग्नि और गुरु के समीप दीक्षा वाक्य कहे ।६७। चाहे प्राणान्त हो, चाहे शीश कट जाय, परन्तु बिना शिवार्चन किये भोजन न करे ।६८। जब तक उस शिष्य का मोह दूर नहीं हो, तब तक गुरुनिष्ठ रहकर देव की आराधना करता रहे ।६९। तब वह शिवाश्रम का अधिकारी होगा, उसे सदा गुरु आज्ञा के पालन पूर्वक उसके आधीन रहना चाहिए ।७०।

अतः परं न्यस्तकरो भस्मादाय स्वहस्ततः ।
दद्याच्छिष्याय सूसेन रुद्राक्षं चाभिमन्त्रितम् ॥७१
प्रतिमा वापि देवस्य गूढ़देहमथापि वा ।
पूजाहोमजपध्यानसाधनानि च संभवे ॥७२
सोऽपि शिष्यः शिवाचार्याल्लब्धानि बहुमानतः ।
आददीताज्ञया तस्य देशिकस्य न चान्यथा ॥७३
आचार्यादाप्तमखिलं शिरस्याधाय भक्तितः ।
रक्षयेत्पजयेच्छंभुं मठे वा गृह एव वा ॥७४
अतः पर शिवाचारमादिशेदस्य देशिकः ।
भक्तिश्रद्धानुसारेण प्रज्ञायाश्चानुसारतः ॥७५

यद्युक्तं यत्समाज्ञातं यच्चैवान्यत्प्रकीर्तितम् ।
शिवाचार्येण समये तत्सर्वं शिरसा वहेत् ॥७६
शिवागस्य ग्रहण वाचनं श्रवण तथा ।
देशिकादेशतः कुर्यान्न स्वेच्छातो न चान्ततः ॥७७
इति संक्षेपतः प्रोक्तः संस्कारः सनयाह्वयः ।
साक्षाच्छिवपुरप्राप्तौ नृणां परमसाधनम् ॥७८

फिर करन्यास कर अपने हाथ से भस्म लगावे, उस भस्म को और अभिमन्त्रित रुद्राक्ष को शिष्य के लिए दे ।७१। अथवा लिंगात्मक प्रतिमा लेकर पूजन, हवन, जप, ध्यान तथा साधन करे ।७२। आचार्य से अत्यन्त मानपूर्वक शिष्य इन वस्तुओं को ग्रहण करे और उसकी आज्ञा का कभी उल्लंघन न करे ।७२। भक्ति सहित शीश झुकाकर आचार्य से सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करे और मठ अथवा गृह में शिवजी का पूजन करे ।७४। फिर आचार्य उसे शिवाचार बतावे, सब कुछ भक्ति, श्रद्धा और प्रज्ञा के अनुसार करे ।७५। शिवाचार्य ने कहा, जो आज्ञा दी अथवा और कुछ बात बताई, उस सबका पालन करे ।७६। शिवशास्त्र ग्रहण, पठन, श्रवण यह सब कार्य गुरु से करे स्वेच्छा से या अन्य किसी के कहने से न करे ।७७। यह समस्त संस्कार संक्षिप्त रूप से कहा है, यह साधन शिवपुरी प्राप्त करने वाला है ।७८।

॥ नित्य नैमित्तिक कर्म, सूर्यपूजा तथा पंचयज्ञ ॥

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि शिवाश्रमनिषेविणाम् ।
शिवशास्त्रोदितं कर्म नित्यनैमित्तिक तथा ॥१
प्रातरुत्थाय शयनाद्ध्यात्वा देव सहाम्बया ।
विचार्य कार्यं निर्गच्छेद्गृहाभ्युदितेऽरुणे ॥२
अबाधे विजने देशे कुर्यादवश्यकं ततः ।
कृत्वा शौचं विधानेन दंतधावनमाचरेत् ॥३
अलाभे दन्तकाष्टानामष्टम्यादिदिनेष च ।
क्षपां द्वादशगंडूषैः कुर्यादस्य विशोधनम् ॥४

आचम्य विधिवत्पश्चाद्वारुणं स्नानमाचरेत् ।
नद्यां वा देवखाते वा ह्लदे वाथ गृहेऽपि वा ।।५
स्नानद्रव्याणि यत्तीरे स्थापयित्वा बहिर्मलम् ।
व्यपोह्य मृदमालिप्य स्नात्वा गोमयमालिपेत् ।।६
स्नात्वा पुनः पुनर्वस्त्रं त्यक्त्वा वाथ विशोध्य च ।
सुस्नातो नृपवद्भूयः शुद्धं वासो वसीत च ।।७

श्रीकृष्ण ने कहा—अब शिवशास्त्र के अनुसार व्याहृत नित्य नैमित्तिक कर्म के श्रवण की मेरी इच्छा है ।१। उपमन्यु ने कहा—प्रातः काल उठकर पार्वती सहित शिव का ध्यान कर अरुणोदय होने पर घरसे निकले ।२। उपद्रव रहित स्थान में शौचादि से निवृत्त होकर दाँतुन आदि करे ।३। उसके उपरान्त आत्म शुद्धि के लिए जल बाहर कुल्ले करे ।४। फिर विधिवत् आचमन करके वारुण स्नान करे,और मनसे भगवान् विष्णु का चिन्तन करे, नदी, सरोवर या घर में ही स्नान करे ।५। तट पर स्नान योग्य योमय आदि लगावे अर्थात् गोबर आदि से लीपे ।६। बार-बार स्नान कर वस्त्र त्याग कर शुद्ध वस्त्र धारण करे ।७।

मलस्नानं सुगंधाद्यैः स्नानं दंतविशोधनम् ।
न कुर्याद्ब्रह्मचारी च तपस्वी विधवा तथा ।।८
सोपवीतः शिखां बद्ध्वा प्रविश्य च जलांतरम् ।
अवगाह्य समाचांतो जले न्यस्येत्त्रिमंडलम् ।।९
सौम्ये मग्नः पुनर्मंत्रं जपेच्छक्त्या शिवं स्मरेत् ।
उत्थायाचम्त तेनैव स्वात्मानमभिषेचयेत् ।।१०
गोशृंगेण सदर्भेण पालाशेन दलेन वा ।
पाद्मेन वाथ पाणिभ्यां पञ्चकृत्वस्त्रि रेव व ।।११
उद्यानयूदौ गृहे चैव वर्द्धन्या कलशेन वा ।
अवगाहनकालेऽद्भिर्मंत्रितैरभिषेचयेत ।।१२
सथ चेद्वारुणं कर्तुमशक्तः शुद्धवाससा ।
आर्द्रेण शोधययेदेदहमापादतलमस्तकम् ।।१३

आग्नेयं वाथवा मात्रं कुर्यात्स्नानंशिवेन वा ।
शिवचिंतापर स्नान युक्तास्यात्मीयमुच्यते ॥१२

यज्ञोपवीत धारण करे, शिखा बांधे, जलान्तर से प्रविष्ट होकर स्नान करे और जल में तीन मण्डल जैसा आकार करे ।८-९। फिर जल-मग्न होकर सामर्थ्यानुसार शिव स्मरणपूर्वक मन्त्र जपे और आचमन कर उसी से आत्मा को सींचे ।१०। गोश्रृंग, कुश, ढाकपत्र, कमल या हाथ से पांच अथवा तीन बार अभिषेक करे ।११। स्नान के समय जलों को मन्त्रों से अभिषिक्त करे ।१२। यदि जल का स्नान का सामर्थ्य न हो तो शुद्ध भीगे वस्त्र से अपनी सम्पूर्ण देह को पोंछे ।१३। अथवा भस्म से, मन्त्रों से या शिव मन्त्र के प्रोक्षण से स्नान करे, यह शिवचिंतक युक्त आत्मज्ञान है ।१४।

स्वसूत्रोक्तविधानेन मन्त्राचमनपूर्वकम् ।
आचरेद्ब्रह्मयज्ञांतं कृत्वा देवादितर्पणम् ॥१५
मडलस्थं महादेवं ध्यात्वाऽभ्यर्च्य यथाविधि ।
दद्यादर्घ्यं ततस्तस्मै शिवायादित्यरूपिणे ॥१६
अथवैतस्वरूत्रोक्त कृत्वा हस्तौ विशोधयेत् ।
करन्यास ततः कृत्वा सकलीकृतविग्रहः ॥१७
वामहस्तगतांभोभिर्गंघसिद्धार्थकान्वितैः ।
कुशपुंजेन वाऽभ्युक्ष्य मूलमत्रसमन्वितैः ॥१८
आपोहिष्टादिभिर्मंत्रैः शेषमाध्रमय वै जलम् ।
वामनासापुटेनैव देव सम्भावयेत्सितम् ॥१९
अघमादाय देहस्थं सव्यनासापुटेन च ।
कृष्णवर्णेन बाह्यस्थं भावयेच्च शिलागतम् ॥२०
तर्पयेदथ देवेभ्य ऋषिभ्यश्च विशेषतः ।
भूतेभ्यश्च पितृभ्यश्च दद्यादर्घ्यं यथाविधि ॥२१

अपने सूत्र के विधान से मंत्र तथा आचमन करता हुआ देवादि का तर्पण करे और ब्रह्मयज्ञ तक सब कर्म करे ।१३। मण्डल स्थित शिव का पूजन कर ध्यान करे और आदित्य रूपी शिव को अर्घ्य प्रदान करे ।१६।

फिर सूत्रोक्त विधान से हाथों की शुद्धि करन्यास और सम्पूर्ण शरीर को शुद्ध करे।७१। वाम हाथ में लिये हुए जल से गंध और सरसों युक्त कुशों से मूल मन्त्र सहित प्रोक्षण करे।१८। शेष जल को आपोहिष्टादि, मन्त्रों से सूँघकर वाम नासापुट से देह का पाप ग्रहण कर कृष्ण वर्ण वाहर करके शिला पर ध्यान करे।१६-२०। फिर देवताओं और ऋषियों का तर्पण करे तथा भूत-पितरों के लिए यथा-योग्य अर्घ्य दे।२१।

रक्तचन्दनतोयेनं हस्तामात्रेण मंडलम् ।
सुवृत्तं कल्पयेद्भूमौ रक्तचूर्णाद्यलंकृतम् ॥२२
तत्र सम्पूज्ययेद्भानुं स्वकीयावरणैः सह ।
स्वखोल्कायेति मंत्रेण सांगतः सुखसिद्धये ॥२३
पुनश्च मंडल कृत्वा तदंगः परिपूज्य च ।
तत्र सम्पूज्ययेद्भानुं स्वकीयावरणैः सह ॥२४
पूरयेद्गन्धतोयेन रक्तचंदनयोगिना ।
रक्तपुष्पैस्तिलैश्चैव कुशाक्षतसमन्वितः ॥२५
दूर्वापामार्गद्रव्यैश्च केवलेन जलेन वः ।
जानुभ्यां धरणीं गत्वा नत्वा देवं च मण्डले ॥२६
कृत्वा शिरसि तत्पात्र दद्यादर्घ्यं शिवाय तत् ।
अथबांजलिता तोयं सदभं मलविद्यया ॥२७
उत्क्षिपेदम्बरस्थाय शिवायादित्यमूर्तये ।
कृत्वा पुनः करन्यासं करशोधनपूर्वकम् ॥२८

लाल चन्दनयुक्त जल से, उत्तम भूमि में रत्न और चूर्ण इत्यादि से हाथ के द्वारा मण्डल बनावे।२३। अपने आचरणों सहित यहाँ सूर्य का पूजन करे 'स्वखोल्काय' मन्त्र का पूजन में प्रयोग करे।२३। फिर मंडल बनाकर अंगों का पूजन वहाँ रखे हुए सुवर्णपात्र को एक सौ अट्ठाईस तोले के नाप के नाप से।२४। गंध तथा रक्त चन्दन के जल से पूर्ण करे लाल पुष्प, तिल कुश तथा अक्षतों सहित।२५।दूर्वा, चिरचिटा, गव्य, दुग्ध या जल से भरकर जाँघ के बल पृथिवी में बैठकर मंडल में देवको प्रणाम

करे ।२६। उस पात्र को शीश पर करके अर्घ्य दे, अथवा मूल विद्या से कुश सहित उस जल को अञ्जलि में लेकर ।२७। आकाश में स्थित शिवात्मक आदित्य को अर्घ्य दे और हाथ धोकर करन्यास करे ।२८।

बुद्ध्वेशानादिसद्यांत पञ्चब्रह्ममय शिवम् ।
गृहीत्वा भसित मत्रै विमृज्यांगानि संस्पृशेत् ॥२६
या दिनांतैः शिरोवक्त्रहृद्गुह्यचरणान्क्रमात् ।
ततो मूलेन सर्वांगमालभ्य वसनान्तरम् ॥३०
परिधाय द्विराचम्य प्रोक्ष्यैकादशमन्त्रितैः ।
जलैराच्छाद्य वासो न्यद्द्विराचम्य शिवं स्मरेत् ॥३१
पुनर्न्यस्तकरो मंत्री त्रिपुंड्रं भस्मना लिखेत् ।
अवक्रमाय तं व्यक्तं ललाटे गन्धवारिणा ॥३२
वृत्तं वा चतुरस्रं वा बिन्दुमर्द्धेन्दुमेव वा ।
ललाटे यादृश पुंड्रं लिखित भस्मना पुनाः ॥३३
तादृश भुजयेर्मूर्ध्नि स्मनयोरतरे लिखेत् ।
सर्वांगोद्धूलन चैव न समानं त्रिपुण्ड्रकैः ॥३४
तस्मात्त्रिपुण्ड्रनेवैकं लिखेदुद्धूलनं बिना ।
रुद्राक्षान्धारयेग्नमूर्ध्नि कंठे श्रोत्रे करे तथा ॥३५

ईशान से सद्योजात तक पचब्रह्ममय शिव को जानता हुआ मंत्रों से भस्म ग्रहण करे अंगों को स्पर्श करे ।२६। फिर विपरीत क्रम से शिर, मुख, गुह्य और पैरों में भस्म लगावे तथा सम्पूर्ण में लगाकर वस्त्र पहन ले ।३०। दो बार आचमन कर ग्यारह मन्त्रों से प्रोक्षण करे और वस्त्र धारण कर दूसरे वस्त्र को जल से धोकर दो आचमन कर शिवजी का स्मरण करे ।३१। फिर करन्यास करके भस्म से त्रिपुण्ड्र बनावे और सुगन्धित जल से मस्तक में त्रिपुण्ड्र लगाकर ।३३। दीर्घ या चार अंगुल बिन्दु या अर्धचन्द्राकार त्रिपुण्ड्र लगाना चाहिए ।३३। माथे के समान ही भुजा शीश और छाती पर लगावे, सर्वांग में भस्म मले वह त्रिपुण्ड्र के समान न हो ।३४। इसलिए भस्म रहित माथे में त्रिपुण्ड्र ही बनावे तथा शिर, कंठ, हाथों और कानों में रुद्राक्ष धारण करे ।३५।

सुवर्णवर्णममच्छिन्नं शुभं नान्यैधं तं शुभम् ।
विप्रादीनां क्रमाच्छेष्ठ पीतं रक्तमथामितम् ॥३६

तदलाभे यथालाभं धारणीयमदूषितम् ।
यत्रापि नोत्तरं नीचैर्धार्य नीचमथोत्तरः ॥३७
नाशुचिर्धारयेदक्षं सदा कालेषु धारयेत् ।
इत्थं त्रिसन्ध्यमथा द्विसन्ध्यं सुकृदेव वा ॥३८
कृत्वा स्नानादिक शक्तया पूज्येतपरमेश्वरम् ।
पूजास्थानं समासाद्य बत्ध्वा रुचिरमासनम् ॥३९
ध्यायेदेद्व च देवी प्रांगमुखो वाप्य दङ्गमुखः ।
श्वेतादीन्नकुलीशांतांस्तच्छिष्यान्प्रणमेत्गुरुम् ॥४०
पुनर्देवं शिवं नत्वा ततो नामाष्टक जतेतु ।
शिवो महेश्वरश्चैव रुद्रो विष्णुः पितामहः ॥४१
संसारवैद्यः सर्वज्ञः परमात्मेति चाष्टकम् ।
अथवा शिवमेवैकं जपित्वैकादषाधिकम् ॥४२
जिह्वाग्रे तेजसौ राशि ध्यात्वा व्वाध्यादिशांतये ।
प्रक्षाल्य चरणौ कृत्वा करौ चंदनचर्चितो ।
प्रकुर्वीत करन्यास करशोधनपूर्वकम् ॥४३

वस्त्र सुवर्ण वर्ण के समान पहिने, श्वेत, पीला, लाल और काला यह रङ्ग क्रमपूर्वक ब्राह्मणादि को धारण करना चाहिये।३६। वैसा वस्त्र न मिले तो जैसा उपलब्ध हो वही पहिने, उसमें भी कोई एक दूसरे के वस्त्र धारण न करे।३७। अशौच में रुद्राक्ष धारण न करे, पूजन आदि के समय से धारण करे, इस प्रकार त्रिकाल संध्या, दोनों काल अथवा एक ही संध्या में।३८। शक्ति अनुसार रचवा अनुसार रचनापूर्वक ईश्वर का पूजन करे, पूजा स्थान में श्रेष्ठ आसन लगाकर।३९। शिव-शिवा का ध्यान उत्तर या पूर्वमुख बैठकर करे तथा श्वेतादि से नकुलीश पर्यन्त शिष्यों सहित गुरु को प्रणाम करे।४०। फिर अपने गुरु को प्रणाम कर शिव नामाष्टक का जप करे। शिव, महेश्वर, रुद्र पितामह।४१। संसार

वैद्य, सर्वज्ञ आठ नाम है अथवा ग्यारह बार से अधिक एक शिव नाम का ही जप करे ।४२। उस तेज रात्रि की जिह्वा के अग्रभाग में शान्त्यर्थमान करके, हाथ धोकर, चन्दनादि से चर्चित न्यास तथा कर न्यास करे ।४३।

॥ हवन में कुण्ड, होम द्रव्य कथन ॥

अथाग्निकार्यं वक्ष्यामि कुंडे वा स्थंडिलेऽपि वा ।
वेद्यां वा ह्यायसे पात्रे मृन्मये वा नवे शुभे ।।१
आधायाग्नि विधानेन सस्कृत्य च ततः परम् ।
आराध्य महादेव होमकर्म समाचरेत् ।।२
कुण्डं द्विहस्तमानं वा हस्तमात्रतथापि वा ।
वृत्तं वा चतुरस्रं वा कुर्याद्वेदिं च मण्डलम् ।।३
कुण्डविस्तारवन्निम्नं तन्मध्येऽष्टदलाम्बुजम् ।
चतुरंगुलमुत्सेध तस्य द्वयङ्गुलमेव वा ।।४
वितस्तिद्विगुणोन्नत्या नाभिमन्तः प्रचक्षते ।
मध्ये च मध्यमांगल्या मध्यमोत्तमपर्वणोः ।।४
अगुलेः कथ्यते सद्भिचतुर्विशतिभिः कर ।
मेखलानां त्रयं वापि द्वयमेकमथाशिव ।।६
यथाशोभप्रकुर्वीत श्लक्षणमिष्ट मृदा स्थितम् ।
अश्वत्थपत्रद्योनिं गजाधारवदेव वा ।।७

उपमन्यु ने कहा--कुण्ड या स्थंडिल में किये जाने वाले अग्नि-कार्य का वर्णन करता हूँ। वेदी से बाहर लोहे के या मृत्तिका के नवीन पात्र में ।१। विधिवत् अग्नि को धारण कर संस्कारपूर्वक शिवजी का आराधन कर, हवन, प्रारम्भ करे ।२। दो या एक हाथ का कुंड बनाकर गोल या चौकोर वेदी का मंडल बनावे ।३। कुंड के विस्तार के समान उसमें आठ दल का पद्म बनावे, चार या दो अङ्गुल वेदी से ऊँचा रहे ।४। दो बिलांद ऊँची नाभि करे मध्यमा अङ्गुली के मध्य तथा प्रथम पोरुए के बराबर मध्य कहा गया है ।५। इतने प्रमाण को अङ्गुल कहते है, चौबीस अङ्गुल का एक हाथ कहा है, उसमें तीन, दो या एक मेखल

करे ।६। जैसी शोभा करनी हो वैसी श्रेष्ठ मृत्तिका की बनावे, पीपल के पत्ते या हाथी के होठ के समान उसकी योनि बनावे, कर्म-पीठ के समान दोनों पार्श्वों में अंगुल मात्र ऊँची सब कुण्डों में बनावे, शान्तिसार में ऐसा कहा है ।७।

मेखलामध्यतः कुर्यात्पश्चिमे दक्षिणेऽपि वा ।
शोभनामग्नितः किंचिन्निम्नामुन्मीलिकां शनै. ।।८
अग्रेण कुंडाभिमुखी किंचिदुत्सृज्य मेखलाम् ।
नात्सेधनियमो वेद्याः सा मार्दी वाथ सैकती ।।९
मडल गोशकृत्तोमर्यनि पात्रस्य नोदितम् ।
कुण्ड च मृन्मय वेदिमालिपेद्गोमयांबुना ।।१०
प्रक्षाल्य तापयेत्पात्रं प्रोक्षयेदन्यदंभसा ।
स्वसूत्रोक्तप्रकारेण कुंडादौ बिलिखेत्ततः ।।११
संप्रोक्ष्य कल्पयेद्दर्भैः पुष्पैर्वा वह्निविष्टरन् ।
अर्चनार्थं च होमार्थं सर्वद्रव्याणि साधयेन् ।।१२
प्रक्षाल्य क्षालनीयानि प्रोक्षण्या प्रोक्ष्य शोधयेत् ।
मणिज काष्ठजं वाथ श्रोत्रियागार संभवम् ।।१३
निगत्य पावके बाह्ये लीनं बिबाकृतिं स्मरेत् ।
आज्य संस्कारपर्य तमन्वाधानापुरः सरम् ।।१४

मेखला के मध्य से पश्चिम और दक्षिण की ओर दो प्रान्तों से संयुक्त करे ।८। अग्र भाग से कुण्ड की ओर कुछ मेखला छोड़ कर वेदी के नियम के अनुसार मृत्तिका या रेत की करे ।९। गोबर से उसका मण्डल बनावे कुण्ड और वेदी को गोबर से ही लीपे ।१०। फिर धोकर पात्र को तपावे और अपने सूत्र के अनुसार कुण्डादि खींचे ।११। उसे प्रोक्षण कर कुशा और पुष्पों से अग्नि का आसन बनावे तथा पूजन-हवन के लिए सब सामग्री एकत्र एकत्र करे । १२ । धोने योग्य को धोवे, प्रोक्षण योग्य को प्रोक्षण करे, मणि या काष्ठ से उत्पन्न अथवा ऋत्विक् यहाँ से प्राप्त के अग्नि को स्थापित करे ।१३। अग्नि के बाहर निकलने पर विंवाकार चिन्तन करे तथा संस्कार युक्त घृत आगे रखे ।१४।

स्वसूत्रौक्तक्रमात्कुर्यान्मूलमन्त्रेण मंत्रवित् ।
शिवमूर्त्ति समभ्यर्च्य ततो दक्षिणापार्श्वतः ॥१५
न्यस्य मत्रं घृते मुद्रां दर्शयद्धेधुसज्ञिताम् ।
स्रुक्स्रुवौ तेजसौ ग्राह्यौ न कास्यायससैसको ॥१६
यज्ञदारुमयौ वापि स्मार्तौ वा शिल्पसम्मतौ ।
पूर्णे वा ब्रह्मवृक्षादेरच्छिद्रे मध्य उत्थिते ॥१७
संमृज्य दर्भैस्तौ वह्नौ संताप्य प्रोक्षये पुनः ।
परिषिञ्य स्वसूत्रोक्तक्रमेण शिवपूर्वकः ॥१८
जुहुयादष्टभिर्बीजैरग्निसंस्कारसिद्धय ।
भ्रुंस्तुंब्रुंश्रुंक्रमेणैव पुड्रदमित्यत परम् ॥१९
बीजानि सप्तानां जिह्वानामनुपूर्वशः ।
त्रिशिखा मध्यमा जिह्वा कनका पूर्वतः स्थिताः ॥२०
रक्तांग्नेयी नैर्ऋती च कृष्णान्या सुप्रभामता ।
अतिरिक्ता मरुजिह्वा रवानामानुगुणप्रभा ॥२१

मंत्रज्ञाता अपने सूक्त और मूल मन्त्र से सब कृत्य करे, शिव मूर्ति की पूजा कर दक्षिण पार्श्व से ।१५। मन्त्र द्वारा न्यास करके घृत में धेनु मुद्रा प्रदर्शित करे स्त्रक और स्रुवा कांसे लोहे या शीशे के न ले, अन्य धातु के बना सकता है ।१६। देवदारु के या जैसा शिव शास्त्र मे विधान हो, ढाक पात्र में अथवा दो पत्रों के मध्य तीसरा निकल रहा है, परन्तु छिद्र आदि न हों ।१७। उनको कुशों से मार्जन कर तपावे और शिव मन्त्र से या अपने सूत्रोक्त मंत्र से प्रोक्षण करे ।१८। अग्नि संस्कार की सिद्धि के भ्रंस्तु ब्रुं श्रुं पुंड्रद्रुं इन बीजाक्षरों से हवन करे ।१९। यह सात बीज अग्नि की सात जिह्वाओं के लिए एक-एक हैं । त्रिशिखा तीन शिखावाली है. मध्यमा बहुरूप वाली है उसकी एक शिखा दक्षिण में, एक वाम ओर एक ईशान की ओर, जिसे हिरण्य कहते है, पूर्व और कनक जिह्वा है ।२०। आग्नेयी दिशा की लाल, नैर्ऋत्य की काली, दूसरी और सुप्रभा अतिरिक्त मरुजिह्वा अपने गुण के अनुरूप नाम वाली है ।२१।

स्वबीजानतरं वाच्यः स्वाहान्तश्च यथाक्रमम् ।
जिह्वामन्त्रैस्तु तैर्हुत्वाज्यं जिह्वास्त्वैकैकशः क्रमात् ।।२२
रंवह्नयेति स्याहेति मध्ये हुत्वाहुतित्रयम् ।
सर्पिषा वा समद्भिर्वा परिषेचनभाचरेत् ।।२३
एव कृचे शिवाग्निः स्यात्मरेत्तत्र शिवासनम् ।
तत्राह्य यजेदेद्वर्धनारीश्वरं शिवम् ।
दीपान्त परिषिच्याथ सामद्धोमं समाचरेत् ।।२४
ताः पालाश्यः परा वापि यज्ञिया द्वादशांगुलाः ।
अवक्रा न स्वय शुष्काः सत्वचो निव्रणाः समाः ।।२५
दशांगुला वा विहिताः कनिष्ठांगुलिसमिताः ।
प्रादेशमात्रा वाऽलाभे होतव्याः सकला अपि ।।२६
दूर्वापत्रसमाकारां चतुरगुलमायताम् ।
दद्यादाज्याहुतिं पश्चादन्नमक्षप्रमाणत ।।२७
लाजांस्तथा सर्यपांश्च यवांश्चैव तिलांस्तथा ।
सर्पिषाक्तानि भक्ष्याणि लेह्यचोष्याणि सभवे ।।२८

बीज के अनन्तर स्वाहा लगावे, एक जिह्वा में मंत्रोच्चारपूर्वक क्रम से हवन करे ।२२। रु वह्नये स्वाहा' उच्चारण के मध्य में तीन आहुतियाँ दे घृत या समिधा करके परिषेंचन करे ।२३। ऐसा करने से शिवाग्नि की प्राप्ति होती है, वहां शिवासन का स्मरण कर आहवान करके अर्द्धनारीश्वर शिवा का यजन करें, दीपक तक सींचकर समिधा सहित हवन करे ।२४। वे समिधायें पलाश की बारह अगुल की हों, टेढी न हों तथा त्वचा सहित गीली तोड़ी हुई, ब्रण रहित इकसार हों ।२५। अथवा दश अंगुल कन्नी अंगुली के समान मोटी हों इसके अभाव में एक बिलान्द लम्बी ही ग्रहण करे ।२६। दूर्वादल के समान चार अंगुल लम्बी से भी हवन कर सकते हैं, फिर घृताहुति देकर सोलह उर्द या एक-एक ग्रास प्रमाण अन्न ले । २७ । खील, सरसों जो, तिल घृतयुक्त भक्ष्य, लेह्य, चोष्य ।२८।

दशैवाहुतयस्तत्र पंच वा त्रितय च वा ।

होतव्याः शक्तितो दद्यादेकमेवाथ वाहुतिम् ।।२९
स्रुवेणाज्य समत्यिाद्या स्रुचा मेषात्करेण वा ।
तत्र दिव्येन हातव्य तीर्थेनार्षेण व तथा ।।३०
द्रव्यर्णैकेन वाऽलाभे जुहुया छद्धया पुनः ।
प्रायश्चित्ताम जुहुयान्मत्रयित्वाऽऽहुतित्रयम् ।।३१
ततो होमवशिष्टेन घृतेनापूर्य वै स्रुचम् ।
निधाय पुष्यं तस्याग्र स्रवेणाधोमुखन ताम् ।।३२
सदर्भेण समाच्छाद्य मूलेनांजयिनोत्थितः ।
वौषडंतेन जुहुयाद्धारां तु यबसमिताम् ।।३३
इत्थं पूर्णाहुति कृत्वा परिषिच्च पूर्ववत् ।
तत उद्धास्य देवेश गोपेयेत्तु हुताशनम् ।।१४
तमप्युद्वास्य वा नाभौ यजेत्सधाय निन्यशः ।
अथवा वह्निवानीय शिवशास्त्रोक्तवत्मवा ।।३५

पदार्थ से दस-पाँच अथवा तीन आहुति दे अथवा शक्ति न हो तो एक ही आहुति दे ।२९। स्रुवे से घृत, समिधा हाथ से, देवतीर्थ से या ऋषितीर्थ से हवन करे ।३०। सव द्रव्य न मिलें तो एक द्रव्य से ही प्रायश्चित के लिये तीन आहुति दे ।३१। फिर हवन से शेष रहे घृत से स्रुवे को भरकर उसके आगे पुष्प रखे और अधोमुख स्रुवे को ।३२। कुशों से ढ़क कर मूलमन्त्र से अंजलि बाँधकर खड़े हों और मन्त्र के अन्त में वौषट् लगा कर देवेश को विदा कर अग्नि की रक्षा करे ।३४। अथवा शिव शास्त्रोक्त प्रकार से अग्नि लाकर ।३५।

वागीशीगर्भसभूतं सस्कृत्य विधिवद्यजेत् ।
अन्त्राधानं पुनः कृत्वा परिधीन् परिधाय च ।।३६
पात्राणि द्वंद्वरूपेण निक्षिप्येष्ट्वा शिवं ततः ।
सशोभ्य प्राक्षणीपात्रं प्रोक्ष्य तानि तदभसा ।।३७
प्रणीतापात्रमैषान्यां विन्स्यापूरितं जलैः ।
आज्यसस्कारपर्यंतं कृत्वा संशोध्य स्रुक्स्रुवौ ।।३८

गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयन ततः ।
कृत्वा पृथक्-पृथग्धुत्वा ताजमन्त्रि विचिंतयेत् ।।३९
त्रिपाद सप्तहस्तं च चतुःशृंग द्विशीर्षकम् ।
मधुपिंग त्रिनयन सकपर्दे दुशेखरम् ।।४०
रक्त रक्ताम्बरालेप माल्यभूषितम् ।
सर्वलक्षणसपन्न सोपवीतं त्रिमेखलम् ।।४१
शक्तिमन्त भ्रुक्स्रुवौ च दधानं दक्षिणे करे ।
तोमरे बालवृत्तं च घृतपात्र तथेतरैः ।।४२

वागीश्वरों के गर्भ से उत्पन्न अग्नि को विधिवत् संस्कृत कर यज्ञ करे ओर अग्नि का आधान करके परिधियों को धारण करे ।३६। दो-दो पात्रों को रखकर शिव का पूजन करे और प्रोक्षणी पात्र को अथवा अन्य पात्रों को शुद्ध करे ।३७। फिर जलपूर्ण पात्र ईशान दिशा में रखे तथा घृत संस्कार तक स्रुवे का शोधन करे ।३८। फिर गर्भाधान, पुंसवन सीमन्तोन्नयन करके अग्नि उत्पन्न करें ।३९। जिस अग्नि के तीन चरण, सात हाथ चार सींग, दो शीश, तीन नेत्र, जटाजूट, मस्तक पर चन्द्रमा ।४०। लाल वस्त्र, माला धारण किये, यज्ञोपवीत और मेखला पर युक्त ।४१। स्रुक और स्रुवे को दाहिने हाथ में लिए तथा तोमर, पंखा और घृत पात्र वाम हाथ में धारण किये ।४२।

जात ध्यात्वैवमाकारं जातकर्म समाचरेत् ।
नालापनयनं कृत्वा ततः संशोध्य सूतकम् ।।४३
शिवाग्निरुचिनामास्य कृत्वाहुति पुरः सरम् ।
पित्रौर्विसजन कृत्वा चौलोपनादिकम् ।।४४
आप्तोर्यामावसानांतं कृत्वा सस्कारमस्य तु ।
आज्यधारादिहोमं च कृत्ता स्विष्टकृत ततः ।।४५
रमित्तनेन बीजेन परिषिचेत्ततः परम् ।
ब्रह्मविष्णुशिवेशानां लोकेशानां तथैव च ।।४६
तदस्त्राणां च परितः कृत्वा पूजां यथाक्रमम् ।
धूपदीपादिसिद्ध्यर्थं तह्निमुद्धृत्य कृत्यवित् ।।४७

साधयित्वाज्यपूर्वाणि द्रव्याणि पुनरेव च ।
कल्पयित्वाऽऽसनं वह्नौ तत्रावाह्य यथापुरा ।।४८

सपूज्य देवं देवीं च ततः पूर्णान्तमाचरेत् ।
अथवा स्वाश्रमोक्तं तु वह्निनकर्म शिवार्पणम् ।४६

तथा अन्य पदार्थ धारण किये, अग्नि के जात-कर्म में ध्यान करे तथा नाल को छेदकर सूतक में शुद्ध हो ।४३। रुचि नाम की शिवाग्नि को आहुति से शोधकर माता-पिता कों विदा करे और चोल तथा उपनयन संस्कार आदि करे ।४४। आप्तोतमि तक संस्कार करके स्विष्टकृत मन्त्रों से हवन करके ।४५। चार बीच से संस्कार कर सिचन करे तथा ब्रह्मा, विष्णु शिव के ईश्वर और लोकेश्वर ।४६। तथा उनके अस्त्रों का यथाक्रम पूजन कर धूपादि की सिद्धि के लिए कृत्यज्ञाता अग्नि का उद्धार करे ।४७। और घृत के सहित सब पापों को शोध कर अग्नि में आसन की कल्पना कर पहिले के समान आह्वान करे ।४८। शिव-शिवा का पूजन कर पूर्णान्त कार्य करे अथवा अग्नि कर्मको शिवार्पण करे ।४६

बुद्ध्वा शिवाश्रमी कुर्यान्न च तत्र परो विधिः ।
शिवाग्नेर्भस्भ सग्राह्माग्निहोत्रोद्भव तु वा ।।५०

वैवाहाग्निभवं वापि पक्व शुचि सुगन्धि च ।
कपिलायाः शकृच्छ्रतं गृहीत गगने पतत् ।५१

न क्लिन्नं नातिकठिनं न दुर्गंधं न शोषितम् ।
उपर्यधः परित्यज्य गृह्णीतात्पतितं यदि ।।५२

पिंडीकृत्य शिवाग्न्यादौ तत्क्षिपेन्मूलमत्रतः ।
अपक्वमतिपक्व च सत्यथ्य भसितं सितम् ।।५३

आदाय वा समालोड्य भस्माधारे विनिःक्षिपेत ।
तैजस दारव वापि मृन्मय शैलमेव च ।।५४
अन्यद्वा शोभन शुद्धं भस्माधार प्रकल्पयेत् ।
समे देशे शुद्धे धनवद्भस्म निःक्षिपेत् ।।५५

न चायुक्तकरे दद्यान्नैवाशुचितले क्षिपेत् ।
न सस्पृशेच्च नीचांगंपेक्षेत न लङ्घयेत् ॥५६

शिवभक्त यह सब जानकर करे, अग्निहोत्र की शिवाग्न पे उत्पन्न भस्म ग्रहण करे ।५०। वैवाहिक अग्नि की भस्म भी श्रेष्ठ है, कपिला गऊ का गोबर जो पृथिवी में गिरने से पूर्व ही हाथ में ले लिया जाय, वह श्रेष्ठ है ।५१। वह गोबर बहुत पतला, दुर्गन्धयुक्त या बहुत सूखा न हो, पृथिवी में गिरे हुए गोबर को बीच से ग्रहण करे।५२। उस गोबरकी पिंडी बनाकर मूल मंत्रसे शिवाग्निमें डाल दे, न बहुत पके न कच्चा रहे, उनके श्वेत हो जाने पर ।५३। पवित्र सुगन्धियुक्त ग्रहण कर वस्त्र में तोड़कर भस्माधार में रखे, उस भस्म को मैत्रादि से युक्त पात्र में रखे तथा चाँदी आदि धातु या मिट्टी, पत्थर, काठ ।५४। अथवा किसी अन्य प्रकार के पात्र में धन के समान पवित्र स्थान में रखे ।५५। यदि कहीं जाय तो स्व-यम् अथवा अनुचर के साथ भस्म लेकर चले, अपवित्र हाथ से न छूवे ।५६।

तस्माद्भासिनमादाय विनियुञ्जीत मन्त्रतः ।
कालेषूक्तेष नाग्यत्र नायोग्येभ्यः प्रदापयेत् ॥५७
भस्मसग्रहण कुर्याद्दवेऽनुद्वासिते सति ।
उद्वासने कृते यस्माच्चण्डभस्म प्रजायते ।।५८
अग्निकार्ये कृते पश्चाच्छिवशास्त्रोक्तमार्गतः ।
स्वसूत्रोक्तप्रकाराद्वा बलिकर्म समाचरेत् ॥५९
अथ विद्यासनं न्यस्य सुप्रलिप्त तु मण्डले ।
विद्याकोशं प्रतिष्ठाप्य यजेत्पुष्पादिभि क्रमात ॥६०
विद्यायाः पुरतः कृत्वा गुरोरपि च मण्डलम् ।
तत्रासनवर कृत्वा पुष्पाद्यै गुरुमर्चयेत् ॥६१
ततोऽनुपूजयेत्पूज्यान् भोजयेच्च बुभुक्षितान् ।
ततः स्वयं च भुंजीत शुद्धमन्न यथासुखम् ॥६२
निवेदित च वा देवे तच्छेषं चात्मशुद्धये ।
श्रद्दधानो न लोभेव चण्डाय च समर्पितम् ॥६३

फिर उस अनुचर के हाथ से भस्म लेकर मंत्रयुक्त करे और अयोग्य को न दे ।५७। देव को विदा करके भस्म सग्रह करे उसके विसर्जन करने से जड भस्म होती है । ५८ । शिवशास्त्रोक्त विधि से अग्नि-कार्य के पश्चात् बलि-कर्म करे।५९।फिर विद्यासनसे न्यास करके मंडल को लोप करे और शिवकोश प्रतिष्ठापित कर पुष्प आदिसे अर्चन करे।६०।गुरु को भी उसीप्रकार पुष्पादि से अनेक प्रकार से पूजे।६१। फिर पूजनियों का पूजन करें, भूखों को भोजन करावें और फिर शुद्ध अन्न का भोजन स्वयं करे ।६२। सब कार्य आत्मशुद्धि के लिए श्रद्धापूर्वक करे ।६३।

गन्धमाल्यादि यच्चान्यत्तत्राप्येष समो विधिः ।
न तु तत्र शिवोऽस्मीति बुद्धि कुर्याद्विचक्षणः ।६४
भुक्त्वाचम्य शिव ध्यात्वा हृदये मूलमुच्चरेत् ।
कालशेष नयेद्योग्यैः शिवशास्त्रकथादिभिः ६५
रात्रौ व्यतीते पूर्वांश कृत्वा पूजां मनोहराम् ।
शिवयोः शयनं त्वेकं कल्पयेदतिशोभनम् ।६६
भक्ष्यभोज्यांबरालेपपुष्पमालादिकं तथः ।
मनसः कर्मणा वापि कृत्वा सर्वं मनोहरम् ।६७
ततो देवस्य देव्याश्च पादमूले शुचिः स्वपेत् ।
गृहस्थो भार्यया सार्द्धं तदन्येऽपि तु केवलाः ।६८
प्रत्यूषसमयं बुद्ध्वा मात्रामाद्यामुदीरयेत् ।
प्रणस्य मनसा देवं सांब सगणमव्ययम् ।६९
देशकालोचितं कृत्वा शौचाद्यमपि शक्तितः ।
शखादिनिर्नादैर्देवं देवीं च बोधयेत् ।७०
ततस्तत्सयोन्निद्रैः पुष्पैरतिसुगंधिभिः ।
निर्वर्त्य शिवयोः पूजां प्रारभेत पुरोदितम् ।७१

गन्ध, माला आदि अर्पण करे तथा सभी कार्यों में अपने को शिव मान कर । ६४ । भोजन कर आचमन करे और शिवजी का ध्यान कर हृदय में मूल मंत्र जप कर शिवशास्त्र कहता, सुनता समय बितावे ।६५।

रात्रि व्यतीत होने पर पूर्वांश में पूजन कर शिव शिवा के शयन की कल्पना करे।६६।भक्ष्य भोज्य,आलेपन,गंध मालादि मनसे श्रेष्ठले।६७।फिर पवित्र होकर शिव शिवा के चरणों की ओर सोवे,गृहस्थ हो तो पत्नी को भी वहीं शयन करावे।६८।प्रातःकाल का आभासहोने पर आदि मंत्रउच्चा-रण कर देव-देवी को प्रणाम करे ।६९।और शौचादि नित्य कर्म से निवृत्त होकर देव-देवी को जगावे ।७०। फिर प्रफुल्लित श्रेष्ठ पुरुषों से पूजनकर पूर्वोक्त वधान करे ।७१।

॥ योग मार्ग और उसके विघ्न ॥

ज्ञाने क्रियायां चर्यायां सारमुद्धृत्य सग्रहात् ।
उक्तं भगवता सर्वं श्रुतिं श्रुतिमं मया ।१
इदानीं श्रोतुमिच्छामि योग परमदुर्लभम ।
साधिकार च सांग च सविधिं सप्रयोजनम् ।२
यद्यस्ति मरणं पूर्वं योगाद्यनुपर्दतः ।
सद्यः साधयितुं शक्य येन स्यान्नात्महा नर ।३
तच्च तत्कारण चैव तत्कालकरणानि च ।
तद्भेतारतम्यं च वक्तुमर्हसि तत्वतः ।४
स्थाने पृष्टं त्वया कृष्ण वर्वप्रश्नार्थवेदिना ।
ततः क्रमेण तत्सर्वं वक्ष्ये श्रृणु समाहितः ।५
निरुद्धवृत्यतरस्य शिवे चित्तस्य निश्चला ।
या वृत्तः सा समासेन योद्धः सखल पंचवा ।६
मंत्रयोगः स्पर्शयोगो भावतोगस्यथापरः ।
अभावयोगः सर्वेभ्यो महायोगः परो मतः ।७

श्रीकृष्ण ने कहा—भगवान् ! ज्ञान, क्रिया और अर्चन का जो वेदानुकूल सारांश आपने सद्-ग्रन्थों से लेकर मुझे बतलाया, उसे मैंनेसमझ लिया।१।अब आप उस सांग-योग के विषय में विधि सहित सुनाने कीकृपा करें जो परम दुलर्भ हैं।२। जो योगाभ्यास के त्याग द्वारा विधि पूर्वक मृत्यु होती है, उसी से योग साधन भी समार्थ्य पूर्वक होता हैं। इस प्रकार

मनुष्य आत्म-घाती नहीं माना जाता।३। इसलिए आप कृपाकरके उस योग का समय और विधि विवरण सहित मुझे सुनावेंगे।४। उपमन्युजी बोले—हे कृष्ण ! आप इन सब प्रश्नों के पहस्य को समझने वाले हैं ओर आपका यह प्रश्न परमोपयोगी है अब सावधान होकर उसके विषय में सुनो।५।श्री शिवजी में अपने अन्तकरण की समस्त वृत्तियों को निश्चल रूप से लगा देने का नाम ही योग है और वह पाँच प्रकार का होता है-मंत्रयोग,स्पर्श-योग, भावयोग, अभावयोग, और महायोग ।६-७।

मन्त्राभ्यासवंशेनैव मन्त्रावाच्यार्थगोचार: ।
अभ्याक्षेरा मनोवृत्तिर्मंत्रयोग: उदाहृत: ।८
प्राणायामसुखा सैव स्पर्शयोऽभिधीयते ।
स मन्त्रस्पर्शनिर्मुक्तो भावयोग: प्रकीर्तित: ।९
विलीनावयव विश्व रूप सभाव्यते यत: ।
अभावयोग सप्रोक्तोऽनाभास द्वस्तुन: सत: १०
शिवस्वभाव एवैकश्चित्यते निरुपाधिक: ।
यथा शवमनोवृत्तिर्मह योग इहोच्यते ।११
दृष्टे तथानुश्रत्रिके विरक्त विषये मन: ।
यस्य तस्याधिकारोऽस्ति योगे नान्यस्य कस्यचित् ।१२
विषदद्वयदोषाणां गुणानामीश्वरस्य च ।
वर्शनादेव सतत विरक्तं जायते मन: ।१३
अष्टांगो वा शडगोवा सर्वयोग: समासतनम ।
यमश्च नियमश्चैव स्वस्तिकाद्य तथानम् ।१४
प्राणाम म: प्रयाहारो धारणाध्यानमेव च ।
समाधिरिति योगांगान्यष्टावुक्तानि सूरिभि: ।१५

मन्त्रों के अभ्यास द्वारा जब मनुष्य की मनोवृत्ति वाचार्थ गोचर टिक जाती है तो वह 'मन्त्रयोग' कहा जाता हैं ।८। जब इसी क्रिया को प्राणायाम के साथ किया जाता है तब उसे 'स्पर्शयोग' कहते हैं और यदि मन्त्र-स्पर्श से रहित किया जाय तो वह 'भावयोग' हो जाता है ।

और जब इस अभ्यास में समस्त विश्व तिरोहित हो जाता है तो उसका नाम 'आभावयोग' होता है। उसमें आस पास की वस्तु का आभास भी नहीं रहता।९-१०।जब सब उपाधियों को त्यागकर एक मात्र शिव-स्वरूप का ही ध्यान किया जाता है तो उसे 'महायोग'कहा गया है।११।देखेजाने और सुने जाने वाले कामनायुक्त विषयों से जिसका मन पूर्णतः विरक्त हैं वही योग का अधिकारी होता है।१२।जब मनुष्य इस लोक और परलोक दोनों के सुखों को नाशवान समझ लेता है तो उसका मन शीघ्र विरक्तहो जाता है १३। योग के आठ और छै अङ्ग बतलाये गये हैं। आठ इस प्रकार हैं—यम, नियम आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारण, ध्यान, समाधि।१४-१५।

आसमं प्राणसंरोधः प्रत्याहारोथ धारणा।
ध्यानं समाधिर्योगस्य षडगानि समासतः।१६
पृथग्लक्षणमेतेषां शिवशांस्त्रे समीरितम्।
शिवागमेषु चान्येष विशेषात्कामिकादिषु।१७
योगशास्त्रेष्वपि तथा पुराणेष्वपि केषु च।
अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यापरिग्रहः।
यम इत्युच्यते सद्भिः पंचावयवयोगतः।१८
शौचं तुष्टिस्तपश्चैव जपः प्राणिधिरेव च।
इति पंचप्रभेदः स्यान्नियमः स्वांशभेदतः।१९
स्वास्तिकं पद्मध्यर्नेदुः वीर योगं प्रसाधितम्।
पर्यंकं च यथेष्टं च प्रोक्तमासननष्टधा।२०
प्राणः स्वदेहजो वायुस्तस्यामो निरोधनम्।
तद्रेचकं पूरक च कुंभकं च त्रिधोच्यते।२१

जो छै अङ्ग बतलाये हैं - वे आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि को ही कहते हैं।,६। शैव शास्त्रों में इनके लक्षण विभिन्न बतलाये हैं कुछ ग्रन्थोंमें काभिकादि कर्मोंका वर्णन किया गया है।अहिंसा, सत्य, आस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह इन पाँच का नाम 'यम' कहा गया है। शौच, तुष्टि, जप, तप, ईश्वर प्राणिधान का नाम योगशास्त्र और पुराणों

में नियम बतलाया गया है १८-१६। आसनों के आठ भेद स्वस्तिक, पद्म, अर्धेन्दु वीरासन योग, प्रसाधित, पर्यङ्क और यथेष्ट हैं । प्राणायातका आशय है अपने श्वांस-प्रश्वांस की गति का निरोध करना वह पूरक, रेचक और कुम्भक क्रिया के रूप में तीन प्रकार का होता है ।२०-२१।

नासिकापुटमंगुल्या पीड्यैकमपरेण तु ।
औदर रेचयेद्वायुं तथाय रेचकः स्मृतः ।२२
वाह्येन मरुता देहं दृतिवत्परिपूरयेत् ।
नाश पुटेनापरेण पूरणात्पूरकं मतम् ।२३
न मुंचति न गृहणाति वायुमतर्बहिः स्थितम् ।
संपूर्ण कुमवत्तिष्ठेदचलः स तु कुंभकः ।२४
रेचकाद्यं त्रयमिदं न द्रुति न विलम्बितम् ।
तद्यतः क्रमयोगेन त्वभ्यसेद्योगसाधकः ।२५
रेचकादिषु योऽभ्यासो नाड़ीशोधनपूर्वकः ।
स्वे छोत्क्रमणपर्यतः प्रोक्तो योगानुशासने ।२६।
कन्यादिक्रमशात्प्राणायामनिरोधनम् ।
तच्चतुर्द्धोपदिष्ट स्यान्मात्रागुणाविभागतः ।२७
कन्यकस्तु चतुर्द्धा स्यात्स च द्वादशमात्रकः ।
मध्यमस्तु द्विरुद्धातश्चतुर्विंशतिमात्रकः ।२८

प्राणायाम के लिए पहले बाँये नासिका पूट को बन्द करके दाहिने से वायु को बाहर निकालना रेचक कहा जाता है और फिर दूसरे से श्वांस को भीतर खींचना पूरक कहा जाता है २२-२३। जब बाहर और भीतर को वायु को जहाँ का तहाँ रोक दिया जाता है उसको कुम्भक कहा जाता है ।२४। यह अभ्यास करते समय शीघ्रता नहीं करनी चाहिए श्वाँस को निकालने, खिचने और रोकने में क्रमबद्ध रूप से काम करना चाहिए ।२५। योग-शास्त्र में इसे नाड़ी शोधन करने वाला कहा है और शक्ति तथा रुचि के अनुसार ही करना उचित बताया है ।२६।इसका अभ्यास मात्रा केअनु-सार क्रमशः गढ़ाकर करना चाहिए, इसके चार स्तर रखे गये हैं । २७ । इस क्रम में पहला दर्जा बाहर मात्रा का होता है और दूसरा चौबीस मात्रा का ।२८।

उत्तमस्तु त्रिरुद्घातः षड्विंशन्मात्रकः परः ।
स्वेदकंपादिजनकः प्राणायामस्तदुत्तरः ।२९
आनंदोद्भवरोमांचमेत्राश्रूणां विमोचनम् ।
जल्पभ्रमणमूर्छाद्यं जायते योगिनः परमम् ।३०
जानु प्रदक्षिणीकृत्य न द्रुतेन विलंबितम् ।
अंगुलीस्फोटन कुर्यात्सा मात्रेति प्रकीर्तिता ।३१
मात्रा क्रमेण विज्ञेयाश्चद्धातक्रमयोगतः ।
नाड़ीविशुद्धिपूर्वं तु प्राणायाम समाचरेत् ।३२
अगर्भश्च सगर्भश्च प्राणायामो द्विधा स्मृतः ।
जपं ध्यानं विना र्भः सगर्भस्तत्समन्वयात् ।३३
अगर्भाद्गर्भसयुक्तः प्राणायामः शताधिकः ।
तस्मात्सगर्भं कुर्वन्ति योगिनः प्राणसयमम् ।३४

तीसरा छब्बीस मात्रा का होता है जिसे उत्तम प्राणायाम कहा जाता है । चौथे प्राणायाम में स्वेद, कम्प आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं ।२९। इससे योगाभ्यासी को बड़ी आनन्द प्राप्त होता है । रोमांच,अश्रु प्रवाह,अल्प भ्रमण,मूर्छा आदिभी होने लगते हैं।३०।प्राणायाम के लिये जो मात्रा बतलाई गई है उसका परिमाण एक चुटकी बजाने में जितना समय लगता है, उसी से है । चुटकी न अधिक शीघ्र बजाई जाय न बहुत मन्द गति से । ऐसी मात्राके अनुसार प्राणायाम का समय बढ़ाना चाहिए।३१-३२।प्राणायाम के दो भेद और भी हैं अगर्भ और सगर्भ । जप सहित सगर्भ और इससे विना अगर्भ कहा जाता है ।३३।अगर्भ की अपेक्षा सगर्भ को सौगुना प्रभाव शाली बतलाया है, इससे योगी वैसा ही करते हैं । ३४ ।

प्राणस्य विजयादेव जीयते देहवायवः ।
प्राणोऽपानः समानश्च ह्युदानि व्यान एव च ।३५
नागः कूर्मश्च कृकरो देवरो देवदत्तो धनजयः ।
प्रयाणं कुरुते यस्मात्तस्मात्प्राणोऽभिधीयते ।३६
अवाङ् नयत्यपानाख्यो यदाहारादि भुज्यते ।
व्यानो व्यानशयत्यगान्यशेषाणि विवर्धयन् ।३७

उद्वेजयति मर्माणीत्युदानो वायुरीरितः ।
सम यति सर्वागं समानस्तेन गीयते ।३८
उद्गारे नाग आख्यातः कूर्म उन्मीलने स्थितः ।
कृकरः क्षवथौ ज्ञेयो देवदत्तो विजृम्भणे ।३९
न जहाति मृत वापि सर्वव्यापि धनंजयः ।
क्रमेणाभ्यस्यमानोऽयं प्राणायामः प्रमाणवान् ।४०
निर्दहत्यखिल दोष कर्तुं देहं च रक्षति ।
प्राणे तु विजते सम्यक् तच्चिहनान्युपलक्षयेत् ।४१
विण्मूत्रश्लेष्मणां तावदल्पभावः प्रजायते ।
बहुभोजनसामर्थ्यचि रादुच्छ्वासनं तथा ।४२

प्राणायाम में सफल होकर ही शरीरस्थ इस प्रकार की निम्न प्राण-वायुओं को जीता जाता है प्राण, अपान समान उदान व्यान-नाग, कूर्म, कृनर, देवदत्त और धनञ्जय । प्रयाण करने के कारण ही प्राण वायु का नाम प्राण है ।५-३६। भोजन के रूपमें ग्रहण किये आहार को जो नीचे ले जाता है उसे अपान कहते हैं । व्यान का कार्य शरीर के समस्त अंगों में व्याप्त होना है ।३७। शरीरांगों को उद्वेजित करने वाले वायु को उदान तथा सब अंगों में समभाव रखने वालेको समान कहते हैं । मुख से जभाई आदि निकलने वाला वायु नाग,नेत्रों के उन्मीलन वाला कूर्म, खाँसी आदि वाला वायु देवदत्त कहा जाता है।३८-३९। धनञ्जय का कार्य समस्तअंगों का पोषण करना है यह मृतकावस्था में भी शरीर का त्याग नहीं करता। इस तरह विधिपूर्वक प्राणायाम के अभ्यास से सम्पूर्ण शारीरिक दोष नष्ट हो जाते हैं और देह की सुरक्षा होती है । इसके लिए सावधानी के साथ शरीर में उत्पन्न चिन्हों को देख लें ।४०-४१। प्राणायाम की सफलता से विष्ठा, मूत्र और श्लेष्मा का हरिमाण कम हो जाता है, अधिक भोजन पचाने की सामर्थ्य उत्पन्न हो जाती है और श्वाँसों की संख्या घट जाती है ।

लघुत्वं शीघ्रगामित्वमुत्साहः स्वरसौष्ठवम् ।
सवरोगक्षपश्चैव बलं तेजः सुरूपताः ।४३

घृतिर्मेधा युवत्वं च स्थिरता च प्रसन्नता ।
तपांसि पापक्षयता यज्ञदानव्रतादयः ।४४
प्राणायामस्य तस्यैते कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।
इन्द्रियाणि प्रसक्तानि यथास्व विषयेष्विह: ।४५
आहृत्य यन्निगृहृणाति स प्रत्याहार उच्यते ।
नमःपूर्वाणोन्द्रियाणि स्वर्गं नरकमेव च ।४६
निगृहीतानिसृष्टानि स्वर्गाय नरकाय च ।
तस्मात्सुखार्थी मातिमाञ्ज्ञानवराग्यमास्थित ।४७
इन्द्रियाश्वाग्निगृह्याशु स्वात्मनात्मानमुद्धरेत् ।
धारणा नाम चित्तस्य स्थानबन्धं समासतः ।४८
स्थानं च शिव एवैकोमयन्यद्दोषत्रयं यतः ।
काल कं चावधीकृत्य स्थानेऽवस्थापित मनः ।४९

शरीर में हल्कापन, शीघ्रगामिता, उत्साह, स्वर-सौष्ठव सब तरह के रोगों का नाश, बल तेज, सुन्दरता, धारणाशक्ति, बुद्धिमत्ता, तरुणाई, स्थिरता, प्रसन्नता, तप, पापों का क्षय आदि गुण बढ़ते हैं । यज्ञ, जप,दान द्रव आदि का महत्व प्राणायाम की अपेक्षा अत्यन्त न्यून है ।४३-४५। प्रत्याहार का अर्थ इन्द्रियों को उनके रुचिकारक विषयोंसे हटाकर आत्म-ध्यान में लगाना । मन और इन्द्रियां ही स्वच्छन्द होने पर नर्कका कारण बनती हैं और सयनित की हुई स्वर्गदायक बन जाती है ।४६-४७। इन्द्रिय रूपी घोड़ों को वश में रखकर ही आत्म कल्याण सम्भव है । धारणा का आशय है चित्त को एक स्थान पर भली प्रकार स्थित कर लेना । 'स्थान का आशव 'शिव' के अतिरिक्त और किसी से नहीं हो सकता । अन्यलक्ष्य दोष युक्त होतेहैं । शिव के लक्ष्य पर ही समय की अवधि करके चित्त को ठहराना चाहिए ।४८-४९।

न तु प्रच्यवते लक्ष्याद्धारणा स्यान्न चान्यथा ।
मनसः प्रथमं स्थैय धारणात प्रजायते ।५०
तस्माद्धीरं मनः कुर्याद्धारण भ्यासयोगतः ।
ध्यै वितायां स्मृतो धातुः शिवचिताः मुहुमु हु ।५१

अव्याक्षिप्तेन मनसां ध्यानं नाम तदुच्यते ।
ध्येयावस्थितचित्तस्त सदृशः प्रत्ययश्च यः ।५२
प्र यवान्तनिर्मु क्तप्रवाहो ध्यानमुच्यते ।
सर्व मन्यत्परित्यज्य शिव एव शिवंकर ।५३
परो ध्येयोऽधिदेवेशः साप्ताऽथर्वणी क्षुतिः ।
तथा शिवा परा ध्येया पर्वभूतगतौ शिवो ।५४
तौ श्रु तौ स्मृतशास्त्रे भ्यः सर्वदोदितौ ।
सर्वज्ञौ सतत येयौ नानारूपविभेदतः ।५५

धारणा करते समय अपने मन को लक्ष्य में लगाये रहे, उससे च्युत कदापि न होने दे । इसके बिना चित्त की स्थिरता हो सकना असम्भव है ।५०। इस लिये धारणा द्वारा मन को रोकना आवश्यक है । "ध्यै चिन्ता याम" धातु से 'ध्यान' शब्द बनता है, जिसका आशय निरन्तर शिव का चिन्तन करते रहना है । जब वृत्ति शिवमें एकाकारहो जाय तब उसेध्यान समझना चाहिए । योगसूत्र के अनुसार चित्त के प्रत्ययान्तर प्रवाह कानाम ही ध्यान है । इसलिए समस्त लक्ष्यों का त्याग कर एक मात्र शिवका ही ध्यान करना चाहिये ५१-५३। वेद में भी पर शिवोध्येय' का उपदेश दिया गया है । इसी प्रकार सम्पूर्ण भूतों का कारण स्वरूप शिव ध्यान करना भी आवश्यक है।५४-श्रु ति, स्मृति और समस्त शास्त्रों में शिव और शिवा को ही नाना रूप और भेदों से ध्यान करने योग्य बतलाया है ।५५।

विमुक्तिः प्रत्ययः पूर्व प्रत्ययश्चाणिमादिकम् ।
इत्यतद्दृष्टिविध ज्ञेय ध्यानस्यास्य प्रजोजनम् ।५६
ध्याता ध्यानं तथा ध्येय यच्च ध्यानप्रयोजनम् ।
एतच्चतुष्टयं ज्ञात्वा योग युञ्जीत योगवित् ।५७
ज्ञानवैराग संपन्नः श्रद्दधानः क्षमान्वितः ।
निममश्च सदोत्साही ध्यानतेत्थ पुरुषःस्मृतः ।५८
जपाच्छांत पुनर्ध्यायेद्ध्यानाच्छांतः पुनर्जपेत् ।
जपध्यानाभियूक्तस्य क्षिप्रं योगः प्रसिध्यति ।५९

धारणा द्वादशायामा ध्यानं द्वादशधारणम् ।
ध्यानद्वादशक तावत्समाधिरभिधीयते ।६०
समाधिर्नाम योगांगमन्तिमं परकीर्तितम् ।
समाधिना च सर्वत्र प्रज्ञालोकः प्रवर्त्तते ।६१
यदर्थमात्रानिर्भासस्तिमितोदधिवत्स्थरम् ।
स्वरूपशून्यवद्भानं ममाधिरभिधीयते ।६२

ध्यान के दो उद्देश्य बतलाये गये हैं । प्रथम आत्मा की मुक्ति और दूसरा अणिमादि सिद्धियों की प्राप्ति । योगी का कर्तव्य है कि वह ध्याता, ध्यान,, ध्येय हौर ध्यान के प्रयोजन को समझ कर ध्यान--योग को करे ।५६-५७।ध्याता वह है जो ज्ञान-वैराग्य से युक्त, ममता रहित और सदैव उत्साहयुक्त अवस्था में रहे।५८।जब जप करते हुए थक जाय तो ध्यानकरे और ध्यान से थक जाय तो जप करे, यही योग में शीघ्र सफल होने का मार्ग है।५९बाहर प्राणायाम करने को एक धारणा और बारह बार धारण करने पर एक ध्यान समजना चाहिये । बारह ध्यान होने पर सनाधि हो जाती है जो योग का अन्तिम अङ्ग है यौर जिससे साधक प्रज्ञा लोक को प्राप्ति होता है ।६०-६१। जिस अवस्था में निश्चय सागर की तरह केवल अर्थ का ही प्रकाश हो और स्वरूप का शून्य की तरह भान हो, वह समाधि कही जाती है ।६२।

ध्येये मनः समावेश्य पश्येदपि च सुस्थिरम् ।
निर्वाणानलवद्योगी समाधिस्थः प्रगीयते ।६३
न श्रृणोति न चाघ्राति न जल्पति न पश्यति ।
न च स्पर्श विजानाति न सकल्पयते मन ।६४
न वाभिमन्यते किंचिद्वध्यते न च काष्ठवत् ।
एवं शिवे विलीनात्मा समाधिस्थ इहोच्यते ।६५
यथा दीपो निवातस्थः स्पंदत्ते न कदाचन ।
तथा सामाधिष्ठोऽपि सस्मान्न विचलेत्सुधीः ।६६
एवमभ्यसतश्चारं योगिनो योगमुत्तमम् ।
तदंतराधा नश्यति दिघ्नाः सर्वे शनैः शनैः ।६७

अपने मन को ध्येय में लगाकर सुस्थिर होकर देखता रहने से योगी निर्वाण अग्नि के समान सो जाता है।६३।समाधि अवस्था का तात्पर्य यह है कि साधक न सुने न सूँघे, न बोले, न देखे, न स्पर्श का अनुभव करे न मन में कोई संकल्प उठे। उसे वह कुछ भी न जानता हुआ काठ की तरह अचल हो जाता है और अपनी आत्मा को पूर्णतः शिव में लीन कर देता है।६-४६५। जैसे वायु रहित स्थान में दीपक जरा भी स्पन्दित नहीं होता उस तरह समाधि-अवस्था में योगी तनिक भी चलायमान नहीं होता।६६।इसप्रकार अभ्यास सारा योगी श्रेष्ठ योग को प्राप्त होता है औरतब उसके भीतर के समस्त विघ्न स्वयम् ही धीरे धीरे नष्ट हो जाते है।६७।

॥ योग-मार्ग के अन्य विघ्न ॥

आलस्यं व्याधयस्तीव्राः प्रमाद स्थानसंशयः।
अनवस्थितचित्तत्वमश्रद्धा भ्रांतिदर्शनम्।१
दुःखानि दौर्मनस्यं च विषयेषु च लोलता।
दशते युंजतां पुंसामन्तरायाः प्रकीर्तिताः २
सालस्यमलसत्व तु योगिनां देहचेतसौः।
धातुवैषम्यजा दोषा व्याधय कर्मदोषजा।३
प्रमादो नाम योगस्य साधना नाम भावना।
एद वेत्युभयाक्रांत विज्ञान स्थानसंशय।४
अप्रतिष्ठा हि मनसस्त्वनवस्थितिरुच्यते।
अश्रद्धा भावरहिता वृत्तिर्वे योगवत्मनि।५
विपर्यस्ता मतिर्या सा भ्रांतिरित्य भिधियते।
दुःखमज्ञानज पुंसां चित्तस्याध्यात्मिक विदुः।६
आधिभौतिकमगोन्थं यच्च दुःखं पुराकृते।
आधिदेविकमाख्यातमशन्तस्त्रविषादिकम्।७

आलस, व्याधि स्थान के सम्बन्ध में सशय, चित्त की अस्थिरता अश्रद्धा की भावना भ्रांति दर्शन दुःख मन में बुरे भाव उटना विषयों में चंचलता—ये योग-मार्ग के दस विघ्न हैं।१-२। आलस्य और शिथिलता देह

और चित्त सम्बन्धी दोष हैं। व्याधि की उत्पत्ति धातुओं की विषमतातथा दूषित कर्मोंसे होती है। योग-साधना में भावना न होना प्रसाद कहाजाता है और ध्येय सम्बन्धी दुविधा का नाम 'संशय' होता है। ३४। तन की अस्थिरता को 'अनवस्थित' कहते हैं और योग के सम्बन्ध में सद्भाव न होना अश्रद्धा है। उल्टी बुद्धि से उत्पन्न अवस्था का नाम भ्रान्ति है और अज्ञान के कारण अध्यात्मिक दुःखों की उत्पत्ति होती है। ५-६। जो दुःख पूर्वकृत कर्मों के फलस्वरूप प्राप्ति होते हैं वे आदिभौतिक कहे जाते हैंऔर शास्त्र, विष आदि से उत्पन्न दुःख को आधिदैविक कहते हैं।७।

इच्छाविघातज भोभं दौर्मनस्यं प्रचक्षते।
द्विषयेषु विचित्रेषु विभ्रमस्तत्र लोलता।८
शांतेष्वेषु विघ्नेषु योगासक्तस्य योगिनः।
उपसर्गाः प्रवतते दिव्यास्ते सिद्धिसूचकाः।९
प्रतिभा श्रवणं वार्ता दर्शनास्वादवेदनाः।
उपसर्गाः षडित्येते व्यये योगस्य सिद्धय।१०
सूक्ष्मे व्यवहितेऽतीते विप्रकृष्ट त्वनागते।
प्रतिभा कथ्यते योऽर्थे प्रतिभासो यथातथम्।११
श्रवण सर्वशब्दानां श्रवणे चाप्रयत्नतः।
वार्ता वार्तासु विज्ञानं सर्वेषामेव देहिनाम्।१२
दर्शन नाम दिव्यानां दर्शनं चाप्रयत्नतः।
तथास्वादश्च दिव्यषु पसेष्वास्वाद उच्यते।१३
स्पर्शनाधिगमस्तद्वद्वेदना नाम विश्रुता।
गन्धादीनां च दिव्यानामाब्रह्मभुवनाधिपाः।१४

इच्छा की पूर्ति में व्याघात पड़ने से दुर्मनता उत्पन्न होती है और विभिन्न प्रकार के विषयों से चञ्चलता को विभ्रम कहा जाता है। ८। योगमार्ग में संलग्न योगी के जब ये सब विघ्न शान्त हो जाते हैं तबसिद्धि की सूचना नेने वाले दिव्य उपसर्ग अनुभव होने लगते हैं।९। येउपसर्ग छः प्रकार के होते हैं-प्रतिमा श्रवण, वार्ता, सब वस्तु का दर्शन, स्वाद और

वेदना । ये सब प्रकार के उपसर्ग योग से प्राप्त को शक्ति को नष्ट करने वाले होते हैं।१०।सूक्ष्म के व्यतती हो जाने पर विप्रकृष्ट अवस्था का आगमन होता है तो उसे 'प्रतिमा' कहते हैं । इससे सब विषयों का अर्थ स्वयं मेव प्रकट होने लगता हैं ।११।सब तरह के शब्दों को सुनने लगना 'श्रवण है और समस्त देह धारियों की बातों का जान लेना 'वार्ता' है ।१२।बिना प्रयत्न किये सब दृश्यों का नेत्रों के सम्मुख आते रहना 'दर्शन है और दिव्य रसों का अनुभव होने लगना 'स्वाद' है ।१३। सब प्रकार के स्पर्शों और गन्धों का जानने लगना 'वेदना' है ।१४।

सतिष्ठते च रत्नानि प्रयच्छंति वहु निच ।
स्वछंदमधुरः वाणी विविधाऽस्यात्प्रवर्तते ।१५
अथ प्रयोग योगस्य वक्ष्ये शृणु समाहित ।
शुभे काले शुभे देशे शिवक्षेत्रादिके पुनः ।
विजने जंतुरहिते निःशब्दे बाधवर्जिते ।१६
सुप्रलिप्ते स्थले सौम्ये गधधूपापिवासिते ।
मुक्तपुष्पसमाकिर्णे वितानादिविचित्रिते ।१७
कुशपुष्पसमित्तोयधलमूलसमन्वितते ।
नाग्न्भ्याशे जलाभ्याशे शुष्कपर्णचयेऽपिवा ।१८
न दंशमशकाकीर्णे सर्पश्वापदसंकुले ।
न च दुष्टमृगाकीर्णे न भये दुर्जपावृते ।१९
श्मशाने चैत्यवल्मीके जोर्णागारे चतुष्पथे ।
नदीनदसमुप्राणां तीरे रथ्यांतरेऽपि वा ।२०
न जीर्णोद्यानगोष्टादौ नानिष्टे न च निन्दिते ।
नाजीर्णाम्लिरसोद्गारे न च विण्मूत्रदूषिते ।२१
न छर्द्यामतिसारे वा नातिभुक्तो श्रमान्विते
न चातिचिंताकुलितो न चातिक्षुत्पिपासित ।२२

ऐसे साधन को उच्चलोकों के अधिपति अनेक रत्न देते है और उनके मुख से भाँति-भाँति की श्रेष्ठऔर मधुरवाणी बहिर्गत होने लगती है ।१५।

इस प्रकार योगाभ्यास करने के लिये मनुष्य को सबसे पहले ऐसा स्थान ढूढ़ना चाहिए जो शिवजीका तीर्थ हो और एकान्त,जीव-जन्तुओंकेकोलाहल से अलग और बाधारहित हो। ६।वह स्थान अच्छी तरह लिपा-पुता, गध तथा धूप आदि से सुगन्धित तथा फूलों, बेलों, आदि से आकर्षक हो।१६। वहाँ कुश, पुष्प, जल, कन्द-मूल फल अग्कि जल की बाढ़ तथा शुष्क पत्त से बचा हुआ मच्छर डांस,हिंसक पशु के भव तथा अन्य जंगली पशुओं के उपद्रव से बचा हुआ हो, दुर्जनों के भय से मुक्त हो। १८। अपना स्थान श्मशान चौराहा, सर्प का बिल, जीर्ण स्थान प्राचीन मन्दिर नदी, नद, समुद्र का किनारा अथवा किसी गलीके निकट न रखे। इसी प्रकार पुराना बगीचा, गायों के गोष्ठ अनिष्ठ, निन्दित, अजीर्ण, अम्लरस की डकार, विष्ठा-मूत्र से अशुद्ध, जुकाम, खाँसी, अतिसार, अति भोजन श्रम से युक्त चिन्ता व्याकुल भूख और प्यास से व्यक्ति अथवा गुरु के कार्य में व्यस्त व्यक्ति योगाभ्यास करें ।२०-२२।

नापि स्वगुरुकर्मादौ प्रसक्तो योगताचरेत् ।
युक्ताहारविहारश्च युक्तचेष्टश्च कर्मसु ।२३
युक्तानिद्रप्रबोधश्च सर्वायासनिर्वजितः ।
आसनं मृदुल रम्यं विपुलं सुसम शुचि :२४
पद्मकस्वस्तिकादीनामभ्यतेदासनषु च ।
अभिवंद्य स्वगुर्वतानाभिवाद्यानानुक्रमात् ।२५
ऋजुग्रीवशिरोवक्षा नातिष्ठेच्छिष्ठलोचनः ।
किंचिदुन्न मितशिरा दंतैदन्तान्न सस्पृशेत् ।२६
दंताग्रसंस्थितां जिह्वामचलां सन्निवेश्य च ।
पार्ष्णिभ्यां वृषणौ रक्षांस्तथा प्रजनन पुनः ।२
ऊर्वोपरि सस्थाप्य बाहु तिर्यगयत्नतः ।
दक्षिणं करपृष्ठं तु न्यस्य वामतलोपार ।२८
उन्नाम्य शनकै पृष्ठसुरो विष्ठभ्य चाग्रतः ।
चप्रेक्ष्य नासिकाग्र स्व दिशश्चानवलोकयन् ।२९

योग के लिए आवश्यक है कि वह अपना आहार-विहार सोना, जागना तथा अन्य सभी कर्मयुक्त रूप में करे। समान और पवित्र भूभाग पर कोमल वस्त्र धारण करते हुए, बिना अधिक श्रम किये सुन्दर, शुभ आसन पर पद्म, स्वास्तिक आदि योगासनों का अभ्यास करे। उस अवसर पर अपने गुरु आदि का क्रम से अभिवादन करे।२३-२५। गर्दन तथा सिर को सीधा रखे। ओठ नेत्र को ठीक स्थति में रखते हुए, दांतों को दांतों से न छूते हुए, दांतों के अग्रभाग में चिहवा को स्थिर रखते हुए, पार्ष्णि से अण्डकोषादि की रक्षा करते हुए, जांघ पर भुजा को तिरछा रखकर, दाहिने हाथ का पिछला हिस्सा वाम तल पर रखकर, पीठ को थोड़ा उठाकर छात्रों को भी कुछ बाहर की तरफ निकाल कर किसी तरह न देखते हुए केवल अपनी नासिका के अग्रभाग को देखे। २६-२९।

सभृतप्राथसंचारः पाषाण इव निश्चलः।
स्वदेहायतनस्यांतर्विचिंत्य शिवमंबया।३०
हृत्पद्मपीठिकामध्ये ध्यानयज्ञेर पूजयेत्।
मूले नासाग्रतो नाभौ कठे वा तालुरंध्रयोः।३१
भ्रूमध्ये द्वारदेशे वा ललाटे मूर्ध्नि वा स्मरेन्।
परिकल्प्य यथान्याय शिवयोः परमासनम्।३२
तत्र सावरण वापि निवावरणमेव वा।
दशारे बा षडस्रे वा चतुरस्रे शिवं स्मरेत्।
भ्रुवोरंतरतः पद्म द्विदलं तडिदुज्ज्वलम्।६४
भ्रूमध्यस्थारविन्दस्य क्रमाद्वै दक्षिणोत्तरे।
विद्युत्समानवर्णे च पर्णे वर्णावसानके।३५
षोडशारस्य पत्राणि स्वराः षोडश तानि वै।
पूर्वादीनि क्रमादेतत्पद्मं कन्दस्य मूलतः।३६
ककारादिटकारांमा वर्णाः वर्णान्यनुक्रमात्।
भानुवर्णस्य पद्मस्य ध्येयं तद्धदयान्तरे।३७

ऐसी स्थिति में साँस को रोककर बिल्कुल न हिलते डुलते हुए अपने देह के भीतर पार्वती सहित शिव का ध्यान करे ।३० हृदय कमल केऊपर ध्यान यज्ञ के द्वारा शिवजी की पूजा करे । नासिका के अग्रभाग सेनाभि, कण्ठ व तालु के छेद में, भोहों के बीच मूसलाधार ललाट में व शिर में मूल-मन्त्र द्वारा भगवान् शिव का ध्यान करे। वहाँ शिव और पार्वती के लिये पद्मासन की कल्पना करके उसमें सावरण अथवा निरावरण दो, सोलह या बाहर दलों की कल्पना करे । ३१-३३ । उन बाहर छै या चार शिव का स्मरण करे । भौं के स्थानमें दो दल के कमल को कल्पना करे जो बिजली के समान प्रकाशमान है । भौं के बीच वाले कमल के दक्षिण-उत्तर की ओर बिजली के समान वर्ण वाले पत्तों के सोलह अरों में ककार से लेकर टकार तक के अक्षरों की कल्पना करे और सूर्य के समान उस कमल में चारों ओर युक्त उन अक्षरों का हृदय के भीतर ध्यान करे ।३४-३७।

गौक्षीरधवलस्योक्ता डादिफान्तायथाक्रमम् ।
अधो दलास्याम्बुजस्य एतस्य च दलानिषट् ।३८
विधूमांगारवर्णस्य वर्णा बाद्याश्च लान्तिमा ।
मूलाधारारविन्दस्य हेमाभस्य यथाक्रमम् ।
वकारादिसकारान्ता वर्था. पूर्णमया स्थिता ।३९
एतेष्वथारविन्देषु यत्रैवाभिरत मनः ।
तत्रैव देवं देवीं च चिंतयेद्धीरया धिया ।४०
अंगुष्ठमात्रममल दीप्यमानं समतत ।
शुद्धदीपशिखार स्वशक्त्या पूर्णमण्डितम् ।४१
इन्दुरेखासमाकारं तारारूपमथापि वा ।
वीवारशूकसदृशं विसासूत्राभमेव वा ।४२

उन अक्षरों को कमल के पत्तों के रूप में कल्पित करना चाहिए । नाभि ऊपर की ओर दूध के समान उज्ज्वल वर्ण के डकार से फकारतक के अक्षरों को यथाक्रम रखे । नीचे की ओर कमल में छः पत्ते कल्पित करके उनमें अङ्गार के से वर्ण वाले बकार से लकार तक के अक्षरों की

कल्पना करे। मूलाधार वाले कमल का वर्ण सुवर्ण की तरह है उसके पत्ते वकार से लेकर सकार तक के अक्षरों से युक्त हैं ॥३८-३९॥ इन कमलों में जहाँ मन रमण करे वहीं पर धीर बुद्धि से शिव तथा पार्वती का चिन्तन करे।४०। उस रूप की ऐसी कल्पना करे वे अंगुष्ठमात्र दीप्त मान तथा निर्मल है, चारों ओर से शुद्ध दीपशिखाके समान अपनी शक्ति से पूर्णतः मण्डित।४१। वे चन्द्ररेखा के समान आकार वाले, तारा रूप नीवार शूक के समान अथवा कमल-नाल के समान हैं ॥४२॥

कदम्बगोलकाकारं तुषारकणिकोपमम।
क्षित्यादितत्त्वविजय ध्याता यद्यपि वाञ्छति।४३
तत्तवत्वाधिपामेव मूर्ति स्थूलां विचिंतयेत्।
सदाशिवाता ब्रह्माद्या भवद्याश्चाष्ट मूर्तयः।४४
शिवस्य मूर्तयः स्थूलाः शिवशास्त्रे विनिश्चिता।
घोरा मिश्राः प्रशान्ताश्च मूर्तयस्ता मुनीश्वरैः।४५
फलाभिलाषसहितैश्चिन्त्यान्ताविशारदैः।
घोराश्चेच्चिंचतिताः कुर्युः पापरोगपरिक्षयम्।४६
चिरेण मिश्रे सौम्ये तु न सद्यो न चिरादपि।
सौम्ये मुक्तिर्विशेषेण शांतिः प्रज्ञा प्रसिद्धयति।४७
सिद्धयन्ति सिद्धयश्चात्र क्रमशो नात्र सशयः।४८

अथवा वे कदम्ब के गोलों की तरह अथवा तुषार की कणिका की तरह हैं। उस समय पृथ्वी आदि पंच तत्वों में से जिस तत्व को विजित करने की साधक इच्छा करे उसी तत्व के अधिपति की मूर्ति का चिन्तन करे। इसके लिये ब्रह्मा आदि से लेकर सदाशिव तक और भवादिक आठ मूर्तियाँ हैं शिव शास्त्रोंके मतानुसार वे सब शिवकी ही स्थूल मूर्तियाँ हैं। मनीषियों ने उनको तीन नामों की बतलाया है घोर, मिश्रा और प्रशान्त।४३-४४। जो साधक फलकी कामना सहित ध्यानकरे तो उन्हें इन मूर्तियों का चिन्तन करना चाहिये। घोर मूर्ति के ध्यान से पाप, रोग का क्षय होता है। सब सिद्धि देने वाली मिश्रा मूर्ति अधिक समय में सिद्धि प्रदान

करना है तथा प्रशान्त मूर्ति शीघ्र ही मनोकामना पूर्ण करती है। विशेषत: मिश्रा मूर्ति का ध्यान करनेसे मुक्ति का लाभ होता है और प्रशान्त द्वारा बुद्धि को शान्ति मिलती है। इसमें कुछ भी संशय नहीं कि इनके द्वारा ये सब सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं ।।४६-४८।।

।। शिव ध्यान-योग और उसका स्वरूप ।।

श्री कठनाथ स्मरतां सद्यः सर्वार्थसिद्धय ।
प्रसिद्धयन्तीतिमत्वैके तं वै ध्यायति योगिनः ।१
स्थित्यर्थं मनसः केचित्स्थूलध्यानं प्रकुर्वते ।
स्थूले तु निश्चल चेतो भवेत्सूक्ष्मे तु तत्स्थिरम् ।२
शिवे तु चिंतित साक्षात्पर्वाः सिद्धयन्ति सिद्धयः ।३
लक्षयेन्मनसः स्थैर्यं तत्तद्धयायेत्नः पुपुनः ।
ध्यानमादौ सविषय ततो निर्विषय जगु ।४
तत्र निर्विषयं ध्यान नास्तीयेव सतां मयम् ।
बुद्धहि सन्ततिः काचद्ध्यानमित्वभिधीयते ।५
तेन निर्विषया बुद्धिः केवलेह प्रवर्तते ।
तस्मातसविषय ध्यानं बालार्ककिरणाश्रयम् ।६
सूक्ष्माश्रय निर्विषयं नापर परमार्थत ।
यद्वा सविषय ध्यान तत्साका-समाश्रयम् ।७

उपमन्यु ने कहा—श्रीकण्ठनाथ के स्मरण करने से सब प्रकार की अभिलाषायें शीघ्र ही पूरी होती हैं, समस्त सिद्धियाँ भी प्राप्त होती हैं। अतः योगी उन्हीं का ध्यान करते हैं।१। अन्य लोगों की सम्मति हैं मन को स्थिर रखनेके लिए पहले स्थूल लक्ष्यका ध्यान करना चाहिए। उसके पश्चात् सूक्ष्म पर होना सहज होता है।२। इसके लिए शिव का चिन्तन करना सर्वश्रेष्ठ है, इससे सिद्धियाँ स्वयमेव प्राप्त हो जाती हैं। इसलिए मन की स्थिरता के लिए आन्तरिक रुचि और भावपूर्वक शिव का चिन्तन करना ही श्रेयस्कर है। मन की स्थिरता की चेष्टा करते हुए पहले सगुण और फिर निर्गुण रूप से ध्यान करे।३-४। अनेक विद्वानों का मत है कि

निर्विषय (निर्गुण) कोई ध्यान ही नहीं है यह मनुष्य की बुद्धि की कल्पना ही होती है ।५। जो बुद्धि निर्विषय वाली होती है वही इस ओर प्रवृत्त होती है । इसके मुकाबले सविषय सगुण ध्यान सूर्य की किरणों के समान प्रत्यक्ष फलदायक है । ६ । निर्विषय सूक्ष्म आश्रय वाला होता है और सविषय साकार आश्रय युक्त है ।७।

निराकारात्मसंवित्तिर्ध्यानं निर्विषयं तमम् ।
निर्वीजं च सबीजं च तदेव ध्यानमुच्यते ।८
निराकराश्रयत्वेन सकाराश्रयतस्तथा ।
तस्सात्सविषयं ध्यानमादौ कृत्वा सबीजकम् ।९
अन्ते निर्विषयं कुर्यान्निर्बीज सर्वसिद्धये ।
प्राणायामेन सिध्यति दिव्याः शांत्यादयः क्रमान् ।१०
शांतिः प्रशांतिर्दीप्तिश्च प्रसादश्च ततः परम् ।
शमः सर्वापदां चैव शांतिरित्यभिधीयते ।११
तमसोऽन्तर्बहिर्नाशः प्रशान्तिः परिगीयते ।
बहिरन्त प्रकाशो यो दीप्तिरित्यभिधीयये ।१२
स्वस्थता या तु बुद्धेः प्रसादः परिकीर्तितः ।
कारणानि च सर्वाणि सबाह्याभ्यतराणि च ।१३
बुद्धे प्रसादतः क्षिप्र प्रसन्नानि भवत्युत ।
ध्याता ध्यान तथा ध्येषयद्वा ध्यानप्रयोजनम् ।१४

निराकार आत्मा का ज्ञान प्राप्त करना ही निर्विषय ध्यान कहा जाता है, वह दो प्रकार का होता है—एक निर्बीज, दूसरा सजीव ।८। ये निर्बीज और सबीज दोनों भेद निराकार तथा साकार के आश्रय भेद के कारण ही निश्चय किये गये हैं । इसलिए ये दोनों ही आवश्यक हैं और साधक पहिले सविषय (सबीज) ध्यान करके फिर निर्बीज का अभ्यास करे । इस विधिसे उद्देश्य पूर्णतः सिद्ध हो जाता है । इसके लिए प्राणायाम के अभ्यास द्वारा शान्ति आदिक देवियों को प्राप्त करना उचित है ।९-१०। इस शान्ति रूपी देवी के चार दर्जे हैं शान्ति, प्रशान्ति, दीप्ति

और प्रसाद। सब आपत्तियों के शमन का नाम शान्ति है। भीतर तथा बाहर के अज्ञानान्धकार के मिटने का प्रशान्ति है। बाहर और भीतर प्रकाश हो जाने को दीप्ति कहा गया है। वृद्धि स्थिर होकर स्वस्थ हो जाय वही प्रसाद हैं। बुद्धि की ऐसी स्थिरता से ही बाहरी और भीतरी लक्ष्य प्राप्त होते हैं। ध्यान को करने के लिए पहले ध्याता, ध्यान, ध्येय और ध्यान का उद्देश्य भी समझ लेना आवश्यक है ॥१४॥

एतच्चतुष्ठयं ज्ञात्वा ध्याता ध्यानं समाचरेत् ।
ज्ञानवैराग्यसपनो नित्यमव्यग्रमानसः ।१५
श्रद्दधाना प्रसन्नात्मा ध्याता सद्भिरुदाहृत ।
ध्यै चितायां स्मृतो धातुः शिवचिंता मुनुर्हुहु ।१६
योगाभ्यासस्यथाल्पोऽपि यथा पापं विनाशयेत् ।
ध्यायतः क्षणमात्रं वा श्रद्धया परमेश्वरम् ।१७
अव्याक्षिप्तेन मनसा ध्यानतित्यभिधीयते ।१८
बुद्धिप्रवाहरूपस्य ध्यानस्यास्यवलंवनम् ।
ध्येतमित्युच्यते सद्भिस्तच्च सांव स्वयं शिव ।१९
विमुक्तिप्रत्ययं पूर्णमैश्वर्यं चाणिमादिकम् ।
शिवध्यानस्य पूर्णस्य साक्षादुक्त प्रयोजनम् ।२०
यस्मात्सौख्यं च मोक्ष च ध्यानादुभयमाप्नुयात् ।
तस्मात्ववँ परित्यज्य ध्यानयुक्तो भवेन्तरः ।२१

ध्याता सत्पुरुष ज्ञान वैराग्य से युक्त, व्यग्रता से शून्य तन वाले, श्रद्धायुक्त, प्रसन्न आत्मा कहे गये हैं। ।१५। ध्यानका शब्दार्थ "ध्यै चिन्ताम" धातुके अनुसार किसी विषयका निरन्तर चिन्तन करते रहना उचित है। इसलिए साधक को सदैव शिव का चिन्तन करते रहना उचित है। जिस प्रकार थोड़ा-सा योगाभ्यासभी पापोंको नष्ट करदेता है इसी प्रकार श्रद्धापूर्वक थोड़ी देर तक भी परमेश्वर का ध्यान करने से पाप दूर हो जाते हैं ।१६-१७। मन की विक्षेप रहित अवस्था का नाम ध्यान कहा है। यह बुद्धिका प्रवाह रूपी ध्यान जिस अवलम्बन पर रहता है वही ध्येय कह

जाता है। ज्ञानियों के मतानुसार इस प्रकार का सर्वश्रेष्ठ अवलम्बन शिव और अम्बिका ही हैं। १८-१९। इस प्रकार शिव ध्यान के प्रयोजन ये हैं मुक्ति, प्रत्यययुक्त ऐश्वर्य और अणिमादि आठों सिद्धियाँ।२०। ध्यान से ही मनुष्य मोक्ष और साँसारिक सुख दोनों को प्राप्त कर सकता है, इससे सम उपायों की अपेक्षा ध्यान को ही अङ्गीकार करना चाहिए।२१।

नास्ति ध्यान बिना ज्ञान नास्ति ध्यानमयोगिना।
ध्यानं ज्ञान च यस्यास्ति तीर्णस्तेन भवार्णवः।२२
ज्ञानं प्रसन्नमेकाग्रमशेष पाधिवर्ज्जितम्।
योगाभ्यासेन युक्त य योगिनस्त्वेव सिद्धयति।२३
प्रक्षीण शेषपापानां ज्ञाने ध्याने भवेन्मतिः।
पाप प्रहतबुद्धीनां तद्वार्तापि सुदुर्लभा।२४
यथा वह्निर्महादीप्तः शष्कमाद्रं च निर्दहेत्।
तथा शुभाशुभं कर्म ध्यानाग्निर्दहते क्षणात्।२५
अत्यल्पाऽपि यथा दीपः समहन्नाशयत्तमः।
योगाभ्यासस्तथाल्पोऽपि महापापविनाशयेत्।२६
ध्यायतः क्षणमात्रं वा श्रद्धा परमेश्वरम्।
यद्भवेत्सुमहच्छ्रेयस्तस्यांतो नैव विद्यते।२७
नास्ति ध्यानसमं तीर्थं नास्ति ध्यानसमं तपः :
नास्ति ध्यानसमो यज्ञस्तस्माद्ध् यानं समाचरेत्।२८

ध्यान ही ज्ञान का मुख्य साधन है और योग के बिना ध्यान सिद्ध नहीं हो सकता! इसलिए योग द्वारा ध्यान का प्राप्ति करना सर्वोपरि कर्तव्य है। जो ज्ञान और ध्यान दोनों को प्राप्त कर लेता है वह इस संसार चक्र से निश्चय ही मुक्त हो जाताहै।२२-२३। जिनके पाप क्षीण हो जाते हैं उन्हीं की रुचि ज्ञान और ध्यान की ओर जाती है अन्यथा पापी लोगों को तो इस तरह की बातें भी अच्छी नहीं लगती।२४। जैसे प्रज्वलित अग्नि गीले सूखे सब पदार्थों को भस्म कर देती है। उसी प्रकार ध्यान की अग्नि भी अच्छे बुरे सब तरहके कर्मों को शीघ्र ही नष्ट कर देती है।२५।

जिस प्रकार साधारण दीपक बहुत बड़े अँधेरे को दूर कर देता है उसी प्रकार थोड़ा सा योग साधन भी बड़े पापों को दूर कर देता है ।२६। श्रद्धापूर्वक परमेश्वर का थोड़ी देर भी ध्यान करने से अनन्त कल्याण की प्राप्ति होती है ।२७। तीर्थ, तप, यज्ञ आदि भी ध्यान की समानता नहीं कर सकते, इसलिए ध्यान करना ही परम कर्तव्य है ।२८।

तीर्थानि तोयपूर्णानि देवान्पाषाणमृन्मयान् ।
योगिनो न प्रपद्यन्ते स्वात्मप्रत्ययकारणात् ।२९
योगिनां च वपुः सूक्ष्मं भवेत्प्रत्यक्षमैश्वरम् ।
यथा स्कूलमयुक्तानां मृत्काष्ठाद्यैः प्रनल्पितम् ।३०
यथेहांतश्वरा नाज्ञः प्रिया स्युर्न बहिश्चरा ।
तथांतर्ध्याननिरताः प्रिया. शंभोर्न कर्मिणः ।३१
बहिष्करा यथा लोके नातीव फलभोगिन ।
दृष्टवा नरेन्द्रभवने तद्वदत्रारि कर्मिर्णः ।३२
यद्यतरा विपद्येत ज्ञानयोगार्थमुद्यतः ।
योगस्योद्योगमात्रेण रुद्रलोकं गमिष्यति ।३३
अनुभूय सुख तत्र स जातो योगिनः कुले ।
ज्ञानयोगं पुनर्लब्ध्वा संसारमतिवर्तते ।३४
जिज्ञासुरपि योगस्य यां गतिं लभते नरः ।
न तां गतिमवाप्नोति सर्वैरपि महामखै ।३५
दग्धतंदुलवज्ज्ञेय तथा पापेन योगिनः ।
न लिप्यते च पापौघैः पद्मपत्रं यथांभसा ।३६
यस्मिन्देशे वसेन्नित्यं शियोगरतो मुनिः ।
सोऽपि देशो भवेत्पूतः स पूत इति किं पुनः ।३७
तस्मात्सर्वं परित्यज्य कृतमन्यद्विचक्षणः ।
सर्वदुःखप्रहाणाय शिवयोग समभ्यसेत् ।३८

जल युक्त तीर्थों और मिट्टी अथवा पाषाण की मूर्ति की पूजा उपासना योगी लोग इसीलिये नहीं करते क्योंकि उनको आत्माका ज्ञान हो जाता है

।२९। योगी लोग सूक्ष्म देह द्वारा ईश्वर में मिल जाते हैं। मिट्टी, काष्ठ आदि की मूर्तियाँ उन्हीं लोगोंके लिए रची गई हैं जो योग से अनजान हैं ।३०। जिस प्रकार राजा को बाहरी काम करने की अपेक्षा भीतरी काम करने वाले अधिक महत्व के जान पड़ते हैं उसी प्रकार भगवानशिव को भी अनन्तर में ध्यान करने वाले योगी विशेष प्रिय होते हैं, बाहरी कर्म काण्ड वाले नहीं होते। जिस प्रकार हाथ फैलाकर माँगने वाले बहुत थोड़ा फल प्राप्त करते हैं, पर राजा के खास आदमी पूरा फल पा जाते हैं, वैसा ही यहाँ ही होता है ।३१-३२। जो आन्तरिक भाव से ज्ञान योग के लिये उद्यम करते हैं वे चाहे बीच में विपत्तिग्रस्त होते हैं पर अन्त में रुद्रलोक को प्राप्त कर लेते हैं ।३३। वे लोग संसार में सब प्रकार के सुख पाकर योगियों के कुल में जन्म लेते हैं और वहाँ ज्ञान योग को सिद्ध करके मुक्त हो जाते हैं ।३४। साधारण योग साधक भी जिस महान् गति को प्राप्त कर लेता है। वह बड़े-बड़े यज्ञों से भी प्राप्त नहीं हो सकती ।३५। जैसे वज्र को चावल द्वारा नहीं तोड़ा जा सकता, जैसे कमल का पत्ता जल से प्रभावित नहीं होता उसी प्रकार योगी पर किसी पाप या ताप का प्रभाव नहीं होता।३६। शिव-योग का अभ्यास करने वाला जिस देश में रहता है, वह देश पवित्र हो जाता है, तो वह योगी तो महा पवित्र होगा ही ।३७। इसलिये अपना कल्याण चाहने वाले को सदैव अन्य साधनों की अपेक्षा शिव-योग का आश्रय ही लेना कर्तव्य है ॥३८॥

एतच्छिवपुराणं हि समाप्तं हितमादरात्।
पठितव्यं श्रोतव्य च तथैव हि ।३९
नास्तिकाय न वक्तव्यमश्रद्धाय शठाय च।
अभक्ताय महेश तथा धर्मध्वजाय च ।४०
एतच्छ्रुत्वा ह्येकवार भवेत्पापं हि भस्मसाम्।
अभक्तो भक्तिमाप्नोति भक्तो भक्तिसबद्धिभाक् ।४१
पुन श्रुते च सद्भक्तिर्मुक्तिः स्याच्च श्रुते पुनः।
तस्मात्पुनः पुनश्चैव श्रोतव्य हि मुमुक्षभिः ।४२

पंचवृत्तिः प्रकर्तव्य पुराणास्यास्य सद्धिया ।
परम् फल समुद्दिश्य तत्प्राप्नोति न संशयः ।४३
पुरातनाश्च राजानो विप्रा वैश्याश्च सत्तमा ।
सप्तकृत्वस्तदावृत्याऽलभत शिवदर्शनम् ।४४
श्रोष्यत्यथापि यश्चेदं मानवो भक्तितत्पर ।
इयं भुक्त्वाऽखिलान्भोगानते मुक्ति लभेच्चा सः ४५
एतच्छिवपुराण हि शिवस्याति प्रियं परम् ।
भुक्तिमुक्ति प्रद ब्रह्मसमितं भक्तिवर्द्धनम् ।४६
एतच्छिवपुराणस्य वक्तुः श्रोतुश्च सर्वदा ।
समणः ससुतः साबः शं करोतु स शंकरः ।४७

व्यासजी ने कहा—इस शिवपुराण को प्रयत्न पूर्वक पढ़ना और आदर पूर्वक आद्यन्त सुनना चाहिए । ३९ । जो कोई नास्तिक भावापन्न श्रद्धारहित, शठ, शिवजीका अभक्त तथा धर्म का ढोंग करने वाला जान पड़े उसके सामने इसे न कहे ।४०। इसके एक बार सुन लेने से ही समस्त पाप भस्म हो जाते हैं अभक्त व्यक्ति भक्त बन जाता है । वे समृद्धिवान बनते हैं ।४१। दूसरी बार सुनने से श्रेष्ठ भक्ति प्राप्त होती है और फिर सुनने से मुक्ति मिलती है । इसलिए मोक्षाभिलाषियों को बारम्बार सुनना चाहिए ।४२। जो कोई सद्-बुद्धि से इसे पाँच बार पढ़ लेता है उसे परमगति प्राप्त होने में कुछ भी सन्देह नहीं रहता ।४४।प्राचीनकाल में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि इसकी सात बार पाठ करके शिव का दर्शन प्राप्त कर चुके हैं ।४५। जो मनुष्य इसे भक्ति भाव पूर्वक सुनते हैं, वे इस लोक में समस्त भोगों को प्राप्त करके अन्तमें मुक्ति लाभ करते हैं ।४६। यह शिवपुराण शिवजीको अत्यन्त प्रिय हैं, यह भुक्ति मुक्तिका देने वाला, ब्रह्म समस्त और भक्ति की वृद्धि करने वाला है। ४६। इस शिव पुराण के वक्ता और श्रोता का गणपति, कार्तिकेय तथा पार्वती जी सहित शङ्कर भगवान् कल्याण करें।४७

॥ श्री शिवपुराण समाप्त ॥



